हिन्दी
8

बाबासाहेब डॉ. अम्बेडकर सम्पूर्ण वाङ्मय

हिंदू धर्म की पहेलियां

बाबासाहेब डॉ. अम्बेडकर

सम्पूर्ण वाङ्मय

खंड–8

हिंदू धर्म की पहेलियां

बाबासाहेब डॉ. बी. आर. अम्बेडकर

जन्म : 14 अप्रैल, 1891 परिनिर्वाण 6 दिसंबर, 1956

बाबासाहेब

डॉ. अम्बेडकर

सम्पूर्ण वाङ्मय

खंड 4

डॉ. अम्बेडकर सम्पूर्ण वाङ्मय

खंड 8

हिंदू धर्म की पहेलियां

पहला संस्करण : 1995
तीसरा संस्करण : 2011
चौथा संस्करण : 2013 (जनवरी)
पांचवां संस्करण : 2013 (फरवरी)
छठा संस्करण : 2013 (अप्रैल)
सातवां संस्करण : 2013 (जुलाई)
आठवां संस्करण : 2013 (अक्टूबर)
नौवां संस्करण : 2014 (फरवरी)
दसवां संस्करण : 2016
ग्यारवां संस्करण : 2019 (जून)
वारहवा संस्करण : 2020 (अगस्त)

ISBN :978-93-5109-157-8

आवरण परिकल्पना : डॉ. देबेन्द्र प्रसाद माझी, पी.एच.डी.

पुस्तक के आवरण पर उपयोग किया गया मोनोग्राम बाबासाहेब डॉ. बी. आर. अम्बेडकर के लेटरहेड से साभार

ISBN (सेट) : **978-93-5109-149-3**

रियायत नीति के अनुसार सामान्य (पेपरबैक) 1 सेट (खंड 1–40) का मूल्यः रू 1073/-
रियायत नीति (Discount Policy) संलग्न है।

प्रकाशकः
डॉ. अम्बेडकर प्रतिष्ठान
सामाजिक न्याय और अधिकारिता मंत्रालय,
भारत सरकार
15 जनपथ, नई दिल्ली – 110 001
फोन : 011–23320571
जनसंपर्क अधिकारी फोन : 011–23320588
वेबसाइट :http://drambedkarwritings.gov.in
Email-Id :cwbadaf17@gmail.com

मुद्रक : अरावली प्रिंटर्स एंड पब्लिशर्स प्रा. लिमि., W-30 ओखला, फेज–2, नई दिल्ली–20

परामर्श सहयोग

डॉ. थावरचन्द गेहलोत
सामाजिक न्याय और अधिकारिता मंत्री भारत सरकार
एवं
अध्यक्ष, डॉ. अम्बेडकर प्रतिष्ठान

श्री रामदास अठावले
सामाजिक न्याय और अधिकारिता राज्य मंत्री

श्री कृष्णपाल गुर्जर
सामाजिक न्याय और अधिकारिता राज्य मंत्री

श्री रतनलाल कटारिया
सामाजिक न्याय और अधिकारिता राज्य मंत्री

श्री आर. सुब्रह्मण्यम
सचिव
सामाजिक न्याय और अधिकारिता मंत्रालय भारत सरकार

सुश्री उपमा श्रीवास्तव
अतिरिक्त सचिव एवं सदस्य सचिव,
डॉ. अम्बेडकर प्रतिष्ठान
सामाजिक न्याय और अधिकारिता मंत्रालय, भारत सरकार

डॉ. देबेन्द्र प्रसाद माझी, पी.एच.डी.
निदेशक
डॉ. अम्बेडकर प्रतिष्ठान

डॉ. बृजेश कुमार
संयोजक, सी.डब्ल्यू.बी.ए.
डॉ. अम्बेडकर प्रतिष्ठान

सकंलन (अंग्रेजी)
श्री वसंत मून

संपादक
श्री कैलाश चन्द्र सेठ
श्री मोहन दास नैमिसराय

अनुवादक तथा पुनरीक्षक
श्री सीताराम खोड़ाववाल

द्वितीय संस्करण के पुनरीक्षक
श्री उमराव सिंह

डॉ. थावरचन्द गेहलोत
DR. THAAWARCHAND GEHLOT
सामाजिक न्याय और अधिकारिता मंत्री
भारत सरकार
MINISTER OF
SOCIAL JUSTICE AND EMPOWERMENT
GOVERNMENT OF INDIA

कार्यालयः 202, सी विंग, शास्त्री भवन,
नई दिल्ली–110115
Office : 202, 'C' Wing, Shastri Bhawan,
New Delhi-110115
Tel. : 011-23381001, 23381390, Fax : 011-23381902
E-mail : min-sje@nic.in
दूरभाषः 011-23381001, 23381390, फैक्सः 011-23381902
ई-मेलः min-sje@nic.in

संदेश

स्वतंत्र भारत के संविधान के निर्माता बाबासाहेब डॉ. भीमराव अम्बेडकर जी बहुआयामी प्रतिभा के धनी थे । बाबासाहेब डॉ. भीमराव अम्बेडकर जी एक उत्कृष्ट बुद्धिजीवी, प्रकाण्ड विद्वान, सफल राजनीतिज्ञ, कानूनविद, अर्थशास्त्री और जनप्रिय नायक थे । वे शोषितों, महिलाओं और गरीबों के मुक्तिदाता थे। बाबासाहेब डॉ. भीमराव अम्बेडकर जी सामाजिक न्याय के लिये संघर्ष के प्रतीक हैं । बाबासाहेब डॉ. भीमराव अम्बेडकर जी ने सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक सभी क्षेत्रों में लोकतंत्र की वकालत की । एक मजबूत राष्ट्र के निर्माण में बाबासाहेब डॉ. भीमराव अम्बेडकर जी का योगदान अतुलनीय है ।

बाबासाहेब डॉ. भीमराव अम्बेडकर जी के लेख एवं भाषण क्रांतिकारी वैचारिकता एवं नैतिकता के दर्शन-सूत्र हैं। भारतीय समाज के साथ-साथ सम्पूर्ण विश्व में जहां कहीं भी विषमतावादी भेदभाव या छुआछूत मौजूद है, ऐसे समस्त समाज को दमन, शोषण तथा अन्याय से मुक्त करने के लिये डॉ. अम्बेडकर जी का दृष्टिकोण और जीवन-संघर्ष एक उज्ज्वल पथ प्रशस्त करता है । समतामूलक, स्वतंत्रता की गरिमा से पूर्ण, बंधुता वाले एक समाज के निर्माण के लिये बाबासाहेब डॉ. भीमराव अम्बेडकर जी ने देश की जनता का आह्वान किया था ।

बाबासाहेब डॉ. भीमराव अम्बेडकर जी ने अस्पृश्यों, श्रमिकों, महिलाओं और युवाओं को जो महत्वपूर्ण संदेश दिये, वे एक प्रगतिशील राष्ट्र के निर्माण के लिये अनिवार्य दस्तावेज हैं । तत्कालीन विभिन्न विषयों पर डॉ. अम्बेडकर जी का चिंतन-मनन और निष्कर्ष जितना उस समय महत्वपूर्ण था, उससे कहीं अधिक आज प्रासंगिक हो गया है। बाबासाहेब की महत्तर मेधा के आलोक में हम अपने जीवन, समाज राष्ट्र और विश्व को प्रगति की राह पर आगे बढ़ा सकते हैं। समता, बंधुता और न्याय पर आधारित बाबासाहेब डॉ; भीमराव अम्बेडकर जी के स्वप्न का समाज-**"सबका साथ सबका विकास"** की अवधारणा को स्वीकार करके ही प्राप्त किया जा सकता है।

मुझे यह जानकर अत्यंत प्रसन्नता हो रही है, कि सामाजिक न्याय और अधिकारिता मंत्रालय का स्वायत्तशासी संस्थान द्वारा, डॉ. अम्बेडकर प्रतिष्ठान, **"बाबासाहेब डॉ. अम्बेडकर : सम्पूर्ण वांग्मय"** के खण्ड 1 से 21 तक के संस्करणों को, बाबासाहेब डॉ. भीमराव अम्बेडकर जी के अनुयायियों और देश के आम जन-मानस की मांग को देखते हुये पुनर्मुद्रण किया जा रहा है ।

विद्वान पाठकगण इन खंडों के बारे में हमें अपने अमूल्य सुझाव से अवगत करायेंगे तो हिंदी में अनुदित इन खण्डों के आगामी संस्करणों को और बेहतर बनाने में सहयोग प्राप्त हो सकेगा।

9/7/19

(डॉ. थावरचन्द गेहलोत)

बाबासाहेब अम्बेडकर के सम्पूर्ण वाङ्मय (Complete CWBA Vols.) का विमोचन
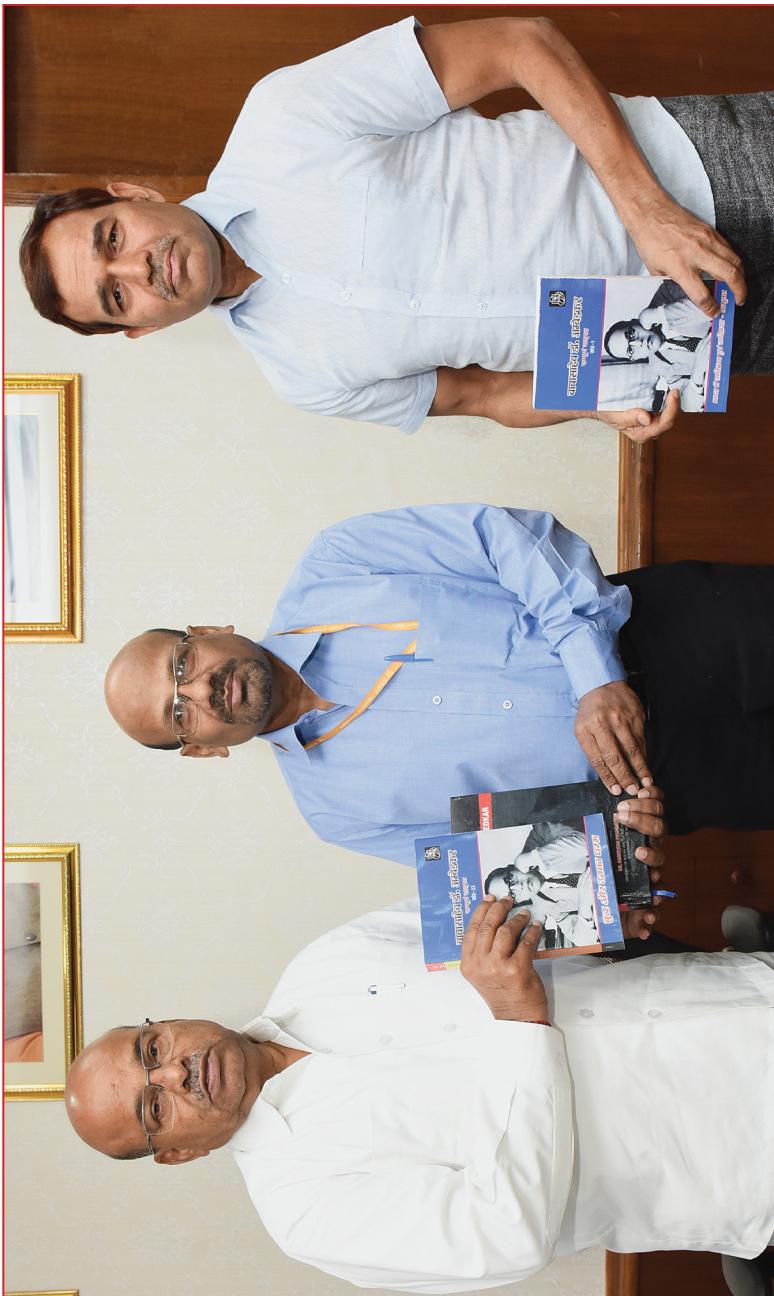
हिंदी और अंग्रेजी में CWBA / सम्पूर्ण वाङ्मय, (Complete Volumes) बाबासाहेब डॉ. अम्बेडकर के संग्रहित कार्यों के संपूर्ण खण्ड, डॉ. थावरचंद गेहलोत, सामाजिक न्याय और अधिकारिता मंत्री, और अध्यक्ष, डॉ. अम्बेडकर प्रतिष्ठान, भारत सरकार, नई दिल्ली द्वारा जारी किया गया है। साथ ही डॉ. देबेन्द्र प्रसाद माझी, निदेशक, डॉ. अम्बेडकर प्रतिष्ठान और श्री सुरेन्द्र सिंह, सदस्य सचिव भी इस अवसर पर उपस्थित थे। हिंदी के खंड 22 से खंड 40 तक 2019 में पहली बार प्रकाशित हुए है।

उपमा श्रीवास्तव, आई.ए.एस.
अपर सचिव
UPMA SRIVASTAVA, IAS
Additional Secretary

भारत सरकार
सामाजिक न्याय और अधिकारिता मंत्रालय
शास्त्री भवन, नई दिल्ली-110001
Government of India
Ministry of Social Justice & Empowerment
Shastri Bhawan, New Delhi-110001
Tel. : 011-23383077 Fax : 011-23383956
E-mail : as-sje@nic.in

प्राक्कथन

भारतरत्न डॉ. बी.आर. अम्बेडकर भारतीय सामाजिक–राजनीतिक आंदोलन के ऐसे पुरोधा रहे हैं, जिन्होंने जीवनपर्यंत समाज के आख़िरी पायदान पर संघर्षरत् व्यक्तियों की बेहतरी के लिए कार्य किया। डॉ. अम्बेडकर बहुमुखी प्रतिभा के धनी थे इसलिए उनके लेखों में विषय की दार्शनिक मीमांसा प्रस्फुटित होती है। बाबासाहेब का चिंतन एवं कार्य समाज को बौद्धिक, आर्थिक एवं राजनैतिक समृद्धि की ओर ले जाने वाला तो है ही, साथ ही मनुष्य को जागरूक मानवीय गरिमा की आध्यात्मिकता से सुसंस्कृत भी करता है।

बाबासाहेब का संपूर्ण जीवन दमन, शोषण और अन्याय के विरुद्ध अनवरत क्रांति की शौर्य–गाथा है। वे एक ऐसा समाज चाहते थे जिसमें वर्ण और जाति का आधार नहीं बल्कि समता व मानवीय गरिमा सर्वोपरि हो और समाज में जन्म, वंश और लिंग के आधार पर किसी प्रकार के भेदभाव की कोई गुंजाइश न हो। समता, स्वतंत्रता और बंधुत्व के प्रति कृतसंकल्प बाबासाहेब का लेखन प्रबुद्ध मेधा का प्रामाणिक दस्तावेज़ है।

भारतीय समाज में व्याप्त विषमतावादी वर्णव्यवस्था से डॉ. अम्बेडकर कई बार टकराए। इस टकराहट से डॉ. अम्बेडकर में ऐसा जज़्बा पैदा हुआ, जिसके कारण उन्होंने समतावादी समाज की संरचना को अपने जीवन का मिशन बना लिया।

समतावादी समाज के निर्माण की प्रतिबद्धता के कारण डॉ. अम्बेडकर ने विभिन्न धर्मों की सामाजिक, धार्मिक व्यवस्था का अध्ययन व तुलनात्मक चिंतन–मनन किया।

मैं प्रतिष्ठान की ओर से माननीय सामाजिक न्याय और अधिकारिता मंत्री, भारत सरकार का आभार व्यक्त करती हूँ जिनके सद्परामर्श एवं प्रेरणा से प्रतिष्ठान के कार्यों में अपूर्व प्रगति आई है।

उपमा श्रीवास्तव

(उपमा श्रीवास्तव)
अतिरिक्त सचिव
सामाजिक न्याय और अधिकारिता मंत्रालय,
भारत सरकार, एवं
सदस्य सचिव

प्रस्तावना

बाबासाहेब डॉ. भीमराव रामजी अम्बेडकर एक प्रखर व्यक्तित्व, ज्ञान के प्रतीक और भारत के सुपुत्र थे। वह एक सार्वजनिक बौद्धिक, सामाजिक क्रांतिकारी और एक विशाल क्षमता संपन्न विचारक थे। उन्होंने सामाजिक और राजनीतिक स्थितियों के व्यावहारिक विश्लेषण के साथ–साथ अंतःविषयक दृष्टिकोणों को अपने लेखन और भाषणों के माध्य से प्रभावित किया जो बौद्धिक विषयों और भावनाओं को अभिव्यक्त एवं आंदोलित किया। उनके लेखन में वंचित वर्ग के लोगों के लिए प्रकट न्याय और मुक्ति की गहरी भावना है। उन्होंने न केवल समाज के वंचित वर्गों की स्थितियों को सुधारने के लिए अपना जीवन समर्पित किया, बल्कि समन्वय और 'सामाजिक समरसता' पर उनके विचार राष्ट्रीय प्रयास को प्रेरित करते रहे। उम्मीद है कि ये खंड उनके विचारों को समकालीन प्रासंगिकता प्रदान कर सकते हैं और वर्तमान समय के संदर्भ में डॉ. अम्बेडकर के पुनःपाठ की संभावनाओं को उपस्थित कर सकते हैं।

डॉ. अम्बेडकर प्रतिष्ठान, भारत के साथ–साथ विदेशों में भी जनता के बीच बाबासाहेब डॉ. अंबेडकर की विचारधारा और संदेश के प्रचार–प्रसार हेतु स्थापित किया गया है। यह बहुत ख़ुशी की बात है कि सामाजिक न्याय और अधिकारिता मंत्री के नेतृत्व में प्रतिष्ठान के शासी निकाय के एक निर्णय के परिणामस्वरूप, तथा पाठकों की लोकप्रिय माँग पर डॉ. अम्बेडकर प्रतिष्ठान, बाबासाहेब अम्बेडकर के हिंदी में संपूर्ण वांग्मय (Complete CWBA Volumes) का दूसरा संस्करण पुनर्मुद्रित कर रहा है।

मैं संयोजक, अनुवादकों, पुनरीक्षकों, आदि सभी सहयोगियों, एवं डॉ. अम्बेडकर प्रतिष्ठान में अपनी सहायक, कुमारी रेनू और लेखापाल, श्री नन्दू शॉ के प्रति आभार प्रकट करता हूँ, जिनकी निष्ठा एवं सतत् प्रयत्न से यह कार्य संपन्न किया जा सका है।

विद्वान एवं पाठकगण इन खंडों के बारे में सुझाव से डॉ. अम्बेडकर प्रतिष्ठान को उसकी वैधानिक ई–मेल आई.डी. **cwbadaf17@gmail.com** पर अवगत कराएं ताकि, अनुदित इन खंडों के आगामी संस्करणों को और बेहतर बनाने में सहयोग प्राप्त हो सकेगा।

डॉ. अम्बेडकर प्रतिष्ठान हमेशा पाठकों को रियायती कीमत पर खंड उपलब्ध कराने के लिए प्रयास करता रहा है, तदनुसार आगामी संस्करण का भी रियायत नीति (Discount Policy) के साथ बिक्री जारी रखने का निर्णय लिया गया है। अतः प्रत्येक खंड के साथ प्रतिष्ठान की छूट नीति को संलग्न कर दिया गया है। आशा है कि ये खंड पाठकों के लिए प्रेरणा का स्रोत बने रहेंगे।

(डॉ. देबेन्द्र प्रसाद माझी)
निदेशक, डॉ. अम्बेडकर प्रतिष्ठान
सामाजिक न्याय एवं अधिकारिता मंत्रालय, भारत सरकार,

15, जनपथ,
नई दिल्ली

यह कहा जा सकता है कि हिंदुओं की धर्मिक पुस्तकों के प्रति मैंने वह आदर प्रकट नहीं किया है, जो धर्मिक पुस्तकों के प्रति होना चाहिए। धर्मिक पुस्तकों के प्रति श्रद्धा कराई नहीं जा सकती। यह श्रद्धा तो सामाजिक स्थितियों से स्वयं उत्पन्न होती है अथवा हटती है। धर्म ग्रंथों के प्रति ब्रह्मणों की श्रद्धा तो स्वाभाविक है, परन्तु गैर–ब्राह्मणों के लिए यह अस्वाभाविक है। यह भेदभाव सरलता से समझा जा सकता है।

—डॉ. भीमराव अम्बेडकर

विषय सूची

भाग–I

धर्मिक

भाग–II

सामाजिक

भाग–III

राजनैतिक

प्रस्तावना

यह पुस्तक उस आस्थाओं को उद्घाटित करती है जिन्हें ब्राह्मण तत्वज्ञान का नाम देते हैं। यह उन सामान्य हिंदू-जनों के लिए है, जो यह जानना चाहते हैं कि ब्राह्मणों ने उन्हें किस दलदल में फंसा दिया है और इसका उद्देश्य उन्हें विवेक का रास्ता दिखाना है।

ब्राह्मणों ने यह प्रचारित किया कि हिंदू सभ्यता सनातन है, मतलब अपरिवर्तनीय। बहुत से यूरोपीय विद्वानों ने भी यही राग अलापा है, जिनका कहना है कि हिंदू सभ्यता अडिग-अटल है। इस पुस्तक में मैंने यही बताने की चेष्टा की है कि यह धारणा तथ्यपरक नहीं है और हिंदू सभ्यता समय-समय पर बदलती रही है तथा अक्सर इसमें भारी बुनियादी परिवर्तन हुए हैं। अहिंसा की पहेली (पृ.117) ओर 'अहिंसा से हिंसा पर वापसी' (पृ.122) पहेलियों पर दृष्टिपात करें। मैं जन-समुदाय को यह अहसास कराना चाहता हूं कि हिंदू धर्म सनातन नहीं है।

पुस्तक का दूसरा उद्देश्य हिंदुओं का ध्यान इस ओर आकृष्ट करना है कि ब्राह्मणों ने क्या-क्या चालें चलीं और उन्हें यह अहसास कराना है कि ब्राह्मणों ने उन्हें कितना छला, कितना गुमराह किया।

पुस्तक पढ़ने से यह पता चलेगा कि ब्राह्मणों में एकाएक बदलाव कैसे आया। एक समय वे वैदिक देवताओं की पूजा करते थे। फिर एक समय ऐसा आया कि उन्होंने वैदिक देवताओं को किनारे कर दिया और अवैदिक देवताओं का नमन करने लगे। कोई उनसे पूछे इन्द्र, वरुण, ब्रह्मा और मित्र कहां हैं, जिनका वेदों में उल्लेख है। वे सभी लुप्त हो गए। क्यों? इसलिए कि इन्द्र, वरुण और ब्रह्मा की पूजा करना लाभप्रद नहीं रहा। बात यहीं तक नहीं है कि ब्राह्मणों ने वैदिक देवताओं को पूजना छोड़ दिया, बल्कि ऐसे उदाहरण हैं कि मुस्लिम पीरों के मुरीद बन गए।

इस संबंध में एक ज्वलंत उदाहरण है। बंबई के पास कल्याण में पहाड़ी की चोटी पर एक

यह सात पृष्ठों की पांडुलिपि है, जिसमें डॉ. अम्बेडकर ने अपनी हस्तलिपि में सुधार किए हैं। अंत के कुछ अनुच्छेद टाइप की हुई पांडुलिपि में उन्होंने अपनी हस्तलिपि में जोड़ दिए हैं। - संपादक

पीर बाबा मलंगशाह की मशहूर दरगाह है। यह बहुत ही प्रसिद्ध दरगाह है। हर साल वहां उर्स लगता है और चढ़ावा चढ़ाया जाता है। दरगाह का पीर एक ब्राह्मण है जो मुसलमानों जैसी पोशाक पहने वहां विराजमान रहता है और चढ़ावा बटोर लेता है। यह सब कमाई का धंधा है, धर्म जाए भाड़ में। ब्राह्मण को सिर्फ दक्षिणा से गरज है। दरअसल ब्राह्मणों ने धर्म को व्यापार बना रखा है। जरा ब्राह्मणों की श्रद्धा हीनता की तुलना यहूदियों की अपने देवताओं के प्रति अटूट श्रृद्धा से करें जब उनके विजेता नेबूचादनेज्जार ने उनको अपना ध र्म को त्याग कर उसका धर्म अपनाने को मजबूर किया।[1]

राजा नेबूचादनेज्जार ने एक स्वर्ण मूर्ति बनवाई, जिसकी ऊंचाई साठ हाथ और चौड़ाई छह हाथ थी। उसने उसे बेबीलोन प्रांत के मैदान दुरा में स्थापित कराया।

तब राजा नेबूचादनेज्जार ने राजकुमारों, न्यायाधीशों, कोषाधिपतियों, अमात्यों और प्रांतों के सभी शासकों आदि को बुलाया कि वे मूर्ति के समर्पण के समय उपस्थित हों।

फिर राजकुमार, शासक, न्यायाधीश, कोषाधिपति, अमात्य और प्रांतों के शासक आदि उस समय तक उपस्थित रहे जब तक कि राजा द्वारा बनवाई गई मूर्ति स्थापित हुई।

तब अग्रदूतों ने ऊंचे स्वर में कहा 'हे लोगों! हे शासकों! बहुभाषा विदो! तुम्हारे लिए आदेश है।

कि जिस समय तुम विविध संगीत स्वरों में वाद्यवृद सुनो तो नेबूचादनेज्जार द्वारा निर्मित स्वर्ण-मूर्ति को साष्टांग दंडवत कर पूजा करो जिसे राजा ने स्थापित किया है।

और जो कोई भी दंडवत नहीं करेगा, उसे दहकती भट्टी में झौंक दिया जाएगा।

इसलिए उस समय सब लोगों, शासकों और बहुभाषाविदों, ने विभिन्न वाद्यों का नाद सुना तो सभी लोग लेट गए और उन्होंने नेबूचादनेज्जार द्वारा स्थापित मूर्ति की पूजा की।

तभी कोई चालडीएन्स वहां आया और यहूदियों को अपशब्द कहे।

उन्होंने राजा नेबूचादनेज्जार से कहा, 'हे राजा, तू अमर रहे।'

हे राजा! तूने एक आदेश जारी किया है कि जब हर कोई व्यक्ति, जो विशेष वाद्यवृंद सुने तो वह झुक जाय और स्वर्ण-मूर्ति की पूजा करे।

जो झुक कर पूजा के आदेश का पालन नहीं करेंगे, उन्हें दहकती भट्टी में झौंक दिया जाएगा।

---

1. नीचे जो विवरण दिया गया है, वह अभ्यास 3 (ओल्ड टैस्टामैंट) से है।

कुछ ऐसे यहूदी हैं जो श्रीमन् के आदेश से बेबीलोन में बसे हैं। वे हैं, शाद्राच, मेशाच, अबेद-नेगो। हे राजा! ये तेरे आदेश का पालन नहीं करते, ये तेरे देवता को आदर नहीं देते, अर्चना भी नहीं करते, तेरे द्वारा स्थापित मूर्ति को नहीं पूजते।

तब नेबूचादनेज्जार ने कुपित हो आदेश दिया कि शाद्राच, मेशाच और अबेद-नेगो को पेश किया जाए। तब राजा के सामने लाए गए।

नेबुचादनेज्जार ने उनसे पूछा– क्या यह सच है शाद्राच, मेशाच, अबेद-नेगो, तुम मेरे देवता को दंडवत नहीं करते, स्वर्ण-मूर्ति की पूजा नहीं करते जो मैंने स्थापित की है?

अब तुम तैयार रहो। जब तुम अमुक-अमुक वाद्यों की आवाज सुनो तो झुक कर उस मूर्ति की पूजा करो जो मैंने बनवाई है। परन्तु यदि तुम पूजा नहीं करोगे तो तुम्हें तुरंत दहकती भट्‌टी में झोंक दिया जाएगा फिर ऐसा कौन सा देवता है जो तुम्हें मेरे हाथों से बचा लेगा।'

शाद्राच, मेशाच और अबेद-नेगो ने राजा से कहा, 'हे नेबूचादनेज्जार, इस मामले में हम तेरी परवाह नहीं करते।

'अगर ऐसा होता है तो जिस देवता की हम सेवा करते हैं, वह हमें उस दहकती भट्‌टी से निकाल लेगा और हे राजा, वह हमें तेरे हाथों से भी बचा लेगा।

'तो हे राजा, यह जान लें, यदि ऐसा नहीं होता है तो हम किसी देवता की सेवा नहीं करेंगे, न ही उस स्वर्ण-मूर्ति की जो तूने स्थापित की है।

तब नेबूचादनेज्जार आगबबूला हो गया और उसके चेहरे की रंगत बदल गई। उसने आदेश दिया कि भट्‌टी को सात गुना गर्माएं।

फिर उसने सबसे शक्तिशाली व्यक्ति से कहा कि वह शाद्राच, मेशाच और अबेद-नेगो को बांधकर दहकती भट्‌टी में डाल दे।

तब उन व्यक्तियों को उनके कोट, उनकी जुराबों, उनके टोप और दूसरे कपड़ों समेत बांध कर दहकती भट्‌टी में डाल दिया गया।

क्योंकि राजा के आदेश थे। भट्‌टी भभक उठी थी। लपटों ने लोगों को झुलसा दिया, जो शाद्राच, मेशाच और अबेद-नेगो को लाए थे।

और वे तीनों व्यक्ति शाद्राच, मेशाच और अबेद-नेगो दहकती भट्‌टी में झोंक दिए गए।

क्या भारत के ब्राह्मण में इतनी अटूट आस्था और इतनी श्रद्धा अपने देवताओं में है?

बक्ले ने अपने ग्रंथ हिस्ट्री ऑफ सिविलाइजेशन में कहा है :

''यह स्पष्ट है कि जब तक संदेह नहीं उपजते, तब तक प्रगति असंभव है। हमने यह देखा है कि सभ्यता मानव के आध्यात्मिक ज्ञान के योगदान पर निर्भर रही है और इस बात पर अवलम्बित है कि इस ज्ञान को कहां तक संचारित किया गया है। परंतु लोग अपने ज्ञान से संतुष्ट होकर बैठ जाते हैं। उसमें और वृद्धि की गुंजाइश नहीं समझते। जो व्यक्ति अपने ज्ञान और विचारों को संपूर्ण मानता है, वह यह कष्ट नहीं करता कि उसके आधाार को टटोले। जो कुछ उन्होंने अपने पुरखों से सीखा है, सुना है, उसके विपरीत कुछ कहा जाए तो उन्हें अजीब लगता है। प्रायः भयानक भी लगता है। जब उनकी मानसिक स्थिति यह हो तो नए सत्य को ग्रहण करना असंभव लगता है जो उनके पूर्व अर्जित निर्णयों से मेल नहीं खाता।

इस प्रकार सामाजिक प्रगति के लिए नए तत्वों की जानकारी आवश्यक होने पर भी ऐसे ज्ञान की निरख-परख की जानी चाहिए क्योंकि बिना संदेह के हम निरख-परख नहीं करेंगे और बिना इसके ज्ञान प्राप्त नहीं होगा। ज्ञान कोई धरोहर या जड़ तत्व नहीं है जो बिना उद्योग किए हमारे पास दौड़ा चला आएगा। इसके लिए उद्यम करना होगा, इसके लिए अध्यवसाय और बलिदान की आवश्यकता है। जिन्हें अंधकार का अहसास ही नहीं है, वे प्रकाश की खोज क्यों करेंगे? यदि कभी हम सुनिश्चित हों तो आगे विश्लेषण नहीं करते क्योंकि विश्लेषण व्यर्थ अथवा भयावह हो सकता है। निरख-परख से पहले संदेह का उठना जरूरी है। हम संदेह को सूत्रधार मानते हैं जो प्रगति का जनक है।

पर ब्राह्मणों ने तो संदेह की गुंजाइश ही नहीं छोड़ी क्योंकि उन्होंने बड़ी चालाकी से एक मंत्र फूंक दिया, लोगों में एक ढकोसला फैला दिया कि वेद इंसान की रचना नहीं है। यदि हिंदू आध्यात्मवाद जड़ हो गया है और हिंदू सभ्यता तथा संस्कृति एक सड़े हुए बदबूदार पोखर की तरह हो गई है तो यह ढकोसला जड़मूल से खत्म करना होगा यदि भारत ने प्रगति करनी है। वेद बेकार की रचनाएं हैं, उन्हें पवित्र या संदेह से परे बताने में कोई तुक नहीं है। ब्राह्मणों ने इन्हें पवित्र और संदेहातीत बना दिया, केवल इसलिए कि इसमें पुरुषसूक्त के नाम से एक क्षेपक जोड़ दिया गया, इससे वेदों में ब्राह्मण को भूदेव बना दिया। कोई यह पूछने का साहस नहीं करता कि जिन पुस्तकों में कबीलाई देवताओं से प्रार्थना की गई है कि वे शत्रु का नाश कर दें, उनकी सम्पत्ति लूट लें और अपने अनुयायियों में बांट दें, कैसे संदेहातीत हो गई। परंतु अब समय आ गया है कि हिंदू इस अंधे कुएं से बाहर आएं। उन सरहीनता विचारों को तिलांजलि दे दें जो ब्राह्मणों ने फैलाए हैं। इससे मुक्ति पाए बिना भारत का कोई भविष्य नहीं है। मैंने हर तरह की जोखिम जानकर यह रचना की है। मैं इसके परिणामों से नहीं डरता। मैं यदि लोगों की आंखें खोल दूंगा तो मुझे प्रसन्नता होगी।

भीमराव अम्बेडकर

भाग I

धार्मिक

पहली पहेली

यह जानने में कठिनता कि कोई हिंदू क्यों है?

भारत समुदायों का समूह है। इसमें पारसी, ईसाई, मुसलमान और हिंदू हैं। इन समुदायों का आधार प्रजातीय नहीं है। यह वास्तव में धार्मिक है। ऐसा सोचना एक सतही विचार है। यह जानना मजे की बात है कि कोई पारसी एक पारसी क्यों है? एक ईसाई ईसाई क्यों है? एक मुसलमान मुसलमान क्यों है और एक हिंदू एक हिंदू क्यों है? पारसी, ईसाई और मुसलमानों के बारे में तो ठीक है? आप किसी पारसी से पूछें कि आप पारसी क्यों कहलाते हैं, वह वह सहजता से आपके प्रश्न का उत्तर दे देगा। वह कहेगा कि वह जरथूस्त्र का अनुयायी है, इसलिए वह पारसी है। यही सवाल किसी ईसाई से किया जाए। उसे भी जवाब देने में कठिनाई नहीं होगी। वह ईसाई है क्योंकि वह ईसा मसीह में विश्वास रखता है। यही सवाल किसी मुस्लिम से किया जाए। उसे भी इसका जवाब देने में संकोच नहीं होगा। वह कहेगा कि वह इस्लाम में विश्वास करता है और इसीलिए वह मुसलमान है।

यही प्रश्न आप अब किसी हिंदू से पूछें। निःसंदेह वह असमंजस में पड़ जाएगा और जवाब ढूंढ ही नहीं पाएगा। यदि वह कहता है कि वह इसलिए हिंदू है कि वह उसी देव की आराधना करता है जिसकी हिंदू समाज करता है। उसका यह उत्तर सही हो ही नहीं सकता क्योंकि हिंदू किसी एक ही देव के उपासक नहीं हैं। कुछ हिंदू एकेश्वरवादी हैं, कुछ बहुदेववादी हैं और कुछ सर्वेश्वरवादी हैं। यहां तक कि जो एकेश्वरवादी हैं, वे भी किसी एक ही देव की अर्चना नहीं करते। कुछ विष्णु की पूजा करते हैं, कुछ शिव की, कुछ राम की और कुछ कृष्ण की। कुछ नर भगवानों की पूजा नहीं करते। वे देवी की पूजा करते हैं। इस पर भी, वे समान देवियों की पूजा नहीं करते। वे विभिन्न देवियों की पूजा करते हैं। कुछ काली की उपासना करते हैं, कुछ पार्वती की और कुछ लक्ष्मी की।

अब देखें बहुदेववादियों को। वे समस्त भगवानों की पूजा करते हैं। वे विष्णु और शिव की पूजा करेंगे तो राम और कृष्ण की भी। वे काली, पार्वती और लक्ष्मी की

पूजा करेंगे। एक हिंदू शिवरात्रि का व्रत रखेगा, जो शिव के लिए परम पावन है। वह एकादशी के दिन व्रत रखेगा जो विष्णु के लिए पवित्र है। वह शिव की प्रसन्नता के लिए बेल वृक्ष रोपेगा और विष्णु की अर्चना में तुलसी।

बहुदेववादी पूजा-अर्चना के विषय में केवल हिंदू देवी-देवताओं तक ही आस्थावान नहीं हैं। हिंदू को मुस्लिम पीर अथवा ईसाई प्रभु की पूजा से भी कोई संकोच नहीं। हजारों हिंदू मुसलमान पीरों के मजार पर चादर चढ़ाते हैं। दरअसल कुछ स्थानों पर मुसलमान पीरों के पुजारी वंशानुगत रूप से ब्राह्मण हैं और वे मुसलमान पीरों जैसी अलफी पहनते हैं। हजारों हिंदू बंबई के पास ईसाई देवी मांट मौली की पूजा करते हैं।

मुस्लिम और ईसाई देवताओं का सिजदा तो केवल विशेष अवसरों पर ही किया जाता है, बल्कि उनमें कुछ सत्त् आस्थाएं भी हैं। अनेक ऐसे हिंदू नामधारी व्यक्ति हैं जिनकी इस्लाम में आस्था है। इनमें से अनेक ऐसे लोग मिलेंगे जो विचित्र पंचप्रिय पंथ के अनुयायी हैं। वे पांच मुस्लिम पीरों के मुरीद हैं, जो स्वयं गुमनाम हैं। उन पर मुर्गे चढ़ाते हैं। उनका प्रयोजन वैसा ही लगता है जैसा मुस्लिम फकीर दफाली का था। पूरे भारत में ऐसे हिंदुओं का अभाव नहीं जो मुसलमानों के मजारों, दरगाहों की जिआरत करते हैं जैसे पंजाब का सखी सरोवर।

''मलकानों'' के बारे में ब्लंट ने कहा है कि आगरा और आस-पास के जिलों में, मुख्य रूप से मथुरा, एटा और मैनपुरी जिलों में वे हिंदुओं से मुसलमान बने हैं। वे राजपूतों, जाटों और बनियों के वंशज हैं। वे आमतौर से अपने को मुसलमान नहीं गिनते, बल्कि अपनी मूल जाति गिनाते हैं। कभी-कभी स्वयं को मलकान कहते हैं। उनके नाम हिंदुओं जैसे हैं और वे मंदिरों में पूजा करते हैं। वे अभिवादन में ''राम राम'' करते हैं। उनका शादी-व्यवहार मुख्यतः आपस में ही है। दूसरी तरफ वे मस्जिदों में नमाज अता करते हैं, खतना कराते हैं, मुर्दों को दफनाते हैं और जान-पहचान के मुसलमानों के साथ खाते-पीते हैं।

गुजरात में कई ऐसे सम्प्रदाय हैं - जैसे मटिया कुनबी जो अपने मुख्य अनुष्ठानों में ब्राह्मणों को बुलाते हैं, परन्तु पीराना संत इमाम शाह और उनके उत्तराधिकारियों के मुरीद हैं। शेख लोग अपने यहाँ शादी-विवाह में पंडित और काजी दोनों को बुलाते हैं। मोमन सुन्नत कराते हैं, मुर्दों को दफनाते हैं। और गुजराती में *कुरान* पढ़ते हैं। लेकिन अन्य कार्यों में उनके रीति-रिवाज हिंदुओं जैसे हैं।

यदि कोई कहता है कि वह इसलिए हिंदू है कि उसे हिंदू धर्म में आस्था है तो उसका उत्तर सही नहीं हो सकता क्योंकि सत्य यह है कि हिंदुओं का कोई निश्चित

पथ ही नहीं है। जो हिंदू समझे जाते हैं, उनके विश्वास एक-दूसरे से अत्यंत भिन्न हैं, अपेक्षाकृत ईसाईयों और मुसलमानों के। हिंदुओं की मूल धार्मिक आस्थाएँ भी भिन्न-भिन्न हैं कुछ कहते हैं कि सभी हिंदू-शास्त्र उन्हें स्वीकार्य हैं परन्तु कुछ हिंदू तंत्रों का तिरस्कार करते हैं। कुछ लोग वेदों को प्रमुखता से मानते हैं तो दूसरों को कर्मवाद और पुनर्जन्म में गहरी आस्था है।

पंथों और सिद्धांतों का मिश्रित समूह ही हिन्दुत्व है। इसकी छत्रछाया में पलते हैं एकेश्वरवाद, बहुदेववाद और सर्वेश्वरवाद; महान देवता शिव और विष्णु के उपासक अथवा उनके नारी प्रतिरूप, साथ ही दैवी मातृ शक्तियों, वृक्षों, चट्टानों और जल-धाराओं में बसी हुई आत्माओं और संरक्षक ग्राम्य देवताओं के उपासक हैं; ऐसे व्यक्ति, जो अपने देवताओं को सर्व प्रकार की बलि देते हैं, और ऐसे व्यक्तियों को, जो अहिंसक हैं और जिन्हें ''वध'' शब्द से ही घृणा है, जिनके धार्मिक अनुष्ठानों में मात्र प्रार्थनाएं और मन्त्रोच्चारण सम्मिलित हैं, और ऐसे भी हैं जो धर्म के नाम पर अकथनीय आडंबरों में लिप्त हैं और इसमें उनका बहुल्य है, जो कुल मिलाकर शास्त्रद्रोही है और उनमें से कई तो ब्राह्मणों की सत्ता नकारते हैं, अथवा कम से कम उनके धर्माचार्य गैर-ब्राह्मण हैं।

यदि कोई यह कहता है कि वह अन्य हिंदुओं के समान रीति-रिवाज अपनाता है, इसलिए वह हिंदू हैं तो भी झूठ है क्योंकि सभी हिंदुओं के रीति-रिवाज एक समान नहीं हैं।

उत्तर भारत में सपिण्डगोत्र में विवाह की प्रथा नहीं है। परन्तु दक्षिण में मामा-भांजी और मामा-फूफी आदि के बहन-भाइयों में वैवाहिक संबंध प्रचलित हैं। नारी के सतीत्व के नियमों के संबंध में सर्वोच्च मान्यताएं हैं। कुछ जातियों में इसमें अत्यंत ढील दी जाती है, विशेष रूप से विवाह पूर्व। कहीं-कहीं यह भी चलन है कि लोग अपनी कन्या को धार्मिक कदाचार के लिए समर्पित कर देते हैं। कुछ क्षेत्रों में नारी स्वतंत्र है तो कहीं-कहीं पर्दानशीन है। कुछ स्थानों पर वे लहंगा पहनती हैं तो कहीं सलवार आदि।

यदि वह यह कहता है कि वह इसलिए हिंदू है कि वह जातिप्रथा को मानता है, उसका यह उत्तर भी संतोषजनक ढंग से स्वीकार नहीं किया जा सकता। यह बिल्कुल सत्य है कि किसी हिंदू को इस बात से कोई गरज नहीं कि उसके पड़ोसी की क्या आस्थाएं हैं, पर यह जानना उसका परम धर्म है कि वह उसके साथ खान-पान कर सकता है या, नहीं। दूसरे शब्दों में इसका अर्थ यह हुआ कि जातिवाद हिंदू धर्म की आत्मा है और जो व्यक्ति किसी मान्यताप्राप्त हिंदू जाति से संबद्ध नहीं है, वह हिंदू हो

ही नहीं सकता। यही इतिश्री नहीं है। उनकी मात्र जात-पांत में आस्था ही पर्याप्त नहीं है। जात-पांत तो ईसाईयों और मुसलमानों में भी दीमक की तरह घुसी है। खान-पान में बेशक न हो। शादी-व्यवहार में तो वह सर्वव्यापी है। परन्तु इसी कारण वे हिंदू नहीं कहलाते। उनमें दोनों बातों का होना आवश्यक है। उसे हिंदू होना चाहिए और जात-पांत में विश्वास रखना चाहिए। अब फिर वही प्रश्न उठता है कि हिंदू कौन है? इस संदर्भ में हम जहाँ के तहां खड़े हैं।

क्या प्रत्येक हिंदू के समक्ष यह प्रश्न नहीं है कि उसके अपने धर्म के बारे में इतनी ऊहापोह क्यों है? इतनी उलझन क्यों है? वह ऐसे मामूली जवाब क्यों नहीं देता; जिनका उत्तर प्रत्येक पारसी, प्रत्येक ईसाई और प्रत्येक मुसलमान के पास है। क्या यह समय नहीं है कि वह आत्मावलोकन करे कि क्या कारण है, जिनके फलस्वरूप यह धार्मिक अव्यवस्था उत्पन्न हुई है?

दूसरी पहेली

वेदों की उत्पत्ति

ब्राह्मणों की व्याख्या अथवा वाग्जाल का एक प्रयास

कोई हिंदू ऐसा नहीं मिलेगा जो वेदों को अपने धर्म का पवित्रतम ग्रंथ न मानता हो। फिर भी किसी हिंदू से पूछें, वेदों की उत्पत्ति कैसे हुई? इस सादे प्रश्न का उसके लिए स्पष्ट और निश्चित उत्तर दे पाना कठिन होगा। फिर भी यदि किसी वैदिक ब्राह्मण से प्रश्न किया जाए तो वह तुरंत कहेगा कि वेद सनातन है। परंतु इस प्रश्न का यह उत्तर नहीं है। सबसे पहले हम सब यह जानें कि 'सनातन' शब्द का क्या अर्थ है?

'सनातन' शब्द की सबसे अच्छी व्याख्या कुल्लूक भट्ट ने मनुस्मृति के भाष्य के प्रथम अध्याय, श्लोक 22-23 में विशुद्ध रूप से की है। कुल्लूक भट्ट 'सनातन' शब्द की व्याख्या करता है:[1]

'सनातन' का अर्थ है 'अनादि', अनन्त'। वेदों की दिव्य उत्पत्ति का सिद्धांत मनु ने प्रतिपादित किया। वही वेद पूर्व सृष्टि कल्प से ही ब्रह्मा की श्रुति में संरक्षित है जो दिव्यात्मा है। वर्तमान कल्प के आरंभ में यही वेद थे, उसे अग्नि ने सुनाया, वायु ने

---

1. मयूर, संस्कृत टैक्स्ट, खंड 3, पृ. 6

प्रस्तुत अध्याय के मूल अंग्रेजी में 'वेदों की उत्पत्ति' के बारे में 72 पृष्ठ प्राप्त हुए। ये पृष्ठ न तो ठीक तरह से व्यवस्थित थे और न ही इन पर टाइपिस्ट अथवा लेखक की ओर से पृष्ठ संख्या डाली गई थी। हमने इन खुले पृष्ठों को सुव्यवस्थित ढंग से संकलित करने का प्रयास किया और उन्हें पहेली नं. 2 से 6 में रखने का फैसला किया, जैसा कि विषय-सूची 2 में उल्लिखित है; यह फैसला करना बहुत कठिन है कि ये सभी पृष्ठ ठीक तरह से सही विषय और अध्याय के साथ जोड़ दिए गए हैं या नहीं।

बहरहाल 61 पृष्ठों का एक अलग अध्याय है जिसे 'वेदों की पहेली शीर्षक' के अधीन रखा गया है; वह परिशिष्ट 1 में शामिल किया गया है। अनुक्रमणिका में उन निबंधों को क्रम संख्या 2 से 6 पर संकलित रूप में दिखाया गया है। प्रबंध में कई परिच्छेदों की पुनरावृत्ति हुई है। अध्याय 2 से 6 तक की मूल पांडुलिपि में लेखक की ओर से ही संशोधन और परिमार्जन किये गये हैं। जो सामग्री परिशिष्ट एक में रखी गई है, वह टाइप पृष्ठों की दूसरी प्रति है और उसमें बिल्कुल संशोधन नहीं है। हमने विषय-सूची और पृष्ठों का क्रम और पांडुलिपि के पृष्ठों को तदनुसार व्यवस्थित किया है। - संपादक

सुनाया, और सूर्य ने सुनाया। इसे अमान्य नहीं किया जा सकता, क्योंकि वेद कहता है कि ऋग्वेद अग्नि की देन है, यजुर्वेद वायु और सामदेव सूर्य ने दिया है।

कुल्लूक भट्ट की बात समझने के पूर्व कल्प का अर्थ समझना आवश्यक है। कल्प वैदिक ब्राह्मणों द्वारा की जाने वाली काल गणना है। ब्राह्मणों ने काल की इस प्रकार गणना की है– 1. वर्ष, 2. युग, 3. महायुग, 4. मन्वंतर, 5. कल्प।

वर्ष को बड़ी सफलता से समझा जा सकता है। यह साल का समानांतर शब्द है। युग कितनी अवधि का होता है, इस पर मतैक्य नहीं है।

चार युगों को मिलाकर एक महायुग बनता है। 1. कृतयुग, 2. त्रेता युग, 3. द्वापर और 4. कलियुग। चार युगों का यही क्रम रहता है। जब प्रथम युग समाप्त हो जाता है तो द्वितीय युग आरम्भ होता है। यही क्रम आगे चलता है। जब एक चक्र पूरा हो जाता है तो महायुग होता है।

प्रत्येक महायुग कृतयुग से आरंभ होकर कलियुग पर समाप्त होता है।

महायुग और कल्प के विषय में कोई अनिश्चितता नहीं है। 71 महायुग एक कल्प बनाते हैं, फिर भी महायुग और मन्वंतर काल के अंतराल के संबंध में कुछ अनिश्चितता है। एक मन्वंतर 71 महायुगों के बराबर होता है या ''कुछ अधिक'' जिसके विषय में निश्चय नहीं है। ''कुछ अधिक'' समय का क्या अर्थ है–ब्राह्मण इस बारे में निश्चित रूप से कुछ नहीं बता पाते। परिणामस्वरूप मन्वंतर और कल्प के बीच का समय निर्धारित हो ही नहीं पाता।

परन्तु हमारा इससे विशेष प्रयोजन नहीं। फिलहाल कल्प तक सीमित रहें।

कल्प का सृष्टि और प्रलय से घनिष्ट संबंध बताया गया है। सृष्टि उसका आरंभ है और प्रलय कल्प का अंत। इस प्रकार वेदों की उत्पत्ति कल्प से जुड़ी हुई है।

इसका अर्थ यह हुआ कि कल्प के आरंभ से सृष्टि आरंभ होती है और प्रत्येक कल्प में वेदों की नई श्रृंखला शुरू होती है। कुल्लूक यह कहना चाहते हैं कि प्रत्येक कल्प में नए वेदों की रचना होती है और ब्रह्मा अपनी स्मृति से उसे पुनः स्थापित करते हैं। इसी कारण वे वेदों को अनादि–अनंत कहते हैं अर्थात् वे सनातन हैं।

जो कुल्लूक भट्ट कहते हैं वह है कि वेद स्मृति से उत्पन्न होते हैं। वास्तविक प्रश्न यह है कि उनकी रचना किसने की? यह प्रश्न नहीं है कि उन्हें स्मृति से कौन सुनाता है? यदि स्वीकार कर भी लिया जाए कि प्रत्येक कल्प के आरंभ में उनकी पुनरावृत्ति होती है तो जब प्रथम कल्प आरंभ हुआ था तो उनकी रचना किसने की? वेद स्वतः प्रसूत तो हो नहीं सकते। यदि अनंत हों भी तो अनादि नहीं हो सकते। ब्राह्मण स्पष्ट क्यों नहीं बताते? यह वाग्जाल क्यों?

तीसरी पहेली

वेदों की उत्पत्ति पर अन्य शास्त्रों के साक्ष्य

I

वेदों की उत्पत्ति की खोज वेदों के साथ ही उत्पन्न हो गई थी। ऋग्वेद में वेदों की उत्पत्ति का प्रसंग है। वह प्रसिद्ध पुरुष सूक्त में उपलब्ध है। उसके अनुसार एक पौराणिक पुरुष के यज्ञ से वेद उत्पन्न हुए जो *ऋग्वेद, यजुर्वेद* और *सामवेद* कहलाए।

सामदेव और *यजुर्वेद* वेदों की उत्पत्ति के बारे में कुछ भी नहीं कहते। जिस अन्य वेद में यह संदर्भ है वह है *अथर्ववेद*। उसने वेदों की उत्पत्ति की अनेक व्याख्याएं की हैं। एक व्याख्या[1] इस प्रकार है:

''काल से ऋक् ऋचाएँ प्रस्फुटित हुई और यजुर काल से उपजा।''

अथर्ववेद में इस विषय पर दो अन्य प्रसंग हैं। इनमें से प्रथम बहुत विवेकपूर्ण नहीं है, जिसे उसी की भाषा में इस प्रकार[2] कहा जा सकता है :

घोषित करो की स्कंभ कौन है (संवर्धक सिद्धांत) जो आदि ऋषियों, ऋक्, साम, यजुर, पृथ्वी और ऋषियों का पालक है...

''बताओ वह स्कंभ कौन है जिससे ऋक्, ऋचाएँ, प्रस्फुटित हुई जहाँ से वे यजुर में संक्रमित हुई जिससे साम मंत्र उत्पन्न हुए। अथर्वन और अंगिरस के मंत्र उसकी वाणी है।''

स्पष्ट यह है कि यह उनके लिए चुनौती है जो कहते हैं कि ऋक्, साम और यजुर्वेद स्कंभ से उत्पन्न हुए।

अथर्ववेद की दूसरी व्याख्या है कि ऋक्, साम और यजुर्वेद इन्द्र[3] प्रदत्त हैं।

---

1. *अथर्ववेद* 19, 54.3 म्यूर द्वारा *संस्कृत टैक्स्ट* में उद्धृत खंड 1, 3, पृ. 4
2. *अथर्ववेद* 10, 7.14 म्यूर द्वारा *संस्कृत टैक्स्ट* में उद्धृत खंड 1, 3, पृ. 3
3. म्यूर, संस्कृत टैक्स्ट खंड 3, पृ. 4

II

वेदों को अपनी उत्पत्ति के बारे में स्वयं ही बताना है। वेदों के पश्चात् ब्राह्मण ग्रन्थ आते हैं। हमको यह पूछताछ करनी ही चाहिए कि वे इस संबंध में क्या कहते हैं। केवल *शतपथ ब्राह्मण, तैत्तरीय ब्राह्मण, ऐतरेय ब्राह्मण, कौषीतकि ब्राह्मण* में वेदों की उत्पत्ति की व्याख्या की गई है।

शतपथ ब्राह्मण में कई व्याख्याएँ हैं। एक प्रजापति[1] को वेदों का सृष्टा मानती है। उसके अनुसार:

''आरंभ में एकमेव प्रजापति ही ब्रह्माण्ड थे, उनकी इच्छा हुई ''मेरी अभिवृद्धि हो, मेरा विस्तार हो।'' उन्होंने उपासना की, तप किया।''

> ''जब वे उपासनालीन थे, ध्यानस्थ थे तो तीन तत्वों की उत्पत्ति हुई, पृथ्वी, वायु और आकाश। उन्होंने इसमें ऊष्मा का संचार किया। उस ऊष्मा से तीन तेज उत्पन्न हुए, अग्नि जो शुद्ध करती है, पवन अथवा वायु और सूर्य। इन तीनों तेजों में ऊष्मा का संचार किया। उनके ताप से तीन वेद उत्पन्न हुए। अग्नि से ऋग्वेद, वायु से यजुर्वेद, सूर्य से सामवेद। उन्होंने उन तीन वेदों में ऊष्मा का संचार किया, उनमें से तीन तेजोमय तत्वों की उत्पत्ति हुई। ''भू'' *ऋग्वेद* से, ''भुवः'' यजुर्वेद से और ''स्व'' *सामवेद* से निकले। अब *ऋग्वेद अध्वर्यु* का अधिष्ठाता बना, और सामवेद उद्गत्रि का कर्ता बना और तीन विधाओं से ब्राह्मण का कार्य, इन तत्वों के माध्यम से निर्धारित हुआ (जैसे कि तीनों वेद आपस में एक हैं)''।

शतपथ ब्राह्मण प्रजापति से वेदों की उत्पत्ति[2] की भिन्न व्याख्या करता है। वह कहता है कि प्रजापति ने जल से वेदों की रचना की। *शतपथ ब्राह्मण* कहता है कि:

> ''पुरुष प्रजापति की इच्छा हुई, ''मेरी अभिवृद्धि हो, मेरा विस्तार हो''। वे उपासना में बैठ गए, उन्होंने घोर तप किया। इस तप से उन्होंने सर्वप्रथम पवित्र त्रिवेद विज्ञान प्रज्ञा की रचना की। यह उनका आधार बना। उन्होंने कहा प्रज्ञा ब्रह्माण्ड का मूल है। वेदों के अध्ययन के पश्चात् पुरुष को स्थायी आधार मिलता है क्योंकि प्रज्ञा उसकामूल है। इस आधार पर प्रजापति ने घोर तप किया। उन्होंने वाच (वाणी) से जल की रचना की। उन्होंने वाच की भी रचना की थी। उसके विस्तरण से जल ''अप्प'' कहलाया। उसकी सर्वत्र व्यापकता से वह ''वार'' बना। उन्होंने चाहा ''मेरा जल से विस्तार हो'' इस त्रिवेद विज्ञान से वे जल में प्रविष्ट हुए। तब एक अण्डज उभरा। उन्होंने उसे सरकाया और कहा- ''भव भव पुनर्भव''। तब प्रज्ञा का जन्म हुआ त्रिवेद

---

1. म्यूर, *संस्कृत टैक्स्ट,* खंड 3, पृ. 5
2. वही पृ. 8

विज्ञान। फिर पुरुष ने कहा प्रज्ञा ब्रह्मांड की प्रथम सृष्टि है। पुरुष के समक्ष सर्वप्रथम प्रज्ञा की रचना हुई, इसलिए यह उसका मुख बनी। इस प्रकार वे आगे कहते हैं, ''वह अग्नि के समान हैं क्योंकि प्रज्ञा अग्नि का मुख है।''

शतपथ ब्राह्मण में तीसरी व्याख्या इस[1] प्रकार दी गई है–

''मस्तिष्क सागर है। मानस सागर से वाच द्वारा भगवान ने कुदाली से त्रिवेद विज्ञान को खोद कर बाहर निकाला। तत्पश्चात् इस मंत्र का उच्चारण किया–प्रज्ञावान देवता जाने।'' उन्होंने उस सामग्री को कहाँ रखा जिसे ईश्वर ने तेजधार कुदाली से खोदकर बाहर निकाला था। मस्तिष्क समुद्र है, वाच तीव्रधार कुदाली है। त्रिवेद विज्ञान समिधा है। इस संदर्भ में इस मंत्र को उच्चारा। वह मस्तिष्क में समा गया।''

ब्राह्मण की तीन व्याख्याएँ हैं। वह कहता है कि वेदों के कर्ता प्रजापति हैं। वह यह भी कहता है कि प्रजापति ने राजा सोम को बनाया और तत्पश्चात् तीन वेदों की रचना[2] की गई। इस ब्राह्मण की दूसरी व्याख्या[3] का प्रजापति से कोई तात्पर्य नहीं। इसके अनुसार:

''वाच (वाणी) अविनाशी है, यह पूज्यों में प्रथम प्रसूत है, वेदों की जननी और **अनश्वरता** का केन्द्र बिंदु है, हममें आनंदोपार्जन कर वह यज्ञ में प्रवेश करती है। मेधावी ऋषि, मंत्रों के सृष्टा, जिसका अनुग्रह, तप और कठोर उपासना से प्राप्त करते हैं, ऐसी रक्षा की देवी सरस्वती मेरा आह्वान सुनने को उद्धत हो।''

इस सबके ऊपर ब्राह्मण तीसरी व्याख्या देता है। वह कहता है कि वेद प्रजापति[4] की दाढ़ी से उत्पन्न हुए।

III

उपनिषदों ने भी वेदों की उत्पत्ति की व्याख्या की है।

छान्दोग्य उपनिषद की व्याख्या *शतपथ ब्राह्मण* के समान[5] है। अर्थात् *ऋग्वेद* अग्नि से उत्पन्न हुआ। यजुर्वेद वायु से और सामदेव सूर्य से।

बृहदारण्यक उपनिषद ने दो व्याख्याएँ दी हैं। एक स्थान पर उसमें कहा गया है[6]:

1. म्यूर, *संस्कृत टैक्स्ट*, खंड 1, पृ. 9–10
2. वही पृ. 8
3. वही पृ. 10
4. वही पृ. 10
5. वही पृ. 5
6. वही पृ. 8

आर्द्र काठ से अग्नि उपजी, उससे भिन्न-भिन्न धुएँ उठे, इसकी श्वांस प्रक्रिया से महान *ऋग्वेद* बना, *यजुर्वेद* बना, *सामवेद* बना, अथर्ववेद, इतिहास, पुराण, विज्ञान, उपनिषद, श्लोक, सूत्र विभिन्न प्रकार के भाष्य बने। यह सब उसका श्वास है।''

अन्य स्थान पर वह कहता है[1]:

''प्रजापति द्वारा वाच की रचना की गई, और उसके और आत्मा के माध्यम से वेदों सहित समस्त तत्वों का सृजन हुआ है।''

''उसी वाच और आत्मा के आध्यम से उसने सबका सृजन किया, चाहे वह *ऋग्वेद* हो, यजुस, साम, छंद, यज्ञ या विभिन्न जीव-जंतु हों।''

तीन वेद, तीन तत्व हैं-वाच, मानस और श्वांस। वाच *ऋग्वेद* है। मानस *यजुर्वेद* है और श्वांस *सामवेद*।

IV

अब हम स्मृतियों पर आते हैं। *मनुस्मृति* में वेदों की उत्पत्ति के संबंध में दो सिद्धांत हैं। एक स्थान[2] पर वह कहती है कि वेदों की रचना ब्रह्मा ने की है :

''उसी ब्रह्म ने आरम्भ में वेद से शद्ब सृजन कर पृथक-पृथक नाम, कर्म तथा व्यवस्था बनाई। उसी भगवान ने इन्द्रादि देव कर्मस्वभाव, प्राणी, अप्राणी, साध्यगण और सनातन यज्ञ की सृष्टि की। इस ब्रह्मा ने यज्ञों की सिद्धी के लिए अग्नि, वायु और सूर्य से नित्य *ऋग्वेद*, *यजुर्वेद* और *सामवेद* को क्रमशः प्रकट किया।''

एक अन्य स्थान[3] पर ऐसा आभास मिलता है कि प्रजापति वेदों का जनक है जैसा कि निम्नांकित से प्रकट है:

''ब्रह्मा ने ऋक् आदि तीनों वेदों से क्रमशः ''अ, उ, म'' इन तीन अक्षरों तथा ''भू, भुवः, स्वः'' इन तीनों व्याहृतियों को निकाला है। परम श्रेष्ठ ब्रह्मा ने ऋक् आदि तीनों वेदों से ''तत'' शब्द से प्रारंभ होने वाला इस सावित्री (अथवा गायत्री) का एक तिहाई पद निकाला है। ओमकार-पूर्विका ये तीनों भूः भुवः स्वः अनश्वर तत्व नाशरहित है और त्रिपदा गायत्री वेदों का मुख है।''

---

1. म्यूर, *संस्कृत टैक्स्ट*, खंड 1, पृ. 9
2. वही पृ. 6
3. वही पृ. 7

V

वेदों के संबंध में पुराणों का क्या कहना है, यह भी एक दिलचस्प बात है। *विष्णु पुराण*[1] में कहा गया है:

> ''फिर अपने पूर्व मुख से ब्रह्मा ने गायत्री, ऋक्, त्रिवृत, सोमरथंतर और अग्निष्टोम यज्ञों को रचा। दक्षिण मुख से यजु, त्रैष्टुप्छन्द, पंचदशस्तोम, वृहत्साम तथा उक्थ्य की रचना की। पश्चिम मुख से साम, जगतिछंद, सप्तदशस्तोम, वैरूप और अतिरात्र को उत्पन्न किया तथा उत्तर मुख से उन्होंने एकविंशतिस्तोम, अथर्ववेद, आप्तोर्यामण, अनुष्टपछंद और वैराज छंद की सृष्टि की।''

भागवत पुराण[2] में कहा गया है:

''एक बार जब चतुर्मुख ब्रह्मा के मुख से वेद प्रस्फुटित हुए, वे यह जानने के लिए ध्यान लगा रहे थे कि मैं पहले की भांति सृष्टि का कैसे विस्तार करूं? उन्होंने अपने पूर्व मुख और अन्य मुखों से ऋक, यजुश, साम और *अथर्ववेद* की रचना की,

उसी के साथ प्रशस्ति, यज्ञ, ऋचाएं और प्रायश्चित की भी सृष्टि हुई''। (मूल रचना में इस स्थान पर कुछ अंश छूटे हुए लगते हैं क्योंकि अगले भाग से उसका तारतम्य नहीं है)।

> ''उसकी आंखों में प्रविष्ट होते हुए उससे एक नर चतुष्पद उत्पन्न हुआ जो ब्रह्मा की तरह कामुक, अवर्णणीय, सनातन, अक्षय, दैहिक संवेदनाओं और गुणों से रहित था, जो विशिष्ट मेधा से दमक रहा था, चन्द्रमा की किरणों की तरह शुद्ध था और शब्दों में साकार था। भगवान ने *ऋग्वेद* की रचना की। उन्होंने अपनी आंखों से *यजुर्वेद* को बनाया, जिह्वा के छोर से *सामवेद* की रचना की और सिर से *अथर्ववेद* रचा। अपनी रचना के साथ ही ये वेद क्षेत्र में परिवर्तित हो गए। फिर उन्हें वेदों के गुरु प्राप्त हुए क्योंकि उन्हें विंदांति प्राप्त हुई। फिर इन वेदों ने अनादि सनातन ब्रह्मज्ञान की उत्पत्ति की, एक अपने गुणों से सम्पन्न स्वर्गीय पुरुष की रचना की।''

उसमें प्रजापति को भी सृष्टा स्वीकार किया गया है : ''इसके पश्चात् जगदीश्वर सृष्टि की इच्छा से मन ही मन कुछ विचार करने लगे। हिरण्यगर्भ प्रजापति के मुख से **ओऽम् शङ्** प्रकट हुआ। भगवान ने उससे कहा तुम अपने स्वरूप का विभाजन करो। उस पुरुष ने वाणी पर बार-बार विचार किया कि अपने स्वरूप का विभाजन कैसे करूं, इस विषय में मुझे संदेह है-'हरिवंश' का इस बारे में कथन है:[3]

---

1. म्यूर, *संस्कृत टैक्स्ट*, खंड 1, पृ. 11
2. वही पृ. 11
3. वही पृ. 14

ऐसा सोचते हुए भगवान के मुख से ओम का उच्चारण हुआ। इस शब्द की समस्त पृथ्वी, वायु और आकाश में गूंज ध्वनित हुई। इस मस्तिष्क के परम तत्व को जब देवों के देव बार-बार उच्चारित कर रहे थे, तब उनके हृदय से वषट्कार प्रकट हुआ। इसके बाद पृथ्वी, वायु, अंतरिक्ष और स्वर्ग की सारभूता ''भूः, भुवः, स्वः'' महास्मृतिमयी व्याहृतियां जन्मीं। फिर श्रेष्ठ देवी गायत्री पैदा हुई जो चौबीस अक्षरों से युक्त है। भगवान ने उस पद का स्मरण करके सावित्री मंत्र को प्रकट किया। फिर प्रजापति ने ब्रह्मयुक्त कर्म के द्वारा ऋक्, साम, अथर्व और यजु नामक चारों वेदों का प्रादुर्भाव किया।''

VI

इस प्रकार वेदों की सृष्टि के विषय में हमारे सामने ग्यारह भिन्न-भिन्न व्याख्याएं हैं- 1. पुरुष रहस्यात्मक यज्ञ से उत्पन्न हुए, 2. स्कंभ पर आधारित है, 3. उससे विलगित बालों और मुख से निकले, 4. इन्द्र ने उत्पन्न किए, 5. काल से जन्मे, 6. अग्नि, वायु और सूर्य से उत्पन्न हुए, 7. प्रजापति और जल से पैदा हुए, 8. ब्रह्मा की श्वांस से निकले, 9. भगवान ने मानस सागर से खोदकर निकाला, 10. ब्रह्मा की दाढ़ी के बालों से निकले, 11. वाच का विस्तार है।

एक सीधे से सवाल को जो एक पहेली है जवाबों के बियाबान में भटका दिया गया है। इन प्रश्नों के उत्तर ब्राह्मणों के गढ़े हैं। वे एक ही वैदिक सिद्धांत के माानने वाले हैं। प्राचीन धार्मिक कहानियों के ये ही गढ़ने वाले हैं। इस सीधे से सवाल के ऐसे अजीबोगरीब और अव्यवस्थित जवाब क्यों दिए गए?

चौथी पहेली

ब्राह्मणों ने सहसा क्यों घोषित किया कि वेद, संशयरहित और असंदिग्ध हैं?

यह कहना कि वेदों का हिंदू धार्मिक ग्रंथों में बहुत उच्च स्थान है, एक थोथा प्रचार है। यह कथन कि वेद हिंदुओं का पवित्र साहित्य है, यह भी एक **अक्षम** बयान है क्योंकि वेद धर्म-ग्रंथ होने के साथ-साथ ऐसे ग्रंथ हैं जिनकी प्रामाणिकता पर संदेह व्यक्त नहीं किया जा सकता। वेद संशय रहित बताए गए हैं। प्रत्येक कथन का आधार है कि वेद असंशोधनीय, अंतिम और प्रामाणिक साहित्य है। इस पर कोई आपत्ति नहीं कर सकता। यह वैदिक ब्राह्मणों का सिद्धांत है और सामान्यतः सभी हिंदुओं के लिए यह पत्थर की लकीर है।

I

इस सिद्धांत का आधार क्या है? सिद्धांत का तत्व है कि वेद अपौरुषेय है। जब वैदिक ब्राह्मण कहते हैं कि वेद अपौरुषेय है तो इसका अर्थ है इनकी रचना मनुष्य ने नहीं की है। क्योंकि यह मनुष्य की रचना नहीं है इसलिए इनमें त्रुटि, संशय और दोष नहीं हो सकता, जो मानव-रचना से संभव है। इसलिए ये संशय रहित है।

II

यह समझना कठिन है कि वैदिक ब्राह्मणों ने इस सिद्धांत को क्यों प्रतिपादित किया। क्योंकि एक समय था जब वैदिक ब्राह्मणों को स्वयं इनकी आधिकारिकता, निर्णय-जन्यता और प्रामाणिक होने पर संशय था। वे वैदिक ब्राह्मण और कोई नहीं धर्म सूत्रों के रचयिता थे :

हम गौतम धर्म सूत्र से आरंभ करते हैं:

वह वेदों के संशय रहित होने के प्रश्न पर निम्नांकित नियम का प्रतिपादन करता है :–

'वेद पवित्र विधान का स्रोत है।'' 1-1.

''और वेद-विज्ञों की परम्परा और व्यवहार है।'' 1-2

''यदि समज्ञान के विद्वानों में मत-भिन्नता हो तो सुविधानुसार (किसी एक को मान्य समझने) का उसे अधिकार है।'' 1-4

वरिष्ठ धर्म-सूत्र का विचार निम्नांकित है :

''पवित्र विधान सुनिश्चित पाठ है अर्थात् वेद और ऋषि परंपरा है।'' 1:4

''विधान में संशय पर इन्हीं (दो स्रोतों) शिष्टों का व्यवहार प्रमाण है''। 1-5

बौधायान के विचार इस प्रकार हैं :

प्रश्न 1 अध्याय 1, कण्डिका।

1. पवित्र विधान प्रत्येक वेद में है।

2. हम उसी के अनुसार व्याख्या करेंगे।

3. पवित्र नियम परम्परागत शिक्षा (स्मृ ति) का स्थान द्वितीय है।

4. शिष्टों का व्यवहार तृतीय।

5. संशय की अवस्था में - न्यूनतम दस सदस्यों का सम्मेलन (नियम के विवादित बिंदुओं पर निर्णय करें।)

आपस्तम्ब धर्म-सूत्र निम्नलिखित सूत्र में स्पष्ट कहता है :

''इसलिए अब हम योग्य कृत्यों को घोषित करते हैं जो दैनिक जीवन की रीतियों का हिस्सा है।'' 1-1

'इनका प्रमाण उनकी सहमति है जो नियमों को जानते हैं।'' 1-2

''विधान का प्रमाण मात्र वेद है।'' 1-3

शिष्टों के संबंध में वशिष्ठ धर्म-सूत्र और बौधायन धर्म-सूत्र ने परिभाषित करने में विशेष सतर्कता बरती है कि शिष्ट कौन हो सकते हैं। वशिष्ठ धर्म-सूत्र कहता है:

''इच्छाओं से जिनका हृदय स्वतंत्र है'', वे शिष्ट है।'' 1-6

बौधायन शिष्टों की योग्यता बताने हेतु अति विस्तृत विवरण देते हैं, उनका कथन इस प्रकार है-

5. शिष्ट निःसंदेह (वे हैं) जो निःस्पृह और दर्पशून्य हैं, दस दिन तक के ही अन्न-संग्रह से संतुष्ट हैं। लालसा रहित हैं, पाखंड, क्रोध, लोभ, मोह और मद रहित हैं।''

6. ''शिष्ट वे हैं जो पवित्र विधान के अनुरूप वेद-वेदांग के अध्येता हैं। उनका सार निकाल सकते हैं, प्रामाणिक पाठ की भांव व्याख्या कर निर्णय दे सकते हैं''

बौधायन ने उस सम्मेलन के विषय में बहुत रोचक बात कही है जिसे निर्णय का अधिकार है। इस विषय में उसका कथन इस प्रकार है :

8. ''वे उद्धरण भी देते हैं। (निम्नांकित मंत्र) ''चार व्यक्ति, जिनमें से प्रत्येक एक वेद का ज्ञाता है, एक मीमांसक, जिसे अंगों का ज्ञान है, एक जो पवित्र विधान उद्घोषित करता है और तीन व्यवस्थाओं के तीन ब्राह्मणों को मिलाकर कम से कम दस सदस्यों का एक सम्मेलन बनता है।''

9. ''पाँच, तीन अथवा एक निष्कलंक हो, जो पवित्र नियम का निर्णय दे। परन्तु सहस्त्र मूर्ख मिलकर भी निर्णय नहीं दे सकते।''

''अशिक्षित ब्राह्मण काठ के हाथी और चर्म निर्मित कुरंग के समान मात्र देखने की वस्तु है, काम की नहीं।''

धर्मसूत्र[1] के पुनः विचार करने से पता चलता है कि किसी विवाद पर निर्णय के चार माध्यम हैं- 1. वेद 2. स्मृति 3. शिष्ट व्यवस्था, और 4. किसी सम्मेलन में सहमति के चार विभिन्न विशेषज्ञ, जिन्हें चाहिए कि वे विवादग्रस्त तथ्यों को निर्णय लेने के लिए सम्प्रेषित करें। यह भी विदित होता है कि एक समय था जब एकमात्र वेद ही भ्रमातीत संस्था नहीं थी। एक समय था जब वशिष्ट और बौधायन धर्मसूत्रों की सत्ता थी। आपस्तम्ब वेदों की सत्ता को बिल्कुल भी स्वीकार नहीं करता था। उसने सम्मेलन के सदस्यों के लिए वैदिक ज्ञान को वैकल्पिक बताया है, जिसका निर्णय ही विधान था (संप्रभुविधान)। वेदों को आधिकारिक ग्रंथ नहीं माना जाता था और सम्मेलन प्रामाणिक व्यवस्था थी जिसमें विद्वान निर्णय लेते थे। गौतम के समय में वेदों को एकछत्र प्रमाण माना गया। एक समय था जब सम्मेलन का निर्णय एक मात्र प्रमाण था। यह काल बौधायन का था।

ऐसा निष्कर्ष *शतपथ ब्राह्मण* द्वारा निम्नांकित उद्धरण द्वारा प्रत्यारोपित किया गया है। वे कहते हैं :

(अधूरा छोड़ दिया गया, उद्धरण और अतिरिक्त विचार-विमर्श नहीं दिया गया है।

---

1. मैक्समूलर के अनुसार धर्म-सूत्र का समय ईसा पूर्व 200 से 600 के बीच।

पांचवी पहेली

ब्राह्मणों की इस माया की क्या तुलना कि वेद न मनुष्य रचित है न भगवान की सृष्टि?

वैदिक ब्राह्मण वेदों को संशय-रहित कहने से संतुष्ट नहीं थे। उन्होंने एक कदम आगे बढ़कर कहा कि वेद अपौरुषेय हैं। इसका अर्थ है वेद मनुष्यों द्वारा नहीं रचे गए। यह सिद्धांत निस्संदेह उन्हें संशय रहित बनाता है। क्योंकि यह मनुष्य की रचना नहीं है, इसलिए इसमें त्रुटि, संशय और दोष नहीं हो सकता जो मानव-रचना से संभव है। इसलिए ये संशय-रहित हैं। कुछ भी हो इस सिद्धांत पर अलग से विचार किया जाना आवश्यक है क्योंकि यह एक स्वतंत्र सिद्धांत है।

क्या वास्तव में वेदों की रचना किसी मानव ने नहीं की? क्या वे सचमुच ही अपौरुषेय थे? इस विषय में सर्वश्रेष्ठ साक्ष्य अनुक्रमणी में है जो प्राचीन संस्कृत साहित्य में विशेष प्रकार के साहित्य का भाग है। अनुक्रमणी प्राचीन वैदिक साहित्य की क्रमवार विषय-सूची है। प्रत्येक वेद की अनुक्रमणी है। कहीं-कहीं एक से अधिक भी हैं, *ऋग्वेद* की सात अनुक्रमणी उपलब्ध हैं, इनमें से पांच शौनक की, एक कात्यायन की और एक किसी अज्ञात विद्वान की तैयार की हुई है। *यजुर्वेद* की तीन हैं, इनमें तीन शाखाओं में से प्रत्येक की एक है। ये हैं, आत्रेयी, चारारण्य और मध्यांदिन। *सामदेव* की दो अनुक्रमणी हैं। एक का नाम आर्षेय ब्राह्मण है और दूसरी का परिशिष्ट है। *अथर्ववेद* की एक अनुक्रमणी है। इसका नाम बृहत-सर्वानुक्रमणी है।

प्रोफेसर मैक्समूलर के अनुसार कात्यायन की *ऋग्वेद* की सर्वानुक्रमणी स्वयं में सम्पूर्ण है। इसकी महत्ता इस कारण है कि इसमें, (1) प्रत्येक मंत्र का प्रथम शब्द दिया है, (2) मंत्रों की संख्या है, (3) संकलन-कर्ता ऋषि और उसकी परम्परा का नाम, (4) देवता का नाम, और (5) प्रत्येक छंद का नाम दिया है। सर्वानुक्रमणी के संदर्भ से यह आभास मिलता है कि विभिन्न ऋषियों ने मंत्रों की रचना की और उनका सम्पूर्ण संकलन *ऋग्वेद* बना। *ऋग्वेद* अनुक्रमणी के अनुसार यह साक्ष्य मिलता है कि यह वेद पौरुषेय है। अन्य वेदों के विषय में भी यही निष्कर्ष हो सकता है। पौरुषेय अनुक्रमणी यथार्थ है, यह *ऋग्वेद* के मंत्रों से पता चलता है कि जिनमें ऋषि

अपने को वेदों का संयोजक मानते हैं।

कुछ ऐसे उद्धरण निम्नांकित हैं:

''कण्वों ने तुम्हारे लिए स्तुति की है, उनकी स्तुति सुनो।'' ''हे इन्द्र, अश्वों के सारथी अपनी प्रभावोत्पादकता हेतु गौतम का मंत्र सुनो।''

''तेरे तेजवर्धनार्थ, हे ऐश्वर्यमान अश्विन मानस द्वारा प्रभावोत्पादक मंत्रों की रचना की गई है।''

''हे अश्विन, यह सार्थक उपासना मंत्र तेरे लिए गृत्समद ने उच्चारा है।''

''हे इन्द्र, तू प्राचीन है जो अश्वों को जोतता है, तेरे लिए गौतम के वंशज नौधी ने नया मंत्र रचा है।''

''सो हे पुरोधा, प्रश्रय हेतु गृत्समद ने मंत्र रचा है जैसे मनुष्य निर्माण करता है।''

''ऋषियों ने इन्द्र के लिए एक प्रभावोत्पादक रचना की है और प्रार्थना की है।''

''हे अग्नि, यह मंत्र तेरे लिए रचा है, अपनी गऊओं और अश्वों का सुख भोग''

''हमारे पिता इन्द्र के मित्र अयाश्य ने सप्त शीर्ष पवित्र सत्य जन्य इस चौथे महान मंत्र का आह्वान किया है।''

''हम रहूगणों ने अग्नि के लिए मधुभाषा में मंत्रोच्चार किया है, हम उनका गुणगान करते हैं।''

''सो आदित्यों, अदिति और सत्ता-सम्पन्न गण प्लाति पुत्र ने तुम्हारी स्तुति की है। गया ने स्वर्गीय देवों की प्रशस्ति गाई है।''

''इसी को वे ऋषि पुरोहित यज्ञकर्ता कहते हैं, स्तुति गायक, मंत्रोच्चारक कहते हैं, वही (अग्नि के) तीन शरीरों को जानता है। वही वरदानों की वर्षा करने वाला प्रमुख है।''

अनुक्रमणिकाओं के अतिरिक्त और भी साक्ष्य हैं, जिनसे पता चलता है कि वेद अपौरूषेय नहीं हैं। ऋषि वेदों को मानवकृत और ऐतिहासिक रचना मानते हैं। *ऋग्वेद* के मंत्र पूर्ववर्ती और तत्कालीन मंत्रों के बीच भेद करते हैं। उनमें से कुछ इस प्रकार हैं :

''अग्नि, जिसकी पूर्ववर्ती और साथ ही वर्तमान ऋषि भी स्तुति करते हैं, शुभ करेगा।''

''पूर्ववर्ती ऋषि ने संकटमोचन हेतु तेरा आह्वान किया।''

''मुझ वर्तमान ऋषि की ऋचाएं सुनो, इस वर्तमान (ऋषि) की।''

''इन्द्र, तू पूर्ववर्ती ऋषियों के लिए एक आह्वान था, जिन्होंने अर्चना की – जैसे पिपासु के लिए जल। इस मंत्र द्वारा मैं तेंरा आह्वान करता हूँ।''

''पूर्ववर्ती ऋषियों, देदीप्यमान ऋषियों ने बृहस्पति के सम्मुख आह्लादपूर्व स्वर में प्रस्तुति की।''

''हे माधवन, किसी परवर्ती या पूर्ववर्ती पुरुष अथवा वर्तमान पुरुष में इतना पराक्रम नहीं।''

''क्योंकि (इन्द्र के) पूर्ववर्ती आराधक हम हो सकते हैं। ये निष्कलंक, अप्राप्य और अनाहूत थे।''

''हे शक्तिमान देव! इस हेतु लोग तेरे आराधक हैं, जैसे कि पूर्ववर्ती मध्य-युगीन और परवर्ती तेरे मित्र थे और हे परम आहूत, सभी वर्तमान वय वालों की सोच।''

''हमारे पूर्व पिता इन्द्र के लिए सात नवगव ऋषि अपने मंत्रों में भोजन की याचना करते हैं।''

''हमारे नवीनतम मंत्र से गौरवान्वित हो क्या आप हमें सम्पदा और संतति सहित भोजन देंगे?''

ऋग्वेद के गहन अध्ययन से पता चलेगा कि उसके पुराने और नए मंत्रों के बीच अंतर है। उनमें से कुछ निम्नलिखित हैं :

''हमारे नवीनतम मंत्र से गौरवान्वित हो तुम हमें सम्पदा और संतत सहित भोजन दो।''

''हे अग्नि तूने देवताओं के मध्य हमारे नवीनतम आह्वान की घोषणा की थी।''

''हमारे नवीन मंत्र से तेरा वेग बढ़ेगा पुरंदर हमें प्राणवान आशीर्वाद दे।''

''शक्ति पुत्र अग्नि को मैं एक नवीन ऊर्जावान मंत्र अर्पित करता हूं जो भाववाणी के माध्यम से अभिव्यक्त किया गया है।''

''जो नवीन अभिव्यक्ति अभी प्रस्फुटित हुई है, उसके द्वारा मैं शक्तिमान संरक्षक को मानस रचना प्रदान करता हूं।''

''हमारी सहायता हेतु गर्जन करने वाले पुंगव नया मंत्र तुझे उद्‍बोधित करे।''

''मैं पूर्वजों की भांति नवीन मंत्र द्वारा तुझे उत्प्रेरित करना चाहता हूं।''

''तेरी स्तुति में जो नए मंत्र रचे हैं, उनसे तू संतुष्ट हो''।

''हे सोभारी, इन युवा शक्तिमान और बुद्धिमान देवों के लिए नए मंत्रों का उच्चारण कर।''

''गर्जन करने वाले वृत्रहंता इन्द्र, हम अनेक (पूजकों) ने तेरे लिए कई मंत्र रचे हैं, जो सर्वथा नवीन हैं।''

''मैं इस प्राचीन देव को सम्बोधित करूंगा। मेरी नई स्तुति, जिसकी उसे इच्छा है, उसे वह सुने।''

''हम अश्वों, पशुधन और सम्पदा की कामना से, तेरा आह्वान करते हैं।''

इतने साक्ष्य प्रस्तुत करने पर यह सिद्ध होता है कि वेदों की रचना मनुष्य ने की है। ब्राह्मणों ने कंठशक्ति से यह प्रचारित किया क वेद मानव-रचित नहीं हैं। उसका पार पाना सरल नहीं है। यह प्रचार किस उद्देश्य से किया गया?

इसके बावजूद बहुत से ऐसे प्राख्यात दार्शनिक हैं, जो वेदों की सत्ता स्वीकार करते हैं, हालांकि वे यह नहीं मानते कि वेद सनातन अथवा अपौरुषेय हैं।

न्याय-व्यवस्था के दर्शन के संस्थापक गौतम का विचार है:

''मंत्रों की भांति वेदों की प्रामाणिक और आयुर्वेद की प्रामाणिकता ऐसे प्रवीण पुरुषों के कारण स्थापित हुई, जिन्होंने इसे प्रचारित किया। क्योंकि वेदों के प्रवीण सृष्टा विद्वान थे, सत्यनिष्ठ थे, उसी का प्रमाण है कि वेदों की रचना ऐसी प्रवृत्ति वाले व्यक्तियों द्वारा की गई और इसी कारण वेदों की प्रामाणिकता का आभास होता है। यह मंत्रों और *आयुर्वेद* के दृष्टांत देते हैं। मंत्र का अर्थ है ऐसा वाक्य जो विषादि का शमन करता है और *आयुर्वेद* वेद का अंग है, जिसमें वेद के लक्षण भी हैं उसके विषय में इस दृष्टांत से अब क्योंकि इन दो की सत्ता सामान्यत: स्वीकार्य है, इसलिए अनुमान लगाया जाना चाहिए। कुछ इस सूक्ति की व्याख्या इस प्रकार करते हैं। वही वेद हैं जिनमें प्रामाणिकता विद्यमान है अथवा मान्य हैं। ऐसे वेदत्व से किसी रचना की प्रामाणिकता का अनुमान किया जा सकता है।''

वैशेषिक दर्शन स्वीकार करता है कि वेद प्रमाण हैं किन्तु इसका आधार निम्नांकित है:

(1) कि वेद मेधावियों की रचना है, और

(2) इनका उद्‌भव दैवी है। इसलिए ये प्रमाणित हैं।

सांख्य दर्शन के संस्थापक कपिल का कथन है कि वेदों के सनातन होने का अनुमान नहीं किया जा सकता क्योंकि वेदों के अनेक पाठों में स्वयं यह संकेत है

कि वे रचे गए हैं। इसमें इस बात का स्पष्ट खंडन किया गया है कि वेदों का उद्‌भव किसी दैवी शक्ति के सुविचारित प्रयासों से हुआ है। सांख्य के अनुसार वेद प्रदीप्त सूर्य के समान हैं, जिनमें स्वयं-प्रसूत प्रकाश है और अपनी समग्रता दर्शाने तथा सृष्टि को प्रकाशित करने के लए स्वार्जित शक्ति से प्रकाशमान हैं। चाहे वह भूत हो या भविष्य, विराट हो या क्षुद्र, निकटस्थ हो या दूरस्थ, वेदांत-दर्शन दो भिन्न मत व्यक्त करता है। वह ब्रह्मा को वेदों का सृष्टा मानता है क्योंकि यह उद्‌गम और उद्‌गम का कारण भी है। उसमें ब्रह्मा को अनरनारी और नपुंसक और परमात्मा कहा है न कि पुरुष सृष्टा। उसने वेदों को सनातन घोषित किया है और उनके एक स्वतंत्र नियंता की ओर भी संकेत किया है।

ब्राह्मणों की इसी से भरपाई नहीं होती कि वेद व्यक्ति द्वारा निर्मित हैं। वे इससे भी आगे बढ़कर कहते हैं कि स्वयं ईश्वर उनका सृष्टा नहीं है। यह सिद्धांत इसलिए पूर्व मीमांसा के प्रणेता का है। इस सिद्धांत के पक्ष में जैमिनि के तर्क इतने विचित्र हैं कि इसकी करामात बाजीगरी का खेल लगता है।

ब्राह्मण-दर्शन के ग्रंथ *पूर्व मीमांसा* में यह उल्लेख है कि वेद अपौरुषेय हैं। ग्रंथ का अगला अंश इस तर्क का परिचायक है।

पूर्व मीमांसा के रचयिता जैमिनि पहले न्यायवैशेषिक के कथन की विवेचना करते हैं; जिनका विचार है कि वेद परमेश्वर की कृति है। ये न्यायवैशेषिक के कथन का उल्लेख करते हैं:

मीमांसक का तर्क है कि:

''वेदों का उद्‌गम अमूर्त परमेश्वर द्वारा संभव नहीं जिसका तालू अथवा उच्चारण के लिए कोई अंग ही नहीं है और इस कारण यह सोचा नहीं जा सकता कि वह शब्दों की अभिव्यक्ति कर सकता है। इस आपत्ति पर नैयायिक की प्रतिक्रिया अनुकूल नहीं है क्योंकि उसके अनुसार परमेश्वर अमूर्त है फिर भी अपने भक्तों को वृतांत देने हेतु वह रूप धारण कर सकता है। इस प्रकार यह तर्क कि वेद अपौरुषेय नहीं है, अमान्य है।''

फिर वह मीमांसकों के सिद्धांत पर आते हैं :

''मैं अब इन संदेहों का निराकरण करता हूं कि इस पौरुषेयत्व का क्या अर्थ है जिसे प्रमाणित करना है। इसका तात्पर्य है, (1) किसी पुरुष द्वारा उत्पत्ति, जैसे हमारे द्वारा वेदों की उत्पत्ति, जब हम इनका दैनिक पाठ करते हैं अथवा (2) इसकी अभिव्यक्ति की दृष्टि से - क्या यह कोई व्यवस्था है - जो ज्ञान अन्य साक्ष्यों से

ग्राह्य है, जैसे कि हमने स्वयं ग्रंथों की रचना की है। यदि पहले अर्थ को ग्रहण किया जाए तो कोई विवाद नहीं होगा।''

यदि दूसरे भाव को ग्रहण किया जाए तो मेरा प्रश्न है कि क्या इस कारण वेदों को प्रामाणिक माना जाए कि हमें इनसे आभास होता है अथवा (क) इस कारण कि यह दैवी वाक्य है, अथवा (ख) यह अगम ज्ञान है।

प्रथम विकल्प (क), कि वेदों की प्रामाणिकता इसलिए है कि यह व्याख्या मात्र है यदि *मालती माधव* अथवा अन्य निरपेक्ष रचनाओं के कथन को देखा जाए तो यह सही नहीं हो सकता क्योंकि यह सिद्धांत निरापद नहीं। यहीं दूसरे ओर आप कहते हैं। (ख) वेदों की सामग्री अन्य प्रामाणिक ग्रंथों से भिन्न है, इससे भी दार्शनिक सहमत नहीं होंगे क्योंकि वेद वह वाक्य है जिसे अन्य साक्ष्यों से प्रमाणित नहीं किया जा सकता। अब यदि यह स्थापित किया जा सके कि वेद-वाक्य मात्र उसी को प्रमाणित करता है तो अन्य साक्ष्यों से उसे प्रमाणित नहीं किया जा सकता।

और यदि हम यह स्वीकार कर लें कि परमेश्वर ने कोई स्वरूप धारण किया होगा तो यह मान्य नहीं होगा क्योंकि बिना किसी तत्व के उन्होंने ऐसा कुछ व्यक्त किया हो जो अतीन्द्रिय हो, यह संभव नहीं, वह भी तब जब कोई देश-काल और परिस्थिति न हो। न ही यह सोचा जा सकता है कि उनके नेत्र तथा दूसरी इन्द्रियों में ऐसे ज्ञान-प्रसार की कोई शक्ति थी। पुरुष केवल वही जान सकता है जो उसने साक्षात देखा है।

किसी सर्वज्ञ रचयिता की कल्पना से असहमत ऐसा ही (प्रभाकर) ने कहा है:

''जब किसी सर्वज्ञ को चुनौती दे जिसने किसी तत्व के संपूर्ण रूप को देखा हो तो वह कल्पना बहुत ही धुंधली अथवा अति सूक्ष्म होगी क्योंकि कोई भी इन्द्रियां अपने निश्चित धर्म से विरत नहीं हो सकतीं, जैसे श्रवणेंद्रिय किसी स्वरूप को देख नहीं सकती।''

इस प्रकार वेदों की सत्ता किसी अलौकिक ज्ञान से संपन्न नहीं है जो किसी अमूर्त अरूप देवता से प्राप्त हुआ हो।''

नैयायिकों के मत को निरस्त करने हेतु जैमिनि ने उपरोक्त तर्क प्रस्तुत किए हैं। तदुपरांत जैमिनि सकारात्मक तर्क देते हैं कि वेद किसी भी प्रकार ब्रह्म वाक्य नहीं है किन्तु उससे भी श्रेष्ठ हैं। उनका कथन है:

''परवर्ती सूक्तियों में उद्घोषित किया गया है कि ध्वनि का संयोजन और उसका अर्थ सनातन है। वह चाहते हैं कि प्रमाणत करें कि यह (संयोजन) की सनातनता शब्द की सनातनता अथवा स्वर पर निर्भर है।''

वह प्रश्न के प्रथम भाग से आरंभ करते हैं अर्थात् उस सिद्धांत से कि ध्वनि सनातन नहीं है।

''कतिपय अर्थात् नैयायिक कहते हैं कि ध्वनि एक रचना है क्योंकि हम जानते हैं कि यह प्रसासोत्पन्न है। यदि यह सनातन होती तो ऐसा न होता।''

''कि अपने संक्रमण स्वभाव के कारण यह सनातन नहीं है अर्थात् यह एक क्षण में ही विलीन हो जाती है।''

''क्योंकि इसके संबंध में हम क्रिया को 'निकालना' कहते हैं अथवा हम ध्वनि निकालते हैं।''

''क्योंकि विभिन्न व्यक्तियों को इसकी अनुभूति तत्काल होती है और परिणामतः श्रवणेन्द्रिय के तत्कालन सम्पर्क में आती है–दूरस्थ और निकटस्थ। यदि यह सनातन और एकमेव होती तो ऐसा न होता।''

''क्योंकि ध्वनि के मूल और संशोधित दो रूप होते हैं ''दधि अत्र'' और ''दधी अत्र'' के रूप में प्रस्तार के नियम से मूल ध्वनि ह्रस्व 'इ' दीर्घ 'ई' में बदल जाती है। इस प्रकार जिस तत्व में परिवर्तन हो जाता है, वह सनातन नहीं है।''

क्योंकि यदि अधिक संख्या में व्यक्ति समवेत ध्वनि करते हैं तो उनका विस्तार हो जाता है। फलतः मीमांसकों का सिद्धांत तथ्यहीन हो जाता है जो कहते हैं कि ध्वनि मानव–प्रयत्न से प्रकट ही की जाती है, उत्पन्न नहीं की जाती, क्योंकि सहस्रों वक्ता भी उसके अर्थ में विस्तार नहीं कर सकते जिसके स्वर का विस्तार करते हैं। जैसे एक सहस्र दीपक भी एक घड़े के आकार का विस्तार नहीं कर सकते।

मीमांसकों के इस सिद्धांत के विरुद्ध इन आपत्तियों का जैमिनि ने उत्तर दिया है कि ध्वनि प्रकट की जाती है और उसके उच्चारण उसे उत्पन्न नहीं कर सकते। जैमिनि कहते हैं :

> ''परंतु, दोनों सिद्धांतों के अनुसार, यथा जो स्वीकार करता है कि ध्वनि की उत्पत्ति होती है और दूसरे के अनुसार जो कहते है कि वह मात्र प्रकट की जाती है, दोनों के अनुसार वह क्षणिक है। परन्तु इन दोनों मतों के अनुसार अभिव्यक्ति का सिद्धांत अगले मंत्र से प्रकट है, जो यथार्थ है।''
>
> ''काल विशेष में सनातन ध्वनि सुनाई नहीं पड़ती है, उसका कारण है कि कर्ता और कर्म का सम्पर्क नहीं बन पाता। ध्वनि शाश्वत है। उदाहरणार्थ– क्योंकि हम एक स्वर ''क'' से अवगत हैं जो हमें प्रायः सुनाई पड़ता है, क्योंकि यह सहज प्रक्रिया है तो हमें उसकी सहज कल्पना होती है। निस्तब्धता में जब किसी वक्ता के मुख से वायु का संयोजन और वियोजन होता है तो उससे वातावरण तरंगित होता है और

इस प्रकार ध्वनि का आभास होता है जो सदैव विद्यमान रहती है, चाहे उसका आभास न भी होता हो। उसके संचरण पर आपत्ति का यह उत्तर है।''

''ध्वनि करना'' का अर्थ है एक क्रिया अथवा ''उच्चारण''।

''जैसे सूर्य का दर्शन एक साथ अनेक व्यक्ति करते हैं, वैसे ही ध्वनि भी एक साथ अनेक व्यक्तियों द्वारा सुनी जाती है। ध्वनि सूर्य की भांति सर्वव्यापी है। यह कोई सूक्ष्म तत्व नहीं है, इसलिए सभी को समान रूप से ग्राह्य है चाहे कोई निकटस्थ हो अथवा दूरस्थ।''

''सूत्र 10 में वर्णित है कि ''इ'' स्वर ''ई'' में परिवर्तित हो जाता है। वह ''इ'' का रूपांतरण नहीं है बल्कि ''ई'' एक भिन्न स्वर है। परिणाम निकलता है कि ध्वनि का रूपांतरण नहीं होता।''

''जब कई व्यक्ति समवेत स्वर में बोलते हैं तो कोलाहल की बढ़ता है, स्वर वही रहता है। कोलाहल का अर्थ है भिन्न-भिन्न दिशाओं से वायु के संयोजन-वियोजन का एक साथ कानों में प्रवेश। इसी कारण उसका विस्तार होता है।''

''ध्वनि सनातन होनी चाहिए क्योंकि वह अन्य लोगों तक अर्थ प्रेषित करती है। यदि वह सनातन न होती तो जब तक श्रोता उसका भाव जानता तब तक वह उपस्थित ही न रहती और इस प्रकार श्रोता भाव-ग्रहण करने से वंचित रह जाता क्योंकि वह उपस्थित ही नहीं रहती।''

''ध्वनि सनातन है क्योंकि वह सदैव सही और समान होती है और अनेक व्यक्ति उसे एक साथ समान रूप से सुनते हैं और यह नहीं माना जा सकता कि वे सभी गलती करें।''

''यदि ''गौ'' शब्द को 10 बार दोहराएं तो श्रोता कहेंगे कि दस बार ''गौ'' कहा गया है। वे यह नहीं कहेंगे कि ''गौ'' की ध्वनि के दस शब्द कहे गए हैं। इस प्रकार यह ध्वनि की शाश्वतता का एक और प्रमाण है।''

''ध्वनि सनातन है क्योंकि हमारे पास यह मानने के लिए कोई आधार नहीं है कि इसका क्षय हो जाता है।''

''परन्तु यह कहा जा सकता है कि ध्वनि वायु का रूपांतरण है क्योंकि इसका उद्गम वायु का संयोजन है, क्योंकि शिक्षा का कथन है कि ध्वनि के अनुरूप हवा निकलती है और इस प्रकार यह वायु से उत्पन्न होती है। इसलिए सनातन नहीं हो सकती।''

इस आपत्ति का निराकरण सूत्र 22 में किया गया है।

''ध्वनि वायु का रूपांतरण नहीं है। यदि ऐसा होता तो श्रवणेंद्रिय के समक्ष कोई संगत तत्व न होता जिसकी वह अनुभूति करती है। श्रवणेंद्रिय को वायु के किसी रूपांतरण की (जिसे नैयायिकों ने युक्ति संगत बताया है) अनुभूत न होती। कान की अनुभूति अमूर्त होती है।''

''वैदिक साहित्य में उपलब्ध है कि स्वर सनातन है। इसके लिए सनातन ध्वनि है ''हे विरूप''। अब यद्यपि इस वाक्य का एक अन्य उद्देश्य है फिर भी वह भाषण की शाश्वतता घोषित करता है और इस प्रकार नादब्रह्म है।''

इस सिद्धांत के पक्ष में कि वेद सनातन है और मानव द्वारा सृजित नहीं हैं ना ही परमात्मा द्वारा रचित है, जैमिनि के ऐसे तर्क हैं।

जिस तथ्य पर उनका सिद्धांत आधारित था, वह सहज है।

प्रथमतः, ईश्वर अमूर्त है और उसका तालू नहीं है, इस प्रकार वह वेदों का उच्चारण नहीं कर सकता।

दूसरे, कल्पना करें कि परमात्मा मूर्त हैं, परमात्मा उसकी अनुभूति नहीं कर सकता जो इन्द्रियों की क्षमता से परे हैं जबकि वैदिक साहित्य मानव की इन्द्रियों की अनुभूति से परे हैं।

तीसरे, शब्द और उसके अर्थ के मध्य सम्पर्क सनातन है।

चौथे, ध्वनि सनातन है।

पांचवे, क्योंकि ध्वनि सनातन है इसलिए ध्वनि से उत्पन्न शब्द भी शाश्वत है।

छठे, क्योंकि शब्द सनातन है इसलिए वे वेद भी सनातन हैं और क्योंकि वेद सनातन हैं; इसलिए उनकस सृष्टा न मानव है और न परमेश्वर।

इन तर्कों के संबंध में क्या कहा जा सकता है? क्या इससे बढ़कर भी कुछ अनर्गल हो सकता है? कौन स्वीकार कर सकता है कि वेदों में ऐसा कुछ है जो मानव की इन्द्रियों की अनुभूतियों से परे है? कौन स्वीकार कर सकता है कि शब्द और उसके अर्थ के बीच सनातन संबंध है? कौन स्वीकार कर सकता है क नाद उत्पन्न नहीं होता ना ही प्रकट हो सकता है किन्तु सनातन है?

इन भ्रामक तर्कों के संबंध में हम पूछ सकते हैं कि ब्राह्मणों ने ऐसे निर्जीव निष्कर्षों के स्थापनार्थ ऐसा निर्जीव प्रयत्न क्यों किया? इससे वे क्या प्राप्त करना चाहते थे? क्या इसका कारण यह था कि ब्राह्मणों की चतुर्दिक सत्ता के स्थापनार्थ वेदों को चातुर्वर्ण्य का प्रतीक बना दिया गया?

छठी पहेली

वेदों की विषय-सामग्री
क्या वे कोई नैतिक अथवा आध्यात्मिक मूल्य रखते हैं?

I

यदि वेदों को अनिवार्य और उनके संशय रहित होने को स्वीकार कर भी लिया जाए तो उसके उपदेशों में नैतक और आध्यात्मिक मूल्य होने चाहिए। केवल इसलिए कि जैमिनि ने सही बताया है, हम कचरे को अनिवार्य और दोष-रहित नहीं मान सकते। वेदों में कोई नैतिक अथवा आध्यात्मिक सामग्री है भी या नहीं! प्रत्येक हिन्दू जो वेद को संशय रहित मानता है इस प्रश्न पर विचार करने को बाध्य है।

आधुनिक लेखकों के विचार इस बात को स्वीकार नहीं करते कि वेदों का कोई आध्यात्मिक मूल्य है। इस विश्लेषण के लिए हम प्रो. म्यूर के विचारों का संदर्भ ले सकते हैं। प्रो. म्यूर[1] के अनुसार :

> ''इस पूरी रचना का स्वरूप और इनसे प्राप्त प्रमाणों के अनुसार जिन परिस्थितियों में ये रचे गए, उनसे पता चलता है कि प्राचीन कवियों द्वारा गाई गई ये रचना उन व्यक्तियों की व्यक्तिगत अभिलाषाओं और भावनाओं का सहज वर्णन मात्र है जिन्हें उनके समक्ष दुहराया गया था। इन गीतों में आर्य ऋषियों ने अपने पैतृक देवताओं को तरह-तरह की बलियां चढ़ाकर उनकी स्तुति की और उन्हें संतुष्ट होने का आह्वान किया और उनसे ऐसे अनेक वरदान मांगे जिनकी मानव-मात्र को लालसा होती है, जैसे स्वास्थ्य, सम्पदा, चिरायु, पशुधन, संतति, शत्रु पर विजय, पाप-मुक्ति और शायद स्वर्ग-सुख भी।''

निःसंदेह यह आपत्ति की जा सकती है कि सभी विदेशी विद्वान पूर्वाग्रह ग्रस्त हैं, इसलिए उनके मत स्वीकार नहीं किये जा सकते। हम पूर्णतः विदेशियों का सहारा नहीं लेते। इस देश में भी उनके समान विचारधारा वाले विद्वान उपलब्ध हैं। इनमें

---

1. मयूर, संस्कृत टैक्स्ट, खंड 3, (पृष्ठ का उल्लेख नहीं है)।

सबसे सशक्त उदाहरण चार्वाक का है।

चार्वाक ने वेदों[1] के विरुद्ध जो तर्क दिए हैं, उन तर्कों का खंडन किया गया है। प्राचीन साहित्य में चार्वाकों का उल्लेख उनकी भर्त्सना के संदर्भ में किया गया है :

''यदि आपको इस पर आपत्ति है कि यदि परलोक में सुख जैसा कुछ नहीं है तो बुद्धिमान अग्निहोत्र क्यों करें? बलि क्यों दे? जिन पर भारी अपव्यय होता है और थकान होती है, आपकी आपत्ति को कोई भिन्न साक्ष्य नहीं माना जा सकता, क्योंकि अग्निहोत्रादि जीविकोपार्जन के साधन मात्र हैं, क्योंकि वेद में तीन दोष हैं अर्थात् मिथ्याकथन, अन्तर्विरोध और पुनरुक्ति। फिर ढोंगी लोग जो स्वयं को वैदिक पंडित बताते हैं, बहुत ही शरारती हैं। क्योंकि ज्ञान-मार्गियों की जड़ खोदने कर्मकांडी आ धमकते हैं और कर्मकांडियों के विरोधी ज्ञानमार्गी, कर्मकांड की धज्जियाँ उड़ाने से नहीं चूकते हैं और अंत में तीनों वेद असंबद्ध चारणों का गेय काव्य है। जो पोंगापंथियों के वाक् चातुर्य के कारण आज तक विद्यमान हैं, और इसी कारण यह लोक धारणा प्रचलित है :

''अग्निहोत्र, तीन वेद, तापसवृत्ति, तीन पद और भस्म रमाकर कुरूप होना, ये उनकी कमाई के धंधे हैं,'' और बृहस्पति के कथानानुसार ''मनुष्यता और बुद्धि से कोई सरोकार नहीं है।''

बृहस्पति भी इसी मत के अनुयायी थे। चार्वाक की अपेक्षा बृहस्पति वेदों के विरुद्ध अधिक कठोर एवं उग्र थे। जैसा कि माधवाचार्य ने उद्धृत किया हो बृहस्पति[2] का तर्क है:

''स्वर्ग की कोई सत्ता नहीं है, मोक्ष कुछ नहीं है। पुनर्जन्म होता है। न चार जातियों का कोई कर्म आदि प्रभाव डालते हैं। अग्निहोत्र, तीनों वेद, तापस-वृत्ति तीन-पद भस्म रमाकर कुरूप होना... उनकी कमाई के धंधे हैं जिनमें बुद्धि और मनुष्यता का भाव नहीं है, ज्योतिस्तोम संस्कार में यदि कोई जीव काट दिया जाता है और यदि वह सीधे स्वर्गगामी होता है तो बलिदाता अपने पिता की बलि क्यों नहीं दे देता?

यदि श्राद्ध से मृतक संतुष्ट होते हैं तो इहलोक में भी जब कोई यात्रा आरंभ करता है तो यात्रा के प्रबंध करना व्यर्थ हैं?

यदि श्राद्ध से परलोक में संतुष्टि होती है तो इहलोक में उन्हें भोजन क्यों नहीं दिया जाता? जो स्वर्ग से विमान आने की प्रतीक्षा में बैठे हैं।

---

1. सर्व दर्शन संग्रह, पृ. 10
2. वही, (पृ. संख्या का उल्लेख नहीं है)।

(जब तक जीवन है तो सुख से क्यों न रहें? क्यों न ऋण लेकर भी घी पिए?)

यदि मरणोपरांत देह भस्म बन जाती है तो वापस कैसे आ सकती है?

देह त्याग के पश्चात् कोई यदि परलोक चला जाता है तो वह अपने परिजन के मोह में फंसकर लौट क्यों नहीं आता?

इस प्रकार यह सब कमाई के धंधे हैं जो ब्राह्मणों ने बना रखे हैं।

यह सभी संस्कार मृतकों के लिए हैं, अन्यत्र कोई फल नहीं मिलता, तीन वेदों के सृष्टा विदूषक, लालबुझक्कड़ और दुरात्मा हैं।

पंडितों, झारपड़ी, तुरपड़ी के सर्वविदित सूत्र और देवी के लिए परोक्ष पूजा सभी अश्वमेध की प्रशंसा में हैं।

इनका अन्वेषण लालबुझक्कड़ों ने किया और इसी कारण पुरोहितों को विभिन्न प्रकार से चढ़ावा दिया जाता है।

जबकि इसी प्रकार निशाचरों ने मांस भक्षण की प्रशंसा की है।''

यदि चार्वाक और बृहस्पति के मत अमान्य हैं तो अन्य अनेक साक्ष्य विद्यमान हैं। यह साक्ष्य न्यायवैशेषिक, पूर्व और उत्तर मीमांसा दर्शनशास्त्रों में उपलब्ध हैं।

यह स्पष्ट है कि कुटिल लेखकों ने इन दर्शनशास्त्रों पर इकतरफा पाठ्य पुस्तकें लिखी हैं। उन्होंने वेदों की प्रामाणिकता का औचित्य बताने से पूर्व इस बात का पूरा षडयंत्र रचा है कि वेदों की सत्ता को चुनौती देने वाले उनके विरोधियों का मत उनकी पाठ्य पुस्तकों के पास भी न फटक सके। इस तथ्य से हम दो बातें प्रामाणित कर सकते हैं : (1) कि एक ऐसी विचारधारा थी जो वेदों को प्रामाणिक ग्रंथ स्वीकार करने के विरुद्ध थी, (2) कि वे सम्मानित विद्वान थे जिनके मत को वेदों की सत्ता स्वीकार करने वाले भी मानने को बाध्य थे। मैं न्याय और पूर्व मीमांसा में विमत को उद्धृत करता हूँ।

न्यायदर्शन के प्रणेता गौतम वेदों की प्रामाणिकता के पक्षधर थे। उन्होंने सूत्र 57 में अपने विरोधियों के तर्क का सारांश दिया है जो निम्नांकित[1] है :

''वेद प्रमाण नहीं है क्योंकि इनमें ''मिथ्यावाद, आत्मविरोध और पुनरुक्ति दोष है। मौखिक साक्ष्य जो प्रत्यक्ष साक्ष्यों से भिन्न है कि वेद प्रमाण नहीं है, क्यों? क्योंकि

---

1. मयूर, संस्कृत टैक्स्ट, खंड 3, पृ. 113

उसमें मिथ्यापन आदि के दोष हैं।''

''इन दोषों के संदर्भ में मिथ्यावाद इस तथ्य से प्रमाणित है कि कई बार हम पाते हैं कि पुत्रेष्टि के लिए दी गई बलि फलदायी नहीं होती और इसी प्रकार अन्तर्विरोध प्रकट है कि पूर्व और परवर्ती घोषणाओं में भिन्नता है। इस प्रकार वेद कहता है कि ''वह तब यज्ञ करता है जब सूर्योदय होता है।'' वह सूर्योदय से पूर्व यज्ञ करता है। वह तब यज्ञ करता है जब श्यान उसका चढ़ावा लेकर भाग जाता है और दोनों ही बलिदाता का चढ़ावा उठाकर ले जाते हैं, फिर शब्दों के बीच अनतर्विरोध है जिनमें बलि की प्रेरणा है और उसकी निंदा भी है जिसके घातक परिणाम होते हैं। तब पुनरुक्ति के कारण वे प्रमाण नहीं है क्योंकि जो पहले कहा गया है उसकी तीसरी बार आवृति होती है। अंत में भी पहली बात दोहराई जाती है। क्योंकि आदि, अंत के समान है और शब्दों की तीसरी आवृति है। यह वाक्य पुनरुक्ति है। क्योंकि इस वाक्य विशेष में इन उदाहरणों के अनुसार एक-सा कथन होने के कारण और यह सभी रचनाएं एक व्यक्ति की हैं इसलिए समान प्रकृति की हैं और उनमें कोई प्रामाणिकता नहीं है।''

जैमिनि का संदर्भ देखें। वह वेद विरोधियों के विचारों[1] को *पूर्व मीमांसा* के सूत्र 28 और 32 में सार-संक्षेप में उद्धृत करते हैं। सूत्र 28 कहता है :

''यह भी आपत्ति की गई है कि वेद सनातन नहीं हो सकते, क्योंकि हम पाते हैं कि उनमें ऐसे व्यक्तियों का उल्लेख है जो सनातन नहीं है बल्कि जन्म और मृत्यु के पात्र हैं। इस प्रकार वेद में कहा गया है ''बाबरा प्रवाहनी की इच्छा है, कुसरविंदा औद्दालकी की इच्छा है'' इसलए वेद के संदर्भित वाक्यों में इन व्यक्तियों के जन्म-पूर्व उल्लेख संभव नहीं है। यह स्पष्ट है कि ये वाक्य आरंभिक हैं। इस प्रकार सनातन नहीं है। यह प्रमाणित है कि ये मानव कृतियां हैं।''

सूत्र 32 कहता[2] है :

''यह प्रश्न किया गया है कि वेद कर्त्तव्यों का साक्ष्य कैसे हो सकते हैं जबकि उनमें ऐसी असंगत और अनर्गल बातें भरी पड़ी हैं जैसे ''कम्बल और खड़ाऊं पहने एक बूढ़ा द्वार पर खड़ा है और आशीष के गीत गा रहा है। समर्पण को तत्पर एक ब्राह्मणी कहती है ''हे राजन बता, प्रतिपदा के दिन संभोग के क्या अर्थ हैं? अथवा यह ''गऊओं ने इस बलि पर उत्सव मनाया''।

निरुक्त के लेखक यास्क ने भी यह मत प्रकट किया है। वह कहता है :

---

1. म्यूर, *संस्कृत टैक्स्ट,* खंड 3, पृ. 7
2. वही, पृ. 80

पूर्वोक्त खंड में चार प्रकार की ऋचाएं हैं। क. जो देवता की अनुपस्थिति में संबोधित हैं, ख. जिसमें उसको समक्ष जानकर संबोधन कया गया है, ग. जिनमें आराधक को उपस्थित और आराध्य को अनुपस्थित माना गया है। ये अत्यधिक हैं, घ. जबकि जो स्वगत हैं ये यत्र-तत्र ही हैं। ऐसा भी हुआ है कि देवता की प्रशंसा बिना वरदान की कामना की गई है जैसे कि मंत्र (ऋ. वे. 1.32) ''मैं इन्द्र के शौर्य का वर्णन करता हूं'' आदि। फिर बिना स्तुति किए वरदान की कामना की गई है। जैसे ''मैं अपने चक्षुओं से अच्छा देखूं, मेरा मुख कांतिमान हो और कानों से भली भांति सुनूं। ऐसा *अथर्ववेद* (यजुर) और बलि सूत्रों में बार-बार कहा गया है। फिर इसमें हम शपथ और शाप भी पाते हैं। (ऋ.वे. 7, 104, 15) ''यदि मैं यातुधानी हूं तो आज मैं मर जाऊं'' (आदि) फिर हम पाते हैं कुछ विशिष्ट परिस्थितियों को दर्शाने वाले मंत्र (ऋ.वे. 10, 29, 2) सत मृत्यु नहीं थी न अमरत्व आदि कुछ स्थितियों में विलाप भी लक्षित है जैसे कि मंत्र (ऋ.वे. 10, 95, 14) ''रूपदान देवता लुप्त हो जाएगा और कभी नहीं लौटेगा'' आदि। कहीं लांछन और प्रशंसा भी है जैसा कि (ऋ.वे. 10, 117, 6) ''वह व्यक्ति जो अकेला खाता, अकेला पापकर्म करता है आदि। ऐसे ही द्यूत के विषय में मंत्र हैं (ऋ.वे. 10, 34, 13) द्यूत क्रीड़ार की निंदा की गई है- और कृषि कार्य की प्रशंसा। इस प्रकार जिन उद्देश्यों से ऋचाओं की सृष्टि हुई, ये विविध प्रकार के हैं।''

यास्क के शब्दों में :

''प्रत्येक मंत्र किसी देवता के लिए रचा गया है जिससे ऋषि का उद्देश्य इच्छा पूर्ति का है, वह उसे संबोधात करता है।''

यदि वह प्रमाणित करने के लिए इतना भी पर्याप्त नहीं है कि वेदों में कोई नैतिक अथवा आध्यात्मिक मूल्य नहीं है तो अन्य साक्ष्य प्रस्तुत किए जा सकते हैं।

जहां तक नैतिकता का प्रश्न है, *ऋग्वेद* में प्रायः कुछ है ही नहीं, न *ऋग्वेद* नैतिकता का ही आदर्श प्रस्तुत करता है। इस संबंध में तीन उदाहरण प्रस्तुत किए जा सकते हैं।

पहला यम-यमी संवाद है जो भाई-बहन थे।

''(यमी कहती है)

मैं अपने मित्र (यम) को मित्रता के लिए निमंत्रित करती हूं। विशाल रेगिस्तान और महासागरों को पार करती हुई आई हूं, इस निर्जन भूमि पर (तुम्हारी) संतान जन्म दे, जो तुम्हारे जैसे पिता के महान गुणों से सम्पन्न हो।''

यम कहता है–''तुम्हारा मित्र ऐसी मित्रता की इच्छा नहीं रखता। एक ही मूल की होते हुए भी तुम्हारी प्रकृति दूसरे प्रकार की है। महान प्रजापति के बहादुर पुत्रों का स्वर्ग पर अधिकार है और वे हमें देख रहे हैं।''

यमी कहती है–''अमरत्व प्राप्त देवादि सहवास का सुख प्राप्त करते हैं जो मृत्यु लोक के लोगों के लिए मना है। आप मुझसे सहवास करें कि जिस प्रकार सबका निर्माता (ब्रह्मा) अपनी पुत्री का पति बना।''

यम कहता है–''हमने वह कर्म नहीं किया जो पहले किया गया है। हम सत्यवादी हैं अतः असत्य भाषण कैसे कर सकते हैं। गंधर्व (सूर्य) अंतरिक्ष जल धारण करने वाला और उसकी वधू हम दोनों के पिता–माता हैं, अतः हम सगे (भाई–बहन) हैं।''

यमी कहती है–''परमपिता प्रजापति ने हमें गर्भ में ही पति–पत्नी बना दिया। उसके कार्य में कोई बाधक नहीं। पृथ्वी और आकाश भी हमारे संबंध से परिचित हैं।''

यम कहता है–''हमारे प्रथम प्रणय को कौन जानता है। किसने यहां रहस्य से परिचित कराया हैं। मित्र और वरुण के स्थान दिन–रात के विषय में तू क्या कहती है। नर्क की सजा कौन देता है।''

यमी कहती है–''यम की वासना मुझ यमी को एक शैया पर सोने के लिए विवश करे। मैं पत्नी के रूप में पति को अपना सब कुछ समर्पित करती हूं। एक रथ के दो पहियों की भांति हम सहयोग कर वासना की पूर्ति करें।''

यम कहता है–''ईश्वर के दूत पृथ्वी पर सदा विचरण करते हैं और अपने नेत्र खुले रखते है। ओ विनाशिनी शीघ्र किसी अन्य के साथ रमण कर जैसे कि एक गाड़ी के दो पहिए मिलते हैं और मेरा पीछा छोड़।''

यमी कहती है–''तुम्हारे ऊपर प्रत्येक पुजारी रात्रि और दिन का न्यौछावर करें, सदैव सूर्य के नेत्र खुलें, तुम्हारे लिए युगल (रात और दिन) संयुक्त होकर आकाश और पृथ्वी की भांति मिलें। मैं यम के वियोग को सहन न कर सकूं।''

यम कहता है–''आगे चलकर ऐसा समय आयेगा जब बहनें (पति के रूप में) उसे चुनेंगी तो उनके भाई नहीं होंगे। अतः भाग्यशालिनी मेरे अतिरिक्त अन्य के साथ अपनी भुजाओं को उसका तकिया बना।''

यमी कहती है–''उस भाई होने से क्या लाभ है जिसके रहते हुए भी बहिन पति विहीन रहे। उस बहिन के होने से क्या लाभ है जिसके रहते हुए भी भाई दुख उठाए। मैं कामाहत होकर ऐसे वचन बोल रही हूं। तुम मेरे शरीर से अपना शरीर भली–भांति मिलाओ।''

यम कहता है–''हे यमी, मैं तुम्हारे शरीर से अपना शरीर नहीं मिलाना चाहता। जो अपनी बहिन से सम्भोग करता है उसे लोग पापी कहते हैं। हे सुंदरी! मेरे अतिरिक्त किसी अन्य पुरुष से आमोद-प्रमोद करो। तुम्हारा भाई यह काम नहीं करना चाहता।''

यमी बोली–''मुझे खेद है कि तुम बहुत कमजोर हो। मैं तुम्हारे मन को नहीं समझ पा रही हूं। रस्सी जिस प्रकरा घोड़े को बांधती है, और लता जिस प्रकार वृक्ष से लिपट जाती है, उसी प्रकार अन्य स्त्री तुम्हारा आलिंगन करती है।''

यम ने कहा–''हे यमी! लता जिस प्रकार वृक्षर को लपेटती है, उसी प्रकार तुम मेरे अतिरिक्त अन्य पुरुष का आलिंगन करो। तुम उस पुरुष का मन जीतने की कामना करो और वह पुरुष तुम्हारा मन जीतने की इच्छा करे। तुम उसी के साथ कल्याण ाकारी सहवास करो।''

'राक्षस-हंता अग्नि हमारी प्रार्थना स्वीकार करे। दुरात्मा से त्राण दें जो व्याधि के रूप में तेरे भ्रूण को आक्रांत कर सके, जो अंत: काष्ठ की भांति तेरे गर्भाशय को निरस्त करे।''

''अग्नि देव हमारी अर्चना को स्वीकार करें, नरभक्षियों को नष्ट करें जो व्याधि के रूप में तेरे गर्भाशय पर दुष्प्रभाव डालते हैं, जो अंत: काष्ठ की भांति तेरी कोख को रिक्त कर सकते हैं।''

''दुरात्मा से हमें त्राण दें जो पुंसत्व का हरण करते हैं। गर्भ ठहरते ही उसे विस्थापित करते हैं जो नवजात शिशु का हनन करना चाहते हैं।''

''हमें दुरात्मा से त्राण मिले जो तेरी जंघा को विलग करता है जो पति-पत्नी के बीच बाधा बनता है जो तेरी कोख में प्रविष्ट होता है। बीज हरण करता है। हमें उस दुरात्मा से त्राण मिले जो भ्राता, पति अथवा पति इतर प्रियतम के रूप में तुझ तक पहुंचता है और गर्भपात करना चाहता है।''

''हमें दुरात्मा से त्राण मिले जो तुझे नींद या अंधेरे में छल लेता है। तुझ तक आकर गर्भपात कर देता है।''

ऋग्वेद के कुछ मंत्रों अथवा प्रार्थनाओं को लेते हैं। उनमें से कुछ इस प्रकार हैं :

1. हे वायु देव! तू कितना रूपवान है हमने मसालों से सोम रस बनाया है। आ, इसका पान कर और हमारी प्रार्थना स्वीकार कर — *ऋग्वेद* I. 1.2.1
2. हे इन्द्र देव! हमारे संरक्षण हेतु सम्पदा प्रदान कर। तेरे द्वारा प्रदत्त सम्पदा हमें

सुख दे। चिरकालिक हो और हमारे शत्रु विनाश में सहायक हो। I. 1.8.1

3. पुरुषों! जब भी यज्ञ करो इन्द्र और अग्निदेव की स्तुति करना न भूलना, उनका गुणगान करो और गायत्री–छंद में उनकी स्तुति करो। I. 21.2
4. हे अग्निदेव! देव पत्नियों और त्वष्टा को ला, जो आने और सोमरस पान को लालायित है। I. 22.9
5. हम प्रार्थना करते हैं, देव पत्नियां सभी उपलब्ध पंखों से और आनन्दित होकर हमारे पास आएं। I. 22.11
6. मैं प्रार्थना कर रहा हूं कि इन्द्र, वरुण और अग्नि की पत्नियां मेरे पास आएं और सोम पिऐं।
7. हे वरुण! हम तुझ से अनुनय कर रहे हैं कि अपना क्रोध शमन कर। हे असुर! तू पूर्ण बुद्धिमान है, हमें पाप मुक्त कर। I. 24.14
8. हमारा सोमरस स्त्रियों द्वारा तैयार किया गया है जिन्होंने इसे श्रमपूर्वक मथा है। हे इन्द्र! हम तेरी प्रार्थना करते हैं। आओ और इस सोम का पान करो। I. 28.3
9. तेरे शत्रु जो तुझे कुछ अर्पित नहीं करते वे विलीन हो जाएं और जो अर्पित करते हैं, वे संपन्न हों। हे इन्द्र! हमें उत्तम गाएं और अश्व प्रदान कर और विश्व में हमारी ख्याति फैला। I. 29.4
10. हे अग्नि! हमारी राक्षसों से, धूर्त–शत्रुओं से, उनसे जो हमें घृणा करते हैं, और हमारा वध करना चाहते हैं, रक्षा कर। I. 36.15
11. हे इन्द्र! तू वीर है। आ और हमारे द्वारा तैयार सोम का पान कर और हमें सम्पदा देने को तत्पर रह। जो तुझे कुछ अर्पण नहीं करते, उनकी सम्पत्ति का हरण कर और उसे हमें प्रदान कर। I. 81–8–9
12. हे इन्द्र! इस सोम का पान कर, जो सर्वश्रेष्ठ है, अमरता प्रदान करता है और अत्याधिक मादक है। I. 84–4
13. हे आदित्य! हमारे पास आ अपना आशीर्वाद हमें दें। हमें युद्ध में विजयी बनाए। तुम समृद्ध हो। तुम दानी हो। जैसे एक रथ कठिन मार्ग पर अग्रसर

होता है, उसी प्रकार हमें संकटों से पार कर। I. 106 1-1 22

14. हे मारुत!... तुम्हारे अनुयायी तुम्हारी प्रशस्ति गा रहे हैं। प्रसन्न हो और आ सोम पान के लिए निर्मित कुश आसन पर विराजमान हो। 7 57-1-2

15. हे मित्र वरुण! हमने यज्ञ में तेरी आराधना की। इसे स्वीकार करने की कृपा कर। हमें संकटों से बचा। सातवां 7.60, 12

ऋग्वेद में उल्लिखित अनेक मंत्र-समूह में से ये कुछेक हैं, किन्तु इसमें कोई संदेह नहीं कि यह छोटा-सा नमूना ही उन सबके लिए पर्याप्त है।

मैं बता दूं कि मैंने *ऋग्वेद* और *यजुर्वेद* के बहुत से अश्लील अंशों को जानकर छोड़ दिया है। जिन्हें इस संबंध में जिज्ञासा है, वे *ऋग्वेद* के मण्डल दस 85.37 के सूर्य-पूशान संवाद और *ऋग्वेद* के मंडल दस 86.6 में इन्द्र-इंद्राणी संवाद देख सकते हैं। *यजुर्वेद* के *अश्वमेध* प्रसंग में और अश्लीलता व्याप्त है।

इन अश्लीलताओं को छोड़ भी दें और *ऋग्वेद* के प्रार्थना वर्ग तक ही सीमित रहें तो भी क्या कोई कह सकता है कि यह प्रार्थनाएं नैतिक अथवा आध्यात्मिक उत्थान करने वाली हैं?

जहां तक दर्शन का प्रश्न है *ऋग्वेद* में वह नदारद है जैसा कि ''प्रत्येक मंत्र किसी देवता के लिए रचा गया है जिससे ऋषि का उद्देश्य इच्छापूर्ति का है और वह उसे संबोधित करता है।''

यदि यह प्रमाणित करने के लए इतना भी पर्याप्त नहीं है कि वेदों में कोई नैतिक अथवा आध्यात्मिक मूल्य नहीं है तो अन्य साक्ष्य प्रस्तुत किए जा सकते हैं।

जहां तक दार्शनिकता का प्रश्न है *ऋग्वेद* में प्रायः कुछ है ही नहीं। न *ऋग्वेद* नैतिकता का ही आदर्श प्रस्तुत करता है। प्रोफेसर विल्सन का कहना है कि *ऋग्वेद* में जो वृहद्तम है बहुत कम सैद्धांतिक अथवा दार्शनिक प्रसंग आए हैं। इसमें विभिन्न विचारधाराओं के परवर्ती अन्तर्बोध संबंधी कल्पनाओं का अभाव है। पुनर्जन्म सिद्धांत की ओर कोई संकेत नहीं है और न ही सृष्टि चक्र का कोई संदर्भ है। वेद आर्यों के सामाजिक जीवन के दिग्दर्शन का एक लाभकारी सूचना स्रोत है। यह आदिम जीवन की प्रतिच्छाया है, जिनमें जिज्ञासा अधिक है, भविष्य की कल्पना नहीं है। इनमें दुराचार अधिक, गुण मुट्ठी-भर हैं।

II

अब हम *अथर्ववेद* पर आते हैं और इसकी विषयवस्तु की निरख-परख करते हैं। इसका उत्तम साधन *अथर्ववेद* की विषयसूची की तालिका प्रस्तुत करना है।

खंड I - व्याधि हरण और भेषजज्ञानी

पांचवां, 22 - तापमान (बुखार) और संबद्ध व्याधि रोधी तंत्र,

छठा, 20 - तापमान (बुखार) रोधी तंत्र,

प्रथम, 25 - तापमान (बुखार) रोधी तंत्र,

सातवां, 116 - तापमान (बुखार) रोधी तंत्र,

पांचवां, 4 - तापमान हरण हेतु कुष्ठ निवारण पौधे की प्रार्थना,

उन्नीसवां, 39 - तापमान तथा अन्य रोग हरण हेतु कुष्ठ निवारण पौधे की प्रार्थना,

प्रथम, 12 - तापमान, शिरोपीड़ा और काल से उत्पन्न प्रकाश की प्रार्थना,

प्रथम, 22 - पांडुरोग और संबद्ध व्याधि रोधी तंत्र,

छठा, 14 - हलस रोधी तंत्र,

छठा, 105 - कास रोधी तंत्र,

प्रथम, 2 - देह से अतिस्राव रोधी तंत्र,

द्वितीय, 3 - जलस्रोत से अतिस्राव रोधी तंत्र,

छठा, 44 - देह से अतिस्राव रोधी तंत्र,

प्रथम, 3 - मलबंध और मूत्र बंध रोधी तंत्र,

छठा, 90 - रुद्र, क्षेपण से उत्पन्न उदरशूल रोधी तंत्र,

प्रथम, 10 - जलोदर रोधी तंत्र,

सप्तम, 83 - जलोदर रोधी तंत्र,

छठा, 24 - जलोदर, हृदय रोग और तत्जन्य व्याधि का प्रवाहित जल द्वारा उपचार,

छठा, 80 - सूर्य से अनुनय,

द्वितीय, 8 - क्षेत्रीय वंशानुगत व्याधि रोधी तंत्र,

द्वितीय, 10 – क्षेत्रीय वंशानुगत व्याधि रोधी तंत्र,

तृतीय, 7 – ....वही....,

प्रथम, 23 – कुष्ठ रोग का काले पौधे द्वारा उपचार,

प्रथम, 24 – ....वही....,

छठा, 83 – कंठमाला उपचार तंत्र,

सातवां, 76 – (क) कंठ माला उपचार,

(ख) रसौली का उपचार,

(ग) दोपहरी में सोम प्रभाव में गाया जाने वाला गीत,

सप्तम, 74 (क) कंठमाला का उपचार,

(ख) ईर्ष्या तुष्टि तंत्र,

(ग) अग्नि देव से प्रार्थना,

छठा, 25 – ग्रीवा ओर कंधे की कंठमाला रोधी तंत्र,

छठा, 57 – कंठमाला उपचार के रूप में मंत्र,

चतुर्थ, 12 – अस्थि खंडन के उपचार में अरुंधति (लक्ष) बूरी का तंत्र,

पंचम, 5 – घावों के उपचार के प्रति सिल्की (लक्ष) अरुंधति से घाव का उपचार तंत्र,

छठा, 109 – घावों के उपचार हेतु काली मिर्च,

प्रथम, 17 – रक्त स्राव रोकने का तंत्र,

द्वितीय, 31 – कृम रोधी तंत्र,

द्वितीय, 32 – पशुओं में कृमि-रोधी तंत्र,

पंचम, 23 – बालकों में कृमि रोधी तंत्र,

चतुर्थ, 6 – विष-रोधी तंत्र,

चतुर्थ, 7 – विष-रोधी तंत्र,

छठा, 100 – विष की प्रतिरोधी चीटियां,

पंचम, 13 – सर्प-विष-रोधी तंत्र,

छठा, 12 – सर्प-विष रोधी तंत्र,

सातवां, 56 – सरिसृप, बिच्छू और कीट विष-रोधी तंत्र,

छठा, 16 – नेत्र-शोथ-रोधी तंत्र,

छठा, 21 – केश-वृद्धि के लिए तंत्र,

छठा, 136 – केश-वृद्धि के लिए नितौनी के साथ तंत्र,

छठा, 137 – केश वृद्धि के लिए तंत्र,

चौथा, 4 – पुंसत्व-वृद्धि तंत्र,

छठा, III – उन्मादहारी तंत्र,

चौथा, 37 – अगश्रृंगी के साथ राक्षसों, अप्सराओं और गंधर्वों से मुक्ति का तंत्र

द्वितीय, 9 – पिशाच के अधीन व्याधि, दस प्रकार के काष्ठ के तंत्र से उपचार,

चतुर्थ, 36 – व्याधि मूलक पिशाच रोधी तंत्र,

द्वितीय, 25 – पृसनीपरणी द्वारा कण्व व्याधि मूलक पिशाच रोधी-तंत्र,

छठा, 32 – पिशाच भगाने वाले तंत्र,

द्वितीय, 4 – व्याधि और पिशाच रोधी गंगीदा द्वारा तैयार ताबीज तंत्र,

उन्नीसवां, 34 – व्याधि और पिशाच रोधी गंगीदा द्वारा तैयार ताबीज,

छठा, 85 – वारण वृक्ष द्वारा बने ताबीज से रोग-हरण,

छठा, 127 – सर्व-रोग हारी किचपद्द्रु,

उन्नीसवां, 38 – गुग्गल की उपचार शक्ति,

छठा, 91 – जौ और जल सर्व-रोगहारी,

आठवां, 7 – सर्व-रोगहारी जड़ी-बूटियों और इन्द्रजाल के मंत्र,

छठा, 96 – सर्व रोगहारी जड़ी बूटियां,

द्वितीय, 33 – आरोग्य तंत्र,

नवां, 8 – सर्व-रोग-रोधी तंत्र,

द्वितीय, 29 – दीर्घायु और रोग-संक्रमण द्वारा समृद्ध का तंत्र,

खंड II - दीर्घायु और स्वास्थ्य के लिए प्रार्थनाएं (आयुष्यानी)

तृतीय, 2 - स्वास्थ्य और दीर्घायु हेतु प्रार्थना,

द्वितीय, 28 - दीर्घायु हेतु प्रार्थना,

तृतीय, 31 - स्वास्थ्य और दीर्घायु हेतु प्रार्थना,

सप्तम, 53 - दीर्घायु के लिए प्रार्थना

खंड III - पिशाचों, जादूगरों और शत्रुओं को शाप

प्रथम, 7 - जादूगरों और पिशाचों को शाप,

प्रथम, 8 - जादूगरों और पिशाचों को को शाप,

प्रथम, 16 - पिशाचों और जादूगरों के विरुद्ध सीसे का तंत्र,

छठा, 2 - राक्षसों के विरुद्ध सोम से अनुनय,

द्वितीय, 14 - पुरुषों, पशुओं और गृहस्थी के लिए अनिष्टकारी पिशाचनियों के विरुद्ध तंत्र,

तृतीय, 9 - विषखंड अनिष्टकारी राक्षसों के विरुद्ध शाप,

चतुर्थ, 20 - एक गुल्म विशेष के साथ तंत्र जो राक्षस और शत्रु का नाम बताएं,

चतुर्थ, 17 - अपमार्ग पौधे द्वारा जादूगर, राक्षस और शत्रु–रोधी तंत्र,

चतुर्थ, 18 - अपमार्ग पौधे द्वारा जादूगर, राक्षस और शत्रु–रोधी तंत्र,

चतुर्थ, 19 - राक्षसों और जादूगरों के विरुद्ध अपमार्ग पौधे के रहस्यात्मक गुण,

सप्तम, 65 - शाप और पाप कर्मों के फल के विरुद्ध अपमार्ग का तंत्र,

दशम, 1 - जादूगर रोधी तंत्र,

पंचम, 14 - जादूगर रोधी तंत्र,

पंचम, 31 - जादूगर रोधी तंत्र,

अष्टम, 5 - संरक्षण के लिए श्राक्त वृक्ष की लकड़ी से बने रक्षाकवच (ताबीज) से प्रार्थना,

दशम, 3 - वरणा वृक्ष से बने ताबीज का गुणगान,

दशम, 6 – खादिर वृक्ष की लकड़ी से बने ताबीज का गुणगान,

नवम्, 16 – विश्वासघात, षड्यंत्र से रक्षा के लिए वरुण की प्रार्थना,

द्वितीय, 12 – शुभ कार्यों में विघ्नकारी शत्रु को शाप,

सप्तम, 70 – शत्रु की बल को विफल करना,

द्वितीय, 7 – एक पौधे विशेष की सहायता से शाप और अनिष्टकारी षड्यंत्र–रोधी तंत्र,

तृतीय, 6 – अश्वगंधा द्रुम से शत्रु नाश,

छठा, 75 – शत्रुनाशी प्रार्थना (नैवेद्यम् हवि),

छठा, 37 – अनिष्टकारी तांत्रिक कार्यों के विरुद्ध तंत्र,

सप्तम, 13 – शत्रु की शक्ति–हरण तंत्र,

खंड IV - स्त्रीकर्मणी तंत्र

द्वितीय, 36 – पति प्राप्ति हेतु तंत्र,

छठा, 60 – पति प्राप्ति हेतु तंत्र,

छठा, 82 – पत्नी प्राप्ति हेतु तंत्र,

छठा, 78 – दम्पति को आशीर्वाद,

सप्तम, 36 – नव–विवाहितों द्वारा उच्चारणीय प्रणय तंत्र,

सप्तमी, 37 – दुल्हन द्वारा दूल्हे के प्रति उच्चारणीय तंत्र,

छठा, 81 – गर्भधारण हेतु गंडा (ताबीज),

तृतीय, 23 – पुत्र प्राप्ति हेतु तंत्र,

छठा, 11 – पुत्र प्राप्ति हेतु तंत्र,

सप्तम, 35 – किसी स्त्री का बंध्या बनाने हेतु झाड़–फूंक,

छठा, 17 – गर्भपात रोधी तंत्र,

प्रथम, 34 – किसी स्त्री का प्रणय पाने हेतु तंत्र,

द्वितीय, 30 – किसी स्त्री का प्रणय पाने हेतु तंत्र,

छठा, 8 – किसी स्त्री का प्रणय पाने हेतु तंत्र,

छठा, 9 – किसी स्त्री का प्रणय पाने हेतु तंत्र,

छठा, 102 – किसी स्त्री का प्रणय पाने हेतु तंत्र,

तृतीय, 25 – किसी स्त्री का कामुक आकर्षण पाने हेतु तंत्र,

सप्तम, 38 – किसी स्त्री का प्रणय पाने हेतु तंत्र

छठा, 130 – किसी स्त्री की वासना उद्दीप्त करने हेतु तंत्र,

चतुर्थ, 5 – गुप्त मिलन हेतु तंत्र,

छठा, 77 – आवारा स्त्री की वापसी के लिए तंत्र,

छठा, 18 – ईर्ष्या रोधी तंत्र,

प्रथम, 14 – किसी स्त्री द्वारा अपनी सपत्नी के विरुद्ध झाड़-फूंक,

तृतीय, 18 – सपत्नी के विरुद्ध तंत्र,

छठा, 138 – किसी स्त्री की कामुकता-रोधी तंत्र,

प्रथम, 18 – किसी स्त्री की पिशाच वृत्ति का शमन,

छठा, 110 – दुष्ट ग्रह में जन्मे शिशु के प्रथम दो दांत उल्टे निकलने पर अनुष्ठान,

खंड V - राजकार्य संबंधी तंत्र

चतुर्थ, 8 – राज्याभिषेक पद प्रार्थना,

तृतीय, 3 – निर्वासित राज्य की पुर्नस्थापना हेतु तंत्र,

तृतीय, 4 – राजा के निर्वाचन पर प्रार्थना,

चतुर्थ, 22 – किसी राजा को श्रेष्ठता प्राप्ति हेतु तंत्र,

तृतीय, 5 – राज्य शक्ति में वृद्धि हेतु पर्णद्रुम से बने ताबीज की प्रशंसा,

प्रथम, 9 – इहलोक और परलोक में सफलता हेतु प्रार्थना,

छठा, 38 – ऐश्वर्य और शक्ति हेतु प्रार्थना,

अष्टम, 8 – युद्ध तंत्र,

प्रथम, 19 – बाण घाव-रोधी युद्ध तंत्र,

तृतीय, 1 – शत्रु को भ्रमित करने वाला तंत्र,

तृतीय, 2 – शत्रु को भ्रमित करने वाला तंत्र,

छठा, 97 – राजा के पक्ष में युद्ध पूर्व तंत्र,

छठा, 99 – राजा के पक्ष में युद्ध पूर्व तंत्र,

ग्याहरवां, 9 – युद्ध में सहायता हेतु अर्बुदी और न्यार्बुदी प्रार्थना,

एकादश, 10 – युद्ध में सहायता हेतु त्रिशमधि प्रार्थना,

पंचम, 20 – युद्ध–नाद का मंत्र,

पंचम, 21 – युद्ध–नाद शत्रु भय मंत्र,

खंड VI - सभा में अनुकूलता प्रभाव वृद्धि हेतु तंत्र

तृतीय, 30 – अनुकूलता प्राप्ति हेतु तंत्र,

छठा, 73 – विरोध निवारण तंत्र,

छठा, 74 – विरोध निवारण तंत्र,

सप्तम, 52 – संघर्ष और रक्तपात–रोधी तंत्र,

छठा, 64 – विरोध निवारण तंत्र,

छठा, 42 – क्रोध–निवारण तंत्र,

छठा, 43 – क्रोध–निवारण तंत्र,

सप्तम, 12 – सभा में प्रभावोत्पादकता हेतु तंत्र,

द्वितीय, 27 – विवाद में शत्रु विरोधी तंत्र,

छठा, 94 – किसी को इच्छादास बनाने हेतु तंत्र,

खंड VII - गृहस्थी, कृषि, पशुधन, व्यापार, द्यूत और स्वजनों की समृद्धि हेतु तंत्र

तृतीय, 12 – गृह निर्माण के लिए प्रार्थना,

छठा, 142 – अन्न–रोपण के समय आशीर्वाद,

छठा, 79 – अधिक अन्न प्राप्ति के लिए तंत्र

छठा, 50 – कृषि–नाशी–कीटों की झाड़–फूंक,

सप्तम, 2 – बिजली गिरने से अन्न की रक्षार्थ तंत्र,

द्वितीय, 26 – पशुधन की समृद्धि हेतु तंत्र,

तृतीय, 14 – पशुधन की समृद्धि हेतु तंत्र,

षष्ठ, 59 – पशुधन के रक्षार्थ अरुंधति पौधे की प्रार्थना,

षष्ठ, 70 – गाय की बछड़े के प्रति ममता बढ़ाने हेतु तंत्र,

तृतीय 28 – जुड़वां बछड़ों के लिए अनुष्ठान मंत्र,

षष्ठ, 92 – चपल घोड़े के दान का तंत्र,

तृतीय, 13 – नदी से नई नहर के लिए तंत्र,

षष्ठ, 106 – अग्नि से रक्षा के लिए तंत्र,

चतुर्थ, 3 – जंगली-जंतुओं और दस्युओं के विरुद्ध चरवाहों का तंत्र,

तृतीय, 15 – व्यापारी की प्रार्थना

चतुर्थ, 38 – (अ) द्यूत क्रीड़ा में सफलता का तंत्र,

(ब) भटके हुए बछड़ों की वापसी के लिए प्रार्थना,

सप्तम, 50 – जुए में जीत के लिए प्रार्थना,

छठा, 56 – घरों से सरीसृप रोधी झाड़-फूंक,

दशम, 4 – पेडू अश्व का आह्वान मंत्र जो सरीसृप रोधी है,

एकादश, 2 – भय-मुक्ति हेतु भव और सर्व की प्रार्थना,

सप्तम, 9 – खोई सम्पत्ति प्राप्ति हेतु तंत्र,

षष्ठ, 128 – ऋतुदेव का अनुष्ठान,

एकादश, 6 – आपदा मुक्ति हेतु सर्वदेव प्रार्थना,

खंड VIII - पाप और अपवित्रता के प्रायश्चित हेतु अनुष्ठान

षष्ठ, 45 – मानसिक उत्पात विरुद्ध तंत्र,

षष्ठ, 26 – दुराचार रोधी तंत्र,

षष्ठ, 114 – बलि में अशुद्धि के प्रति अनुष्ठान तंत्र,

षष्ठ, 115 – पाप के विरुद्ध अनुष्ठान,

षष्ठ, 112 – ज्येष्ठ भ्राता के पराभव के लिए अनुष्ठान,

षष्ठ, 113 – विशिष्ट जघन्य अपराधों के विरुद्ध अनुष्ठान,

षष्ठ, 120 – पाप मुक्ति के बाद स्वर्ग के लिए प्रार्थना,

षष्ठ, 27 - अशुभ पक्षी समझे जाने वाले कपोत के विरुद्ध तंत्र,

षष्ठ, 29 - अशुभ समझे जाने वाले कपोत और उलूक के विरुद्ध तंत्र,

षष्ठ 64 - अशुभ पक्षी के प्रभाव से ग्रस्त व्यक्ति के प्रति अनुष्ठान,

षष्ठ, 46 - दुस्वप्नों के प्रति झाड-़फूंक,

सप्तम, 115 - दुर्गुण निवारण और सद्‌गुणों के लिए तंत्र,

III

इस प्रकार यह देखा जा सकता है कि *अथर्ववेद* मात्र जादू-टोनों, इन्द्रजाल और जड़ी-बूटियों की विद्या है। इसका चौथाई भाग जादू-टोनों और इन्द्रजान से युक्त है। किन्तु यही सच नहीं है कि केवल *अथर्ववेद* में ही जादू-टोनों और इन्द्रजाल की भरमार है, *ऋग्वेद* भी इससे अछूता नहीं है। इसमें भी काले जादू-टोनों और इन्द्रजाल संबंधी मंत्रों की भरमार है। मैं ऐसे विषयों पर कुछ सूक्त उद्धृत करता हूं :

सूक्त - 17वां (145)

देवता अथवा इस मंत्र का उद्देश्य सौत से छुटकारा पाना है। ऋषि इन्द्राणी है, अंतिम पद का छंद पंक्ति है, शेष अनुष्टुप है।

1. मैंने यह अतिशक्तिशाली बल्लरी प्राप्त की है, जो सपत्नी का विनाश करती है, जिसके द्वारा वह स्त्री अपने पति को पुनः प्राप्त करती है।

2. हे शुभ देवों द्वारा प्रेषित, शक्तिशाली (गुल्म) मेरी सौत का नाश कर और मेरे पति को केवल मेरा बना।

3. हे श्रेष्ठ (गुल्म) मैं भी श्रेष्ठों में श्रेष्ठ बनूं और वह जो मेरी सौत है, घृणि ातों में घृणित बनें।

4. मैं उसका नाम भी नहीं लूंगी, कोई उससे प्रसन्न न हो, अन्य सौतों को दूर भगा।

5. मैं विजयी हूं, तू विजेता है, हम दोनों शक्तिशाली होने के कारण सौत पर विजयी होंगे।

6. मैं तुझे विजयी बनाती हूं। जड़ी अपने सिरहाने, मैं तुझे रखती हूं मुझे और विजयी बना। तेरा मानस मुझ से मिल जाए जैसे एक गाय अपने बछड़े से मिलती है। वह जल की भांति अबाध प्रवाहित हो।

सूक्त चतुर्थ - (155वां)

एक और चौथे मंत्र का देवता विघ्ननाशक (अलक्ष्यविघ्न) है, 2 और 3 का ब्राह्मणस्पति, 5 का विश्वदेव, भारद्वाज पुत्र श्रिम्बित ऋषि हैं। छंद अनुष्टुप है।

1. दीनहीन, अभागी, कुरूप (देवी) उन शोषितों के साथ अपने पर्वत पर जा, मैं तुझे डरा कर भगाता हूं।

2. वह इससे डरे (संसार), दूसरे से डरे (संसार), सर्वगर्भक्षरण करने वाली, तीव्र विषाण बृहस्पति आ, कष्टों को दूर कर।

3. उस काष्ठ को ग्रहण कर जो गहन समुद्र में मनुष्य से दूर बहता है। अदमनीय (देवी) दूर समुद्र में जा।

4. असंगत स्वरों का जाप करने वाले जब सहज रूप से बढ़ते हैं, तू उन्हें भगाता है। इन्द्र के सभी शत्रुओं का नाश हो गया, वे बुलबुलों की भांति विलीन हो गए।

5. ये (विश्वदेव) चुराए गए पशु लौटा ला उन्होंने अग्नि जागृत की, उन्होंने देवताओं को भोजन दिया, उन्हें कौन जीत सकता है।

सूक्त 12वां (163)

क्षय रोग निवारण : ऋषि कश्यपपुख विव्रीहन है। छंद है अनुष्टुप् ।

1. मैं तेरा चक्षु रोग हरण करता हूं। तेरी शिरोपीड़ा, तेरी नासिका, कर्ण, ठोड़ी, मानस, जिव्हा का रोग हरण करता हूं।

2. तेरी ग्रीवा, तेरी नासिका, तेरी अस्थियों, तेरे संधि-क्षेत्रों, तेरे बाहु, तेरे स्कंध, तेरे बाजुओं का रोग हरता हूं।

3. मैं तेरी अंतड़ियों, तेरी गुदा, उदर, हृदय, गुर्दे, यकृत और अन्य अंगों का रोग मिटाता हूं।

4. मैं तेरी जंघाओं, घुटनों, एड़ियों, पंजों, कमर, नितंबों और गुप्तांगों का रोग हरता हूं।

5. मैं तेरे मूत्र-मार्ग, मूत्र-ग्रंथि, बालों, नाखूनों, समस्त शरीर का रोग नष्ट करता हूं।

6. मैं तेरे प्रत्येक अंग, प्रत्येक बाल, प्रत्येक जोड़, जहां भी रोग हो, उसको मिटाता हूं।

और क्या चाहिए जिससे स्पष्ट होता है कि वेदों में ऐसा कुछ नहीं है जिससे आध्यात्मिक अथवा नैतिक उत्थान का मार्ग प्रशस्त होता हो। न तो उसकी विषय-वस्तु और न ही उसका स्वरूप, वेदों में संशयहीनता का औचित्य ठहराता है, जिसके ढोल पीटे गए हैं। तब ब्राह्मणों ने इतनी दृढ़ता से उन पर पवित्रता का मुलम्मा चढ़ाकर संशय रहित क्यों घोषित किया?

सातवीं पहेली

समय परिवर्तन या ब्राह्मण यह कैसे घोषित करते हैं कि वेद उनके सभी शास्त्रों से तुच्छ हैं?

I

हिंदुओं के धार्मिक साहित्य में, 1. वेद, 2. ब्राह्मण, 3. आरण्यक, 4. उपनिषद्, 5. सूत्र, 6. इतिहास, 7. स्मृत और 8. पुराण शामिल हैं।

जैसा कि कहा गया है, एक समय उनका महत्व एक समान था। उनके बीच श्रेष्ठता अथवा हीनता, पवित्रता अथवा लौकिकता, संशय अथवा संशय हीनता का कोई भेद नहीं था।

बाद में, जैसा कि हमने कहा है, वैदिक ब्राह्मणों ने सोचा कि वेदों और दूसरे धार्मिक साहित्य में अंतर होना चाहिए। उन्होंने वेदों को न केवल अन्य साहित्य से श्रेष्ठ घोषित कर दिया, अपितु उन्हें पावन और अमोघ भी बना दिया। वेदों को संशय रहित स्थापित करने के सिद्धांत को प्रतिपादित करते हुए उन्होंने पवित्र ग्रंथों को दो वर्गों में विभाजित कर दिया। 1. श्रुति और 2. अश्रुति। प्रथम विभाजन में उन्होंने आठ अंगों में से केवल दो को श्रेष्ठ रखा। 1. संहिता और 2. ब्राह्मण। शेष को उन्होंने अश्रुति घोषित कर दिया।

II

यह बताना संभव नहीं कि यह अंतर सर्वप्रथम कब उत्पन्न हुआ। परन्तु यह प्रश्न अधिक महत्वपूर्ण है कि किस आधार पर यह भेद किया गया। इतिहास और पुराणों को क्यों छोड़ दिया गया? आरण्यक और उपनिषद् क्यों छांट दिए गए? सूत्रों को क्यों छोड़ दिया गया? यह तो समझा जा सकता है कि इतिहास और पुराणों को श्रुति से

अंग्रेजी में यह 21 पृष्ठीय टाइप की हुई पाण्डुलिपि थी जिसका मूल शीर्षक ''वेदों का दमन'' है जिसमें लेखक ने त्रुटियों को स्वयं ठीक किया था। यह अध्याय पूर्ण है क्योंकि लेखक ने अंतिम पैरा अपने हाथ से सही किया था – संपादक

क्यों वंचित किया गया। जिस समय यह भेद किया गया, तब ये इतने आरंभिक और अविकसित थे कि उन्हें शायद ब्राह्मणों में सम्मिलित कर लिया गया। साथ ही यह बात भी समझ में आती है कि आरण्यकों का श्रुति के अंग के रूप में उल्लेख करना अनावश्यक था कि ये श्रुति का अंग है। उपनिषद् और सूत्रों का प्रश्न एक पहेली बना हुआ है। इन्हें श्रुति से अलग क्यों रखा गया? उपनिषदों के प्रश्न पर एक अन्य अध्याय में अलग से विचार किया गया है। यहां तो सूत्रों के बारे में विचार करना है क्योंकि सूत्रों को समाहित न करने का पार पाना कठिन है। यदि यह बात तर्कसम्मत है कि ब्राह्मणों को श्रुति में सम्मिलित किया जाना चाहिए तो उसी कसौटी पर यह बात खरी नहीं उतरती कि सूत्रों को शामिल क्यों न किया जाए, जैसा कि प्रोफेसर मैक्समूलर कहते हैं:

> ''हम इस बात को समझ सकते हैं कि किस प्रकार कोई देश अपनी राष्ट्रीय काव्य रचना का श्रेय किसी अलौकिक पुरुष को दे सकता है। विशेष रूप से तब जब कि उस काव्य में देवों को संबोधित प्रार्थनाएं और मंत्र समाविष्ट हों। परन्तु ब्राह्मण ग्रंथों के गद्य-साहित्य के विषय में यह कहना कठिन है। ब्राह्मण ग्रंथ स्पष्ट रूप से मंत्रों की अपेक्षा बाद की रचनाएं हैं। इसी कारण इन्हें श्रुति में समाहित किया गया होगा कि इनकी सामग्री ब्रह्म-ज्ञान से मुक्त है और उनकी विषय-सामग्री साधारण और प्राचीन मंत्र नहीं है। ब्राह्मण ग्रंथों के अधिकांश दावों के बारे में यह कल्पना की गई होगी कि इनकी रचना ईश्वरीय है जिनका उद्गम सामान्य रहा अथवा मंत्र नहीं हो सकते। किन्तु हमें इस तर्क को मान्यता देने की आवश्यकता नहीं, जिसके कारण ब्राह्मण ग्रंथों ने अपने को मंत्र रख्ना के समकालीन बताया है। इसका कोई कारण समझ में नहीं आता कि जब ब्राह्मण ग्रंथों और मंत्रों का रचनाकाल अधिक प्राचीन है तो हम इस सहज विचार को क्यों अस्वीकार कर दें कि यदि सूत्रों और भारत के लौकिक साहित्य की तुलना की जाए तो उनका महत्व समान बनता है। ऐसी घटना सामान्य है, जहां पवित्र ग्रंथों का यह नियम है कि बाद की रचनाओं को प्राचीन रचनाओं से ही जोड़ दिया जाता है जैसा कि ब्राह्मण ग्रंथों के साथ हुआ। किन्तु हम कठिनाई से ही यह विश्वास कर सकते हैं कि जब तक कोई पक्ष इन उपेक्षित रचनाओं के सिद्धांत विशेष की प्रामाणिकता अमान्य घोषित करने के लिए प्रयत्नशील न हो, पुराने और युक्ति-युक्त अंशों को पवित्र रचनाओं से हटा दिया जाए और उन्हें बाद की रचनाएं बता दिया जाए। तब तक ऐसी कल्पना का कोई आधार नहीं है फिर सूत्रों के साथ ऐसा क्यों हुआ। हमें ब्राह्मण और मंत्रों की अपेक्षा उनके परवर्ती होने के सिवाय ऐसा कोई कारण नहीं दिखता कि सूत्रों को श्रुति न बनाया जाय। क्या ब्राह्मण ग्रंथकारों को स्वयं ज्ञात था कि ऋषियों की अधिकांश रचनाओं और ब्राह्मण ग्रंथों के उद्भव के बीच युगों का अंतराल है। इस प्रश्न का उत्तर

सकारात्मक है। किन्तु जिस दुस्साहस के साथ भारतीय ब्रह्मज्ञानियों ने ब्राह्मण ग्रंथों को वही पद और उनका काल मंत्रों के सामन निर्धारण किया, उससे यह प्रकट होता है कि इसका कोई विशिष्ट कारण रहा होगा कि सूत्रों को उतनी ही पावनता और प्राथमिकता न दी जाए।''

सूत्रों को श्रुति की श्रेणी में न रखना एक पहेली है जिसका निराकरण किया जाना चाहिए।

इस विषय पर अनुसंधान करने वाले विद्वानों के समक्ष अन्य कूट प्रश्न भी हैं। उनका संबंध सूत्रों की श्रेणी में आने वाले साहित्य की विषयसामग्री में परिवर्तन और उनकी सापेक्ष प्रामाणिकता से है।

एक कूट प्रश्न साहित्य की उस श्रेणी से सम्बद्ध है जिसे ब्राह्मण कहा जाता है। एक समय ब्राह्मण ग्रंथ श्रुति की श्रेणी में आते थे। परन्तु लगता है, कालांतर में उनका यह स्थान नहीं रहा। स्मृति के निम्नांकित उद्धरण को देखने से लगता है कि मनु[1] ने ''ब्राह्मण ग्रंथों'' को श्रुति की श्रेणी से हटा दिया :

''श्रुति का अर्थ है वेद और 'स्मृति' का अर्थ है विधान। इनकी विषय-सामग्री पर तर्क नहीं किया जा सकता क्योंकि इनमें कर्त्तव्य-बोध है। ब्राह्मण ग्रंथ, जो बुद्धिवादी लेखों पर आधारित हैं, वे ज्ञान के इन दो स्रोतों की निंदा करें तो उन्हें संशयवादी और निंदक जानकर बहिष्कृत किया जाए ...... जो कर्त्तव्य-बोध चाहते हैं, उनके लिए श्रुति सर्वोच्च सत्ता है।

ब्राह्मण ग्रंथों को श्रुति से क्यों निकाला गया?''

III

अब हम साहित्य की उस श्रेणी पर आते है। जो स्मृति कहलाता है। जिसमें से सबसे महत्वपूर्ण *मनुस्मृति* और *याज्ञवल्क्य* स्मृति हैं। स्मृतियों की संख्या लगातार बढ़ती रही और यह सिलसिला अंग्रेजों के आगमन तक जारी रहा। मित्रमिश्र 57 स्मृतियों का, नीलकंठ 97 का और कमलाकर 131 स्मृतियों का उल्लेख करते हैं। हिन्दुओं द्वारा पवित्र समझे जाने वाले धार्मिक साहित्य में स्मृति साहित्य अपेक्षाकृत अधिक है।

वेदों और स्मृतियों के बीच संबंध के बारे में अनेक बातें हैं।

---

1. कुछ लोग तर्क कर सकते हैं कि 'वेद' शब्द में ब्राह्मण भी संकलित हैं। यह वास्तव में एक सच्चाई है। लेकिन मुझे ऐसा लगता है कि मनु ने 'श्रुति' को प्रतिबंधित अर्थ में प्रयुक्त किया ताकि 'ब्राह्मणों' को अलग रखा जाए। इस कथन की इस बात से पुष्टि होती है कि *मनुस्मृति* में ब्राह्मणों का उल्लेख नहीं है सिवाय एक स्थान पर (4.100) जहां वह कहता है कि मंत्रों का ही अध्ययन किया जाना चाहिए।

पहली बात यह है कि जैसा बौधायन, गौतम और आपस्तम्ब को धर्मशास्त्र का स्थान प्राप्त था, स्मृति को वह मान्यता प्राप्त नहीं थी[1]। स्मृति का संबंध मूल रूप से संस्कारों और परम्पराओं से था समाज के विद्वान उसकी अनुमति देते और अनुशंसा करते थे। जैसा कि प्रोफेसर अल्तेकर का मत है:

> आरम्भ में अपने लक्षण और विषय-सामग्री के कारण स्मृति सदाचार के समान थी और वही उनका आधार था। स्मृतियां अस्तित्व में आईं तो स्वाभाविक था सदाचार की परिधि सिमट गई, क्योंकि उसको अधिकांशतः संहिताओं में बांध लिया गया था। उन्होंने उन प्राचीन प्रथाओं से जोड़ना आरंभ कर दिया गया जो स्मृतियों में संहिताबद्ध नहीं थी अथवा जो नवीन थी और वे आरम्भिक धर्मशास्त्रों तथा स्मृतियों में संहिताबद्ध हो गई थीं इस कारण सामाजिक मान्यता प्राप्त हो गयी थी।

दूसरी उल्लेखनीय बात यह है कि स्मृतियां वेद और श्रुति से भिन्न समझी जाती थीं। जहां तक उनकी मान्यता और प्रामाणिकता का प्रश्न था, उनका आधार नितांत भिन्न था। श्रुतियों को दैवी मान्यता थी। स्मृतियों की मान्यता सामाजिक थी। उनकी प्रामाणिकता के संबंध में पूर्व मीमांसा में दो नियमों का प्रावधान किया गया था। प्रथम नियम यह है कि यदि श्रुति के दो पाठों में भिन्नता है तो दोनों प्रामाणिक थे, और यह समझा जाता था कि वेदों ने यह विकल्प किया हुआ था कि उनमें से किसी एक को स्वीकार कर लिया जाए। दूसरा नियम यह है कि यदि स्मृति का कोई पाठ श्रुति के विपरीत है तो उसे तत्काल रद्द कर दिया जाए। यह नियम कठोरता से पालन किए जाते थे और इसका परिणाम यह हुआ कि स्मृतियों को न तो वेदों के समान स्थान मिला और न प्रामाणिकता।

यह आश्चर्यजनक बात है कि एक समय ऐसा आया जब ब्राह्मणों ने कलाबाजी खाई और स्मृतियों को वेदों से श्रेष्ठ घोषित कर दिया। प्रोफेसर अल्तेकर ने कहा है:

> स्मृतियों ने श्रुतियों के कुछ सिद्धांतों को वास्तव में निरस्त कर दिया जो तत्कालीन युग की भावना के अनुरूप नहीं थे अथवा जिनका स्मृतियों से टकराव था। वैदिक परम्परा के अनुसार प्रातः देव कर्म और दोपहर बाद पितृ कर्म करने का विधान था। कालांतर में पितृ तर्पण लोकप्रिय हो गया और प्रातःकाल किया जाने लगा क्योंकि प्रातः स्नान दैनिक कार्यों में सम्मिलित हो गया। यह तरीका उपरोक्त नियम के अनुसार वैदिक प्रथा का प्रत्यक्ष उल्लंघन था। *स्मृति-चंद्रिका* के लेखक देवमभट्ट ने कहा है कि इसमें कोई हर्ज नहीं है। श्रुति नियम को समझा गया कि उसमें पितृ-तर्पण का उल्लेख है। पितृ-कर्म का नहीं। श्रुति साहित्य से ज्ञान होता है कि विश्वामित्र ने शुनःशेप को गोद ले लिया था। यद्यपि उनके स्वयं एक सौ पुत्र जीवित थे। इस प्रकार यह

1. इस विषय पर *काणे मेमोरियल वाल्यूम,* पृ. 18-25 पर प्रो. अल्तेकर का प्रभावपूर्ण लेख 'धर्म के स्रोत के रूप में स्मृतियों का स्थान' देखें।

अनुमति मिलती है कि किसी व्यक्ति के भले ही उसके अपने अनेक पुत्र जीवित हों, वह किसी अन्य के पुत्र को गोद ले सकता है। परन्तु मित्रमिश्र का कथन है कि यह व्यवस्था दोषपूर्ण है। हम यह कल्पना कर सकते हैं कि स्मृतियों की प्रथाएं भी श्रुति व्यवस्थाओं पर आधारित हैं जो इस समय उपलब्ध नहीं है परन्तु उनका अस्तित्व माना जा सकता है।

वैदिक कथन ''ना शेषो ज्ञेन्याजातमस्ति'' पुत्र गोद लेने की प्रथा के विरुद्ध है जिसे कालातीत में स्मृति साहित्य में अनुसंशित किया गया। यह एक स्पष्ट उदाहरण है कि किस प्रकार स्मृति ने श्रुति को ठिकाने लगा दिया। परन्तु मित्रमिश्र का कथन है कि इस प्रथा में कोई दोष नहीं है। श्रुति का कथन मात्र अर्थवाद है। यह अपनी ओर से कोई निर्देश नहीं देतीं। दूसरी और स्मृतियों ने दत्तक पुत्र की व्यवस्था की है जिससे कि होम आदि उपयुक्त रीति से सम्पन्न हो सकें। इस प्रकार स्मृति के पाठ द्वारा अर्थवाद श्रुति को पूर्णतः निरस्त कर दिया, जिसने ऐसा विधान किया था।

कालांतर में वैदिक निर्देशों के विपरीत सती प्रथा शुरू हुई। वेद आत्महनन के विरोध में है। फिर अपरार्क ने तर्क दिया है कि श्रुति के साथ भिन्नता होने से यह प्रथा अवैध नहीं हो जाती क्योंकि श्रुति में एक सामान्य सिद्धांत के रूप में आत्महत्या का निषेध किया गया है। जबकि स्मृति में विधवा के संबंध में इसके अपवादी की व्यवस्था की है।

सती प्रथा और दत्तक प्रथा ठीक है अथवा नहीं। यह एक भिन्न प्रश्न है। समाज ने किसी भी प्रकार उन्हें स्वीकार कर लिया। स्मृतियों ने उन्हें सैद्धांतिक मान्यता दे दी और वेदों की सत्ता के विरुद्ध मान्यता देने के लिए कहा।

प्रश्न यह है कि वेदों की श्रेष्ठता के लिए इतने दिन तक संघर्ष कर के वेदों का स्थान गिरा कर स्मृतियों को क्यों वेदों के ऊपर शिरोधार्य किया गया? उन्होंने वेदों को देवों से भी अधिक मान्यता दी फिर उन्हें घसीटकर स्मृतियों से भी नीचे क्यों डाल दिया जबकि स्मृतियों को मात्र सामाजिक मान्यता प्राप्त थी?

उन्होंने जो उपाय किए, वे इतने विदग्ध और कृत्रिम थे कि हमें संशय हो सकता है कि कोई निश्चित इरादा अवश्य होगा कि स्मृतियों को वेदों से श्रेष्ठ माना जाने लगा।

यह स्पष्ट करने के लिए कि उनके तर्क कितने कृत्रिम, भ्रामक, और कुंठित थे, यह उचित होगा कि उनका संक्षिप्त विवरण दिया जाए।

एक कृत्रिम तर्क का उदाहरण सामने आता है जब हम बृहस्पति के कथन पर विचार करते हैं। उनके अनुसार श्रुति और स्मृति ब्राह्मण की दो आंखें हैं। यदि उनमें से एक फूट जाएगी तो वह एकाक्षी रह जाएगा।

एक कुतर्क के रूप में कुमारिल भट्ट की दलील पर भी विचार किया जा सकता है। उनका तर्क अनुपलब्ध श्रुति के सिद्धांत पर आधारित है। स्मृतियों के नाम पर यह कहा गया कि उनके मत को रद्द नहीं किया जा सकता चाहे वह श्रुति के प्रतिकूल भी क्यों न हों? क्योंकि हो सकता है कि वास्तविक रूप में यह विद्यमान श्रुति एवं अनुपलब्ध श्रुति के बीच तारतम्य हो। इस प्रकार स्मृति को अनुपलब्ध श्रुति बना दिया गया।

ब्राह्मणों ने स्मृतियों को वेदों से श्रेष्ठ भी नहीं तो उनके समान स्थान देते हेतु एक तीसरा उपाय खोजा। यह *अत्रि स्म ृति* में प्राप्य है। अत्रि का कहना है कि जो स्मृतियों की सत्ता स्वीकार नहीं करते, वे शाप के भागी हो सकते हैं। अत्रि का सिद्धांत है कि ब्राह्मण श्रुति और स्मृति के संयुक्त अध्ययन की परिणति है। यदि कोई व्यक्ति मात्र वेदों का पाठ करता है और स्मृति की अवमानना करता है तो उसे तत्काल यह शाप दिया जा सकता है कि वह 21 योनियों तक वन्य जंतु बने।

ब्राह्मणों ने स्मृतियों को श्रुति के समान रखने के ऐसे उपाय क्यों किए? उनका उद्देश्य क्या था? उनका अभिप्राय क्या था?

प्रोफेसर अल्तेकर का कहना है कि स्मृतियों को वेदों की अपेक्षा उच्चता इस कारण दी गई है कि कालांतर में स्थापित परम्पराओं को विधि-विधान के रूप में वैधता के औचित्य को चुनौती दी जा सकती थी। यदि यही बात थी तो वैदिक काल में भी विधि-विधान थे, प्रथाएं बाद में पड़ीं और यदि दोनों के बीच कोई भिन्नता हो तो इस तर्क को समझा जा सके कि स्मृतियों के प्रगतिशील सिद्धांतों को मान्यता इस कारण दी गई कि उनमें टकराव दूर कर दिया गया था। बात ऐसी नहीं है। वेदों में विधि-विधान नहीं है। प्रोफेसर काणे का मत है:

> ''सभी कानून प्रथाओं के रूप में थे और प्रथाओं को मान्यता प्रदान करना आवश्यक नहीं था क्योंकि वे नागरिकों द्वारा मान्यता प्राप्त थे। दूसरे, स्मृतियों को वेदों की अपेक्षा प्रगतिशील नहीं कहा जा सकता। चातुर्वर्ण्य के सिवाय जिनके विषय में सर्वविदित है कि पूजा अर्चना छोड़कर समाज में विकास के सभी द्वार खुले थे। स्मृतियों ने वेदों के अप्रगतिशील तत्वों जैसे चातुर्वर्ण्य सिद्धांत को ले लिया तथा उसका जमकर प्रचार किया और उन व्यवस्थाओं को समाज के एक वर्ग के मत्थे मढ़ दिया।

इसी प्रकार कुछ और कारण भी हो सकते हैं, जिनके आधार पर ब्राह्मणों ने वेदों की अपेक्षा स्मृतियों को अधिक सम्मान दिया।''

ब्राह्मणों को अपनी पहली कलाकारी से संतोष न हुआ। उन्होंने एक चाल और चली।

कालांतर में स्मृतियों के पश्चात् पुराण आए। वे कुल मिलाकर 36 हैं। इसमें 18 पुराण और उतने ही उप-पुराण हैं। एक प्रकार से तो सभी पुराणों की विषय-सामग्री समान है। उनका कथ्य, विश्व की सृष्टि, पालन और संहार है। परन्तु अन्य विषयों में

उनकी सामग्री नितांत भिन्न है। कुछ ब्रह्मा के उपासक हैं, कुछ शिव के और कुछ विष्णु के; कुछ में वायु की, अग्नि की, और सूर्य की उपासना है तथा कुछ में अन्य देवी-देवताओं का गुणगान है।

यह बताया जा चुका है कि एक समय था जब पुराण श्रुति नहीं थे। किन्तु तदुपरांत एक क्रांतिकारी परिवर्तन हुआ। पुराणों को जिन्हें श्रुति से अलग रखने का कारण उनकी नितांत लौकिकता बताया गया था, अब वे वेदों से भी श्रेष्ठ हो गए।

वायु पुराण कहता है :[1]

सर्वप्रथम सभी शास्त्र, पुराण ब्रह्मा के मुख से प्रस्फुटित हुए। तदुपरांत वेद।

मत्स्य पुराण वेदों से केवल पूर्ववर्ती होना ही घोषित नहीं करता बल्कि वह उनकी अनंतता के गुणों और नाद के साथ पहचान को भी श्रेष्ठ मानता है। पहले केवल वेदों को इन गुणों से सम्पन्न बताया जाता था।

वह कहता है:[2]

सर्वप्रथम अविनाशी पितामह (ब्रह्म) उत्पन्न हुए, फिर वेद। उसके अंगोपांग तथा उनके पाठ के विभिन्न साधन जन्में और प्रकट हुए। ब्रह्मा ने जिन शास्त्रों को जन्म दिया उनमें सैकड़ों कोटि-कोटि मंत्रों वाले सनातन, नाद-जनित शुद्ध शास्त्र, पुराण प्रथम थे फिर उनके मुख से वेदों का उद्गम हुआ, तभी मीमांसा और न्याय और अष्ट प्रमाण सिद्धांत जन्मे।

भागवत पुराण वेदों के समान प्रामाणिकता का दावा करता है। वह कहता है:[3]

ब्रह्मार्त का निर्णय है कि पुराण भागवत कहलाता है जो वेदों के समान है।

ब्रह्मवैवर्त पुराण ने साधिकार दावा किया है कि वह वेदों से श्रेष्ठ है। वह कहता है:[4]

जिस श्रद्धेय ऋषि के विषय में आपने प्रश्न किया है और जो आपकी इच्छा है वह मुझे ज्ञात है। वह है पुराणों का सार अति विख्यात *ब्रह्म वैवर्त पुराण* जो समस्त पुराणों, उप-पुराणों और वेदों की त्रुटियों का परिष्कार करता है।

ब्राह्मणों की यह दूसरी पहेली है जिसके अनुसार उन्होंने अपने पवित्र ग्रंथों को प्राथमिकता, प्रमुखता और प्रामाणिकता दी।

वेदों के पतन की कथा यहीं समाप्त नहीं होती। पुराणों के बाद साहित्य का एक अन्य रूप उभरकर आया-तंत्र[5]। इनकी संख्या काफी दुर्जेय है। शंकराचार्य ने 64 तंत्र गिनाए हैं। इनके अतिरिक्त भी बहुत से होंगे।

---

1. म्यूर, संस्कृत टैक्स्ट, खंड 3, पृ. 27
2. म्यूर, संस्कृत टैक्स्ट, पृ. 28
3. और 3. म्यूर ने उद्धृत किया है, खंड 3
5. स्मृत धर्म और तांत्रिक धर्म पर और विचार के लिए इस भाग का परिशिष्ट 4 और 5 देखें।

इस साहित्य का रचयिता दत्तात्रेय को बताया गया है जो हिंदू त्रिमूर्ति के अवतार कहे जाते हैं। अर्थात् ब्रह्मा, विष्णु और शिव। उन्हें इस प्रकार तीन सर्वोच्च देवों के समान ज्ञान का संगम कहा गया है। किन्तु वे मात्र शिव पर निर्भर हैं जिन्होंने अपनी भार्या दुर्गा अथवा काली को वे रहस्यात्मक सिद्धांत और अनुभव बताए जो उनके भक्तों को ज्ञात होने चाहिए, और जिनका उन्हें अनुशीलन करना चाहिए। कहा गया है कि यह प्रामाणिक अथवा उच्च परम्परा उनके केन्द्रीय अर्थात् पंचम मुख से प्रकट हुई। क्योंकि यह परम पावन और गुह्य ज्ञान है, इसलिए यह अदीक्षितों के समक्ष प्रकट नहीं होना चाहिए। इन्हें अगम कहा गया है। इस प्रकार वे वेदों के ज्ञान निगम धर्मशास्त्रों और अन्य ग्रंथों से भिन्न हैं।

तंत्र विशेष रूप से शाक्तों और उनके विभिन्न संप्रदायों के धार्मिक ग्रंथ हैं। तांत्रिकों की कई शाखाएं हैं जो अपनी भिन्न-भिन्न परम्पराओं को मानते हैं और उनके अंतरंग अनुयाइयों के अतिरिक्त अन्य की समझ के बाहर हैं। तांत्रिकों और दक्षिणाचारियों के कर्मकांड शुद्ध और वेदानुकुल बताए गए हैं, जबकि वामांचारियों को केवल शूद्रों के लिए बताया गया है।

तंत्रों के उपदेश पुराणों की तरह भक्तिमार्ग पर आधारित और उपनिषदों एवं ब्राह्मणों के कर्ममार्ग तथा ज्ञानमार्ग से श्रेष्ठ कहे जाते हैं। इनमें एक देव की आराधना का निर्देश दिया गया है। विशेष रूप से शिव-भार्या का, जो जगतजननी कही गई है। इन सभी रचनाओं में नारी गुणों को साकार मानकर प्रमुखता दी गई है। पुरुषों की प्राय: उपेक्षा की गई है।

वेदों और तंत्रों में क्या संबंध है? *मनुस्मृति* के विख्यात भाष्यकार कुल्लूक भट्ट को यह कहने में कोई संकोच नहीं है कि श्रुति के दो अंग हैं, वेद और तंत्र। इसका अर्थ हुआ वेद और तंत्र का समान स्तर है। कुल्लूक भट्ट की तरह वैदिक ब्राह्मणों ने वेदों और तंत्रों को समान माना है बल्कि तंत्र लेखक तो चार कदम आगे हैं। उनका दावा है कि वेद शास्त्र और पुराण एक सामान्य नारी के समान है, जबकि तंत्र एक कुलीन नारी की भांति है। इसका आशय यही है कि तंत्र वेदों से श्रेष्ठ हैं।

इस सर्वेक्षण से एक तथ्य स्पष्ट है कि ब्राह्मणों को अपने धार्मिक साहित्य में कभी अटल विश्वास नहीं रहा। उन्होंने यह बताने के लिए संघर्ष किया कि वेद केवल पवित्र ग्रंथ ही नहीं बल्कि संशय-रहित हैं। यही नहीं कि उन्होंने कहा है कि वेद संशय-रहित हैं अपितु उन्होंने इस संबंध में मनगढ़ंत सिद्धांत और तर्क प्रस्तुत किए। इसके बाद वेदों को पहले उन्होंने स्मृतियों से हीन बताया फिर पुराणों से और अन्ततोगत्वा तंत्र से भी निचले गर्त में डाल दिया। यह यक्ष प्रश्न है कि आखिर ब्राह्मणों ने अपने पवित्रतम ग्रंथ वेदों की यह दुर्दशा क्यों बनाई कि वे स्मृतियों, पुराणों और तंत्र तक से तुच्छ हो गए।

आठवीं पहेली

वेद विरुद्ध उपनिषदों का घोषित युद्ध

वेदों के संदर्भ में उपनिषदों की स्थिति क्या है? क्या उनका एक-दूसरे के प्रति सौहार्द है या फिर प्रतिस्पर्धा? सचमुच कोई हिंदू अब यह स्वीकार नहीं करेगा कि वेद और उपनिषद एक-दूसरे के प्रतिकूल हैं। इसके विपरीत यह अवधारणा है कि उनके बीच कोई प्रतिरोध नहीं है और दोनों एक ही सिक्के के दो पहलू हैं। क्या यह विश्वास सारगर्भित है?

इस विश्वास का प्रमुख कारण यह तथ्य है कि उपनिषदों का दूसरा नाम वेदांत है। वेदांत के दो अर्थ हैं। एक से परिलक्षित होता है कि वेदों का अंतिम भाग हैं। दूसरा अर्थ - वेदों का सार। वेदांत शब्द उपनिषद् का दूसरा नाम होने के कारण उसके यह अर्थ उपनिषदों ने अंगीकार कर लिए। इसी अर्थ के कारण यह धारणा है कि वेद और उपनिषदों में कोई खींचातानी नहीं है।

वास्तव में किसी सीमा तक उपनिषदों के लिए यह अर्थ सार्थक है? पहली बात तो यही है कि 'वेदांत' शब्द का अर्थ जान लिया जाए। वेदांत का मूल अर्थ क्या था? क्या इसका अर्थ वेदों का अंतिम अंग है?

जैसा कि प्रोफेसर मैक्समूलर[1] ने अवलोकन किया कि :

> वेदांत एक तकनीकी शब्द है और मूलरूप से इसका अर्थ वेदों का अंतिम अंश नहीं है और न ही वैदिक साहित्य का अंतिम अध्याय है। अपितु वेदों का अंतिम मनोरथ है। *तैत्तरीय आरण्यक* (सम्पादक राजेन्द्र मित्र. पृ. 820) जैसे ग्रंथों में कुछ ऐसे वाक्यांश हैं, जिनसे भारतीय और यूरोपीय विद्वानों को भ्रांति हुई है कि वेदांत का सरल सा अर्थ है-वेदों का उपसंहार: ''या वेदादु स्वर: प्रकटो वेदांते का प्रतिष्ठित:

---

1. दि उपनिषद् (एस.बी.ई) खंड 1, भूमिका

15 पृष्ठों की यह टंकित पांडुलिपि लेखक के हाथ से संशोधित है। मूल रूप से इसका शीर्षक ''वेदा वर्सेस उपनिषद'' था। अंतिम दो परिच्छेद लेखक ने हाथ से जोड़े हैं। - संपादक

ओ३म् से वेद का आरम्भ होता है और उसी से वेद का समापन होता है। यहां वेदों का जो सीधा अर्थ है वह वेदादू के विपरीत है जैसा कि सायण ने इसका अनुवाद किया है। उसका अनुवाद वेदांत अथवा उपनिषद के रूप में असंभव है। वेदांत दर्शन के रूप में *तैत्तरीय आरण्यक* पृष्ठ 817 में दिग्दर्शित हुआ है। *नारायणिया उपनिषद्* के एक मंत्र में, जिसकी आवृति मांडुक्य उपनिषद तीन, 2, 6 में तथा अन्यत्र भी हुई है। 'वेदांत विज्ञान सुनिश्चितारह' जो विद्वान वेदांत मर्मज्ञ हैं, उनके अनुसार वह वेदों का उपसंहार नहीं और श्वेताश्वतर उप. 6, 22 वेदांत प्रमाणम गुहयम नहीं, भाष्यकार के मन में यह वेद का उपसंहार नहीं जो कालांतर में बहुवचन के रूप में प्रयुक्त हुआ है। अर्थात् भाष्यकार ने कहा है: ''क्षुरीकोपनिषद, 10 (बिबलि इंड, पृ. 210) पुण्डाांरिकेति वेदांतेषु निगादयाते,' वेदांत को छांदोग्य तथा अन्य उपनिषदों में पुण्डरीक कहा गया है परन्तु यह प्रत्येक वेद का अंतिम ग्रंथ नहीं।

इस संबंध में गौतम धर्म सूत्र में और स्पष्ट साक्ष्य उपलब्ध है। अध्याय 19 के बारहवें मंत्र में शुद्धीकरण पर गौतम का कथन है:

''शुद्धीकरण (पाठ) उपनिषद वेदांत संहिता - सभी वेदों के पाठ (हैं)'' आदि।

इससे यह स्पष्ट है कि गौतम के समय उपनिषद और वेद अलग-अलग माने जाते थे और उपनिषद वेदों का अंग नहीं माने जाते थे। हरदत्त ने अपने भाष्य में कहा है ''*आरण्यक* के वे अंश जो (उपनिषद) नहीं है, वेदांत कहलाते हैं। यह निर्विवाद साक्ष्य है कि उपनिषद वैदिक सिद्धांतों से भिन्न थे।

भगवत्गीता में वेद के उल्लेख से भी इसी विचार को बल मिलता है। *भगवतगीता* में वेद शब्द का अनेक स्थानों पर उल्लेख है। श्री भट्ट[1] के अनुसार इस शब्द का प्रयोग इस भाव से किया गया है कि लेखक ने इस आशय से उपनिषद को सम्मिलित नहीं किया है।

उपनिषदों की विषयवस्तु भी वेदों से भिन्न हैं। यह दूसरा तर्क है कि उपनिषद वेदों का अंग नहीं है। 'उपनिषद' शब्द की व्युत्पत्ति क्या है? यह अस्पष्ट है। अधिकांश यूरोपीय विद्वान उपनषिद् की व्युत्पत्ति ''षद'' धातु से मानते हैं जिसका अर्थ है ''बैठना''। इसके पूर्व दो सर्ग ''नि'' और ''उप'' हैं जिनमें ''नि'' का अर्थ है ''नीचे'' और ''उप'' का आशय है ''निकट''। इस प्रकार इसका आशय है समागम अथवा सभा। जिसका तात्पर्य है गुरु के निकट बैठकर उसका उपदेश सुनना। यही कारण है कि त्रिखंडाशेष में उपनिषद की व्याख्या 'समीप साधना' अथवा किसी व्यक्ति के पास बैठना है।

---

1. सैक्रेड बुक्स ऑफ दी ईस्ट, खंड 2, पृ. 275

परन्तु जैसा कि प्रो. मैक्समूलर ने मत व्यक्त किया है, इस व्युत्पत्ति को स्वीकार करने में दो आपत्तियां हैं। पहली बात तो यह है कि ऐसा लगता है कि ऐसा शब्द वेद के उपनिषद समेत अन्य अंश के लिए प्रयुक्त हुआ होगा तो इसके सीमित अर्थ कैसे किए गए? फिर समागम के रूप में उपनिषद का प्रयोग सार्थक नहीं लगता। जहां भी इस शब्द का प्रयोग हुआ है, इसका अर्थ है सिद्धांत अथवा इसका प्रयोग दार्शनिक लेख के रूप में हुआ है। जिसका आशय है गुह्य सिद्धांत।

प्रोफेसर मैक्समूलर ने शंकर के अन्य भाष्य का उल्लेख किया है जो *तैत्तरीय उपनिषद* 2, 9 के विषय में है। उनके अनुसार उपनिषद से परम आनन्द प्राप्त होता है। इसी कारण उसे उपनिषद कहते हैं। इस संबंध में प्रो. मैक्समूलर कहते हैं:

''आरण्यकों में ऐसी व्युत्पतियों की भरमार है जो वास्तविक नहीं शब्दों के साथ खिलवाड़ है, फिर भी उनका कुछ अर्थ निकल आता है।''

फिर भी प्रो. मैक्समूलर 'उपनिषद' शब्द का मूल 'षद' धातु से विनाश के अर्थ में मानते हैं, अर्थात् ऐसा ज्ञान जो मोक्ष के साधन के लिए ब्राह्मणों के ज्ञान से अज्ञान का विनाश करता है। प्रो. मैक्समूलर का कथन है कि भारतीय विद्वान उपनिषद का यही अर्थ निकालने पर सर्वसम्मत है।

यदि यह स्वीकार कर लिया जाए कि उपनिषद शब्द का जो अर्थ मैक्समूलर सुझाते हैं वह सही है तब यह एक ऐसा साक्ष्य होगा कि हिंदुओं में भ्रांतियां हैं और वेदों तथा उपनिषदों की विषय-वस्तु एक-दूसरे की पूरक नहीं वरन उनमें विरोधाभास है कि नि:संदेह उपनिषदों की विचार-पद्धति वेदों के प्रतिकूल है। वेदों का खंडन प्रकट करने के लिए उपनिषदों के कुछ उदाहरण पर्याप्त हैं।

मुण्डकोपनिषद का कथन है -

1. सभी देवताओं में सबसे पहले विश्वनियंता, जगतपालक ब्रह्मा उत्पन्न हुए। उन्होंने अपने ज्येष्ठतम पुत्र अथर्व को ब्रह्मविज्ञान की शिक्षा दी जो समस्त ज्ञान का आधार है। 2. अथर्व ने यह ज्ञान, जो उन्हें ब्रह्मा से मिला था, अंगिस को दिया; उन्होंने भारद्वाज की संतति सत्यवाह को समझाया जिन्होंने किंवदंतियों के अनुसार यह ज्ञान अंगिरस को दिया। 3. शौनक पूर्ण शिष्टाचार पूर्वक अंगिरस के पास गए और पूछा- ''हे आदरणीय ऋषि, वह कौन सा साधन है जिससे इस सम्पूर्ण जगत का ज्ञान हो सकात है।'' 4. अंगिरस ने उत्तर दिया, ये दो विधाएं पवित्र विद्याओं में इस प्रकार मानी जाती हैं, एक श्रेष्ठ और दूसरी अश्रेष्ठ। 5. अश्रेष्ठ विद्याएं हैं ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद, अथर्ववेद, स्वाराघात, आध्यात्मिक व्याकरण, भाष्य, पिंगल और खगोल शास्त्र। श्रेष्ठ विद्या अक्षय, अनित्य है, जिसका आशय उपनिषदों से है।

छांदोग्य उपनिषद् के अनुसार :

(1) ''नारद सनत्कुमार के पास गये और कहा– ''मुझे उपदेश करें''। नियमानुसार आये हुए नारद से सनत्कुमार ने कहा– तुम जो कुछ जानते हो उसे बतलाते हुए मेरे पास आओ, फिर मैं तुम्हें तुम्हारे ज्ञान से आगे उपदेश करूंगा।'' (2) ऐसा सुनकर नारद ने कहा, ''मैं *ऋग्वेद* पढ़ा हूं। *यजुर्वेद, सामवेद* और चौथा *अथर्ववेद* भी जानता हूं। सिवाय इनके इतिहास, पुराण रूप पंचमवेद, वेदों का वेद व्याकरण, श्राद्धकल्प, गणित, उत्पातज्ञान, कलानिधि शास्त्र, तर्कशास्त्र, नीतिशास्त्र, निरुक्त, शिक्षाकल्प, छंद और ब्रह्मविद्या, भूतशास्त्र, धनुर्वेद, ज्योतिषविद्या, गारुड़विद्या, नृत्य संगीतादि विद्या – यह सब मैं जानता हूं। (3) यह सब जानते हुए भी वह मैं केवल शब्दार्थ मात्र ही जानता हूं, आत्मा को मैं नहीं जानता। मैंने आप पूज्यजनों के जैसे महापुरुषों से सुना है। आत्मज्ञानी शोक को पारकर जाता है। मैं तो शोक करता हूं। ऐसे शोकग्रस्त मुझे शोक से पारकर देवें, अर्थात् मुझे अभय प्राप्त करा देवें। ऐसा सुनकर सनत्कुमार ने नारद से कहा– ''अभी तक यह जो कुछ तुम जानते हो, वह नाममात्र ही है''। (4) क्योंकि *ऋग्वेद* नाम है; *यजुर्वेद, सामवेद*, चौथा *अथर्ववेद*, पांचवां वेद इतिहास पुराण, व्याकरण, श्राद्धकल्प, गणित, उत्पात ज्ञान, निधिज्ञान, तर्कशास्त्र, नीतिशास्त्र, निरुक्त, वेद विद्या, भूतविद्या, धनुर्वेद, ज्योतिष, गारुड़, संगीतादि कला और शिल्पशास्त्र – ये सब भी नाम ही हैं। अतः प्रतिमा में विष्णु बुद्धि के समान। तुम नाम की ब्रह्म बुद्धि से उपासना करो। (5) वह जो नाम ब्रह्म है, ऐसी उपासना करता है, जहां तक नाम की गति है, वहां तक नाम के विषय में उस उपासक की यथेष्ट गति हो जाती है। जो ''यह ब्रह्म है'' इस प्रकार नाम की उपासना करता है। (नारद ने कहा) भगवान् क्या नाम से बढ़कर भी कोई वस्तु है। सनत्कुमार ने कहा नाम से भी बढ़कर वस्तु है। तब नारद ने कहा भगवन्, मुझे उसका ही उपदेश करें।''

बृहदारण्यक उपनिषद के अनुसार :

इस सुषुप्तावस्था में पिता अपिता हो जाता है, माता अमाता हो जाती है अर्थात् जन्य जनक भाव संबंध नहीं रह जाता। लोक अलोक हो जाते हैं। देव अदेव और वेद अवेद हो जाते हैं, अर्थात् सभी साध्य–साधन का अभाव हो जाता है। यहां पर चोर अचोर हो जाता है। भ्रूण हत्यारा अभ्रूण हो जाता है। चांडाल–चांडाल नहीं रह जाता है। पुल्कस अपौल्कस हो जाता है। शूद्र से ब्राह्मणी में उत्पनन संतान को चाण्डाल कहते हैं। शूद्रा में ब्राह्मण से उत्पनन संतान को निषाद कहते हैं एवं निषाद से क्षत्रिय में उत्पन्न संतान को पुल्कस कहते हैं। परिव्राजक अपरिव्राजक और वानप्रस्थी अतापस

हो जाता है, अर्थात् किसी वर्णाश्रम धर्म की या पुण्य-पाप की प्रतीति नहीं होती। उस समय यह पुरुष पुण्य से असंबद्ध तथा पास से भी संबंध रहित हो जाता है। किंबहुना:- उस अवस्था में हृदयस्थ समस्त शोकों को पार कर जाता है।

कठोपनिषद का मत निम्न प्रकार से है :

आत्मा उपदेश से प्राप्त नहीं। न ही ज्ञान से, न पठन से। वह उसी को प्राप्त होती है जिसे वह चाहे। आत्मा उसी शरीर में वास करती है जिसे वह चुन लेती है।

> यद्यपि आत्मा का ज्ञान कठिन है तथापि समुचित साधनों से उसे जाना जा सकता है। वह (लेखक) कहता है, इसे प्राप्त नहीं किया जा सकता। वे न तो उपदेश से ना ही कई वेदों के ज्ञान से न बुद्धि से न पुस्तकों के रखने से ना ही मात्र पाठन से। फिर वह कैसे लभ्य हैं? वह यह घोषित करता है।

उपनिषदों में कितनी प्रतिकूलता है और इनकी दार्शनिकता कितनी असंगत है, इसका आभास तभी हो सकता है जब कोई हिंदुओं की विवाह-पद्धति अनुलोम और प्रतिलोम शब्दों का उत्पत्ति समझेगा। उसकी उत्पत्ति के विषय में काणे[1] का कथन है-

> अनुलोम और प्रतिलोम (विवाह की परम्परा) ये दोनों वैदिक साहित्य में दुर्लभ हैं। *बृहदारण्यक उपनिषद* (2,1.5) और कौषीतकि (4,8) में प्रतिलोम शब्द का प्रयोग उस स्थिति के लिए किया गया है, जब कोई ब्राह्मण, ब्राह्मण के विषय में ज्ञान प्राप्त करने के लिए क्षत्रिय के पास जाए।

अनुलोम का अर्थ है, शास्त्रानुसार सहज परम्परा से कार्य सम्पन्न होगा, प्रतिलोम का अर्थ है सहज परम्परा के विपरीत। श्री काणे के कथनानुसार प्रतिलोम की परिभाषा के संदर्भ में यह स्पष्ट है कि उपनिषदों को वैदिक साहित्य की मान्यता नहीं है। उन्हें यदि तिरस्कृत भी नहीं किया गया है तो भी वैदिक ब्राह्मणों ने उनका स्थान तुच्छ रखा है। वह एक और प्रमाण है जो प्रकट करता है कि वेदों और उपनिषदों का संबंध सौहार्दपूर्ण न होकर प्रतिस्पर्धापूर्ण है।''

उपनिषदों का अध्ययन करने वाले ब्राह्मणों के प्रति वैदिक ब्राह्मणों के व्यवहार का एक अन्य उदाहरण भी है। बौधायन ने अपने धर्मसूत्र (8.3) में कहा है। श्राद्ध क्रिया के लिए यदि कोई अन्य ब्राह्मण उपलब्ध न हो तो किसी रहस्यविद् को बुलाया जाए। रहस्यविद् का अर्थ है उपनिषद पाठी ब्राह्मण।

यह धारणा कि वेदों और उपनिषदों के संबंध सौहार्दपूर्ण हैं, वास्तव में एक पहेली है।

---

1. हिस्ट्री आफ धर्मशास्त्र, खंड 2, भाग 1, पृ. 52

नौवीं पहेली

उपनिषद वेदों के अधीनस्थ कैसे बने?

पिछले अध्याय में हमने देखा कि मूलतः उपनिषद वेदों का अंग नहीं थे और सिद्धांतों की दृष्टि से दोनों परस्पर विरोधी हैं। वेदों और उपनिषदों के परवर्ती संबंधों की तुलना करना उचित होगा। उनके परवर्ती संबंधों के ज्ञान के लिए सर्वोत्तम उदाहरण दो दार्शनिक जैमिनि और बादरायण का विवाद है।

जैमिनि मीमांसा सूत्रों के रचयिता हैं जबकि बादरायण ब्रह्मसूत्र के सृष्टा; जैमिनि वेदों की श्रेष्ठता के पक्षधर हैं जबकि बादरायण उपनिषदों के।

विवाद का बिंदु था– क्या बलि देना आवश्यक है? वेद कहते हैं ''हां'' और उपनिषद कहते हैं ''नहीं''।

बादरायण ने जैमिनि की स्थिति अपने सूत्र 2–7 में स्पष्ट की है और शंकराचार्य ने उसका भाष्य किया है।

जैमिनि कहते हैं[1] :

> कोई उस समय तक बलि नहीं देता जब तक कि उसे इस बात का ज्ञान न हो कि वह शरीर से भिन्न है और मृत्यु उपरांत वह स्वर्ग जाएगा, जहां उसे बलि का फल प्राप्त होगा। आत्मज्ञान संबंधी ज्ञान किसी का मार्गदर्शन मात्र है। इस प्रकार बलि का उस पर प्रभुत्व है।

संक्षेप में जैमिनि का मत है कि वेदांत का कथन है कि आत्मा देह से भिन्न है और वह देह से अधिक काल तक अस्तित्व में रहती है। ऐसा ज्ञान पर्याप्त नहीं है। आत्मा की मनोरथ स्वर्ग प्राप्ति हो सकता है। किन्तु वह स्वर्गारूढ़ नहीं हो सकती जब

1. देखें, बादरायण सूत्र 2 और इस पर शंकर की टिप्पणी।

इस अध्याय में इसका शीर्षक 'जैमिनी वर्सेस बादरायण' था जो बाद में रेखांकित किया गया। यह नौ पृष्ठों की टंकित पाण्डुलिपि है। इसके पहले दो पृष्ठ लेखक ने स्वयं संशोधित किए हैं।– संपादक

तक कि वैदिक यज्ञ न किया जाए। यहीं उसके कर्मकांड का मूलमंत्र है। इस प्रकार उनका कर्मकाण्ड ही मुक्ति मार्ग है और इस प्रकार ज्ञान-कांड निरर्थक है। इसलिए जैमिनि उन लोगों के विरुद्ध है जो वेदांत[1] में आस्था रखते हैं।

विदेह के राजा जनक ने यज्ञ किया जिसमें उदारता पूर्वक दक्षिणा दी गई (बृह. 3.1.1.)। महोदय, मैं बलि दे रहा हूं (छांदो. 5.11.5) जनक और अश्वपति दोनों ही आत्मज्ञानी थे। यदि वे दोनों ही आत्मज्ञानी थे तो वे मुक्ति पा चुके थे फिर यज्ञ करने की आवश्यकता ही नहीं थी। परन्तु दोनों प्रसंगों में कहा गया है कि उन्होंने यज्ञ किया। इससे प्रमाणित होता है कि मुक्ति तभी मिल सकती है जब यज्ञ किया जाए न कि आत्मज्ञान से, जैसा कि वैदांतिक कहते हैं।

जैमिनि ने एक रचनात्मक बात कही[2] है कि शास्त्रों में निरापद कथन है कि ''आत्मज्ञान यज्ञ की अपेक्षा गौण है।'' जैमिनि इसे उचित[3] बताते हैं क्योंकि उनका मत है कि दोनों (ज्ञान और कर्म) समानांतर चलते हैं। (मृत-आत्मा को फल देने हेतु) जैमिनि बादरायण के ज्ञानकांड को स्वतंत्र साधन नहीं मानते। वे इसके दो आधार बताते हैं।

प्रथम[4] – ''आत्मज्ञान स्वतः कोई फलदायक नहीं।''

द्वितीय[5] – ''वेदों की सत्ता के अनुसार ज्ञान, कर्म की अपेक्षा गौण है।''

जैमिनि और उनके कर्मकांड पर बादरायण की क्या स्थिति है।' इसका उल्लेख बादरायण ने अपने सूत्रों 8 से 17 में किया है।

पहला मत[6] यह है कि जैमिनि ने जिस ''आत्मा'' का जिक्र किया है, वह सीमित आत्मा है अर्थात् आत्मा और परमेश्वर भिन्न है और शास्त्रों में ''परमेश्वर को मान्यता है।''

बादरायण का दूसरा मत है[7] कि वेद आत्मज्ञान और यज्ञ दोनों के पक्षधर हैं।

बादरायण का तृतीय विचार है[8] कि यज्ञ वही कर सकते हैं, जिन्हें वेदों में आस्था

---

1. देखें, बादरायण सूत्र 3 और शंकर की इस पर टिप्पणी।
2. देखें, बादरायण सूत्र 4
3. देखें, बादरायण सूत्र 5
4. देखें, बादरायण सूत्र 6
5. देखें, बादरायण सूत्र 7
6. देखें, बादरायण सूत्र 8
7. देखें, बादरायण सूत्र 9
8. देखें, बादरायण सूत्र 12

है। परन्तु जो उपनिषदों के अनुगामी हैं, उन पर यह निर्देश लागू नहीं, जैसी कि शंकराचार्य ने व्याख्या की है:

जिन्होंने वेद पढ़े हैं और कर्मकाण्ड के ज्ञाता हैं, वही यज्ञ करा सकते हैं। उनके लिए यज्ञ कराना निषिद्ध है जिन्होंने उपनिषदों से आत्मज्ञान अर्जित किया है। ऐसे ज्ञान की कर्मकाण्ड से कोई तुलना नहीं।

बादरायण का चौथा[1] मत है कि जिन्हें ब्रह्मनंद प्राप्त है उनके लिए कर्मकाण्ड वैकल्पिक है। जैसा कि शंकराचार्य ने स्पष्ट किया है:

> कुछ लोगों ने स्वत: ही कर्मकाण्ड का त्याग कर दिया है। बात यह है ज्ञान प्राप्ति के उपरांत कुछ लोग दूसरों के सन्मुख उदाहरण प्रस्तुत करने हेतु कर्मकाण्ड करना पसंद करते हैं जबकि कुछ उसका परित्याग कर देते हैं। जो आत्मज्ञानी होते हैं, उनके लिए कर्मकाण्ड की बाध्यता नहीं होती।

उनकी अंतिम[2] और निर्णायक स्थिति इस प्रकार है:

''आत्मज्ञान कर्मकाण्ड का प्रतिरोधी है इसलिए वह कर्मकाण्ड का साधन नहीं है,'' और इसके समर्थन में वे उन शास्त्रों का सहारा[3] लेते हैं जो संन्यास को चौथा आश्रम मानते हैं और संन्यासियों को कर्मकाण्ड द्वारा नियत यज्ञ से मुक्त रखते हैं।''

बादरायण के सूत्रों में अनेक ऐसे हैं जो दोनों परम्पराओं के विद्वानों के परस्पर विरोधी विचारों को परिलक्षित करते हैं। परन्तु उपरोक्त में से एक ही पर्याप्त है, जिसकी अपनी विशेषता है। यदि कोई इस विषय की उपेक्षा कर दे तो स्थिति भिन्न हो जाती है। जैमिनि ने वेदांत को मिथ्याशास्त्र, भ्रमजाल और मोहमाया कहकर निंदा की है और उसे सतही, अनावश्यक तथा निराधार बताया है। इस लांछन के विरुद्ध बादरायण ने क्या किया? क्या उन्होंने जैमिनि के कर्मकाण्ड को मिथ्याशास्त्र, भ्रमजाल और मोहमाया कहकर उनकी निंदा की है, और उसे सतही, अनावश्यक तथा निराधार बताया है? नहीं! उन्होंने मात्र अपने वेदांत शास्त्रों का औचित्य ठहराया है। परन्तु उनसे और अधिक अपेक्षा थी। हम अपेक्षा कर सकते थे कि बादरायण भी जैमिनि के कर्मकाण्ड को मिथ्याधर्म कहेंगे। बादरायण में साहस नहीं है। इसके विपरीत उनका व्यवहार बगलें झांकने जैसा है। वे स्वीकार कर लेते हैं कि जैमिनि का कर्मकाण्ड शास्त्रों पर आधारित है और शास्त्र–प्रामाणिक तथा पवित्र हैं, जिनका खण्डन नहीं किया जा सकता।

---

1. देखें, बादरायण सूत्र 15
2. देखें, बादरायण सूत्र 16
3. देखें, बादरायण सूत्र 17

इसी में इतिश्री नहीं है। बादरायण ने यह किया कि उन्होंने कहा कि उपनिषद के दो भाव हैं। उन्होंने इस बात पर बल दिया कि उपनिषद वैदिक साहित्य का अंग है। उनका कथन है कि दोनों एक-दूसरे के पूरक हैं, वेदांत अथवा ज्ञानमार्ग वेदों के कर्मकांड के विरुद्ध नहीं है। दरअसल बादरायण के वेदांत सूत्र का यही स्वरूप है।

बादरायण का यह सिद्धांत उपनिषदों के अभिप्राय और वेद तथा उपनिषदों की संबद्ध स्थिति से भिन्न है। जब वे अपने सूत्र में कहते हैं कि उपनिषद वेदों के अंग हैं और दोनों के बीच कोई प्रतिस्पर्धा नहीं है, बादरायण का व्यवहार समझ में नहीं आता। किन्तु यह बिल्कुल स्पष्ट है कि वे दिग्भ्रमित हैं और अपने विरोधी के समक्ष उनकी स्थिति दयनीय है जो अपने विपक्षी की वैधता स्वीकार करते हुए, उसके आगे घुटने टेक देते हैं। वेदों के संशय-रहित होने पर जो उपनिषदों के विरुद्ध हैं बादरायण जैमिनि के आगे झुक जाते हैं। वह सत्य के सम्मुख टिके क्यों नहीं रहते, पूर्ण सत्य, सत्य के अतिरिक्त और कुछ नहीं जैसा कि उपनिषदों ने दिग्दर्शित किया? बादरायण ने अपने वेदांत सूत्रों में उपनिषदों के साथ विश्वासघात किया। उन्होंने ऐसा क्यों किया?

दसवीं पहेली

ब्राह्मणों ने हिंदू देवताओं को एक-दूसरे से क्यों लड़ाया?

विश्व के संबंध में हिंदुओं का तत्वज्ञान त्रिमूर्ति पर आधारित है। उनके अनुसार विश्व की तीन स्थितियाँ हैं। सृष्टि, पालन और संहार। यह एक अविरल क्रम है। यह तीन कार्य ब्रह्मा, विष्णु और महेश द्वारा किए जाते हैं। ब्रह्मा ने सृष्टि की रचना की। विष्णु इसका पालनहार है और महेश संहारक। ये देवता त्रिमूर्ति कहे जाते हैं। त्रिमूर्ति के सिद्धांत से परिलक्षित है कि तीनों का पद समान है। ऐसा कार्य सम्पन्न करते हैं, जो अन्योन्याश्रित है, उनमें कोई विरोध नहीं। वे परस्पर मित्र हैं, विरोधी नहीं। वे परस्पर सहायक है, शत्रु नहीं।

इन तीन देवों के कार्यों का उल्लेख करने वाले साहित्य के अध्ययन से पता चलता है कि स्थिति बिल्कुल भिन्न है। कथनी ओर करनी में अंतर है। ये देव परस्पर मित्र होने के स्थान पर एक-दूसरे के शत्रु हैं, जो श्रेष्ठता और सत्ता के लिए एक-दूसरे से भिड़ जाते हैं। पुराणों के कुछ उदाहरण स्थिति स्पष्ट कर देंगे।

एक समय था जब विष्णु और शिव की अपेक्षा ब्रह्मा परमदेव थे। ब्रह्म को जगत नियंता बताया गया है अर्थात् प्रथम प्रजापति। वे शिव के भी जनक हैं कि विष्णु के भी स्वामी हैं। यदि विष्णु सृष्टि के पालक हैं तो इसका आदेश उन्हें ब्रह्मा से मिला है। ब्रह्मा का परम पद ऐसा पद है कि रुद्र और नारायण तथा कृष्ण और शिव के बीच विवाद पर निर्णय ब्रह्मा देते हैं।

इतना ही ध्रुव सत्य है कि कालांतर में ब्रह्मा का शिव और विष्णु से संघर्ष हुआ और आश्चर्य है कि अपने विरोधियों के समक्ष उन्हें अपनी श्रेष्ठता से हाथ धोना पड़ा। विष्णु के साथ उनके संघर्ष के दो उदाहरण हैं:

मूल शीर्षक 'गॉड एट वार' था। यह 25 पृष्ठों की टंकित और संशोधित पाण्डुलिपि थी। इसके अंतिम तीन पृष्ठ लेखक ने हाथ से लिखे। - संपादक

पहला अवतारों की कथा। अवतारों के विषय में ब्रह्मा और विष्णु के मध्य प्रतिद्वंद्विता है। मानवता को आपदाओं से त्राण दिलाले हेतु अवतार सिद्धांत ब्रह्मा के अवतार से आरम्भ होता है। कहा जाता है कि उन्होंने दो अवतार लिए (1) वाराह और (2) मत्स्य। परंतु विष्णु-भक्त यह मानने को तैयार नहीं। उनका कथन है कि ये अवतार ब्रह्मा ने नहीं लिये अपितु विष्णु ने लिए थे। उन्हें इन्हीं अवतारों से संतोष नहीं हुआ। उन्होंने कहा कि विष्णु ने और भी अवतार लिए थे।

पुराणों में विष्णु के अवतार बताने की होड़ सी लग गई। विभिन्न पुराणों में अवतारों की भिन्न-भिन्न सूचियाँ दी गई हैं जो निम्नांकित हैं:

विष्णु के अवतार

क्र.सं.	हरिवंश के अनुसार	नारायणी आख्यान के अनुसार	वाराह पुराण के अनुसार	वायु पुराण के अनुसार	भागवत् पुराण के अनुसार
1.	वाराह	हंस	कूर्म	नरसिंह	सनत्कुमार
2.	नरसिंह	कूर्म	मत्स्य	वामन	वाराह
3.	वामन	मत्स्य	वाराह	वाराह	
4.	परशुराम	वाराह	नरसिंह	कूर्म	नरनारायण
5.	राम	नरसिंह	वामन	संग्राम	कपिल
6.	कृष्ण	वामन	परशुराम	आदिवक	दत्तात्रेय
7.		परशुराम	राम	त्रिपुरारी	यज्ञ
8.		राम	कृष्ण	अंधकार	ऋषभ
9.		कृष्ण	बुद्ध	ध्व्ज	पृथि
10.		कल्कि	कल्कि	वर्त	मत्स्य
11.				हलाहल	कूर्म
12.				कोलाहल	धन्वंतरी
13.					मोहिनी
14.					नरसिंह
15.					वामन
16.					परशुराम

17.	वेद व्यास
18.	नरदेव
19.	राम
20.	कृष्ण
21.	बुद्ध
22.	कल्कि

दूसरी कथा सर्वप्रथम जन्म धारण करने की है। इसका उल्लेख *स्कंद पुराण* में है। कथा इस प्रकार है कि एक बार विष्णु देवी के वक्ष स्थल पर सो रहे थे। उनकी नाभि से एक कमल प्रकट हुआ और वह पुष्प जल की सतह पर आ गया। उसमें ब्रह्मा प्रकट हुए। उन्होंने जब यह देखा कि इस अनंत में कोई जीव नहीं है तो उन्होंने सोचा सर्वप्रथम वे ही उत्पन्न हुए हैं और इस प्रकार उन्होंने अपने को भावी सृष्टि से पूर्व जन्मा बताया। फिर भी यह निश्चय करने के लिए कि उनकी प्रमुखता को चुनौती कौन दे सकता है? उन्होंने कमल नाल को खींचा तो विष्णु को सोता हुआ पाया। उन्होंने जोर से पूछा "यह कौन है"? विष्णु ने कहा मैं सबसे पहले जन्मा हूं, और जब ब्रह्मा ने अपने को पूर्व जन्मा बताया तो दोनों में युद्ध छिड़ गया। तभी महेश प्रकट हुए और कहा, पहले मेरा जन्म हुआ है। परन्तु मैं तुम दोनों में से किसी के लिए भी यह स्थिति त्यागने के लिए तैयार हूं यदि तुममे सें कोई मेरी शिखा तक अथवा मेरे पांवों के तलवे तक पहुंच जाए। ब्रह्मा तुरंत तैयार हो गए किन्तु वे थक गए थे पर बिना बात की बात पर अनिच्छुक हो गये इसलिए उन्होंने अपना दावा त्याग किया। वे महादेव की ओर मुड़े और कहा। उन्होंने बात पूरी कर दी है और उनके माथे का मुकुट देख लिया है और साक्षी के लिए प्रथम जन्मी गाय को बुला लिया। इस दर्प और झूठ पर शिव को क्रोध आ गया और उन्होंने कहा कि ब्रह्मा की कोई पूजा नहीं होगी और गाय का मुख विकृत हो जाएगा। फिर विष्णु आए और उन्होंने यह स्वीकार किया कि वे शिव के चरण नहीं देख पाए तब उन्होंने उनसे कहा कि देवों में वही प्रथम जन्में हैं और उनका पद सर्वोच्च है। इसके पश्चात् शिव ने ब्रह्मा का पाँचवा मुख काट डाला और उनका मौन भंग हुआ। उनकी शक्ति और प्रभाव क्षीण हो गए।

इस कथा के अनुसार ब्रह्मा का यह दावा झूठा था कि उनका जन्म सर्वप्रथम हुआ है। इसके लिए वह शिव के दण्ड के भागी बने। विष्णु को प्रथम जन्मा कहलाने का अधिकार मिला। ब्रह्मा के अनुयाइयों ने शिव की सहायता से विष्णु द्वारा ब्रह्मा का स्थान छीन लेने पर बदला लेने की ठानी। इसलिए उन्होंने एक और कथा रच डाली,

जिसके अनुसार विष्णु ब्रह्मा के नथुनों से सूकर रूप में उत्पन्न हुए और स्वाभाविक रूप से बाराह बन गए- विष्णु के वाराह अवतार का यह बहुत तुच्छ विश्लेषण है।

इसके पश्चात् ब्रह्मा ने शिव-विष्णु के बीच शत्रुता उत्पन्न कराने की चेष्टा की। स्वाभाविक है कि अपनी स्थिति बेहतर बनाने के लिए यह चेष्टा की होगी। यह कथा *रामायण* में कही गई है। वह इस प्रकार है:

जब राजा दशरथ, मिथिलापति जनक, जिसकी पुत्री से राम का विवाह हुआ था, से विदा लेकर अपने राज्य को लौट रहे थे तो उनके समक्ष अपशकुन हुए, उनके चारों ओर भयंकर स्वर वाले पक्षी चीख उठे और भूमि पर विचरने वाले मृग उनके दाहिनी ओर चलने लगे। यह देखकर दशरथ ने वशिष्ठ से पूछा, पक्षी चीख रहे हैं और मृग दाहिनी ओर चल रहे हैं, यह शकुन शुभ भी है और अशुभ भी है। यह क्या बात है? इससे मेरा हृदय शंका से भर उठा है। तब वशिष्ठ बोले यह परशुराम के आगमन की चेतावनी है जो तूफान की तरह चले आ रहे हैं, जिससे पृथ्वी कांप उठी, पेड़-पौधे गिरने लगे हैं और गहन अंधकार छा गया है। धूल से सूरज ढक गया है। परशुराम सामने से आ रहे हैं, बड़े भयानक दिखाई दे रहे हैं, कंधे पर फरसा और धनुष-बाण है। दशरथ ने उनका सम्मानपूर्वक अभिवादन किया, जिसे परशुराम ने स्वीकार कर लिया और दशरथ पुत्र राम की ओर बढ़े। कहा कि राम तुम्हारा बहुत पराक्रम सुना है। जनक द्वारा दिया गया शिव धनुष भी तुमने तोड़ दिया है। मैं दूसरा धनुष लेकर आया हूं। इसे खींचकर बाण चढ़ाओ। बाण चढ़ाने से तुम्हारे बल का अनुमान लगाकर मैं तुम्हारे साथ द्वंद्व करूंगा। परशुराम का वचन सुनकर दशरथ की हवाइयां उड़ गईं। परन्तु उन्होंने परशुराम से दीनभाव से ही बातचीत की। परशुराम ने फिर राम से ही कहा कि जो धनुष तुमने तोड़ा है, वह शिव का धनुष था किंतु अब जो धनुष मैं लाया हूं वह विष्णु का है। ये दोनों धनुष विश्वकर्मा ने बनाए थे, जिनमें से एक महादेव को दिया गया और दूसरा विष्णु को।

इसके आगे का वर्णन इस प्रकार है:

> तब देवताओं ने ब्रह्मा से आग्रह किया कि नीलकंठ (महादेव) और विष्णु के गुणावगुण का पता लगाएं। परम श्रेष्ठ ब्रह्मा ने दोनों के बीच वैमनस्य के आशय को जान लिया। इस स्थिति में नीलकंठ और विष्णु के बीच घमासान युद्ध छिड़ गया। दोनों ही एक-दूसरे को पराजित करना चाहते थे। शिव जी के विकराल धनुष में शिथिलता आ गई और त्रिनेत्र शिव जाप करने लगे। दोनों महान देवों के देवता समूह, ऋषियों और चारणों ने अर्चना की और वे शांत हो गए। जब देवताओं ने यह देखा कि विष्णु के तेज के आगे शिव धनुष शिथिल पड़ गया तो देवताओं ने विष्णु की श्रेष्ठता मान ली।

इस प्रकार ब्रह्मा ने महादेव द्वारा अपने प्रति किए गए अन्याय का बदला ले लिया। इस प्रपंच से भी ब्रह्मा विष्णु पर श्रेष्ठता न पा सके। ब्रह्मा का इतना पराभव हुआ कि जो कभी विष्णु को आदेश देते थे, वही ब्रह्मा का सृष्टा कहलाया।

शिव के साथ हुए श्रेष्ठता-संघर्ष में भी ब्रह्मा की वैसी ही गत बनी, इस संदर्भ में भी स्थिति ठीक विपरीत हो गई। कहां तो शिव ब्रह्मा से उत्पन्न हुए और कहां अब शिव ब्रह्मा के सृष्टा बन गए। ब्रह्मा मुक्ति[1] के कारण नहीं रहे। वह देवता, जो मोक्ष प्रदान कर सकते थे, शिव थे और मुक्ति पाने के लिए ब्रह्मा की हैसियत शिव और उनके लिंग की एक साधारण भक्त की तरह पूजा करने की हो गई, वह शिव के सेवक हो गए और उनके सारथी[2] बने।

अंततोगत्वा, अपनी पुत्री के साथ व्यभिचार करने के आरोप के कारण ब्रह्मा पूजनीय नहीं रहे। *भागवत पुराण* में इस लांछन का उल्लेख इस प्रकार है-

> "हे क्षत्रिय! हमने सुना है कि स्वायंभुव के मन में अपनी अबला और मोहक पुत्री वाच के प्रति कामुकता जगी, जिसके मन में उनके प्रति कामभाव नहीं था। ऋषियों और मारीचि के नेतृत्व में अपने पिता के कुकर्म पर, उनके पुत्रों ने उन्हें फटकारा। तुमने ऐसा कुकर्म किया है, जो तुमसे पहले किसी ने नहीं किया। न तुम्हारे बाद कोई ऐसा करेगा। क्या तुम्हें विधाता होते हुए अपनी पुत्री से ही विषयभोग करना था? क्या तुम अपने उन्माद को रोक नहीं सकते थे? अरे विश्व के गुरु तुम्हारे जैसे गौरवशाली व्यक्ति के लिए यह प्रशंसनीय नहीं है। जिनके कार्यों की मर्यादा के कारण व्यक्ति को आनन्द प्राप्त होता है जो जिस विष्णु की महिमा की दीप्ति से यह ब्रह्मांड प्रकाशित होता है, लौ उसी से फूटती है। उसे विष्णु धर्म परायणता को बनाए रखना चाहिए, अपने पुत्रों के व्यवहार को देखकर, जो प्रजापतियों के स्वामी से ऐसा कह रहे थे, प्रजापति शर्म से गड़ गए और अपने शरीर का विखंडन कर दिया। उसके भयानक अवशेष उस क्षेत्र में फैल गए और वहीं कोहरे के नाम से विख्यात हुआ।"

ब्रह्मा के विरुद्ध ऐसा अपकर्ष एवं अपमानजनक प्रहार होने से वह चारों खाने चित्त हो गए। इसमें कोई आश्चर्य नहीं। भारत से उनकी उपासना लुप्त हो गई और त्रिमूर्ति में औपचारिक रूप से ही सहभागी रह गए।

ब्रह्मा के मैदान से बाहर होने पर रह गए शिव और विष्णु। ये दोनों भी कभी चैन से नहीं बैठ पाए। दोनों के बीच होड़ और खींचतान जारी रही।

---

1. *महाभारत* म्यूर द्वारा उद्धृत, खंड 4, पृ. 1921
2. *महाभारत* म्यूर द्वारा उद्धृत, खंड 4, पृ. 1991

शिव और विष्णु उपासकों में पुराणों के माध्यम से एक–दूसरे के विरुद्ध जो प्रचार होता रहा, उसका उदाहरण निम्नांकित से देखा जा सकता है।

विष्णु से वैदिक देवता सूर्य का और शिव भक्त शिव से अग्नि का संबंध जोड़ते हैं। इसका आशय यह प्रकट करना था कि यदि विष्णु का उदभव वैदिक है तो शिव का उद्‌गम भी वैदिक है। जन्म के आधार पर कोई भी एक–दूसरे से घटकर नहीं है।

शिव विष्णु से बड़े हों और विष्णु कम न हों। विष्णु के सहस्त्र[1] नाम हैं तो शिव के भी सहस्त्र नाम होने चाहिए और ऐसा ही हुआ[2]।

विष्णु के चार चिह्न हैं। इसलिए शिव के भी होने चाहिए। वे हैं – 1. जटा से बहती गंगा, 2. चन्द्रचूड़, 3. नाग और 4. जटाजूट।

एक मात्र क्षेत्र है, अवतार जहां शिव विष्णु की बराबरी में नहीं हैं। इसका कारण यह नहीं है कि उनकी इच्छा बाजी मार लेने की नहीं थी। परन्तु दार्शनिक दृष्टि से शिव के मार्ग में अवतार संबंधी एक अवरोध था शिव और विष्णु के उपासकों में परमानन्द की अवधारणा के संबंध में मौलिक मतभेद हैं। यह श्री अय्यर ने स्पष्ट किया है :

''शैवों को उद्देश्य है दैहिक और मानसिक बंधनों से मुक्ति और उनका पूर्ण उत्सर्ग। इसलिए वे शिव को अक्षय मानते हैं अर्थात् जो कभी नष्ट नहीं होता अपितु संपूर्ण जगत का संहार करता है। इसी कारण रुद्र को महाकाल कहा जाता है। किसी व्यक्ति के आध्यात्मिक ज्ञान की चरमसीमा पर परम शिव से उसका भेद मिट जाता है, वह अपने भौतिक शरीर, मन, सुख, और दुख और कर्त्तव्य से ज्ञानातीत हो जाता है। वह शिव में सयुज्य हो जाता है। इस स्थिति में वह स्वयं में और शिव में भेद करना भूल जाता है। जब तक वह इस स्थिति को नहीं पहुंचता, वह अपूर्ण है चाहे वह कितना भी शुद्ध कितना ही योग्य क्यों न हो। सयुज्य तक पहुंचने हेतु जो भी पात्र हैं, वे मात्र सालोक्य, सामीप्य और सारूप्य का गौण पद ही पाते हैं। यही कारण है कि अवतार का सिद्धांत शैवों को आकर्षित नहीं कर पाया। अवतार के रूप में भगवान सीमित हो जाता है अर्थात् ऐसा व्यक्ति जो कदाचित अपने को तो बंधन मुक्त कर लेता है परन्तु मुक्त को मुक्त नहीं कर सकता। वैष्णवों का मत भिन्न है। परमपद के संबंध में उनकी स्पष्ट अवधारणा है। हमें परमात्मा से एकाकार होना है। इसके बावजूद हमें उसकी चेतना रहनी चाहिए। उसे ब्रह्मलीन होना है। इससे ब्रह्माण्ड की अक्षयता के रूप में सत्य का एक अन्य पक्ष

1. देखें विष्णु सहस्त्रनाम।
2. *पद्‌मपुराण* में उल्लिखित है।
3. वही।

माना जाए। दूसरे शब्दों में वह ब्रह्मांड के क्षय में आस्था नहीं रखते क्योंकि उसका परम पुरुष से भेद विभेद नहीं है। बल्कि वे ब्रह्मांड के पालन के पक्ष में हैं जो प्रकट पुरुष की पहचान से न कम है न ज्यादा। यही कारण है विष्णु को पालनहार कहा गया है। अंततोगत्वा यही भेद है जिससे सत्य का दर्शन होता है। शैव विश्व को दुःख और दारुण का पाश मानते हैं। (इससे सभी को पशु बनना पड़ता है) जिसको तोड़ा जाना चाहिए और उसका संहार होना चाहिए। वैष्णव इसे पुरुष की महानता का प्रमाण मानते हैं और इसके पालन के पक्ष में हैं। शैव निराशावाद अथवा दुखवाद के कारण धर्मसूत्रों के प्रति आस्थावान नहीं हैं। न वे अर्थशास्त्र और अन्य ग्रंथों को ही मानते हैं जो विश्व के संचालन और कल्याण के लिए बना दिए गए हैं। वे पुष्टिमार्गी नहीं हें। वे नियमों और परम्पराओं की अवज्ञा करते हैं। किसी परम शैव के लिए जाति-बंधन खण्डनीय हैं। हां, वे निसंदेह उसका पालन कर सकते हैं जो परिपक्व नहीं है। वह समाज के उन्हीं लोगों का सम्मान करते हैं और उनके विस्तार के पक्ष में हैं जो चाहे किसी भी जाति के हों, परन्तु शिव के साथ सामीप्य, सालोक्य, सारूप्य और सयोज्य हों। दूसरी ओर वैष्णवों की रुचि सभी नियमों के पालन में है जिससे विश्व का कल्याण होता हो। यदि ध र्म का क्षय होता है तो विश्व का भी क्षय होगा और विश्व का क्षय नहीं होना चाहिए क्योंकि यह पुरुष के अन्तर्यामी होने का लक्षण है। यह उनका कर्म है कि धर्म की रक्षा हो। यदि स्थिति नियंत्रण से बाहर हो जाती है तो विष्णु स्वयं ठीक करते हैं। इसलिए वे अवतार धारण कर विश्व में अवतरित होते हैं। परन्तु जब विष्णु धरती पर आते हैं तो दुष्टों का विनाश करते हैं। इसलिए यह आवश्यक है कि हम जानें कि जो धर्म का क्षय करता है उसे विष्णु का कोप-भाजन बनना पड़ता है। इसी प्रकार शिवभक्तों के लिए जो विधान लिया गया है, उसमें जाति-बंधन अप्रसांगिक है और भक्ति धर्म तक सीमित है। उसके समुचित पालन से भगवान के दर्शन होंगे और अंततोगत्वा, शिव के साथ एकाकार होगा, दूसरे इसे शूद्र नहीं मानते। यह जाति उन्मूलक है और वे सनातन शास्त्रों के अनुरूप नहीं है।''

शिव की महिमा में किए गए प्रचार के समान ही विष्णु-भक्तों ने उसके खण्डन के लिए प्रचार-तंत्र अपनाया। गंगा[1] अवतरण का प्रसंग एक उदाहरण है। शिवभक्त उसकी उत्पत्ति शिव की जटाओं से मानते हैं। परन्तु वैष्णव इसे मानने को तैयार नहीं थे। उन्होंने एक और कथा रच डाली। वैष्णवों के आख्यान के अनुसार पतितपावनी गंगा बैकुण्ठ (विष्णु के निवास) से निकलती है। उसका उद्गम विष्णु के चरणों से है और कैलाश पर आकर वह शिव के मस्तक पर उतरती है। उस कथा के दो

1. मूर, हिंदू पेनथियन, पृ. 40-41

निष्कर्ष हैं। प्रथम यह कि गंगा का उद्गम विष्णु के चरणों से है, शिव की जटा से नहीं। फिर शिव का पद विष्णु से नीचा है क्योंकि उनके मस्तक पर गंगा की धार विष्णु के चरणों से गिरती है।

दूसरा उदाहरण देवों और असुरों द्वारा सागर-मंथन का है। उन्होंने मंदराचल पर्वत को मथानी और शेष नाग को रस्सी बनाया। विष्णु ने कूर्म अवतार लिया, फिर पृथ्वी को अपनी पीठ पर धारण किया और मंथन के समय उसके स्पादन को नियंत्रित किया है।

यह कथा विष्णु की महिमा बढ़ाने के लिए रची गई है। शिव का स्थान इसमें गौण। इसके अनुसार समुद्र-तल से चौदह रत्न निकले। इनमें से हलाहल एक था। जब तक कोई इस हलाहल का पान न करता यह समस्त विश्व को नष्ट कर सकता था। शिव ही उसके पान के लिए तत्पर हुए। इससे यह संकेत मिलता है कि विष्णु द्वारा दोनों विरोधी समूहों, देव और असुरों को सागर-मंथन की अनुमति देकर विश्व के विनाश का द्वार खोल दिया था और अविवेकपूर्ण कार्य किया था। शिव की महिमा बताई गई है कि उन्होंने विषपान करके विष्णु की मूर्खता से होने वाले अनिष्ट से विश्व को बचा लिया।

तीसरा उदाहरण भी यह प्रकट करता है कि विष्णु मूर्ख थे और शिव ने ही अपनी विलक्षण बुद्धिमत्ता और पराक्रम से विष्णु को उनकी मूर्खताओं के परिणाम से त्राण दिलाया। यह कथा अक्रूरासुर[1] की है। अक्रूरासुर ऋक्ष के मुख वाला एक राक्षस था। इसके बावजूद वह नियमित रूप से वेद-पाठ करता था और भक्तिकर्म करता था। विष्णु उससे अत्यंत प्रसन्न थे और उसे मन चाहा वरदान देने का वचन दे डाला। अक्रूरासुर ने वर मांगा कि त्रिलोक में उपस्थित कोई प्राणी उसके प्राण नहीं ले सके। विष्णु मान गए। परन्तु वह इतना ढीठ हो गया कि जब उसने देवताओं को त्रास दिया तो उन्होंने उसके समक्ष समर्पण कर दिया और वह विश्व का शासक बन बैठा। असुर के अत्याचारों से लाचार विष्णु काली तट पर चिंतित बैठे थे। उनका रोष स्पष्ट दिख रहा था। उनकी आंखों के सामने इस आकार का जीव प्रकट हुआ, जो पहले त्रिलोक में विद्यमान नहीं था। वह रौद्ररूपी महादेव थे जिन्होंने क्षण भर में विष्णु को त्राण दिलाया।

इसके प्रतिरोध में भस्मासुर की कथा प्रचलित हुई कि शिव औधड़ (मूर्ख) हैं और विष्णु ने उनकी करतूत से उन्हें बचाया। भस्मासुर ने शिव को एक वरदान पाने के लिए प्रसन्न कर लिया। वरदान यह था कि भस्मासुर जिसके भी सिर पर हाथ

---

1. यह कहानी विष्णु आगम में कही जाती है और मूर की 'हिंदू पेनथियन' में उद्धृत है, पृ. 19-20

फिरायेगा, वह भस्म हो जायेगा। शिव ने वरदान दे दिया। भस्मासुर ने शिव के वरदान से उन्हें ही भस्म करने की ठानी। शिव सिर पर पांव धरकर भागे और विष्णु के पास पहुंचे। विष्णु ने मोहिनी रूप धारण किया और भस्मासुर के पास गए। वह उन्हें देखकर आसक्त हो गया। मोहिनी रूपी विष्णु ने कहा कि वह एक शर्त पर उनकी हो जाएगी कि जैसे-जैसे वह करे वैसे ही भस्मासुर करे, विष्णु ने इस प्रकार भस्मासुर का हाथ उसके सिर पर रखवा दिया। परिणाम यह निकला कि भस्मासुर का काम तमाम हो गया और विष्णु को यह श्रेय मिला कि उन्होंने शिव को उनकी मूर्खता के कारण संभावित विनाश से बचा लिया।

क्या ईश (महादेव) किसी अन्य दृष्ठि से भी कार्यों का कारण है? हमने यह नहीं सुना है कि किसी व्यक्ति के लिंग की दूसरे व्यक्ति और देवता पूजा करें। आप बताएं कि क्या आपने कहीं सुना है कि शिव के सिवाय किसी अन्य के लिंग की पूजा की जाती है अथवा पहले भी कभी देवताओं ने की है। जिसके लिंग की ब्रह्मा, विष्णु और इन्द्र देवताओं सहित निरंतर पूजा करते हैं। इस प्रकार शिव सर्वोच्च है। जातकों में न तो कमल-चिह्न (ब्रह्मा का), न ही चक्र (विष्णु का) और न ही वज्र (इन्द्र का) होता है बल्कि उनमें स्त्री पुरुष के अंग होते हैं। इस प्रकार सारी संतानों का दाता महेश्वर है। सभी नारियां देवी से उत्पन्न हैं, उनमें नारी के अंग हैं और पुरुषों में शिवलिंग विद्यमान रहता है। चराचर में से एक भी ढूंढ दो। सब जान लीजिए जो पुरुष हैं वे ईश हैं जो नारी हैं, वे उमा हैं। इस प्रकार सारा चराचर विश्व इन दो में से निकला है।

यूनानी दार्शनिक जैनोफेन्स इस बात पर बल देते हैं कि बहुदेववाद अमान्य है और इसमें विरोधाभास है इसलिए एकेश्वरवाद ही सत्य है। दार्शनिक कसौटी पर परखने से जैनोफेन्स का विचार सही हो सकता है। परन्तु ऐतिहासिक दृष्टिकोण से दोनों स्वाभाविक हैं। जहां एक ही सम्प्रदाय का समाज है वहां बहुदेववाद स्वाभाविक और आवश्यक है। क्योंकि प्रत्येक प्राचीन सम्प्रदाय में न केवल भिन्न व्यक्ति होते हैं बल्कि उनके विविध भगवान भी होते हैं। विभिन्न समुदायों का विलय और समुच्चय सिवा इसके संभव नहीं कि उनके भगवान को दूसरे भी स्वीकार करें। इस प्रकार बहुदेववाद पनपा।

निष्कर्ष निकलता है कि हिंदुओं में अनेक भगवानों का अस्तित्व ठीक ही है क्योंकि हिंदू समाज अनेक कबीलों-सम्प्रदायों का जमघट है जिनके अलग-अलग देवता हैं। आश्चर्यजनक बात यह है कि देवता आपस में संघर्षरत परस्पर दोषारोपण और वंदना में निरत रहे। यह सब कुछ लज्जा और क्षुद्रता की बात है। इसका स्पष्टीकरण वांछित है।

ग्यारहवीं पहेली

ब्राह्मणों ने देवताओं का उत्थान-पतन क्यों किया?

हिंदुओं को मूर्तिपूजक होने का दोषी ठहराया जाता है। परन्तु मूर्तिपूजा में कोई हर्ज नहीं। मूर्ति बनाना और बनाना और देवताओं के चित्र बनाना समान है और यदि चित्र बनाने पर कोई आपत्ति नहीं है तो मूर्ति बनाने पर क्या आपत्ति हो सकती है? हिंदुओं की मूर्तिपूजा पर वास्तविक आपत्ति यह है कि यह मात्र चित्रकारी नहीं है, मूर्ति की मात्र रचना नहीं है यह सब उससे अधिक है। हिंदू मूर्ति प्राणवान बताई जाती है और वही सब कार्य करती है जो मनुष्य करता है। प्राणप्रतिष्ठा से उनमें जान डाल दी जाती है। बौद्ध भी मूर्तिपूजक हैं। परन्तु जिस मूर्ति अथवा चित्र की वे पूजा करते हैं, वे मात्र प्रतीक हैं। ब्राह्मणों ने हिंदू देवी-देवताओं को जीवंत घोषित क्यों किया? यह एक प्रश्न है जिसके उत्तर की आवश्यकता है। परन्तु इस अध्याय में इस उत्तर की गुंजाइश नहीं है।

हिंदुओं पर जो दूसरा आरोप लगाया जाता है वह है- बहुदेववादी होने का अर्थात् वे बहुत से देवताओं के पूजक हैं। इस संबंध में भी केवल हिंदू ही इस आरोप से ग्रस्त नहीं हैं। अन्य समाजों में भी बहुदेववाद का प्रचलन है। हम केवल दो को गिनाते हैं। रोमन और यूनानी भी मूलतः बहुदेववादी हैं। वे भी अनेक देवताओं को मानते हैं। इसलिए इस लांछन में कोई दम नहीं।

हिंदुओं पर जो बड़ा आरोप लगाया जा सकता है, अधिकांश लोग उससे परिचित नहीं। वह है कि हिंदू अपने देवों की उपासना में अटल विश्वासी नहीं। उनमें एक देवता के प्रति आस्था श्रद्धा का अभाव है। हिंदू देवताओं के इतिहास में यह सामान्य बात है कि कुछ देवताओं की कभी उपासना होती रही और कालांतर में बंद हो

लेखक द्वारा स्व हस्तलिपि में संशोधित यह तैतालीस पृष्ठ की पाण्डुलिपि प्राप्त हुई थी। अंतिम पैरा लेखक ने स्वयं कलम से लिखा था। इस अध्याय का मूल शीर्षक 'राइज एंड फाल आफ दि गाड्स' था। इस शीर्षक को लेखक ने नीली स्याही की कलम से काट दिया था जैसी कि आम तौर पर लेखकीय परंपरा है। – संपादक

गई और उन देवताओं को कचरे में डाल दिया गया। बिल्कुल ही नए देवताओं की मान्यता हो गई और पूर्ण भक्ति-भाव से उनकी उपासना होने लगी। फिर ये देव भी अप्रासंगिक हो गए और देवताओं के बीच संघर्ष का क्रम चल रहा है। यह ऐसी बात है जो विश्व के किसी अन्य सम्प्रदाय में दृष्टिगोचर नहीं।

इस कथन को बिना आपत्ति के स्वीकार नहीं किया जा सकता है कि हिंदू अपने देवताओं के विषय में इतने हल्के विचार रखते थे। कुछ उदाहरण देना आवश्यक है। सौभाग्य से उनकी भरमार है। आजकल हिंदुओं के चार देवता है। (1) शिव, (2) विष्णु, (3) राम, और (4) कृष्ण। प्रश्न यह है कि क्या हिंदुओं के यही देवता हैं जिनकी आदिकाल से पूजा-अर्चना होती आ रही है?

हिंदू देव-कुल में देवों की संख्या सर्वाधिक है। संख्या की दृष्टि से संसार का कोई धर्म इस देवकुल की बारबरी नहीं कर सकता। ऋग्वेद-काल में देवताओं की विशाल संख्या थी। दो स्थानों पर *ऋग्वेद*[1] में कहा गया है तीन हजार तीन तीन सौ नौ देवता हैं (पता नहीं किस कारण से यह संख्या घटकर तैंतीस[2] रह गई)। यह एक उल्लेखनीय ह्रास है। उसके बावजूद तैंतीस देवताओं का हिन्दू देव-कुल सबसे विशाल है।

शतपथ ब्राह्मण[3] में तैंतीस देवों की व्याख्या इस प्रकार की गई है- आठ वसु, ग्यारह रुद्र, बारह आदित्य और पृथ्वी तथा स्वर्ग।

उनकी संख्या से बढ़कर प्रश्न उनके परस्पर संबंधों का है। क्या पद की दृष्टि से उनमें कोई भेद था? *ऋग्वेद* में एक मंत्र है कि आदर और स्थान की दृष्टि से इनके दो वर्ग हैं, एक बड़ा और छोटा तथा दूसरा नवीन और प्राचीन।

यह विचार *ऋग्वेद* की प्राचीन मान्यता से भिन्न लगता है। पुराना नियम इस प्रकार है:

''हे देवताओं! तुम में से न कोई छोटा है, न नवीन, तुम सब महान हो''। प्रोफेसर मैक्मूलर का भी यही निष्कर्ष है:

> ''जब इन देवों का आह्वान किया गया, उनकी शक्ति दूसरे से सीमित नहीं समझी गई थी न वे एक दूसरे से पद में ही श्रेष्ठ अथवा हीन थे। उपासक की दृष्टि में एक देव अन्य देवों के समान था। उसमें एक समय यथार्थ देवत्य समझा गया।

---

1. *ऋग्वेद* 3, 99:10 52:6, वाज सं 33.7, म्यूर खण्ड 5, पृष्ठ 12
2. *ऋग्वेद* 1, 139; 2ए3; 6ए9; 1; 8,30. 2; 8,35. 3 म्यूर 5. पृ. 10
3. एस.बी.ई. खंड 4:5, 7,2; म्यूर 5, पृष्ठ 2

चाहे कितनी भी सीमाएं हों हमारी दृष्टि में बहुदेववाद प्रत्येक देवता में अपरिहार्य होना चाहिए। प्रत्येक देव में देवों की विशेषता होनी चाहिए। कवि की दृष्टि से अन्य देव लुप्त हो जाते हैं और केवल वही रह जाता है जो उपासक का मनोरथ पूरा करे।''

''कोई ऐसा देव नहीं है जो अन्य का अधीन हो।''

एक समय यही सत्य था। देवताओं के प्रंति पुराने दृष्टिकोण में परिवर्तन आया। क्योंकि अनेक वेद मंत्रों में ऐसा उल्लेख है जिनमें कुछ देवों को सर्वोच्च और सर्वशक्तिमान समझा जाने लगा था।

द्वितीय मंडल के प्रथम मंत्र में अग्नि को विश्व-नियंता कहा गया है। परमात्मा, मेधावी राजा, पिता, भ्राता, पुत्र और मानव-मित्र बताया गया है। अपितु अन्यों की शक्तियां, और नाम भी विशेष रूप से उसे प्रदान किए गए हैं।

फिर अग्नि के ऊपर भी दूसरे देवता का स्थान हो गया। वह है इन्द्र। इन्द्र को वेद मंत्रों और साथ-साथ ब्राह्मणों में सर्वोच्च शक्तिशाली देवता कहा गया और दसवें मण्डल में कहा गया है। विश्वमद् इन्द्र उत्तरह: ''इन्द्र सर्वोच्च है।''

फिर तीसरा देवता शिखर पर पहुंचा। वह सोम है। सोम के विषय में कहा गया है कि वह जन्मजात महान था और उसने सभी को पराजित किया। वह विश्व का एक छत्र राजा कहलाता था। वह मनुष्यों के जीवन का विस्तार कर सकता था। एक मंत्र में कहा गया है कि वह स्वर्ग और धरती, अग्नि, सूर्य, इन्द्र और विष्णु का स्रष्टा था। फिर सोम भी विस्मृत हुआ और चौथे देवता की उपासना होने लगी। वह वरुण था। सभी देवताओं में सर्वोच्च था। दैवी और परमशक्ति का गुणगान करने के लिए मानव अभिव्यक्ति और क्या हो सकती थी जो वैदिक कवि ने वरुण के लिए की: ''तू स्वर्ग और मृत्युलोक का स्वामी है।'' या एक अन्य मंत्र में कहा गया है (27.10) तू सब का स्वामी है, उनका जो देवता है और ''उनका भी, जो मनुष्य हैं।''

इससे स्पष्ट है कि 33 वैदिक देवों में चार देवता अग्नि, इन्द्र, सोम और वरुण प्रधान थे। दूसरों का देवत्य भी विद्यमान रहा। परन्तु इन चार का स्थान सर्वोच्च था। कालांतर में विभिन्न देवों की तुलना में *शतपथ ब्राह्मण* के काल में एक और परिवर्तन आया। एक नया देवता उभरा। सोम और वरुण के नाम प्रधान देवताओं में से नदारद हो गए जबकि अग्नि और इन्द्र मौजूद रहे। एक और देवता का नाम सामने आया वह था सूर्य। परिणाम यह हुआ कि अग्नि, इन्द्र, सोम और वरुण के स्थान पर प्रमुख देवता हो गए अग्नि, इन्द्र और सूर्य। यह *शतपथ ब्राह्मण* का प्रमाण है जो कहता है:

''मूलतः सभी देव समान थे उन सबके समान होने से, सबके विमल होने से तीनों की चाह थी। ''हम श्रेष्ठ बनें,'' वे हैं अग्नि, इन्द्र और सूर्य।

''3. मूलतः अग्नि की शिखाएं ऐसी नहीं थीं जैसी वर्तमान में हैं। उन्होंने इच्छा की कि ये शिखाएं मुझ में हों'' उन्होंने इस को देखा, उसे ग्रहण किया और तब से उनकी शिखाएं उनमें समाहित हो गई।

4. ''मूलतः इन्द्र में इतना बल नहीं था आदि (उपरोक्तानुसार)

5. ''मूलतः सूर्य में उतनी कांति नहीं थी आदि''

कब तक ये तीन देव उच्चता की उसी दशा में बने रहे, यह बताना कठिन है। परन्तु निःसंदेह कालांतर में स्थिति बदल गई। यह चुल्ल निदेश के प्रसंग से स्पष्ट है। चुल्ल निदेश बौद्ध धर्म की रचना है। इसका रचनाकाल... (अधूरा छोड़ दिया गया)

चुल्ल निदेश में उन सम्प्रदायों की सूची दी गई है जो उस समय भारत में प्रचलित थे। इनका पंथ और उपासना के आधार पर वर्गीकरण किया गया है। वे इस प्रकार हैं:-

1. पंथ

क्रम सं.	सम्प्रदाय का नाम	
1.	आजीविका श्रावक[1]	आजीविका[2]
2.	निगंठ श्रावक	निगंठ[3]
3.	जटिल श्रावक	जटिल[4]
4.	परिव्राजक श्रावक	परिव्राजक[5]
5.	अवरुद्ध श्रावक	अवरुद्ध

1. श्रावक का अर्थ है शिष्य।
2. जीविकोपार्जन विषयक विशेष नियमों का पालन करने वाला भिक्षु।
3. हर प्रकार के बंधन-बाधाओं से मुक्त भिक्षु।
4. सर की जटाओं को बांधने वाले भिक्षु।
5. समाज से विरक्त भिक्षु।

2. उपासना

क्र. सं.	सम्प्रदाय का नाम	पूज्यदेव
1.	हस्ति वृत्तिका[1] (व्रती)	हस्ति[2]
2.	अश्व वृत्तिका	अश्व[3]
3.	गोवृत्तिका	गो[4]
4.	कुकुर वृत्तिका	कुक्कुर[5]
5.	काक वृत्तिका	काक[6]
6.	वासुदेव वृत्तिका	वासुदेव
7.	बलदेव वृत्तिका	बलदेव
8.	पूर्णभद्र वृत्तिका	पूर्णभद्र
9.	मणिभद्र वृत्तिका	मणिभद्र
10.	अग्नि वृत्तिका	अग्नि
11.	नाग वृत्तिका	नाग
12.	सुपर्ण वृत्तिका	सुपर्ण
13.	यक्ष वृत्तिका	यक्ष
14.	असुर वृत्तिका	असुर
15.	गंधर्व वृत्तिका	गंधर्व
16.	महाराज वृत्तिका	महाराज
17.	चन्द्र वृत्तिका	चन्द्र
18.	सूर्य वृत्तिका	सूर्य
19.	इन्द्र वृत्तिका	इन्द्र

1. वृत्तिका का अर्थ श्रद्धालु भक्त से है।
2. हाथी।
3. घोड़ा।
4. गाय।
5. श्वान।
6. कौआ।

20.	ब्रह्मा वृत्तिका	ब्रह्मा
21.	देव वृत्तिका	देव
22.	दिशा वृत्तिका	दिशा

शतपत ब्राह्मण के समय से चुल्ल निदेश तक प्रतिस्थापित तुलनात्मक स्थिति निम्नांकित थी:

1. प्रथम, यह कि चुल्ल निदेश के समय अग्नि, सूर्य और इन्द्र की उपासना जारी थी। 2. दूसरे यह कि अग्नि, सूर्य और इन्द्र की उपासना यद्यपि जारी थी कन्तु उनकी श्रेष्ठता लुप्त हो गई थी; वैसे काफी अन्य उपासनाएं होने लगीं और लोग उनकी ओर आकर्षित हुए। 3. तीसरे, नई पूजा परम्पराओं में काफी बाद में दो बहुत प्रमुख हुईं, वह हैं वासुदेव कृष्ण और ब्रह्मा। 4. चौथे, विष्णु, शिव और राम अज्ञात थे।

चुल्ल निदेश के बाद अब स्थिति क्या है? इस समय तीन प्रतिस्थापनाएं हैं। प्रथम, अग्नि, इन्द्र, ब्रह्मा की पूजा लुप्त हो गई, द्वितीय कृष्ण की स्थिति पूर्ववत रही; तृतीय; विष्णु, शिव और राम की नई पूजा-परम्पराएं शुरू हुईं जो चुल्ल निदेश तक विद्यमान थीं। इससे तीन प्रश्न उभरकर आते हैं: प्रथम यह है कि अग्नि, इन्द्र, ब्रह्मा और सूर्य की पुरानी पूजा-परम्पराएं क्यों लुप्त हो गईं? इन देवों की पूजा क्यों बंद कर दी गई? दूसरा प्रश्न यह है कि कृष्ण, राम, शिव और विष्णु की नई पूजा-प्रवृतियों में किन परिस्थितियों में वृद्धि हुई। तीसरा यह कि इन नए देवताओं कृष्ण, राम, शिव और विष्णु में तारतम्य क्या है?

पहले प्रश्न का कोई उत्तर नहीं मिलता। ब्राह्मण साहित्य कोई संकेत नहीं देता कि ब्राह्मणों ने अग्नि, इन्द्र, सूर्य और ब्रह्मा की उपासना क्यों बंद कर दी। इसका तो कुछ स्पष्टीकरण है भी कि ब्रह्मा की उपासना क्यों बंद हुई। इसका कारण ब्राह्मणों के साहित्य में ब्रह्मा के माथे पर लगाया गया कलंक है। लांछन है कि उन्होंने अपनी पुत्री के साथ बलात्कार किया, इसलिए उन्हें पूजा और भक्ति का पात्र नहीं रहने दिया गया। इस कलंक में कितनी भी सच्चाई रही हो परन्तु दो कारणों से ब्रह्मा का पूजा-निषेध पर्याप्त तर्क नहीं है। पहले तो यह क उस समय ऐसा आचरण कोई अनहोनी बात नहीं थी। दूसरा कारण यह है कि कृष्ण ने ब्रह्मा की अपेक्षा इससे भी बड़ी अनैतिकताएं कीं किन्तु उनकी उपासना होती है।

चलिए, ब्रह्मा की पूजा-निषेध का तो अनुमान लगाया जा सकता है, किन्तु अन्य देवों की उपासना बंद हो जाने का तो कोई कारण ही नहीं मिलता। अग्नि, इन्द्र, सूर्य और ब्रह्मा की पूजा अप्रचलित होना इस प्रकार एक रहस्य है। यहां इस रहस्य की

गुत्थी को सुलझाने का अवसर नहीं है। इतना कहना ही पर्याप्त है कि हिंदुओं के देवताओं को देवत्व छिन जाना एक अनहोनी बात है।

दूसरा प्रश्न भी रहस्य की बात है। नए देवों कृष्ण, विष्णु, शिव और राम की उपासना का महत्व ब्राह्मणों के साहित्य में ने केवल भरा पड़ा है अपितु उत्ताल तरंगें भर रहा है। परन्तु उनके साहित्य में नए देवों के उदय का कोई लेखा-जोखा नहीं मिलता। यह रहत्य ही है कि ये नए देवता कहां से आ धमके? उस समय रहस्य और गहरा जाता है जब हम पाते हैं कि इनमें से कुछ तो निश्चय ही वेदद्रोही हैं।

हम शिव की बात लेते हैं कि शिव मूल रूप से वेदद्रोही देवता थे, यह बिल्कुल स्पष्ट है। *भागवत पुराण* में दो प्रसंग हैं और *महाभारत* में भी, जो इस विषय पर प्रकाश डालते हैं। पहले प्रसंग से पता चलता है कि उनमें और उनके श्वसुर दक्ष में कैसी शत्रुता उपजी। ऐसा लगता है कि प्रजापतियों के यज्ञ में देवता और ऋषि एकत्र हुए। दक्ष के आने पर ब्रह्मा और शिव को छोड़कर सभी उपस्थित जन उनके अभिवादन में खड़े हो गए। दक्ष ब्रह्मा को प्रणाम करके उनके कहने पर बैठ गए, परन्तु वह शिव के व्यवहार पर क्षुब्ध थे। उन्होंने शिव[1] से कहा:

> ''शिव को पहले बैठा देखकर दक्ष सम्मान का लोभ संवरण न कर सके और उन पर इस प्रकार तिरछी नजर डाली जैसे उन्हें खा ही जाएंगे। फिर बोले ''हे ब्राह्मणों, ऋषियों, देवताओं सहित अग्नि, सुनो! मैं अनजाने में नहीं, न भावावेश ही में आकर यह बता रहा हूं कि एक गुणी व्यक्ति के क्या लक्षण हैं। परंतु यह निर्लज्ज शिव विश्वनियंता की अवमानना करता है। यह कितना हठधर्मी है। इसने शिष्टाचार का उल्लंघन किया है। इसने गुणवान व्यक्तियों की भांति मेरे शिष्य की स्थिति प्राप्त कर ली। ब्राह्मणों और अग्न की साक्षी में इसने मेरी सावित्री जैसी पुत्री का पाणिग्रहण किया। इस बन्दर जैसी आंखों वाले ने मेरी मृगनयनी पुत्री को प्राप्त किया। उसने मेरे अभिवादन में एक शब्द भी नहीं बोला जबकि इसे अभिवादन के लिए उठना चाहिए था। मैंने अनमने होकर ही सही, अपनी पुत्री इस क्षुद्र और दंभी को सौंप दी जिसने कुसंस्कारों की सारी सीमाएं तोड़ रखी हैं। जैसे 'यह शूद्रों को वेद मंत्र सुनाता है। यह श्मशानों में घूमता है। भूत-पिशाचों के बीच रहता है। पागलों जैसा नंगा, बाल बिखेरे, हंसता-रोता फिरता है, श्मशान की राख शरीर पर मलता है, नरमुण्ड पहनता है। मानव की हड्डियों के आभूषण पहनता है। बनता शिव (शुभ) है परन्तु सच में अशिव (अशुभ) है, पागल ही इसके संगी-साथी हैं, भूत इसके मित्र हैं, जो अंधकार-प्रिय हैं। काश! मैंने अपनी गुणवंती पुत्री ब्रह्मा के कहने में आकर ऐसे क्रोधोन्मत्तों के दुष्टात्मा स्वामी को, जिनकी शुद्धता नष्ट हो चुकी है, न दी होती। शिव को ऐसे दुर्वचन

1. भागवत पुराण, अध्याय 4, पृ. 379-80

बोल कर, जिसका उन्होंने कोई प्रतिवाद नहीं किया, दक्ष ने उन्हें चिढ़ाया और जल हाथ में लेकर उन्हें शाप देना आरम्भ किया: ''यह शिव सभी देवी-देवताओं में निकृष्ट हो। इसे देवताओं की पूजा के समय इन्द्र, उपेन्द्र (विष्णु) और अन्य देवों के समान स्थान प्राप्त न हो''। अपना श्राप देकर दक्ष चले गए।

श्वसुर-दामाद के बीच वैमनस्य जारी रहा। ब्रह्मा ने दक्ष को प्रजापतयों के प्रमुख का पद प्रदान किया तो उन्होंने बृहस्पतिस्व यज्ञ करने की ठानी। जब पार्वती ने देखा कि सभी देव सपत्नीक यज्ञ में जा रहे हैं जो पार्वती ने शिव से उनके साथ चलने की जिद की। उनके पिता ने शिव का जो अपमान किया था, उन्होंने पार्वती को उसकी याद दिलायी और यज्ञ में जाने से मना किया। परन्तु वह अपने संबंधियों से मिलने को आतुर थीं। उसने सब बातों की अवहेलना कर दी और चली गयी। जब उन्होंने अपने पिता दक्ष को देखा तो अपने पति को अपमानित करने पर पिता की भर्त्सना की और यह ध मकी दी कि उन्हें अपने माता-पता से जो देह प्राप्त हुई है, उसे वे अग्नि को समर्पित कर देगी। फिर वे अग्नि में कूद पड़ीं। शिव के जो गण पार्वती के साथ गए थे, जब उन्होंने यह देखा तो वे दक्ष का वध करने का लपके। परन्तु भृगु ने यजुस का मंत्रोपचार कर दक्षिणाग्नि की आहुति दी, जो यज्ञ में बाधा डालने वालों को नष्ट करने के लिए दी जाती है। परिणामस्वरूप ऋभु नाम के हजारों तेजस्वी देवता प्रकट हो गए। उन्होंने अपनी तपस्या के प्रताप से चन्द्रलोक प्राप्त किया था। उन ब्रह्मतेज सम्पन्न देवताओं ने जलती हुई लकड़ियों से आक्रमण किया तो समस्त यज्ञ विघ्नकर्त्ता भाग लिए। ऋभुओं ने उनके पार्षदों को भगा दिया। जब शिव ने देवी सती के प्राण त्याग की बात सुनी तब उन्हें बड़ा ही क्रोध हुआ। उन्होंने अपने सिर की जटाओं में से क्रोधित होकर केशों का एक गुच्छा उखाड़ा जिसमें से एक विकराल राक्षस प्रकट हुआ, जस दक्ष और उसके यज्ञ को खत्म करने का आदेश दिया। यह राक्षस शिव के अनुयायी विकराल भूत-प्रेत और पिशाचगणों को लेकर उनकी (शिव की) आज्ञा को शिरोधार्य करके यज्ञ-मंडप की ओर दौड़ा। उन्होंने यज्ञ-मंडप में क्या कुहराम मचाया और शिव-आदेश का किस प्रकार अनुपालन किया, इसका *भागवत पुराण* में[1] उल्लेख मिलता है[1]:

''कुछ ने यज्ञशाला के पवित्र यज्ञ-पात्रों को तोड़ डाला, कुछ ने हवनकुंड की अग्नि बुझा दी, कुछ ने यज्ञकुंडों को मूत्र से दूषित कर दिया, किसी ने यजमान गृह ही सीमाओं को रौंद डाला, कुछ ने मुनियों को तंग किया, किसी ने ऋषि पत्नियों को डराया-धमकाया। किसी ने भयभीत देवताओं को धर दबोचा जो निकट ही विराजमान थे, कुछ भाग खड़े हुए....। भवदेव (शिव) ने भृगु की दाढ़ी नौंच ली जो हाथ में यज्ञ की करछुल लिए हवन कर रहे थे और जिन्होंने प्रजापतियों की सभा में

1. म्यूर द्वारा उद्धृत, खंड 4, पृ. 383-84

उनका (महादेव) उपहास किया था। क्रोध के वशीभूत उन्होंने भृगु देवता को पृथ्वी पर पटक दिया जिसके कारण उसकी आंखें बाहर निकल आईं क्योंकि जब दक्ष देव सभा में शिव को शाप दे रहे थे, तब उन्होंने (भृगु) ने दक्ष को आंखों के इशारे से उकसाया था। इसके पश्चात् उन्होंने पूषा के दांत तोड़ डाले ठीक उसी प्रकार जैसे बलि ने कलिंग राज के किए थे क्योंकि जब दक्ष महादेव जी को अपमानित करते हुए गालियां बक रहे थे तो पूषा दांत निपोड कर हंस रहा था। फिर वे दक्ष की छाती पर बैठकर एक तेज तलवार से उसका सिर काटने लगे। परन्तु बहुत प्रयास करने पर भी वे उस समय उसे धड़ से अलग न कर सके। जब किसी भी प्रकार के अस्त्र-शस्त्र से दक्ष की त्वचा नहीं कटी तो त्र्यम्यक (वीरभद्र अथवा शिव) को बड़ा आश्चर्य हुआ और वे बहुत देर तक विचार करते रहे। फिर उन्होंने यज्ञ-मंडप में यज्ञ पशुओं को जिस प्रकार मारा जाता था, उसी प्रकार दक्ष रूप उस यजमान पशु का सिर धड़ से अलग कर दिया। देवताओं ने सारी घटना स्वयंभू को बतायी जो वहां विष्णु के साथ उपस्थित नहीं थे। (स्कंध 6)। ब्रह्मा ने देवताओं से परामर्श किया कि शिव को शांत किया जाए जिन्हें गलत ढंग से यज्ञ के हव्य से वंचित कर दिया गया था। तदनंतर ब्रह्मा के नेतृत्व में देवता कैलाश की ओर चले। ब्रह्मा जी ने शिव से कहा कि मैं जानता हूं आप सम्पूर्ण जगत के स्वामी हैं क्योंकि विश्व योनि शक्ति और उसके बीज से परे जो एक रस ब्रह्म है, वह आप ही हैं। ब्रह्मा ने कहा कि आप ही सम्पूर्ण यज्ञ को पूर्ण कराने वाले हैं। यज्ञ में हिस्सा पाने का आपको पूरा अधिाकार है। फिर भी इस दक्ष यज्ञ में बुद्धिहीन याचकों ने आपको यज्ञ में भाग नहीं लेने दिया, इसी से यह आपके द्वारा ध्वस्त हुआ। अब आप इस यज्ञ का पुनरुद्धार करने की कृपा करें। हे यज्ञ विध्वंसक! आज यह यज्ञ आपके द्वारा पूर्ण हो। इसके बाद (अध्याय 7) के अनुसार महादेव संतुष्ट हो गए''।

दक्ष का यज्ञ भंग करने की घटना से बढ़कर और कोई प्रयास नहीं हो सकता कि शिव वैदिक देवों के द्रोही थे।

अब हम कृष्ण पर आते हैं।

कृष्ण नाम के चार व्यक्ति हुए हैं। एक कृष्ण सत्यवती के पुत्र और धृतराष्ट्र, पाण्डु तथा विदुर के पिता हैं, दूसरे कृष्ण सुभद्रा के भाई और अर्जुन के मित्र हैं, तीसरे कृष्ण मथुरा के वासुदेव और देवकी के पुत्र हैं, चौथे कृष्ण गोकुल के नंद और यशोदा के पुत्र हैं जिन्होंने शिशुपाल वध किया। यदि कृष्ण गोकुल के नंद और यशोदा के पुत्र हैं, जिन्होंने शिशुपाल वध किया, यदि कृष्ण भक्तों के कृष्ण वही हैं जो देवकी के पुत्र हैं तो इसमें कोई संदेह नहीं कि वे वेद द्रोही थे। *छादोग्य उपनिषद्* में आया है कि ऐसा लगता है कि वे घोर आंगिरस कुल से थे। घोर आंगिरसों ने

उन्हें क्या शिक्षा दी? छांदोग्य *उपनिषद* कहता है:

"आंगिरस के कुल से घोरों ने देवकी पुत्र कृष्ण से कहा (रहस्यमय दंतकथा) कि वे इच्छा रहित हैं जैसे मृत्यु के समय मनुष्य को तीन बातें कहीं जाती हैं। तुम अविनाशी हो, तुम अक्षय हो, और तुम जीव के सूक्ष्म तत्व हो।

घोर जाति के आंगिरस कुल के एक व्यक्ति ने देवकी पुत्र कृष्ण को यज्ञ की यह पद्धति बताई और उसके अनुगामियों ने तब कहा, आदि। इस क्रम में अंतिम शब्द कहा 'उन' इन तीनों के पश्चात् हैं... और इस सिद्धांत को सुनकर वह प्रत्येक ज्ञान सभी इच्छाओं के प्रति वीतरागी हो गए। पुरुष यज्ञ के इस ज्ञान की उन्होंने इस प्रकार प्रशंसा की। यह इतना विलक्षण है कि उसने देवकी पुत्र कृष्ण की अन्य ज्ञान के प्रति सभी तृष्णाओं को शांत कर दिया। अब वह यह बताते हैं जो घोर अंगिरस ने कृष्ण को गुरुमंत्र देते हुए कहा था, वह इस प्रकार है– "जो अपने मृत्यु काल में उपरोक्त यज्ञ से भिज्ञ होता है वह इन तीन शब्दों को कह "प्रणसमसितम्" जिसका अर्थ है, तू ही अति सूक्ष्म है, तू ही अति गूढ़ प्राण तेज है।"

यह स्पष्ट है कि घोर आंगिरस ने कृष्ण को आध्यात्मिक मुक्ति का जो उपदेश दिया, वह वेदों और वैदिक उपासना के प्रतिकूल थी। इसके विपरीत विष्णु वैदिक देव हैं फिर भी उनकी उपासना शिव उपासना के काफी समय बाद आरंभ हुई। यह समझना अत्यंत कठिन है कि विष्णु की इतनी उपेक्षा क्यों हुई?

इसी प्रकार राम यद्यपि वेदद्रोही नहीं है तथापि वेदों में उनका उल्लेख नहीं है। उनकी उपासना की क्या आवश्यकता थी? वह भी इतने दिनों बाद?

एक पूर्व अध्याय में ब्रह्मा, विष्णु और शिव के उत्थान–पतन का प्रसंग पहले ही आ चुका है। पद और सत्ता का संघर्ष इन तीनों देवताओं तक सीमित था। उन्हें किसी तीसरे देवता से नीचे की कोटि में नहीं रखा गया। परंतु एक समय आया जब इन्हें श्री नामक एक देवी के नीचे माना जाने लगा। यह कैसे हुआ? यह *देवी भागवत* में वर्णित है। *देवी भागवत*[1] का कथन है कि श्री नामक देवी से संपूर्ण जगत की उत्पत्ति हुई और यही देवी है जिसने ब्रह्मा, विष्णु और शिव को उत्पन्न किया। *देवी भागवत* का मत है कि देवी की इच्छा अपनी हथेलियां रगड़ने की हुई। हथेलियां रगड़ने से एक चमक निकली। उस चमक से ब्रह्मा पैदा हुए। जब ब्रह्मा पैदा हो गए तो देवी ने उससे विवाह करने को कहा। ब्रह्मा ने यह कहकर इंकार कर दिया कि वह तो उनकी मां हैं। देवी कुपित हो उठी और उसने अपने कोप से ब्रह्मा को भस्म कर दिया। देवी ने दूसरी बार अपनी हथेलियां रगड़ी, फिर चमक पैदा हुई और दूसरा पुत्र उत्पन्न हुआ। वह था विष्णु।

---

1. सत्यार्थ प्रकाश में संक्षिप्तीकरण।

देवी ने विष्णु से भी अपने साथ विवाह करने को कहा। विष्णु ने यह कहकर अनिच्छा प्रकट की कि वह उनकी मां है। देवी को क्रोध आया और विष्णु को भी जलाकर राख कर दिया। देवी ने तीसरी बार हथेलियां रगड़ीं और तीसरी चमक में तीसरा पुत्र उत्पन्न हुआ। वह थे शिव। देवी ने शिव से विवाह करने के लिए कहा। शिव ने कहा "मैं तुम्हें दूसरा शरीर धारण कराता हूं।" देवी तैयार हो गई। तभी शिव की दृष्टि राख के दो ढेरों पर पड़ी। देवी ने कहा ये तुम्हारे दो भाई हैं जिन्हें मैंने जलाकर राख कर दिया क्योंकि उन्होंने मुझसे विवाह करने से इंकार कर दिया था। इस पर शिव ने कहा, "मैं अकेला कैसे विवाह कर सकता हूं? आप दो स्त्रियां और उत्पन्न करें जिससे हम तीनों का विवाह हो सके"। देवी ने वैसा ही किया जैसा शिव ने कहा था और तीनों देवों ने देवी, और उसके द्वारा उत्पन्न दो देवियों से विवाह कर लिया। इस कथा के दो बिन्दु हैं। एक यह कि शिव ने यद्यपि पापकर्म किया तब भी इस भय से वे अधिक पाप नहीं कर पाए कि कहीं अपने दोनों प्रतिद्वंद्वियों की अपेक्षा उनकी प्रतिष्ठा गिर न जाए। और भी अधिक महत्वपूर्ण बात यह है कि ब्रह्मा, विष्णु, महेश का स्थान नीचे आ गया क्योंकि वे देवी द्वारा उत्पन्न हुए।

ब्रह्मा, विष्णु और शिव के उत्थान-पतन के विश्लेषण के पश्चात् दो नए देवों कृष्ण और राम के संबंध में उलट-फेर पर विचार करना शेष है।

ब्रह्मा, विष्णु और महेश की अपेक्षा कृष्ण की उपासना में कुछ कृत्रिमताएं हैं। ब्रह्मा, विष्णु और महेश जन्मजात भगवान थे। कृष्ण एक ऐसे व्यक्ति थे जिन्हें भगवान मान लिया गया। उन्हें कदाचित इस कारण देवत्व प्राप्त हुआ कि उन्हें विष्णु का अंशावतार माना जाता है।[1] परन्तु इसके बावजूद उन्हें उनके दुराचार के कारण, जो उन्होंने गोपियों के साथ किया, अपूर्ण अवतार माना जाता है। यदि वह विष्णु के पूर्ण और विशुद्ध अवतार होते तो उनके वह कर्म अक्षम्य होते।

इसके बावजूद सामान्य पुरुष कृष्ण सर्वोपरि बन गए। श्रीकृष्ण कितने महान बन गए, वह *भगवतगीता* के अध्याय दस और चौदह से परिलक्षित है। इन अध्यायों में कृष्ण कहते हैं:

"हे कुरुश्रेष्ठ, अब (मैं) तेरे लिए अपनी दिव्य विभूतियों को प्रधानता से कहूंगा क्योंकि मेरे विस्तार का अंत नहीं है। हे गुडाकेश (अर्जुन), मैं सब भूतों के हृदय में स्थित सबकी आत्मा हूं तथा (सम्पूर्ण) भूतों का आदि, मध्य और अंत भी मैं ही हूं। मैं अदिति के बारह पुत्रों में विष्णु अर्थात् वामन अवतार (और) ज्योतियों में किरणों वाला सूर्य हूं तथा मैं (उनचास) वायु देवताओं में मरीचि नामक वायु देवता, (और)

1. देखें म्यूर, खंड 4, पृ. 49

नक्षत्रों में नक्षत्र का अधिपति चन्द्रमा हूं। वेदों में *सामवेद* हूं, देवों में इन्द्र हूं और इन्द्रियों में मन हूं। भूतप्राणियों में चेतना अर्थात् ज्ञान–शक्ति हूं।

एकादश रुद्रों में शंकर हूं और यक्ष तथा राक्षसों में धन का स्वामी कुबेर हूं और मैं आठ वसुओं में अग्नि हूं (तथा) शिखर वाले पर्वतों में सुमेरु पर्वत हूं। पुरोहितों में मुख्य अर्थात् बृहस्पति हूं। तू मुझ को जान। हे पार्थ! सेनापतियों में मैं स्वामी, कार्त्तिकेय और जलाशयों में समुद्र हूं। मैं महर्षियों में भृगु (और) वचनों में एक अक्षर अर्थात् ओंकार हूं। तथा सब प्रकार के यज्ञों में जपयज्ञ और स्थिर रहने वालों में हिमालय पर्वत हूं। सब वृक्षों में पीपल का वृक्ष और देवऋषियों में नारद मुनि (तथा) गंधर्वों में चित्ररथ (और) सिद्धों में कपिल मुनि हूं। घोड़ों में अमृत से उत्पन्न उच्चैश्रवा नामक घोड़ा, हाथियों में ऐरावत नामक हाथी तथा मनुष्यों में राजा मुझे ही जान। मैं शस्त्रों में वज्र और गऊओं में कामधेनु हूं और (शास्त्रोक्त रीति से) संतान की उत्पति हेतु कामदेव हूं। सर्पों में सर्पराज वासुकि हूं। मैं नागों में शेषनाग और जलचरों में उनका अधिपति जल देवता हूं और पितरों में अर्चना नामक पित्रेश्वर (तथा) शासन करने वालों में यमराज मैं हूं। मैं दैत्यों में प्रहलाद और गणनाकारों में मृत्यु का स्वामी (काल, समय) हूं तथा पशुओं में मृगराज सिंह और पक्षियों में गरुड़ हूं।

''मैं पवित्र करने वालों में वायु (और) शस्त्रधारियों में राम हूं तथा मछलियों में मगरमच्छ हूं, नदियों में भागीरथी गंगा हूं। हे अर्जुन! सृष्टियों में आदि, अंत और मध्य भी मैं ही हूं तथ मैं विद्याओं में आध्यात्मिक विद्या अर्थात् ब्रह्म विद्या (एवं) परस्पर में विनोद करने वालों में तत्व निर्णय के लिए किया जाने वाला वाद हूं। मैं अक्षरों में आकार, समासों में द्वंद्व हूं, (तथा) अक्षय काल अर्थात् काल का भी महाकाल और विराट स्वरूप, सबका धारण करने वाला (भी) मैं ही हूं। तथा मैं गेय श्रुतियों में बृहत्साम, छंदों में गायत्री छंद, महीनों में मार्गशीर्ष का महीना और ऋतुओं में वसंत ऋतु मैं ही हूं। मैं छल करने वालों में जुआ और प्रभावशाली पुरुषों का प्रभाव हूं, (तथा) मैं जीतने वालों की विजय हूं और निश्चय करने वालों का निश्चय, सात्विक पुरुषों का सात्विक भाव हूं। वृष्णि वंशियों में वासुदेव अर्थात् मैं स्वयं तुम्हारा सखा और पाण्डवों में धनंजय एवं मुनियों में वेद व्यास, कवियों में शुक्राचार्य कवि भी मैं ही हूं। मैं दमन करने वालों का दण्ड अर्थात् दमन करने की शक्ति हूं। जीतने की इच्छा करने वालों की नीति हूं। (और) गोपनीय भावों में मौन हूं और ज्ञान वालों का तत्वज्ञान मैं ही हूं और हे अर्जुन! जो सब भूतों की उत्पत्ति का कारण है, वह भी मैं ही हूं क्योंकि ऐसा चर और अचर कोई भी भूत नहीं है जो मुझ से रहित हो।

''जो तेज सूर्य में स्थित हो सम्पूर्ण जगत को प्रकाशित करता है तथा जो (तेज) चन्द्रमा में स्थित है और जो तेज अग्नि में स्थित है, उसको तू मेरा ही तेज जान। मैं ही पृथ्वी में प्रवेश करके अपनी शक्ति से सब भूतों को धारण करता हूं और

रसस्वरूप अमृतमय चन्द्रमा होकर सम्पूर्ण औषधियों को पुष्ट करता हूं। मैं ही सब प्राणियों के शरीर में स्थित हुआ, वैश्वानर अग्नि रूप होकर प्राण और अपान में युक्त हुआ चार प्रकार के अन्न को पचाता हूं और मैं ही सब प्राणियों के हृदय में अन्तर्यामी रूप से स्थित हूं। मेरे से ही स्मृति–ज्ञान प्रकट होता है और सब वेदों द्वारा मैं ही जानने योग्य हूं। वेदांत का कर्ता और वेदों का ज्ञाता भी मैं ही हूं, संसार में नाशवान और अविनाशी दो प्रकार के पुरुष हैं उनमें सम्पूर्ण भूत–प्राणियों के शरीर तो नाशवान हैं और जीवात्मा अविनाशी कही जाती है, उत्तम पुरुष तो अन्य ही हैं जो तीनों लोकों में प्रवेश करके सबका भरण–पोषण करता है एवं अविनाशी परमात्मा कहलाता है क्योंकि मैं नाशवान का प्रणेता हूं। सर्वथा अतीत हूं और (माया में स्थित) अविनाशी जीवात्मा से भी उत्तम हूं, इसलिए लोक में और वेद में भी पुरुषोत्तम नाम से प्रसिद्ध हूं।''

इस प्रकार यह स्पष्ट है कि जहाँ तक *गीता* का संबंध है, कृष्ण से महानतम कोई नहीं है। वह अन्य सभी देवों से उत्तम है।

अब हम *महाभारत* पर आते हैं। हम क्या देखते हैं? हमें कृष्ण की स्थिति बदली हुई नजर आती है। वहां उनकी स्थिति में उत्थान–पतन की कथा है। पहले कृष्ण का स्थान शिव के ऊपर है। यही नहीं। शिव से निम्न भी पाते हैं और उन्हें शिव की श्रेष्ठता स्वीकार करनी होती है। कृष्ण की श्रेष्ठता प्रमाणित करने के संबंध में एक प्रमाण यह भी है वह है अनुशासन पर्व[1] में यह उल्लेख–

''भगवान श्रीकृष्ण ब्रह्मा जी से भी श्रेष्ठ हैं। वे सनातन पुरुष श्रीहरि कहलाते हैं। उनके शरीर की कांति जाम्बुनद नामक स्वर्ण के समान देदीप्यमान है। बिना बादल के आकाश में उदित सूर्य के समान तेजस्वी हैं। उनकी भुजाएं दस हैं, उनका तेज महान है। वे देवताओं के शत्रु दैत्यों का नाश करने वाले हैं। उनके वक्षःस्थल में श्रीवत्सका चिन्ह शोभा पाता है। वे हृषीक अर्थात् इन्द्रियों के स्वामी होने के कारण हृषीकेश कहलाते हैं। सम्पूर्ण देवता उनकी पूजा करते हैं। ब्रह्माजी उनके उदर से और मैं उनके मस्तक से प्रकट हुआ हूं। उनके सिर के बालों से नक्षत्रों और ताराओं का प्रदुर्भाव हुआ है। देवता और असुर उनके शरीर की रोमावलियों से प्रकट हुए हैं। समस्त ऋषि और सनातन लोक उनके श्रीविग्रह से उत्पन्न हुए हैं। वे श्री हरि स्वयं ही सम्पूर्ण देवताओं और ब्रह्मा जी के भी धाम हैं। सम्पूर्ण पृथ्वी के स्रष्टा और तीनों लोकों के स्वामी भी वे ही हैं। वे ही समस्त चराचर प्राणियों का संहार करते हैं। वे देवताओं में श्रेष्ठ, देवताओं के रक्षक, शत्रुओं का संताप देने वाले, सर्वज्ञ, सबमें ओतप्रोत, सर्वव्यापक और सब ओर मुखों वाले हैं। वे ही परमात्मा, इन्द्रियों के प्रेरक और सर्वव्यापी महेश्वर हैं। तीनों लोकों में उनसे

1. म्यूर, खंड 4, पृ. 273–74

बढ़कर दूसरा कोई नहीं है। वे ही सनातन, मधुसूदन और गोविन्द आदि नामों से प्रसिद्ध हैं। सज्जनों के आदर देने वाले, वे भगवान श्रीकृष्ण महाभारत युद्ध में सम्पूर्ण राजाओं का संहार करायेंगे। वे देवताओं का कार्य सिद्ध करने के लिए पृथ्वी पर मानव–शरीर धारण करके प्रकट हुए हैं। उनकी शक्ति और सहायता के बिना सम्पूर्ण देवता भी कोई कार्य नहीं कर सकते। संसार में नेता के बिना देवता कोई भी कार्य करने में असमर्थ हैं। और यह भगवान श्रीकृष्ण सब प्राणियों के नेता हैं, इसलिए समस्त देवता उनके चरणों में मस्तक झुकाते हैं।

देवताओं की रक्षा और उनके कार्य–साधन में संलग्न रहने वाले वे भगवान वासुदेव ब्रह्मस्वरूप हैं। वह ही ब्रह्मऋषियों को सदा शरण देते हैं। ब्रह्मा जी और मैं दोनों ही उनके शरीर के भीतर उनके गर्भ में बड़े सुख के साथ रहते हैं। उनके श्रीविग्रह में सम्पूर्ण देवता भी सुखपूर्वक निवास करते हैं। उनकी आँखें कमल के समान सुंदर हैं। उनके गर्भ (वक्षःस्थल) में लक्ष्मी का वास है। वे सदा लक्ष्मी के साथ निवास करते हैं। देवताओं के कल्याण हेतु गोविंद मनु के वंश के होने चाहिए। उनमें श्रेष्ठ बुद्धिमत्ता है और प्रजापति के उत्कृष्ट मार्ग पर अग्रसर हैं। जिनमें धर्मपरायणता के सभी लक्षण विद्यमान हैं। यह दक्ष ब्राह्मणों के प्रति श्रद्धालु हैं, इसमें विख्यात वीर हुए हैं जिनमें सदाचार के श्रेष्ठ गुण विद्यमान हैं जो धर्मप्राण विशुद्ध क्षत्रियों के वीरोचित गुण हैं। ये अनकदुंदुभी के वंशज हैं जिन्हें अपनी जाति को वासुदेव के रूप में पोषित किया। वासुदेव के यहां चतुर्भुज का जन्म होना चाहिए, वासुदेव उदारचेता ब्राह्मण सेवी हैं। ब्रह्मा के समक्ष उनकी छवि ब्राह्मण प्रिय की है।''

''हे देवताओं इस देव की यथेष्ठ पूजा करो जैसी कि अविनाशी ब्रह्मा की की जाती है। उन्हें श्रद्धा के पुष्पहार चढ़ाओ। जो मुझे पिता ब्रह्मा के रूप में पाना चाहते हैं। वे इस दैवी गौरवान्वित वासुदेव को नमन करें। इस विषय में मैं निसंकोच कहता हूं इनके दर्शन मेरे दर्शन हैं अर्थात् पिता ब्रह्मा के दर्शन तप ही इनका धन है।''

अब हमें यह देखना है कि कृष्ण को देवताओं में पहले सर्वश्रेष्ठ बाद में पतित कैसे घोषित कर दिया गया।

महाभारत में अनेक ऐसी घटनाओं का वर्णन है, जिनसे कृष्ण शिव की अपेक्षा हीन स्थान पर रखे गये हैं, उन सबका वर्णन तो करना कठिन है लेकिन कुछ को गिना जा सकता है।

पहली घटना तो यह है जब अर्जुन ने अगले दिन जयद्रथ का वध किया, उन्होंने शपथ ली थी तो अर्जुन बड़े कुण्ठित हो गए थे क्योंकि उनके मन में यह आशंका थी कि जयद्रथ के मित्र उसकी रक्षा करने में कोई कसर बाकी नहीं रखेंगे और जब तक अर्जुन को ऐसा अस्त्र उपलब्ध न हो जाए, जिससे जयद्रथ का वध किया जा

सके तो अर्जुन परामर्श के लिए कृष्ण के पास जाते हैं। कृष्ण अर्जुन को सलाह देते हैं कि वे महादेव से पाशुपत अस्त्र प्राप्त करें जिस अस्त्र से शिव ने स्वयं दैत्यों का संहार किया था। यदि वे इसे प्राप्त कर लेते हैं तो निश्चय ही जयद्रथ का वध किया जा सकता है।

महाभारत के द्रोण पर्व में इसका उल्लेख इस प्रकार है:

उनके पास पहुँचकर धर्मपरायण भगवान कृष्ण और पृथा पुत्र अर्जुन ने पृथ्वी पर मस्तक टेक कर वेद मंत्र पढ़ते हुए उन्हें प्रणाम किया। विश्व नियंता, अनन्त, अविनाशी देव के रूप में उनकी अभ्यर्थना की जो परम ज्ञान के स्रोत हैं, आकाश, वायु, नक्षत्रों, सागर के सृष्टा हैं, पृथ्वी के परम श्रेष्ठ तत्व हैं, देवों, दानवों, यक्षों, मानवों के सृजक हैं, साधना के परम ब्रह्म, ज्ञानियों के लिए तत्व ज्ञान का भण्डार हैं। विश्व के निर्माता और संहारक हैं, सूर्य और इन्द्र के जनक हैं। तब कृष्ण ने उन्हें श्रद्धापूर्वक सम्बोधित किया। ये दोनों योद्धा शिव की शरण में आए। अर्जुन ने बार-बार उनकी स्तुति की क्योंकि वे सभी जीवों के सृष्टा थे और त्रिकाल दर्शी थे। उन दोनों नर और नारायण को आया देख भगवान शिव बड़े प्रसन्न हुए और हंसते हुए बोले ''वीरवरो, तुम दोनों का स्वागत है! उठो, विश्राम करो और शीघ्र बताओ तुम्हारी क्या इच्छा है? तुम जिस काम के लिए आये हो, उसे मैं अवश्य पूर्ण करूंगा''।

भगवान शिव की यह बात सुनकर श्रीकृष्ण और अर्जुन दोनों हाथ जोड़ खड़े हो गये और उनकी स्तुति करने लगे ''भगवान' आप ही संसार के स्वामी, सबके सृष्टा, एवं सर्व व्यापाी हैं, आपको हम बारंबार नमस्कार करते हैं। आप भक्तों पर दया करने वाले हैं, प्रभो! हमारा मनोरथ सिद्ध कीजिये।'' तदनन्तर अर्जुन ने मन ही मन भगवान शिव और श्रीकृष्ण का स्मरण किया तथा शंकर जी से कहा ''भगवन! मैं दिव्य अस्त्र चाहता हूं।'' यह सुनकर भगवान शंकर मुसकराये और कहने लगे ''श्रेष्ठ पुरुषो। मैं तुम दोनों का स्वागत करता हूं। तुम्हारी अभिलाषा मालूम हुई, तुम जिसके लिये आये हो वह वस्तु अभी देता हूं। यहां से निकट ही एक अमृतमय दिव्य सरोवर है, उसी में मैंने अपने दिव्य धनुष और बाण रख दिये हैं, वहां जाकर बाण-सहित धनुष ले आओ।''

''बहुत अच्छा''! कहकर दोनों वीर शिवजी के पार्षदों के साथ उस सरोवर पर गये। वहाँ जाकर उन्होंने दो नाग देखे, एक सूर्यमंडल के समान प्रकाशमान था और दूसरा हजार मस्तकवाला था, उसके मुख से आग की लपटें निकल रही थीं। श्रीकृष्ण और अर्जुन दोनों उस सरोवर के जल का आचमन करके उन नागों के पास उपस्थित हुए और हाथ जोड़कर शिवजी को प्रणाम करते हुए, रुद्रीय पाठ करने लगे। तब भगवान शंकर के प्रभाव से वे दोनों महानाग अपना स्वरूप छोड़कर धनुष बाण हो गये। इससे वे दोनों बड़े प्रसन्न हुए और उस देदीप्यमान धनुष बाण को लेकर शंकरजी के पास आये। वहां आकर उन्होंने वे अस्त्र शंकर जी को अर्पण कर दिये।

तत्पश्चात् शंकरजी ने प्रसन्न होकर अपना पाशुपत नामक घोर अस्त्र अर्जुन को दे दिया। उसे पाकर अर्जुन के हर्ष की सीमा न रही, उनके शरीर में रोमांच हो आया। वे अपने को कृतकृत्य मानने लगे। फिर कृष्ण और अर्जुन दोनों ने भगवान शिव को प्रणाम किया और उनकी आज्ञा ले वे अपने शिविर में चले आये।''

महाभारत के ही अनुशासन पर्व में युधिष्ठर और भीष्म का संवाद आया है। युधिष्ठर भीष्म से महादेव के गुणों के विषय में जिज्ञासा करते हैं। भीष्म का उत्तर इस प्रकार था:

''मैं महादेव की लीलाओं और गुणों की व्याख्या करने में असमर्थ हूं, जो अनीश्वर हैं, वे अगोचर हैं, वह ही ब्रह्मा, विष्णु और इन्द्र के जनक हैं, जिनकी देवताओं में ब्रह्मा से लेकर पिशाच तक उपासना करते हैं, वे अमृत तत्व हैं और वही पुरुष हैं। ऋषि उनकी उपासना करते हैं और योगमंत्रों में स्तवन किया गया है। वे सत्य के सूक्ष्म तत्व हैं। वे अजर-अमर ब्रह्म हैं। वे विद्यमान भी हैं और अविद्यमान भी। उन्होंने शक्ति से आत्म-तत्व प्राप्त किया है और वे देवाधिदेव और प्रजापतियों के स्वामी हैं। मेरे जैसा मानव जो माता के गर्भ से उत्पन्न हुआ है और जो मृत्यु को प्राप्त होने योग्य है, वह 'भव' के गुणों का क्या बखान कर सकता है। उसका वर्णन तो मात्र नारायण कर सकते हैं। विष्णु मेधावी हैं, सर्वगुण सम्पन्न हैं, दुर्जेय हैं, दिव्य दृष्टि हैं, दिव्य शक्ति हैं, यद्यपि रुद्र के लिए उनकी भक्ति भगवान कृष्ण ने भी की है। बद्री में महादेव से कृष्ण ने सर्वस्व प्राप्त किया। माधव ने एक हजार वर्ष तक शिव की उपासना में तप किया परन्तु इहलोक में महेश की कृष्ण द्वारा आराधना की जाती है। ऐसे कृष्ण, जब प्रजावृद्धि चाहते हैं, तो वे देवाधिदेव आदि के नाम का जाप करते हैं।''

कृष्ण की उपस्थिति में युधिष्ठिर और भीष्म का यह संवाद चलता है। भीष्म उत्तर देने के उपरांत कृष्ण को महादेव की श्रेष्ठता बताते हैं और यह आश्चर्य है कि यह महानतम देवता कृष्ण बिना किसी हिचक और विरोध के यह सब मान लेता है और कहता है:

''वास्तव में, ईश (महादेव) के गुण-कर्मों को कौन जान सकता है। हिरण्यगर्भ में विराजमान देव, न इन्द्र के साथ महान ऋषि, न आदित्यगण, जो सूक्ष्मतम के ज्ञाता हैं यह नहीं जान पाए, तब भला शेष ऋषिगण और मनुष्य यह कैसे समझ पाएंगे। असुरों के हंता इस देवाधिदेव के गुणों का मैं बखान करूंगा, जो सब धार्मिक अनुष्ठानों के स्वामी हैं।''

यहां यह स्पष्ट है कि कृष्ण अपने को शिव से हीन समझते हैं। साथ ही शिव जानते हैं कि कृष्ण का महान देवता पद से पतन हो चुका है, बराबरी की तो दूर रही सौप्तिक - पर्व में महादेव अश्वत्थामा[1] को बताते हैं:

''मेरी कृष्ण ने विधिवत् पूजा की है, जो कार्यकुशल है, सत्यता के साथ, पवित्रता,

---

1. म्यूर द्वारा उद्धृत (पृ. सं. नहीं दी गई)।

ईमानदारी, उदारता, अत्यंत सरलता, अनुष्ठान, धैर्य, बुद्धि, आत्मसंयम, निष्ठा और विचारपूर्वक। आज से कृष्ण से अधिक और कोई मुझे प्रिय नहीं है।''

शिव ही क्या, हर देवता से श्रेष्ठतम कृष्ण, जो वास्तव में परमेश्वर थे, यहां शिव के मात्र अनुयायी बना दिए जाते हैं जो मामूली सा वरदान मांगते फिरते हैं।

कृष्ण के पतन की कथा यहीं समाप्त नहीं होती। उन्हें और भी अपमान सहन करने पड़ते हैं। कृष्ण शिव के मुकाबले अपना दर्जा नीचे स्वीकार कर लेते हैं। यहां तक कि वे उपमन्यु के अनुयायी बन जाते हैं जो कि महान् शिव-भक्त हैं। कृष्ण उससे शैवमत की दीक्षा ग्रहण करते हैं। कृष्ण स्वयं कहते हैं:

''शास्त्रानुसार'' आठवें दिन उस ब्राह्मण (उपमन्यु) ने मुझे दीक्षित किया। मैंने सिर का मुंडन कराया, घी से विलेपन किया, बाहों में कुश दूर्वा ग्रहण की, कटि तक अधोवस्त्र धारण किए। कृष्ण तब प्रायश्चित करते हैं और महादेव के दर्शन करते हैं।

क्या ईश्वर जैसी पदवीं प्राप्त देवता का इससे अधिक पद में पतन और कहीं दृष्टिगोचर होता है? कृष्ण जो परमेश्वर कहे जाते हैं, जिनकी शिव से तुलना की जाती है, वे एक मात्र परमेश्वर नहीं थे और बाद में तो वे ईश्वर रहे भी नहीं। वे शिव के भक्त बन गए और उपमन्यु जैसे साधारण ब्राह्मण से शैवधर्म की दीक्षा भी ली।

जहां तक राम का प्रश्न है, ये भी वैसे ही नामधारी कृत्रिम भगवान हैं जैसे कि श्रीकृष्ण। राम को तो आभास भी नहीं था कि वह परमेश्वर हैं। जब लंका में सीता रावण-विजय के बाद उनके पास आई और जब उनसे सीता के विषय में बात की गई तो राम को सीता की पवित्रा पर संदेह हुआ। वे बड़े दुखी हुए। *रामायण* में यह प्रसंग इस प्रकार है:

''इसी समय यक्षराज कुबेर, पितरों सहित यमराज देवताओं के स्वामी सहस्त्र नेत्रधारी इन्द्र, जल के अधिपति वरुण, त्रिनेत्रधारी तेजस्वी वृषभवाहन के स्वामी महादेव, संपूर्ण जगत के स्रष्टा ब्रह्मा, वेद के ज्ञाता, (स्वर्ग से राजा दशरथ) जो सभी सूर्यतुल्य देदीप्यमान् विमानों से लंकापुरी में पधारे राघव (राम) के समक्ष प्रकट हुए। भगवान श्रीराम उनके सामने हाथ जोड़े खड़े थे। वे श्रेष्ठ देवता आभूषणों से अलंकृत अपनी विशाल भुजाओं को उठाकर उनसे बोले, ''राम, आप सम्पूर्ण विश्व के सृष्टा, ज्ञानियों में श्रेष्ठ और सर्वव्यापक हैं। फिर इस समय अग्नि में प्रविष्ट सीता की उपेक्षा कैसे कर रहे हैं। आप समस्त देवताओं में श्रेष्ठ विष्णु ही हैं, इस बात को कैसे नहीं समझ रहे हैं। पूर्वकाल में वसुओं के प्रजापति जो ऋतधाम नामक वसु थे।, वे आप ही हैं। आप तीनों लोकों के आदिकर्ता, स्वयं प्रभु हैं। रुद्रों में आठवें रुद्र और साध्यों में पांचवें साध्य भी आप ही हैं। आश्विन आपके कान हैं, और सूर्य तथा चन्द्रमा नेत्रहैं।''

''शत्रुओं को संताप देने वाले देव, सृष्टि के आदि, अन्त और मध्य में आप ही दिखाई

देते हैं। फिर आप सीता की एक साधारण मनुष्य की भांति उपेक्षा कर रहेहैं।''

उन लोकपालों के ऐसा कहने पर धर्मात्माओं में श्रेष्ठ राम ने आश्चर्यचकित हो उन श्रेष्ठ देवताओं से कहा:

''देवगण! मैं तो अपने को मनुष्य, दशरथपुत्र राम ही समझता हूं। देवगण बताएं, मैं कौन हूं और कहां से आया हूं।''

ऐसा कहने पर ब्रह्मा जी ने राम को कहा:

''सत्यपराक्रमी, आप मेरे सत्य वचन सुनें। आप दिव्य शक्तियों से अभिभूत हैं। आप चक्र धारण करने वाले सर्वसमर्थ नारायण देव हैं, एक दाढ़ वाले पृथ्वी-धारी वाराह हैं तथा देवताओं के भूत एवं भावी शत्रुओं को जीतने वाले हैं। आप अविनाशी परब्रह्म हैं। सृष्टि के आदि, मध्य और अंत में सत्य से विद्यमान हैं। आप ही लोकों के परम धर्म हैं। आप ही विश्वकसेन (विष्णु), चतुर्भुज, आप ही धनुर्धारी हैं। आप ही सारंग, हृषीकेश, अन्तर्यामी, आदि पुरुष और पुरुषोत्तम हैं। आप किसी से पराजित नहीं होते। आप अपराजेय खड्गधारी विष्णु एवं महाबली कृष्ण हैं। आप ही देव सेनापति तथा परम सत्य हैं। आप ही बुद्धि, सत्व, क्षमा, इन्द्रियनिग्रह तथा सृष्टि एवं प्रलय के कारण हैं। आप ही उपेन्द्र (वामन) और मधुसूदन हैं। इन्द्र को भी उत्पन्न करने वाले महेन्द्र और युद्ध का अन्त करने वाले शांतस्वरूप पद्मनाभ भी आप ही हैं। दिव्य महर्षिगण आपको शरणदाता तथा शरणागत वत्सल बताते हैं। आप ही सहस्त्रों शाखारूप सींग तथा सैकड़ों विधिवाक्य रूप मस्तकों से युक्त वेदरूप महावृषभ हैं। आप ही तीनों लोकों के आदिकर्ता और स्वयंप्रभु (परम स्वतंत्र) हैं। आप सिद्ध और साध्यों के आश्रय तथा पूर्वज हैं यज्ञ, षट्कार और ओंकार भी आप ही हैं। आप श्रेष्ठ से भी श्रेष्ठ परमात्मा हैं। आपके आविर्भाव और तिरोभाव को कोई नहीं जानता। आप कौन हैं, इसका भी किसी को पता नहीं है। समस्त प्राणियों, गौओं तथा ब्राह्मणों में भी आप ही दिखाई देते हैं। समस्त दिशाओं में, आकाश में, पर्वतों में और नदियों में भी आपकी ही सत्ता है। आपके सहस्त्रों चरण, सैकड़ों मस्तक और सहस्त्रों नेत्र हैं। आप ही सम्पूर्ण प्राणियों को, पृथ्वी का अंत हो जाने पर आप ही जल के ऊपर महान सर्प शेषनाग के रूप में दिखाई देते हैं। श्रीराम, आप ही तीनों लोकों को तथा देवता, गन्धर्व और दानवों को धारण करने वाले विराट पुरुष नारायण हैं। सबके हृदय में रमण करने वाले परमात्मा हैं। मैं ब्रह्म आपका हृदय हूं और देवी सरस्वती आपकी जिह्वा है। प्रभो! मुझ ब्रह्म ने जिनकी सृष्टि की है, वे सब देवता आपके विराट शरीर में रोम हैं। आपके नेत्रों का बंद होना रात्रि, खुलना ही दिन है। वेद आपके संस्कार हैं। आपके बिना इस जगत का अस्तित्व नहीं है। सम्पूर्ण विश्व आपका शरीर है। पृथ्वी आपकी स्थिरता है। अग्नि आपका कोप है और चन्द्रमा प्रसन्नता है। वक्षःस्थल में श्रीवत्स चिन्ह धारण करने वाले भगवान विष्णु आप ही हैं। पूर्वकाल में (वामनावतार के समय) आपने ही अपने तीन पगों में तीनों लोक नाप लिये थे। आपने अत्यंत दारुण दैत्यराज बलि को बांधकर इन्द्र को तीनों लोकों का

राजा बनाया था। सीता साक्षात लक्ष्मी है और आप भगवान विष्णु हैं। आप ही सच्चिदानंद भगवान श्रीकृष्ण एवं प्रजापति हैं। मनुष्य आपको ही सृष्टि का पालक, सृष्टा, और संहार का परम स्रोत मानते हैं।

यह स्पष्ट है कि राम को जान-बूझकर कृत्रिमतापूर्वक भगवान बता दिया गया, जैसे कृष्ण एक मानव से भगवान बना दिए गए। ब्रह्मा, विष्णु और महेश की तरह वे जन्मजात भगवान नहीं थे। उन्हें ब्राह्मणों के नायक परशुराम से भी हीन सिद्ध किया गया। *रामायण* में यह कथा इस प्रकार आती है:

''जब राजा दशरथ मिथिलापति जनक, जिनकी पुत्री से अभी राम का विवाह हुआ था, से विदा लेकर अपने राज्य को लौट रहे थे तो उनके समक्ष अनेक अपशकुन हुए। उनके चारों ओर भयंकर स्वर वाले पक्षी चीत्कार उठे और भूमि पर विचरने वाले मृग दाहिनी ओर चलने लगे। यह देखकर दशरथ ने वशिष्ठ से पूछा, ''पक्षी चीख रहे हैं और मृग दाहिनी ओर चल रहे हैं। यह शकुन शुभ भी है और अशुभ भी है। यह क्या बात है? इससे मेरा हृदय शंका से भर उठता है।'' तब वशिष्ठ बोले, ''यह परशुराम के आगमन की चेतावनी है जो तूफान की तरह आ रहे हैं, बड़े भयानक दिखाई दे रहे हैं, कंधे पर फरसा और धनुषबाण हैं।'' दशरथ ने उनका आदरपूर्वक अभिवादन किया, जिसे परशुराम ने स्वीकार कर लिया और दशरथ पुत्र राम की ओर बढ़े। कहा, राम् तुम्हारा बहुत पराक्रम सुना है। जनक द्वारा दिया गया शिव धनुष तुमने तोड़ दिया है। मैं दूसरा धनुष लेकर आया हूं। इसकी प्रत्यंचा खींचकर बाण चढ़ाओ। बाण चढ़ाने में तुम्हारे बल का अनुमान लगाकर ही मैं तुम्हारे साथ द्वन्द्व करूंगा।''

''राम ने उत्तर दिया कि यद्यपि उनके विरोधी ने उनकी युद्धप्रियता की निंदा की है तथापि वे उन्हें अपनी शक्ति का परिचय देंगे। तब उन्होंने क्रोध में परशुराम का धनुष छीन लिया और उस पर प्रत्यंचा चढ़ा दी और चुनौती देने वाले परशुराम से कहा कि मैं उन पर प्रहार नहीं करूंगा क्योंकि वे एक ब्राह्मण हैं। फिर उनके परिजन विश्वामित्र का भी ध्यान है। परंतु मैं उनकी मानवेतर शक्ति को क्षीण कर दूंगा, विचरण शक्ति समाप्त कर दूंगा अथवा उनकी तपस्या के बल को नष्ट कर दूंगा। इस अवसर पर देवतागण प्रकट हुए। परशुराम बुझ से गए और शक्तिहीन हो गए और दीन भाव से कहा कि उनके विचरण की शक्ति से उन्हें वंचित न करें नहीं तो वे कश्यप को दिया गया वह वचन पूरा नहीं कर पाएंगे कि वे प्रत्येक रात्रि को उनके पास पहुंचेंगे। उनकी यह सहजता नष्ट हो जायेगी।''

इस अपवाद के अतिरिक्त राम की किसी भी अन्य देवता से कोई शत्रुता नहीं थी। वह जहां भी रहे, सब प्रबंध करते रहे। अन्य देवों की कथाएं भिन्न हैं। ब्राह्मणों के हाथों वे गरीब प्राणी, मात्र खिलौने बनकर रह गए। ब्राह्मणों ने देवताओं के साथ इस प्रकार का घटिया व्यवहार क्यों किया?

बारहवीं पहेली

ब्राह्मणों ने देवताओं का मुकुट क्यों उतारा और देवियों की ताजपोशी की?

सामान्यतः देवताओं की उपासना सभी करते हैं, परन्तु देवियों की पूजा अनोखी होती है इसका कारण यह है कि देवता सामान्यतः अविवाहित होते हैं और कोई पत्नियां नहीं होतीं जिन्हें देवियों का स्थान दिया जा सके। देवता के विवाहित होने पर कैसा विवाद हो सकता है, यह इससे प्रकट होता है कि यहूदियों को ईसाई इस बात से सहमत नहीं कर सके कि ईसा परमात्मा के पुत्र हैं। यहूदियों ने कहा कि ईश्वर का विवाह ही नहीं हुआ तो ईसा ईश्वर पुत्र कैसे हो सकते हैं?

हिंदुओं में स्थिति ठीक विपरीत है। वे केवल देवताओं की उपासना ही नहीं करते बल्कि वे देवियों की पूजा भी करते हैं। यह परम्परा आरंभ से ही है।

ऋग्वेद में अनेक देवियों का उल्लेख है जैसे पृथ्वी, अदिति, दिति, निश्तिग्री, इन्द्राण ी, प्रिशनी, उषा, सूर्या, अग्नयी, वरुणानी, रौद्रसी, राका, सिनिवली, श्रद्धा, अरामति, अप्सरा और सरस्वती।

पृथ्वी अत्यंत प्राचीन आर्य देवी है।

उसे द्यौस, स्वर्ग अथवा पारजन्य की पत्नी कहा जाता है। पृथ्वी बहुत महत्वपूर्ण देवी है और कई देवताओं की माता कहलाती है।

अदिति भी कालक्रम की दृष्टि से प्राचीन वैदिक देवी है। उसे देवताओं की शक्तिशाली माता कहा गया है। मित्र, आर्यमान् और वरुण उसके पुत्र हैं। *ऋग्वेद* से यह पता नहीं चलता कि उसका विवाह किससे हुआ था? हम दिति के विषय में

अंग्रेजी के मूल लेख का शीर्षक ''वैदिक और अवैदिक देवियां'' था। इस अध्याय की विषय-वस्तु और अंतिम पैरा के संदर्भ में इसे पहेली 12 में सम्मिलित किया गया है। यह अंग्रेजी में इक्कीस पृष्ठ की टंकित प्रति थी जिसमें लेखक ने कतिपय सुधार-संशोधन किए थे और अपने हाथ से अंतिम पैरा संशोधित किया था। – संपादक

इससे अधिक कुछ नहीं जानते कि वह अदिति के समान किन्तु विपरीत देवी है। और कालातीत में हिंदू पुराणों के अनुसार देवों के शत्रु दैत्य उसी के पुत्र हैं।

देवी निश्तिग्री इन्द्र की माता है और इन्द्राणी इन्द्र की पत्नी है। प्रिश्नी मारुत की माता है। ऊषा आकाश की पुत्री बताई गई है, भग की बहन और वरुण की संबंधी तथा सूर्य की पत्नी है। सूर्या सूर्य की पुत्री और अश्विनियों अथवा सोम की पत्नी है।

अग्नयी, वरुणानी, रौद्रसी क्रमशः अग्नि, वरुण और रुद्र की पत्नियां हैं। अन्य देवियां या तो नदियों का मानवीकरण हैं अथवा उनका विवरण प्राप्त नहीं है।

इस विश्लेषण से दो बातें स्पष्ट हैं। पहली बात यह है कि हिंदू देवता विवाह-बंधन में बंध सकते हैं और उनके भक्तों को इस बात से कोई परेशानी नहीं होती कि उनका आराध्य एक आम आदमी से इस संबंध में बेहतर नहीं है। दूसरी बात यह है कि देवताओं की पत्नियां स्वतः ही पूजनीय देवी बन जाती हैं जो देव उपासकों द्वारा पूजी जाने लगती हैं।

वैदिक काल को छोड़कर पौराणिक काल पर आते हैं तो हमारा परिचय अनेक देवियों से होता है जैसे, देवी, उमा, सती, अम्बिका, पार्वती, हेमावती, गौरी, काली, निऋति, चण्डी और कात्यायनी, दुर्गा, दसभुजा, सिंहवाहिनी, महिषासुरमर्दनी, जगत्धात्री, मुक्तकेशी, तारा, छिन्नमस्तिका, जगदगौरी, प्रत्यांगिरा, अन्नपूर्णा, गणेशजननी, कृष्णकरोर और लक्ष्मी। यह पता लगाना अत्यंत कठिन है कि इन देवियों में कौन क्या है। पहली कठिनाई तो यह है कि ये सभी अलग-अलग देवियां हैं अथवा एक देवी के कई पर्याय हैं। उनके माता-पिता के संबंध में निश्चयपूर्वक कुछ नहीं कहा जा सकता। न ही कोई निश्चित रूप से यह कहा जा सकता है कि उनके पति कौन हैं?

एक उल्लेख से उमा, देवी, सती, पार्वती, गौरी और अम्बिका एक ही देवी के पर्याय हैं। दूसरी ओर कुछ ने कहा है कि देवी दक्ष की पुत्री है, अम्बिका रुद्र की भगिनी है, पार्वती के संबंध में *वाराह पुराण* ने उसका आविर्भाव इस प्रकार बताया[1] है।

> ब्रह्मा जब एक बार शिव से मिलने कैलास पर गए तो उन्हें सम्बोधन किया गया, ''ब्रह्मा! शीघ्र कहो तुम मेरे पास क्यों आए हो?'' ब्रह्मा ने उत्तर दिया, ''एक शक्तिशाली असुर अंधक (अंधकार) है जिससे सभी देव त्रस्त हैं। परित्राण के लिए आए देवों की शिकायत लेकर मैं तुम्हारे पास चला आया।'' फिर ब्रह्मा ने उत्सुकता से शिव की ओर देखा जिन्होंने विचार कर विष्णु को अपने पास बुलाया। जैसे ही इन तीन देवों ने एक-दूसरे से नजरें मिलाई, उसकी आभा से एक नीलाभ दिव्य

1. विलकिंस में उद्धृत ''हिंदू माइथालोजी'' पृ. 290-91

सुंदरी अवतरित हुई, जो नील कमल की पंखुड़ियों के समान थी और रत्नाभूषणों से अलंकृत थी। वह तुरंत ब्रह्मा, विष्णु और महेश के आगे नतमस्तक हो गई। जब उन्होंने पूछा कि वह कौन है और उसमें तीन श्यामल, श्वेत, लाल वर्ण क्यों हैं, उसने कहा, मैं आपकी दृष्टि से उत्पन्न हुई हूं। क्या आप अपनी सर्वशक्तिमान ऊर्जा से परिचित नहीं? ब्रह्मा ने उसकी प्रशंसा में कहा, ''तेरा नाम त्रिकाल (भूत, वर्तमान और भविष्य) की देवी रहेगा, संसार की पालक होगी और विभिन्न पूजाओं में तेरी पूजा होगी क्योंकि तू अपने भक्तों के मनोरथ पूरे करेगी। परन्तु हे देवी! तू अपने वर्णों के अनुसार तीन भाग कर ले। तब ब्रह्मा के कहे अनुसार उसने अपने रंगों के अनुसार तीन भाग कर लिए, एक श्वेत, दूसरा लाल और तीसरा श्याम। पहली अनिंद्य सुन्दरी सरस्वती थी और सृष्टि रचना में उसने ब्रह्मा का हाथ बंटाया, लाल वर्ण की विष्णुप्रिया लक्ष्मी थी, जिसने विश्व का पालन किया, तीसरी पार्वती थी, जिससे शिव को अनेक गुण और शक्ति प्राप्त हुई।

यह बताने का प्रयास किया गया है कि सरस्वती, लक्ष्मी और पार्वती एक ही देवी के तीन रूप हैं। हमें ध्यान रहता है कि सरस्वती ब्रह्मा की पत्नी है। लक्ष्मी विष्णु की और पार्वती शिव की और ब्रह्मा, विष्णु और शिव के बीच संघर्ष भी हुआ। *वाराह पुराण* की यह व्याख्या बेतुकी लगती है।

गौरी कौन है? पुराण कहता है गौरी पार्वती का दूसरा नाम है। पार्वती गौरी[1] क्यों कहलाई? इसका कारण है कि जब शिव और पार्वती कैलास पर्वत पर रहते थे तो उनके बीच कई बार झगड़ा हो जाता था। एक बार शिव ने उन्हें श्याम रंग की बता कर निंदा की। इस कटाक्ष से वह इतनी दुःखी हुई कि घने जंगलों में चली गई और घोर तपस्या की। अंत में बह्मा प्रकट हुए और उन्हें वरदान दिया जिससे उनका वर्ण कुन्दन जैसा हो गया। इस कारण वह गौरी के नाम से विख्यात हुई।

दूसरी देवियों के विषय में यह निश्चित नहीं कि वे एक ही देवी के पर्यायवाची नाम हैं अथवा इन नामों की भिन्न-भिन्न देवियां हैं। *महाभारत* में अर्जुन ने दुर्गा के विषय में एक श्लोक पढ़ा जिसके अनुसार वह कहता है[2]:

तेरा नमन है, सिद्ध सेनानी, भद्रे, मंदरावासिनी, कुमारी, काली, कपाली, कपिला, कृष्ण पिंगला, तेरा नमन है, भद्रकाली, तेरा नमन है, महाकाली, चण्डी, चण्ड, तारिणी, वारावारुणी, (सुन्दर-रंगरंजित), हे महाभाग्या कल्याणी, ओ कराली, ओ विजया, ओ जया, कृष्ण की अनुजा, महिषारक्त पायी, ओ उमा, शाकम्भरी, तू गौरांग, तू श्यामलांग,

---

1. विलकिस, पृ. 289-90
2. वही. पृ. 306-7

ओ कैटभ हंता, ओ विज्ञान, तू वेदों की कला-ज्ञान है, सभी भूतों की महानिद्रा, ओ स्कंद (कार्तिकेय) जननि, देवी दुर्गा कमलासिनी, तू महादेवी है। मैं शुद्ध हृदय से महादेवी की स्तुति करता हूं, तेरी कृपा से मैं युद्ध में विजयी होऊं।

इस श्लोक से यह स्पष्ट होता है कि यह देवियों का उपरोक्त उल्लेख मात्र वे दुर्गा के ही पर्याय हैं साथ ही दसभुजा, सिंहवाहिनी, महिषासुरमर्दिनी, जगद्धात्री, छिन्नमस्तिका, जगत गौरी, प्रत्यागिरी, अन्नपूर्णा, दुर्गा के ही नाम हैं या उनके विभिन्न रूप हैं।

इस प्रकार दो प्रधान देवियां हैं। एक पार्वती और दूसरी दुर्गा। बाकी उन्हीं के नाम हैं। पार्वती दक्ष प्रजापति की पुत्री और शिव की पत्नी है। दुर्गा कृष्ण की बहिन और शिव पत्नी है। दुर्गा और काली के विषय में पता नहीं चलता। अर्जुन द्वारा पढ़े गए श्लोक में दुर्गा और काली एक ही हैं। परन्तु लिंग *पुराण* में भिन्न मत प्रकट किया गया है। उसके अनुसार[1] काली और दुर्गा अलग-अलग हैं।

इतिहास का विद्यार्थी वैदिक और पौराणिक देवियों के बीच तुलना की उपेक्षा नहीं कर सकता जिसका उद्देश्य मात्र इतहास लिखना नहीं, उसका विश्लेषण करना भी होता है। दोनों के बीच में एक विरोधाभास है। वैदिक देवियों की उपासना मात्र औपचारिकतावश की जाती है। उनकी पूजा मात्र इसलिए की जाती है कि वे देव पत्नियां हैं। पौराणिक देवियों की पूजा भिन्न प्रकार की है। उनकी पूजा का अपना आधार है। यह नहीं कि वे देव-पत्नियां हैं। भिन्नता इसलिए है कि वैदिक-देवियां कभी रणक्षेत्र में नहीं गईं और ना ही किसी प्रकार का शौर्य-प्रदर्शन किया। पौराणिक देवियां रणचंडी हैं। और उन्होंने वीरता दिखाई है। उनकी पूजा औपचारिकता नहीं है। इसका कारण उनकी वीरता और पराक्रम है।

कहा जाता है कि दुर्गा और दो असुरों के बीच हुए घमासान युद्ध के कारण ही दुर्गा की प्रसिद्धि हुई। यह कहानी *मार्कण्डेय पुराण* में विस्तृत रूप से कही गई है। इसके अनुसार:[2]

> "त्रेता युग के अंत में शुंभ, निशुंभ नामक दो बलशाली असुरों ने दस हजार वर्ष तक घोर तपस्या की। इसके कारण स्वर्ग से शिव प्रकट हुए जिन्हें पता चला कि अपनी विलक्षण तपस्या के आधार पर वे अमरता का वरदान चाहते हैं। उन्होंने दोनों को बहुत समझाया और इस बात का असफल प्रयास किया कि वे किसी अन्य वरदान से संतुष्ट हो जाएं। जब उनका मनोरथ पूरा न हुआ तो उन्होंने एक हजार साल तक और कठिन तपस्या की। शिव फिर प्रकट हुए और उनको वही वर देने से

1. विलकिस, *हिंदू माइथोलाजी*, पृ. 313
2. वही. पृ. 302-6

इंकार कर दिया। फिर वे सिर के बल उल्टे लटक गए और नीचे धीमी अग्नि जला ली। उन्होंने 800 साल तक तपस्या की जब तक उनकी गर्दन से रक्त नहीं बहने लगा। यह सोचकर कि कहीं ऐसे प्रचण्ड तप से ये हमारा सिंहासन ही न छीन लें, देवतागण कांप उठे। देवराज ने एक सभा बुलाई और अपनी आशंका जताई। उन्होंने स्वीकार किया कि यह गंभीर बात है परन्तु पूछा कि इसका उपाय क्या है? इन्द्र के परामर्श पर कंदर्प (कामदेव) परम सुंदरी अप्सराओं सम्भा और तिलोत्तमा को साथ लेकर महाबलि असुरों की कामुकता जगाने हेतु उनके पास भेजे गए। कंदर्प ने अपने (प्रेम) बाण छोड़े और असुरों को घायल कर दिया। ये युगल सुन्दरियों के जाल में फंस कर मोहित हो गए और तपस्या भंग कर दी। इन सुंदरियों के साथ उन्होंने पांच हजार वर्ष बिताए। फिर उन्हें ध्यान आया कि कामुकता के कारण उनकी अमरता की आशा पर पानी फिर गया है। उनको संदेह हुआ कि यह जाल इन्द्र की मिलीभगत से ही बिछाया गया है, इसलिए स्वर्ग के मोह में उन्होंने फिर पूजा आरम्भ कर दी। एक हजार वर्ष तक यह क्रम जारी रखा, जब तक कि वे कंकाल न बन गए। शिव प्रकट हुए और उन्हें वरदान दिया कि वे देवताओं से बढ़कर बलशाली होंगे।

देवताओं से अधिक बलशाली होकर उन्होंने उनसे युद्ध छेड़ दिया। दोनों पक्षों में घमासान संघर्ष के पश्चात् असुर विजयी रहे। जब इन्द्र और अन्य देवताओं की स्थिति दयनीय हो गई तो उन्होंने ब्रह्मा और विष्णु की सहायता मांगी। दोनों ने उन्हें शिव के पास भेज दिया। शिव ने कहा कि वे कुछ करने में समर्थ नहीं हैं। उन्हें याद दिलाया गया कि इसके कारण तो वही हैं, उन्हीं के वरदान के फलस्वरूप वे बरबाद हो रहे हैं। तब शिव ने उन्हें देवी दुर्गा की तपस्या करने की सलाह दी। उन्होंने ऐसा ही किया। कुछ समय पश्चात् देवी प्रकट हुई और उन्हें वर दिया। फिर अपने-आप एक साधारण स्त्री का रूप धारण किया और पानी का एक घड़ा लेकर वह देवताओं के बीच से गुजरी। फिर उन्होंने अपना वास्तविक रूप धारण कर लिया और कहा कि तुम मेरी स्तुति करो।

यह नई देवी हिमालय पर्वत पर गई, जहां शुंभ-निशुंभ के दो दूत चण्ड-मुण्ड रहते थे। जब ये दैत्य पर्वत पर विचर रहे थे तो उन्होंने देवी को देखा और वे उसका रूप देखकर चकित रह गए। उन्होंने अपने-अपने स्वामी गण से इसका वर्णन किया और देवी को प्राप्त करने के लिए उकसाया चाहे उन्हें अपनी सारी निधियां भी न्यौछावर क्यों न करनी पड़े, जो उन्होंने स्वर्ग के देवताओं से लूटी हैं।

शुंभ ने देवी के पास सुग्रीव को संदेशवाहक के रूप में भेजा कि वह कहे कि

तीनों लोकों का सुख उसके प्रासाद में है। जो भेंट कभी देवताओं को चढ़ाई जाती थी, अब उसे चढ़ाई जा रही है। देवी ने कहा– प्रस्ताव बहुत ठीक है। परन्तु उन्होंने यह संकल्प किया है कि वह उसी से विवाह रचायेगी जो उसे युद्ध में जीतेगा और उसका मान–मर्दन करेगा।

सुग्रीव निष्फल लौटना नहीं चाहता था। उसने देवी से हामी भरवाने के लिए गरजकर कहा ''क्या वह उसके स्वामी को जानती है? जिसके समक्ष विश्व को कोई व्यक्ति नहीं टिक सकता चाहे वह देवता हो, दैत्य हो, अथवा मनुष्य हो? तब क्या एक स्त्री होकर वह इस प्रस्ताव को ठुकराने का दुस्साहस कर सकती है? क्योंकि उसके स्वामी का आदेश है, वह तुम्हें उनके समक्ष तुरंत प्रस्तुत करने को विवश कर सकता है। देवी ने कहा – यह ठीक है परन्तु उन्होंने अपना संकल्प दोहराया और कहा कि वे अपने स्वामी को मनाएं और वह उनके साथ अपनी शक्ति–परीक्षा करें।

दूत वापस चला गया और अपने स्वामी से सब कहा सुनाया। यह सुनकर शुंभ क्रोध से जल उठा और कोई उत्तर दिए बिना उसने अपने सेनापति धूम्रलोचन को बुलाया उसे हिमालय जाकर देवी को पकड़ लाने का आदेश दिया और कहा यदि कोई रक्षा के लिए आए तो उसे वहीं नष्ट कर देना।

सेनापति हिमालय पर गया और देवी को अपने स्वामी का आदेश सुनाया। उन्होंने मुस्कराते हुए आदेश–पालन की सलाह दी। उस वीर के आने पर देवी ने एक भयानक गर्जना की, जिससे वह भस्मीभूत हो गया। इसके पश्चात् उन्होंने दैत्य की सेना नष्ट कर दी। केवल कुछ भगोड़ों को छोड़ दिया जिससे कि वे उसे समाचार दे सकें। शुंभ–निशुंभ आपे से बाहर हो गए और चण्ड–मुण्ड को पठाया। पर्वत पर जाकर उन्होंने देखा कि एक स्त्री गधे पर बैठी अट्टहास कर रही है। उन्हें देखकर वह कुपत हो गई और उनकी सेना के दस, बीस और तीस सैनिकों को एक साथ उठा–उठा कर ऐसे खाने लगी जैसे कोई फल खाता है। उन्होंने फिर मुंड को केशों से पकड़ा और उसका सिर काट कर अपने मुख के ऊपर लटका कर उसका खून पी गई। चण्ड ने जब एक वीर की गति देखी तो वह देवी की ओर बढ़ा, पर वह सिंह पर चढ़ गई और उस पर झपट पड़ी और उसका भी वही हाल किया जो मुण्ड का किया था। उसके बहुत से सैनिकों को खा लिया और घायलों का खून पी लिया।

महाबलियों ने जैसे ही यह चिंताजनक समाचार सुना, उन्होंने स्वयं जाने का संकल्प किया और अपने सैनिकों को एकत्र करके असंख्य वीरों को लेकर हिमालय की

ओर बढ़े। देवताओं ने इस विशाल सेना को आश्चर्यपूर्वक देखा और देवी महामाया (दुर्गा) की सहायता के लिए आरोहित हुई, जिन्होंने शीघ्र ही शुंभ-निशुंभ के सेनानायक अपने शत्रु रक्तबीज को नष्ट कर दिया। उन्होंने देखा कि देवी ने उसकी पूरी सेना का सफाया कर दिया। यद्यपि उन्होंने रक्तबीज के पूरे शरीर को छलनी कर दिया किन्तु उसके रक्त की एक-एक बूंद से एक-एक सहस्त्र उतने ही बलशाली रक्तबीज पैदा हो गए। इस प्रकार असंख्य शत्रुओं ने दुर्गा को घेर लिया। देवों ने देखा कि देवी के लिए संकट उत्पन्न हो गया है। इस अवसर पर दुर्गा के साथ लड़ रही काली से कहा कि यदि वह रक्तबीज के रक्त की बूंद धरती पर गिरने से पहले ही पी जाएगी तो चण्डी उससे लड़कर उसकी चाल विफल कर देगी। काली ने स्वीकार कर लिया। इस प्रकार सेनानायक सहित पूरी सेना को मौत के घाट उतार दिया गया।

अब शुंभ-निशुंभ ने निराश होकर देवी को द्वंद्व युद्ध के लिए ललकारा। पहले शुंभ मैदान में आया। दोनों ओर से घमासान युद्ध हुआ। बाद में दोनों महाबलि काल-कवलित हुए। काली ने जम कर रक्तपान किया। देवताओं और देव पत्नियों ने देवी वीरांगना का जय-जयकार किया। देवी ने उन्हें आशीर्वाद दिया।''

मार्कण्डेय पुराण में विभिन्न रूपों में दुर्गा के वीरोचित कार्यों का संक्षिप्त विवरण दिया गया है। वह कहता है:

''दुर्गा के रूप में उन्होंने दैत्यों का संदेश ग्रहण किया, दस भुजा के रूप में उन्होंने उनकी सेना का संहार किया, सिंहवाहिनी के रूप में रक्तबीज से लड़ी, महिषासुर-मर्दनी के रूप में महिषासुर रूपी शुंभ का हनन कया। जगतधात्री के रूप में उन्होंने दैत्यों की सेना का संहार किया। काली के रूप में रक्तबीज का नाश किया। मुक्तकेशी के रूप में उन्होंने दैत्यों की दूसरी सेना को समाप्त कर दिया। तारा बनकर शुंभ को उसके वास्तविक रूप में मौत के घाट उतारा, छिन्नमस्तका के रूप में उन्होंने निशुंभ का वध कया, जगद-गौरी (स्वर्णवर्णा) बनकर उन्होंने देवताओं का अभिवादन और आभार स्वीकार किया।''

वैदिक तथा पौराणिक देवियों की तुलना में कुछ रोचक प्रश्न उभरते हैं। इनमें से एक स्वाभाविक है। वैदिक साहित्य में असुरों के साथ युद्ध के अनेक कारण हैं। ब्राह्मण साहित्य में भी उसकी आवृति है। परन्तु असुरों के साथ सभी युद्ध वैदिक देवों ने लड़े। वैदिक देवियां उनमें सम्मिलित नहीं हुई थीं।

पौराणिक देवियों के संबंध में स्थिति बिल्कुल भिन्न है। पौराणिक काल में भी वैदिक काल की भांति असुरों से युद्धों का विवरण है। भिन्नता यह है कि वैदिक

काल में असुरों से देवता लड़े, लेकिन पौराणिक काल में देवियां लड़ीं। ऐसा क्यों है? क्योंकि पौराणिक काल में वह कार्य देवियों को करना पड़ा, जो वैदिक काल में देवों ने किया? यह बात नहीं है कि पौराणिक काल में देवता विद्यमान नहीं थे। ब्रह्मा, विष्णु और शिव मौजूद थे, जिनका पौराणिक काल में आधिपत्य रहा। जब वे असुरों से युद्ध के लिए मौजूद थे तो देवियां इस उद्देश्य से क्यों आगे आईं। इस चक्रव्यूह से निकलने का रास्ता नहीं मिलता और इसका उत्तर चाहिए।

दूसरा प्रश्न यह है कि शक्ति का वह स्रोत क्या है जो पौराणिक देवियों में विद्यमान था और वैदिक देवियों में नहीं था? पौराणिकों का उत्तर है कि देवताओं की शक्ति ही देवियों में निहित थी। सामान्य सिद्धांत यह था कि प्रत्येक देव में शक्ति थी और वही शक्ति उनकी पत्नियों में विराजमान थी। यह सिद्धांत इतना प्रचलित हुआ कि देवियां शक्ति कहलाने लगीं और देवियों के उपासक शाक्त कहलाए।

इस सिद्धांत के संबंध में कुछ प्रश्न उठते हैं:-

पहला यह कि यद्यपि पुराणों में अनेक देवियों के नाम हैं। किन्तु उनकी संख्या वास्तव में पांच ही है। सरस्वती, लक्ष्मी, पार्वती, दुर्गा और काली। सरस्वती और लक्ष्मी, ब्रह्मा और विष्णु की पत्नियां हैं, जो शिव की भांति ही पौराणिक देवता हैं। पार्वती, दुर्गा और काली शिव की पत्नियां हैं। सरस्वती और लक्ष्मी ने किसी असुर का संहार नहीं किया और कोई वीरता नहीं दिखाई। प्रश्न है क्यों? ब्रह्मा और विष्णु में भी शक्ति थी फिर उस सिद्धांत के अनुसार उनकी पत्नियों में भी संनिहित होनी चाहिए थी। फिर सरस्वती और लक्ष्मी ने असुरों के विरुद्ध युद्ध क्यों नहीं किया? यह भूमिका केवल शिव पत्नियों के लिए ही थी। यहां भी पार्वती की भूमिका दुर्गा से भिन्न थी। पार्वती एक सामान्य नारी दिखाई गई है। दुर्गा की भांति वह भी शिव की शक्ति है। पार्वती में शिव की शक्ति इतनी शिथिल, साधारण और निष्क्रिय क्यों है?

दूसरा प्रश्न यह है क देवियों की स्वतंत्र रूप से पूजा आरंभ करने का यह औचित्य सही लगता है परन्तु तार्किक और ऐतहासिक दृष्टि से इसे स्वीकार करने में कठिनाई है। शुद्ध तार्किक दृष्टि से देखें तो यदि प्रत्येक देव में शक्ति है तो फिर वैदिक देवों में भी वह शक्ति होनी चाहिए थी। फिर वैदिक देवों की पत्नियों पर यह सिद्धांत लागू क्यों नहीं होता? यदि ऐतिहासिक दृष्टि से देखें तो यह कहने का कोई औचित्य नहीं है कि पौराणिक देवों में भी यह शक्ति विद्यमान थी।

फिर ऐसा लगता है कि ब्राह्मणों ने यह नहीं सोचा कि उन्होंने मात्र दुर्गा को ही वीरांगना बताया है जिसने असुरों का संहार किया। इससे उनके अपने ही देवता दयनीय तथा पामर अथवा कायर सिद्ध होते हैं। ऐसा प्रकट होता है कि देवता असुरों

से अपनी रक्षा नहीं कर पाए और उन्हें अपनी पत्नियों का सहारा लेना पड़ा। इस संबंध में *मार्कण्डेय पुराण* का एक उदाहरण ही पर्याप्त है कि पौराणिक देव कितने दुर्बल थे, और ब्राह्मणों के अनुसार कैसी दुर्बलता उन्होंने असुरों के समक्ष दिखाई। *मार्कण्डेय पुराण* कहता है:

> ''दैत्यों के राजा महिष ने एक बार युद्ध में देवताओं को इतनी पटखनी खिलाई कि वे धरती पर भिखारियों की तरह घूमते थे। पहले इन्द्र उन्हें ब्रह्मा के पास ले गए फिर शिव के। क्योंकि ये दोनों देव कोई भी सहायता करने की स्थिति में नहीं थे, वे विष्णु के पास पहुंचे। विष्णु उनका संताप देखकर इतने दुखी हुए कि उनके नेत्रों से एक प्रभा उत्पन्न हुईं, उसमें से एक नारी-रूप प्रकट हुआ, जिसका नाम महामाया (दुर्गा का दूसरा नाम) था। अन्य देवताओं के मुखों से भी आभा फूटी। वह भी महामाया में समा गई, इसका परिणाम यह निकला कि वह आभा पुंज बन गई जैसे कि अग्नि का पर्वत हो। वह वायुमंडलन में उड़ गई और दैत्यों को पछाड़ा तथा देवताओं की रक्षा की।''

ऐसे कायर देवों में शक्ति कहां थी? जब उनमें शक्ति नहीं थी तो वे अपनी पत्नियों को कैसे दे सकते थे? यह कहना कि देवियों में शक्ति थी, मात्र एक पहेली ही नहीं है, वरन् एक विसंगति है। इसका उत्तर कोई नहीं दे पाता कि शक्ति के सिद्धांत का अनुसंधान क्यों किया गया? क्या ब्राह्मणों ने धर्म के नाम पर नये सिद्धांत को गढ़कर देवी-पूजा प्रारंभ नहीं की और देवताओं का अपमान नहीं किया?

तेरहवीं पहेली

अहिंसा की पहेली

यदि हम प्राचीन आर्यों की आदतों और सामाजिक व्यवहारों की तुलना परवर्ती हिंदू समाज से करते हैं तो परिवर्तनों के संदर्भ में हम आश्चर्यजनक सामाजिक क्रांति पाएंगे।

क्या आर्य एक जुआरी प्रजाति के थे। आर्य सभ्यता के प्रारंभकाल में जुआ एक विज्ञान के रूप में विकसित हो चुका था यहां तक कि कई तकनीकी शब्द भी गढ़े गए। हिंदू चार युगों को कृत, त्रेता, द्वापर और कलि के नाम से जानते हैं, जिनके अनुसार इतिहास का काल-विभाजन किया गया था। दरअसल, ये आर्यों द्वारा जुए में खेले जाने वाले दाव थे। सबसे सौभाग्यशाली दाव कृत कहलाता था और दुर्भाग्यपूर्ण दाव को कलि कहते थे। त्रेता और द्वापर इनके बीच के थे। यही बात नहीं थी कि प्राचीन आर्यों में द्यूतक्रीड़ा भली-भांति विकसित थी अपितु बाजियां भी ऊंची-ऊंची हुआ करती थीं। बड़ी-बड़ी धनराशि की बाजियां भी हुआ करती थीं। ऐसी बड़ी-बड़ी बाजियां तो अन्यत्र भी थीं परन्तु आर्यों से बढ़कर नहीं थीं। आर्य जुए में अपने राज्य, यहां तक कि पत्नियां भी दाव पर लगा दिया करते थे। राजा नल अपना राज्य ही हार बैठे थे। पांडव इससे भी बढ़कर थे। उन्होंने न केवल अपना राज्य बल्कि अपनी पत्नी द्रौपदी तक दाव पर लगा दी और दोनों को हार गए। केवल धनवान आर्य ही जुआ नहीं खेलते थे बल्कि यह बहुतों का व्यसन था। प्राचीन आर्यों में द्यूत क्रीड़ा इतनी व्याप्त थी कि धर्मसूत्रों (शास्त्रों) के लेखकों को राजाओं को सलाह देनी पड़ती थी कि कठोर नियम बनाकर उस पर नियंत्रण की सख्त जरूरत है।

पहेली नं. 13 की मूल विषयवस्तु में ''गोवध कर्ता ब्राह्मण गोपूजक कैसे बने'' दिया गया था। यह अध्याय इन पृष्ठों में प्राप्त नहीं है। हां, कुछ पृष्ठ ''अहिंसा की पहेली'' शीर्षक से प्राप्त हुए हैं। यहां इसे सम्मिलित कर लिया गया है जिसका विषय भी वही है। अंग्रेजी में इसके टाइप किए हुए दस पृष्ठ मिले थे, जो निःसंदेह अपूर्ण विषयसामग्री है। - संपादक

आर्यों में मैथुन के संबंध में स्वच्छन्दता विद्यमान थी। एक समय था, जब वे विवाह को स्त्री-पुरुष के बीच स्थायी संबंध नहीं मानते थे। यह *महाभारत* से स्पष्ट है, जहां पाण्डुपत्नी कुंती पाण्डु के यह कहने पर कि वह किसी अन्य से पुत्र प्राप्त करे, वह बताती है कि उसको पहले ही एक पुत्र की प्राप्ति हो चुकी है। ऐसे भी उदाहरण हैं कि बहन-भाई, मां-बेटे, पिता-पुत्री और नाना, दादा-पौत्रियों तथा नातिनों के बीच शारीरिक संबंध थे। स्त्रियों में स्वछंदता थी। यह खुली स्वच्छंदता थी जहां कई पुरुष एक स्त्री को भोगते थे और उस पर किसी का निजी अधिकार नहीं था। ऐसी स्त्रियां गणिकाएं कहलाती थीं। आर्यों की स्त्रियों में स्वच्छंद मान्यता और भी थी। इसके अनुसार एक स्त्री कई पुरुषों से बंधी होती थी और प्रत्येक का दिन निध ारित होता था। वह स्त्री वारांगना कहलाती थी। वेश्यावृत्ति फली-फूली हुई थी और सार्वजनिक मैथुन का प्रचलन था। परन्तु यह प्रथा प्राचीन आर्यों में थी। प्राचीन आर्यों में पशुगमन (मैथुन) भी प्रचलित था और ऐसे महारथियों में अधिकांशतः कुछ सम्मानित ऋषि थे।

प्राचीन आर्य मद्यसेवी भी थे। मदिरा उनके धार्मिक कृत्यों का अनिवार्य अंग थी। वैदिक देवता मदिरा पीते थे, दैवी मदिरा सोम कहलाती थी। क्योंकि आर्यों के देवता ही मद्यपान करते थे, इसलिए आर्यों को मदिरापान में कोई नैतिक संकोच की बात नजर नहीं आती थी। दरअसल शराब पीना आर्यों का धार्मिक कर्तव्य था। आर्यों में इतने सोम-यज्ञ होते थे कि कोई बिरला दिन ही मद्यपान से बचता होगा। सोम-यज्ञ केवल तीन उच्च वर्णों ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्यों तक सीमित था। इसका अर्थ यह नहीं कि शूद्र मदिरापान से मुक्त थे। उनके लिए सोमपान निषिद्ध था, वे सुरा पीते थे जो घटिया पेय था। घटिया शराब बाजार में मिलती थी। केवल आर्य पुरुषों को ही शराब की लत नहीं थी बल्कि उनकी स्त्रियों को भी यह लत थी। कौषीतिक गृह्यसूत्र 1. 11-12 में परामर्श दिया गया है कि चार अथवा आठ ऐसी स्त्रियां जो विधवा न हों, भोजन के साथ मदिरापान कर, विवाह-संस्कार की पूर्व रात्रि में नृत्य के लिए बुलाई जाएं। नशीली शराब पीने की प्रवृत्ति केवल गैर-ब्राह्मण स्त्रियों तक सीमित नहीं थी। ब्राह्मण स्त्रियों में भी उसकी आदतें थीं। मदिरापान कोई पाप नहीं, व्यसन था। यह एक सम्मानजनक प्रथा थी। *ऋग्वेद* कहता है:

''मदिरापान से पूर्व सूर्योपासना'' की जाए।

यजुर्वेद कहता है:

''हे देव सोम! सुरा से सुदृढ़ और शक्तिमान होकर अपनी शुद्ध आत्मा से देवों को प्रसन्न कर, यज्ञकर्ताओं को अमृत पेय दे और ब्राह्मण तथा क्षत्रियों को शक्ति।''

मत्र ब्राह्मण में कहा गया है कि:

''जिससे स्त्रियां पुरुषों को आनन्दित करें और जिससे जल मदिरा में परिर्णित हो जाए'' (पुरुषों के आनन्द हेतु), आदि।

रामायण के उत्तरकाण्ड में स्वीकार किया गया है कि राम और सीता दोनों ने मदिरापान कया। उसमें कहा गया है:

> जैसे कि इन्द्र ने अपनी पत्नी शचि को मदिरापान करते देखा, वैसे ही रामचन्द्र ने देखा कि सीता ने परिष्कृत मधु, जो मदिरा कहलाता था, पिया। सेवकगण रामचन्द्र के लिए मांस और मीठे फल लाए।

वैसा ही प्रसंग *महाभारत* के 'उद्योग पर्व' में कृष्ण और अर्जुन के संबंध में आया है:

> ''अर्जुन और कृष्ण मधु से निर्मित मादक मदिरा पी रहे थे और गले में हार डाल रखे थे। बहुमूल्य वस्त्र-आभूषण धारे हुए थे। सोने के रत्नजड़ित आसन पर बैठे थे। मैंने देखा श्रीकृष्ण के पांव अर्जुन की गोद में हैं और अर्जुन के पांव द्रौपदी और सत्यभामा की गोद में हैं।''

सबसे बड़ा परिवर्तन भोजन में आया। आजकल हिंदू आहार के बारे में बहुत विचारशील हैं। आमतौर पर दो प्रकार की सहभोज ग्रहण की सीमाएं हैं। हिंदू किसी गैर हिंदू का पकाया भोजन नहीं करता। हिंदू किसी व्यक्ति के हाथ का भोजन नहीं करता जब तक कि वह ब्राह्मण अथवा उसी की जाति का न हो। हिंदू केवल यही नहीं देखता कि वह किसका बना खाना खाए, वह इसका भी ध्यान रखता है कि वह क्या खाए? आहार की दृष्टि से हिन्दुओं की दो श्रेणियां हैं:

1. शाकाहारी, और 2. मांसाहारी

मांसाहारियों की भी कई उपश्रेणियां हैं:

वे जो सभी मांस और मछली खाते हैं।

वे जो मात्र मछली खाते हैं।

जो मांस खाते हैं, उनकी भी कई उपश्रेणियां हैं:

1. वे जो गाय को छोड़कर किसी भी पशु-पक्षी का मांस खाते हैं।
2. वे जो गाय सहित सभी प्रकार का मांस खाते हैं।
3. वे जो मांस खाते हैं, परन्तु गाय का नहीं (मुर्दा या जिन्दा) मुर्गे का भी

नहीं। आहार की दृष्टि से हिन्दुओं में से ब्राह्मणों के दो वर्ग हैं: 1. पंच-गौड़, और 2. पंच-द्रविड़।

इनमें से पंच द्रविड़ पूर्ण शाकाहारी हैं। हिंदुओं का अन्य वर्ग अर्थात् अछूत मांसाहारी हैं। वे केवल बकरी और पक्षियों का मांस ही नहीं खाते बल्कि गाय भी खाते हैं, चाहे वह जिंदा हो या मुर्दा। मध्यमार्गी गैर ब्राह्मणों की अलग आदतें हैं। उनमें कुछ ब्राह्मणों की तरह शाकाहारी हैं। शेष ब्राह्मणों के विपरीत मांसाहारी हैं। उनमें से कोई भी गाय का मांस नहीं खाता।

एक अन्य तथ्य की ओर ध्यान देना है। वह है भक्षण के लिए पशु-वध करना। कोई हिंदू पशु-वध नहीं करेगा। यहां तक कि खाने के लिए भी, सिवाय एक छोटी सी जाति खटीक के। हिंदुओं में कोई कसाई नहीं होता। यहां तक कि अछूत भी वध नहीं करते। वह मुर्दा गाय का मांस खाते हैं, परन्तु वह गाय का वध नहीं करते। आजकल भारत में कसाई मुसलमान हैं। कोई हिंदू, जो खाने के लिए मांस चाहता है, वह मुसलमान को बुलाता है। प्रत्येक हिंदू अहिंसा में विश्वास रखता है।

भारत में शाकाहारी प्रथा कब से प्रचलित है? अहिंसा के प्रति आस्था कब जन्मी? बहुत से हिंदू इस प्रश्न को टाल जाते हैं। वे कहते हैं कि शाकाहार और अहिंसा भारत के लिए कोई नवीन बात नहीं है।

इस विवाद पर जो साक्ष्य उपलब्ध हैं, उनसे पता चलता है कि वर्तमान हिंदुओं के पूर्वज प्राचीन आर्य न केवल मांसाहारी थे बल्कि वे गोमांस भी खाते थे। निम्नांकित साक्ष्य इस संबंध में पर्याप्त हैं।

वह निर्विवाद है।

मधुपर्क का उदाहरण लें।

प्राचीन आर्यों में अतिथि सत्कार के लिए एक सुविदित प्रचलन था, जो मधुपर्क के नाम से जाना जाता था। उसका विस्तृत विवरण विभिन्न गृह्यसूत्रों में उपलब्ध है। अधिकांश गृह्य सूत्रों में 6 व्यक्ति मधुपर्क के पात्र बताए गए हैं। उनके नाम हैं: 1. ऋत्विज अथवा यज्ञ कराने वाला ब्राह्मण, 2. आचार्य, 3. वर, 4. राजा, 5. स्नातक और 6. यजमान का प्रिय कोई अन्य व्यक्ति। इस सूची में कुछ लोग अतिथि को जोड़ते हैं। इसके अतिरिक्त ऋत्विज, राजा और आचार्य को छोड़कर अन्य को वर्ष में एक बार ही मधुपर्क दिया जाए। ऋत्विज, राजा और आचार्य जब भी आएं, उन्हें तभी मधुपर्क दिया जाए। इसकी रीति यह है कि पहले अतिथि के पांव धुलाए जाते हैं, फिर कुछ मंत्रों के उच्चारण के पश्चात् वह पिया जाता है।

मधुपर्क में क्या-क्या होता है? मधुपर्क का शाब्दिक अर्थ है ऐसा संस्कार जब किसी व्यक्ति के आचमन में मधु उडेला जाता है। आरम्भ में यही मधुपर्क था। किन्तु कालांतर में इसकी सामग्री बढ़ती गई, जिसमें मधु में काफी कुछ मिलाया जाने लगा। आरम्भ में इसमें दही, शहद और मक्खन होता था। फिर इसमें पांच पदार्थ सम्मिलित हुए- दही, मधु, घी, यव और जौ। फिर इसमें नौ पदार्थ होने लगे। कौशिक सूत्र में नौ मिश्रण पदार्थ हैं। ब्रह्म (दही और मधु), ऐन्द्र (पायस), सौम्य (दही और घी), मौसल (सायने और घी), (इसका उपयोग केवल सौत्रमणि और राजसूय यज्ञ में होता था) वरुण (पानी और घी), श्रवण (शीशम का तेल और घी), परिव्राजक (शीशम का तेल और खली)। अब हम मानव गृह्य-सूत्र पर आते हैं। वह कहता है कि वेद घोषित करते हैं कि मधुपर्क बिना मांस के नहीं बनता। इसलिए विधान है कि यदि गाय नहीं तो बकरे का मांस अथवा पायस (दूध ये बना चावल) दिया जाए। हि. ग्र. 1,13-14 के अनुसार अन्य मांस प्रस्तुत किया जाना चाहिए। बौ.गृ. (1.2.51-54) कहता है कि गाय नहीं तो बकरी या भेड़ का मांस दिया जाना चाहिए या वन्य जंतु का मांस (हिरन आदि का) भी दिया जा सकता है क्योंकि बिना मांस के मधुपर्क नहीं बन सकता अथवा कोई मांस देने में सक्षम न हो तो वह कंदमूल पकाएं। परन्तु अंत में केवल मांस ही मधुपर्क का आवश्यक भाग बन गया। दरअसल कुछ गृह्य-सूत्रों ने प्रबल रूप से कहा है कि बिना मांस के मधुपर्क नहीं बन सकता। उनका आधार *ऋग्वेद* (8,101.5) है जो कहता है - "मधुपर्क बिना मांस के न हो।"

इस प्रकार मांस-भक्षण सामान्य था। ब्राह्मण से शूद्र तक सभी मांसाहारी थे। धर्म सूत्रों में जंगली जंतुओं, पक्षियों, एवं मछली के मांस के बारे में अनेक नियम हैं। गौतम 17.27-31, आप.ध.सू. 1.5.17.35, वा. धर्मसूत्र 14.39-40, यजु. 1.177, विष्णु ध.सू. 51.6, सांख्य (अपरार्क पृ, 1167), रामायण (किष्किंधा 17.39) *मार्कण्डेय पुराण* (35.2-4) में कहा गया है कि साही को छोड़ पांच पंजे वाले सभी जीवों का, ऊपर-नीचे के जबड़े वाले जीवों, झबरे और चिकनी त्वचा वाले जीवों (जैसे सांप) मुर्गों, जंगली सुअर, गाय और बैल का मांस अभक्ष्य है। आप. ध.सू. 1.5.17.29-31 के अनुसार एक खुरवाले ऊंट और गव्य (गयाल), सुअर, सरभ और गाय का मांस न खाएं, परन्तु (दुधारू) पशुओं और बैल का मांस भक्ष्य है क्योंकि वाजसनेयक का कथन है कि इनका मांस शुद्ध होता है। आ.ध.सू. (11.2.5.15) के अनुसार वेद शिक्षकों के लिए मांस-भक्षण का निषेध है।

(अपूर्ण। शेष अंश अप्राप्य)

चौदहवीं पहेली

अहिंसा से हिंसा पर वापसी

''हिंसा से अहिंसा तक'' अहिंसा की कहानी का मात्र एक भाग है। कहानी का एक दूसरा हिस्सा भी है, जिसकी व्याख्या ''अहिंसा से हिंसा पर वापसी'' शीर्षक के अन्तर्गत की जा सकती है। कहानी के दूसरे हिस्से से यह स्पष्ट हो जाएगा कि तंत्र और तंत्रवाद की धार्मिक परम्पराएं थीं, जिनका सन्दर्भ पहले दिया जा चुका है।

तांत्रिक पूजा के लिए ''पंच मकार'' अनिवार्य है। इन पंच मकारों में निम्न वस्तुएं होती है:

1. विभिन्न प्रकार के तरल पदार्थ एवं मद्य पान (मद्य)
2. मांस-भक्षण (मांस)
3. मछली-भक्षण (मत्स्य)
4. भुने अनाज खाना (मुद्रा)
5. सहवास (मैथुन)

यह कहना निरर्थक है कि मैथुन धार्मिक कर्मकांड का एक अंग है। मद्य और मांस का प्रसंग पर्याप्त रहेगा।

तंत्र के प्रथम चार कार्यों के लिए बारह प्रकार की मदिरा का विधान है। तीन प्रकार की शराब और तीन प्रकार का मांस बताया गया है। एक प्राचीन ऋषि पौलस्त्य ने भी, जो कई संहिताएं लिख चुके हैं, बारह प्रकार की मदिरा का उल्लेख किया है, जो इस प्रकार है:

1. पनसा (फल) से निकाली गई शराब, जिसे कटहल-शराब कहा जाता है,

मूल अंग्रेजी में यह 'अहिंसा' पर पिछले अध्याय के निरंतर क्रम में आया छह पृष्ठ का आलेख है, जिसमें लेखक ने स्वयं कुछ संशोधन किए हैं। – संपादक

2. अंगूर से बनी (द्राक्षा),

3. खजूर से बनी (खरजूरी),

4. सामान्य ताड़ी से बनी (ताड़ी),

5. नारियल से बनी (नारिकेल),

6. ईख से बनी (इक्षु),

7. माधविका के पौधे से बनी मदिरा,

8. पीपल से बनी (सैरा),

9. बेर से बनी (आरिष्ट),

10. शहद से बनी (मधुका),

11. शीरे से तैयार रम के समान (गौडी या मैरेय),

12. अरक, चावल और अन्य अनाज से बनी मदिरा जो सुरा, वारुणी या पैश्ती के नाम से जानी जाती है।

उपरोक्त मादक द्रव्यों के साथ-साथ जिनका बार-बार जिक्र आया है, वे है तन्का सेब से निर्मित, कोली और कादम्बरी, इनमें अंतिम मदिरा बलरामजी को अति प्रिय थी।

मांस पक्षियों, जंतुओं अथवा मछली का हो सकता है। मादक द्रव्यों का आनन्द लेने के लिए भुना अन्न खाया जाता है। प्रत्येक मद्य के अपने गुण और लाभ बताए गए हैं। उन्हीं के अनुसार उसका पान किया जाता है। इस प्रकार एक मदिरा से मोक्ष मिलता है, एक से ज्ञान, दूसरी से शक्ति, एक से सम्पदा, एक शत्रुनाशी, दूसरी रोगहारी, एक पापनाशी है और एक आत्मा को शुद्ध करती है।''

तांत्रिक पूजा बंगाल के आतरिक भागों में पहुंच गई। अपने अनुभवों के आधार पर राजेन्द्र लाल मित्र कहते हैं:[1]

> ''मैं कलकत्ता के एक उच्च संभ्रांत परिवार से संबद्ध एक अति सम्मानित महिला को जानता था, जो कौल सम्प्रदाय से संबंधित थी और पिछहत्तर साल तक जीवित रही। ऐसा कभी नहीं हुआ कि उसे अपनी प्रार्थना (वह प्रतिदिन सुबह-शाम करती थी) कभी अपनी जीभ में सींक से अरक छुआए बिना और भगवान की पूजा फूलों पर शराब छिड़के बिना की हो। मुझे इस बात में संदेह है कि उसने अपने जीवन-काल में कुल मिलाकर एक गिलास अरक पिया हो

1. राजेन्द्रलाल मित्र, इण्डो-आर्यन्स, पृ. 405-6

और यह निश्चित है कि उसको मदिरापान के सुख का ध्यान भी नहीं था। परन्तु एक आस्थावान कौल के अनुकूल वह अपने धर्म-पालन के लिए धर्मभीरुता के कारण प्रतिबद्ध थी। और भी हजारों का यही हाल है। मुझे इसका पूरा विश्वास है बंगाल के जिन भागों में अरक सहज उपलब्ध नहीं है, भक्त महिलाओं ने उसका विकल्प ढूंढ लिया है; वे धातु निर्मित घंटी (पात्र) में नारियल का दूध डालती हैं अथवा तांबे के बर्तन में कुछ बूंद दूध डाल लेती हैं। बहरहाल, पुरुष इतने संयमी नहीं। तंत्र का विधान पांच प्यालों का है। प्याला इस प्रकार का होता है कि उसमें पांच तोला या दो औंस आती है अर्थात वे एक दिन में दस औंस अरक ले सकते हैं।''

तांत्रिक पूजा बंगाल के एक छोटे से अंचल तक सीमित नहीं है जैसा कि महामहोपाध्याय जादवेश्वर तारकरत्न[1] ने कहा है:

''जैसे कि बंगालियों की उच्चजातियां शाक्त, वैष्णव और शैवों में विभाजित हैं, यही बात एक प्रकार से कामरूप, मिथिला, उत्कल अथवा कलिंग और कश्मीरी पंडितों के साथ है। शक्ति मंत्र, शिवमंत्र, तथा विष्णु मंत्र प्रत्येक तांत्रिक हैं। दक्षिण ाात्यों में महामहोपाध्याय सुब्रहमण्यम शास्त्री और कई अन्य शाक्त हैं। स्वर्गीय महामहोपाध्याय राम मिश्र शास्त्री भागवताचार्य और कई अन्य वैष्णव थे, और हैं। महामहोपाध्याय शिवकुमार शास्त्री तथा कई अन्य शैव हैं। वृंदावन में अनेक शाक्त और साथ ही वैष्णव ब्राह्मण हैं। यद्यपि महाराष्ट्र की कुलीन जातियों तथा अन्य दक्षिण भारतीय प्रदेशों में शैव और वैष्णव; शाक्तों की अपेक्षा अधिक हैं। पाशुपत तथा जंगम पथ के अनुयायी शैव हैं जबकि माधवाचार्य और रामानुजाचार्य के वैष्णव उत्तर-पश्चिम में राम मंत्र में दीक्षित हैं, जो मात्र तंत्र में मिलता है। इस लेखक के अनुसार पण्डा और श्री पुरुषोत्तम सभी शाक्त हैं और कामाख्या देवी के सभी पुजारी वैष्णव हैं'।''

तंत्र और तंत्र-पूजा कब आरम्भ हुई? इसका निश्चित समय बताना तो संभव नहीं है परन्तु इसमें कोई संदेह नहीं कि यह काल मनु के बाद का है। तंत्र विकास का यह पक्ष महान आश्चर्य की बात है। तंत्रों ने न केवल मांस और मदिरा पर मनु द्वारा लगाए गए प्रतिबंध तोड़े अपितु मांस-भक्षण और मदिरापान को आस्था का साधन बना दिया।

आश्चर्यजनक बात यह है कि ब्राह्मणों ने तंत्रों और तंत्र-पूजा को प्रोत्साहित किया। तंत्रों की वेदों में आस्था नहीं है। तांत्रिकों का कथन है कि वेद एक बाजारू औरत

1. अपने ग्रंथ तंत्र के सिद्धांत भाग-I परिचय पृष्ठ 38 में एवलान द्वारा उद्धृत।

के समान है जिसे चाहे भोगे किंतु तंत्र एक कुलीन नारी है जो एक ही से बंधी है। ब्राह्मणों ने तंत्र का कभी खण्डन नहीं किया बल्कि उन्होंने इसे पंचम वेद माना। *मनुस्मृति* के विख्यात भाष्यकार सनातनी ब्राह्मण कुल्लूक भट्ट ने कहा कि श्रुतियां दो हैं, वैदिक और तांत्रिक।

ब्राह्मणों ने न केवल तंत्रों का खण्डन किया बल्कि वास्तव में तंत्र-पूजा को प्रोत्साहित किया। मातृका भेद तंत्र में शिव अपनी भार्या पार्वती को ऐसे कहते हैं:[1]

> 'हे मृदुभाषी देवी! ब्राह्मणों को मदिरा पीने से मोक्ष प्राप्त होता है। मैं तुम्हें एक महान सत्य बताता हूं। हे पर्वत-पुत्री! जब मैं कहता हूं, कि जो ब्राह्मण मदिरा पान और उसके संसर्ग में लिप्त होता है तो वह स्वयं शिव हो जाता है। बल्कि जैसे जल-जल में मिल जाता है, धातु-धातु में घुल जाती है, जैसे एक घड़े का सीमित आकार एक बड़े आकार के पात्र में विलीन हो जाता है और वायु-वायु में समा जाती है, इस प्रकार ब्राह्मण विश्वात्मा ब्रह्म से एकाकार हो जाता है।'

> 'इस संबंध में रंचमात्र संदेह नहीं कि दिव्यता की आशा और परम सुख के अन्य रूप क्षत्रियों तथा अन्यों के लिए हैं, किन्तु सच्चा ज्ञान मादक द्रव्य के बिना कदापि प्राप्त नहीं किया जा सकता। तो क्या ब्राह्मण को सदैव इसका सेवन करना चाहिए? वेदों की जननी गायत्री को रट-रट कर कोई पंडित नहीं बन सकता। पंडित तभी बनता है जब उसे ब्रह्म-ज्ञान हो। देवताओं के लिए ब्रह्म ही अमृत है और धरा पर यह अरक है (चावल से बनी शराब) क्योंकि इसी के माध्यम से देवत्व (सुरत्व) की स्थिति प्राप्त होती है। इसलिए यह सुरा कहलाती है।

ब्राह्मणों ने पितामह मनु को क्यों नकार दिया और दुबारा मांस-मदिरा का सेवन क्यों आरम्भ कर दिया जिसे मनु ने बंद कर दिया था, यह एक पहेली है।

---

1. इण्डो-आर्यन्स में राजेन्द्रलाल मित्र द्वारा उद्धृत।

पन्द्रहवीं पहेली

ब्राह्मणों ने अहिंसक देवता के साथ रक्त-पिपासु देवी का विवाह क्यों किया?

जब ब्राह्मणों ने मांस-मदिरा का सेवन आरम्भ कर दिया तो उन्हें पुराणों में पशुबलि की वकालत करने में कोई संकोच नहीं हुआ। एक पुराण का विशेष उल्लेख करना आवश्यक है। वह है *काली पुराण* । यह पुराण स्पष्ट रूप से देवी काली की पूजा को प्रचारित करने के लिए लिखा गया था। इस पुराण में एक अध्याय का नाम ही 'रुधिर अध्याय' है।

मैं रुधिर अध्याय का सारांश देता हूं। इस अध्याय[1] में शिव ने तीन पुत्रों बेताल, भैरव और भैरों को निम्न प्रकार से सम्बोधित किया है:

'मेरे पुत्रों! देवताओं का अनुग्रह प्राप्त करने के लिए सम्पादित होने वाले संस्कार और नियमों के विषय में, मैं तुम्हें बताता हूं।'

'वैष्णवी तंत्र में जो प्रावधान किया गया है, उनका सभी अवसरों पर सभी देवताओं को बलि चढ़ाकर पालन किया जाए।'

'पक्षी, कच्छप, घड़ियाल, मीन, वन्य जंतुओं की नौ प्रजातियां, भैंसा, वृषभ, बकरा, नेवला, जंगली-सुअर, दरियाई घोड़ा, मृग, बारहसिंगा, सिंह, बाघ, मनुष्य और बलिदाता का स्वयं का रक्त चण्डिका देवी और भैरों की पूजा के उचित पदार्थ हैं।'

'बलि चढ़ाने से ही राजाओं को सुख, स्वर्ग और शत्रु विजय प्राप्त होती है।'

'देवी, मछली और कच्छप के चढ़ाने से एक माह की अवधि के लिए खुश रहती

---

1. इस अध्याय का डब्लू.सी. ब्लैकियर ने अंग्रेजी में अनुवाद किया था, जो एशियाटिक अनुसंधानों में प्राप्य है।

यह अंग्रेजी में सोलह पृष्ठों की लेखक द्वारा संशोधित सामग्री प्राप्त हुई है जो पूर्ण प्रतीत होती है। – संपादक

है और मगरमच्छ से तीन मास तक, वन्य जंतुओं की नौ प्रजातियों से देवी नौ महीने प्रसन्न रहती है और इस अवधि में यह भक्त का कल्याण करती है। गौर, नीलगाय के रक्त से एक वर्ष और मृग तथा जंगली सुअर से बारह वर्ष तक संतुष्ट रहती है। सरभ का रक्त देवी को पच्चीस वर्ष तक संतुष्ट रखता है, भैंस तथा दरयाई घोड़े का रक्त एक सौ वर्ष और बाघ का भी इतने ही वर्ष संतुष्ट रखता है। सिंह और बारहसिंगा और मानव-जाति का रक्त एक हजार वर्ष तक प्रसन्न रखता है। इनके मांस से भी उतनी ही अवधि तक संतुष्टि होती है, जितने दिन इनके रक्त से। अब दरियाई घोड़े और मृग के मांस तथा रोहू मछली के चढ़ावे का फल सुनो।'

''मृग और दरियाई घोड़े के मांस से देवी पांच सौ वर्ष तक और रोहू मछली तथा बारहसिंगे से मेरी प्रिया (काली) तीन सौ वर्ष तक संतुष्ट रहती है।''

'आठों पहर में दो बार पानी पीने वाली रेवड़ की प्रमुख कृशकाय बच्चों वाली इकरंगी बकरी बधिनासा कहलाती है। वह सर्वोत्तम हव्य और कव्य हैं।'

''नीली ग्रीवा, लालशीर्ष, श्याम टांगों और श्वेत पंखों वाला पक्षी भी वर्धुनासा कहलाता है। वह पक्षीराज है और मेरा तथा विष्णु का प्रिय है।''

'निम्नांकित विधि से दी गई मानव-बलि से देवी एक हजार वर्ष तक प्रसन्न रहती है और तीन मनुष्यों की बलि से एक लाख वर्ष तक। मेरे रूपधारी कामाख्या, चण्डिका और भैरव मनुष्य के मांस से एक हजार वर्ष के लिए संतुष्ट हो जाते हैं। रक्त का अर्घ्य पवित्र मंत्रों में अमृत बन जाता है, कामाख्या को शीश अर्पित किया जाए तो वह अति प्रसन्न होती है। जब ज्ञानी देवी को चढ़ावा चढ़ाएं तो रक्त और शीश अर्पित करें और जब अग्नि को आहूति दें तो मांस डालें।'

'भक्त इस बात से सचेत रहें कि अशुद्ध मांस अर्पित न किया जाए क्योंकि वे स्वयं शीश और रक्त को अमृत मानते हैं।'

'बेल पर लगने वाला फल, गन्ना, नशीली मदिरा, सड़ाई हुई मदिरा भी अन्य आहुतियों के समान माने जाते हैं और देवी को उतने काल तक प्रसन्न रखते हैं जैसे कि बकरी की बलि से।'

'बलि के लिए चन्द्रहास सर्वोत्तम हथियार है, छुरे का स्थान दूसरा है जबकि कुदाली एक निकृष्ट साधन है।'

'इन शास्त्रों के सिवाय बलि के लिए बरछी अथवा बाण का प्रयोग न किया जाए क्योंकि उस बलि को देवी स्वीकार नहीं करती और बलिदाता का मरण हो जाता है, जो अपने हाथों बलि के पशु अथवा पक्षी का शीश मरोड़ देता है, वह भी उतना ही

पापी है, जितना ब्रह्म-हत्यारा, उसे भारी दुःख झेलने पड़ते हैं।

ज्ञानी को इस उद्देश्य से बनी कुल्हाड़ी को मंत्रों से पवित्र करके प्रयोग करना चाहिए जैसा कि दुर्गा और कामाख्या के विषय में विशेष रूप से उल्लेख है।

'काली का नाम दो बार लिया जाए फिर कहा जाए 'देवी ब्रजेश्वरी लाव्हा दंदयी नमः' ये शब्द इस प्रकार उच्चारे जायं ''जय! काली! काली जय! देवी! दामिनी देवी लौह खड्गधारी....'' फिर वह कुल्हाड़ी अपने हाथ में ले और निम्नांकित काल-रात्र्य मंत्र से फिर अग्नि चेतन करें।

'बलिदाता कहे: हरंग-हिरंग, काली, काली' भयंकर दांतों वाली देवी, खा, काट, अनिष्ट हर, कुल्हाड़ी से काट, झुक झपट, रक्त पी, उठा उठा। इस प्रकार काली वंदना काल-रात्र्य मंत्र कहलाती है।

'इस मंत्र से किया गया वार काल-रात्र्य कहलाता है। काल-रात्रि (अंधकार की देवी) स्वयं बलिदाता के शत्रु का संहार करती हैं।'

'बलिदाता को पूर्व निर्देशानुसार बलि देनी चाहिए और बलि-पशु से निम्न प्रकार कहें।'

'प्राणी कर्त्ता की सृष्टि है, वह आत्म-बलिदान करे। इसलिए मैं तेरा जीवन लेकर बिना पाप किए तेरा बलिदान कर रहा हूं।'

'बलिदाता उस देवता का नाम ले, जिसके लिए बलि दी जा रही हो। वह प्रयोजन बताए, जिसके लिए बलि दी जा रही है और उपरोक्त मंत्र के साथ बलि चढ़ा दे। उसका मुख उत्तर को हो चाहे पहले किसी अन्य दिशा में भी हो, बलिदाता अपना मुख उत्तर में रखे और बलिपात्र को पूर्व दिशा में रखें' बलि चढ़ाने के बाद उसमें 'नमक जरूर मिलाया जाए और पूर्वोक्त के अनुसार रक्त भी'।

'जिस पात्र में रक्त अर्पित किया जाए, वह भक्त की परिस्थिति के अनुकूल हो सकता है। सोने का, चांदी का, तांबे का, पीतल का, दोना अथवा मृदापात्र, बलि में प्रयुक्त होने वाले काष्ठ भी मान्य हैं।'

'वह लौह-पात्र अथवा पशुओं की खाल या वृक्ष-छाल, जस्ता या शीशे के बर्तन में भेंट न किया जाए, श्रब और श्रच अथवा भूमि पर भेंट न चढ़ाई जाए। घट का प्रयोग भी निषिद्ध है। रक्त धरती पर न उडेला जाए, वह पात्र उपयोग में लाया जाए, जिसका प्रयोग अन्य अवसरों पर देवताओं को भोग लगाने के लिए किया जाता है। जो व्यक्ति सम्पदा चाहता है, वह इन पात्रों का उपयोग करें। मानव-रक्त केवल धातु अथवा मिट्टी के बर्तन में चढ़ाया जाए। पात्रों के द्रोण अथवा वैसे ही पात्रों में न चढ़ाया जाए।'

''अश्वमेध यज्ञ को छोड़कर अश्व की बलि देना अनुचित है। गजमेध के अतिरिक्त हाथी की बलि भी अनुचित है। राजा यह देखें कि इन अवसरों को छोड़कर यह बलियां न दी जाएं। किसी भी दशा में ये देवियों को न चढ़ाए जाएं। अवसर पड़ने पर अश्व के स्थान पर जंगली सांड चढ़ाया जा सकता है।''

''ब्राह्मण देवी को कभी सिंह अथवा बाघ या अपने रक्त की बलि न दें, न ही नशीली शराब चढ़ाएं। यदि कोई ब्राह्मण सिंह, बाघ अथवा मानव की बलि चढ़ाता है तो वह नरक जाएगा और जितने समय धरती पर रहेगा, दु:ख दारिद्र भोगेगा।'

'यदि कोई ब्राह्मण अपना रक्त अर्पित करता है तो वह ब्रह्म-हत्या के समान है और यदि वह मादक मदिरा चढ़ाता है तो वह ब्राह्मण नहीं रहता।'

'कोई शास्त्री मृग न चढ़ाए; यदि वह चढ़ाता है तो ब्रह्म-हत्या का भागी होता है। जहां कहीं सिंह, बाघ और मानव-बलि की आवश्यकता हो तो तीन कार्य किए जाएं। सिंह, बाघ और मानव की मक्की या जौ के गीले आटे की आकृतियां बना ली जाएं, उनकी बली इसी प्रकार चढ़ाई जाए जैसे जीवित प्राणियों की चढ़ाई जाती है। कुल्हाड़ी मंत्रोचार के साथ चलाई जाए।'

यदि कई पशुओं की बलि देनी हो तो केवल दो अथवा तीन को ही देवी के समक्ष लाना पर्याप्त है जो सभी की उपस्थिति मानी जाएगी। हे भैरव! मैंने तुम्हें उत्सव की सामान्य बातें बता दी हैं और यह भी बता दिया है कि बलि कैसे हो और किन अवसरों पर कौन से मंत्र पढ़े जाएं।

जब देवी भैरवी, या भैरव को भैंस की भेंट चढ़ाई जाए तो बलिपशु के समक्ष निम्नांकित मंत्र पढ़ा जाए:

'हे भैंस, जिस रीति से तू घोड़े का नाश करती है, जिस रीति से तू चंडिका तक जाती है, तू मेरे शत्रु का उसी प्रकार विनाश कर और मुझे समृद्ध बना।'

''हे मृत्यु के युद्धाश्व! श्रेष्ठ और अविनाशी स्वरूप, मुझे चिरायु कर और विख्यात कर। हे भैंस, तुझे नमन!

''अब मानव-रक्त की भेंट चढ़ाने संबंधी विवरण सुनो।

''मानव की बलि पवित्र पूजा-स्थल पर अथवा श्मशान में दी जाए। पूजा उपरोक्तानुसार श्मशान क्षेत्र में या कामाख्या मंदिर अथवा पहाड़ी पर की जाए। अब उसकी विधि सुनो।

''श्मशान मेरा रूप है और यह भैरव कहलाता है। इसमें एक दिशा होती है,

जो तंत्र-स्थल कहलाती है। पूजा इन दो दिशाओं में होती है। तीसरे को हरूका कहते हैं।

मनुष्य की बलि पूर्वी दिशा में दी जाए जो भैरव के लिए पवित्र है। शीश दक्षिणी दिशा में चढ़ाया जाए, जो कपाल भूमि कहलाती है और भैरवी के लिए पवित्र है। रक्त पश्चिमी दिशा में अर्पित किया जाए जिस पर हरूका प्रभुत्व होता है।

सम्पूर्ण पूजा-विधि और पवित्र स्थान पर किसी व्यक्ति की बलि चढ़ाते समय, बलि चढ़ाने वाले द्वारा इस बात का ध्यान रखा जाए कि वह बलि-पशु पर नजर गड़ा कर न देखें।

अन्य अवसर पर भी बलि चढ़ाने वाला बलि-पशु पर दृष्टि न गड़ाए बल्कि सिर निगाह हटाकर चढ़ाया जाए।

''बलि-प्राणी देखने में अच्छा हो, पूजा के साथ उसे तैयार किया जाए। वांछित विधियां सम्पन्न की जाएं, जैसे एक दिन पूर्व मांस रहित पवित्र भोजन कराकर और उसकी पूजा करके उसे पुष्पहार पहनाया जाए और चंदन से सुगंधित किया जाए।

''फिर उसका मुख उत्तर की ओर रखें, बलि-पशु के विभिन्न स्वामी देवों की पूजा की जाए। फिर नाम पुकार कर बलि-पशु की पूजा की जाए।

''इस प्रकार बलिदाता बलिपात्र की पूजा करें, वे मंत्र उच्चारे जो इस अवसर के लिए उपयुक्त हैं और जिनका पूर्व उल्लेख किया जा चुका है।

''किसी चौपाए पशु अथवा मादा पक्षी की या किसी स्त्री की बलि न चढ़ाएं, इस प्रकार बलिदाता नरक में जाता है। यदि पशु-पक्षी पर्याप्त संख्या में हैं तो मादा की बलि दी जा सकती है, किन्तु मनुष्यों के संबंध में क्षम्य नहीं।

''किसी ब्राह्मण अथवा चाण्डाल की बलि न दी जाए, न राजकुमारों की संतान की ही और न युद्ध में विजेताओं की, न ब्राह्मण और क्षत्रिय की संतान की, न संतानहीन भ्राता, न पिता की, न विद्वान की और न ही किसी अनिच्छुक व्यक्ति की। जो ऊपर गिनाए जा चुके हैं, उनके अतिरिक्त अज्ञात नाम के पशु-पक्षियों की बलि भी अनुकूल है। यदि उपरोक्त में कोई उपलब्ध नहीं है तो उनके स्थान पर गधे अथवा ऊंट की बलि दी जा सकती है। यदि अन्य पशु उपलब्ध है तो बाघ, ऊंट और गधे की बलि से परहेज किया जाए।

''जब बलिपात्र की पूजा कर ली जाए, चाहे वह मनुष्य हो, पशु हो अथवा पक्षी, तो पूर्वोक्त के अनुसार बलिदाता निर्धारित मंत्र का पाठ करें और देवता का आह्वान करते हुए बलि चढ़ा दें।

''मनुष्य का सिर देवी के दक्षिण में रखा जाए और बलिदाता देवी के सम्मुख खड़े होकर उनका आह्वान करें। पक्षी का रक्त बायीं और चढ़ाया जाए और पूजा करने वाले व्यक्ति के अंगों का रक्त सामने चढ़ाया जाए। मांसाहारी पशु अथवा पक्षियों के सिर से निकलने वाले रक्त रूपी अमृत, जल-जीवों के रक्त को बाएं हाथ से अर्पित करें।

मृग कच्छप दरियाई घोड़े और शशक का रक्त, सिर और मछली सामने चढ़ाई जाएं।

सिंह-मस्तक और दरियाई घोड़े का शीश और रक्त देवी के पीछे न चढ़ाया जाए, बल्कि दाएं, बाएं और सम्मुख चढ़ायें।

समर्पण दीप या तो दाएं हाथ में रखें अथवा सम्मुख किसी भी दशा में, बाएं हाथ में नहीं। सुगंधि बाईं ओर की जाएं या समक्ष किन्तु दाईं ओर नहीं। सुगंध, पुष्प और आभूषण सम्मुख रखे जाएं। जो विधि बताई है, उसका पालन किया जाए। अन्य पेयों के पश्चात् बाईं और मदिरा चढ़ाई जाए।

''यदि प्रेत-आत्माओं की पूजा नितांत अनिवार्य हो तो पहले वर्ग के तीन व्यक्तियों को पीतल-पात्र में नारियल का पानी, अथवा ताम्रपात्र में शहद दिया जाए। दैवी विपदा के समय भी, पहले तीन वर्गों के व्यक्ति मादक मदिरा भेंट चढ़ाएं जो पुष्पों से बनी नहीं होनी चाहिए अथवा दमपुख्त भोजन न परोसा जाए। राजकुमार, मंत्रीगण, अमात्य और कलाल धन-सम्पदा के लिए मानव-बलि चढ़ाएं।

''यदि राजकुमार की सहमति के बिना मानव-बलि चढ़ाई जाती है तो बलिदाता पाप करता है। युद्ध के अवश्यंभावी भय की दशा में बलि केवल राजकुमार या मंत्रियों द्वारा चढ़ाई जाए। किसी और के द्वारा नहीं।

''मनुष्य को बलि से एक दिन पूर्व मंत्र सुना कर और दैवी गंध से तैयार किया जाए और उसके शीश को कुल्हाड़ी से छुआएं। कुल्हाड़ी पर चंदन का लेप करें। फिर कुछ चंदन कुल्हाड़ी से छुड़ाएं और बलि-पात्र की गर्दन पर मलें।

''फिर अम्बे अम्बिका आदि का मंत्र पढ़ें। रौद्र और भैरव मंत्र पढ़ा जाए। इस प्रकार शुद्ध किए गए मनुष्य की देवी स्वयं रक्षा करेंगी, उसे कोई व्याधि नहीं होगी। शोकादि से उसका मानस भी विचलित नहीं होगा। उसके किसी परिजन की मृत्यु से भी उसकी शुचिता भंग नहीं होगी।

''बलि पात्र को रस्सी बांधकर और मंत्रों से रक्षित कर उसके सिर पर वार किया जाए और उसे सावधानीपूर्वक देवी को चढ़ाया जाए। यह बलियां शत्रुओं की संख्या

के अनुपात में हों, फिर शत्रु-विनाश के लिए मंत्र के साथ शत्रु की आत्मा उसमें डालकर कुल्हाड़ी से बलि-पात्र का सिर काटा जाए। बलि चढ़ जाने के बाद वह शत्रु का विनाश करेगी।

''पूजा के घोषित उद्देश्य के लिए ऐसे व्यक्ति का रक्त लिया जाए, जिसका शरीर और मन स्वच्छ तथा शुद्ध हो, भय-मुक्त हो। उसे कमल-दल में भर कर मंत्रोचार के साथ चढ़ाया जाए।

''रक्त यदि छुरे या कुल्हाड़ी से चीरा देकर निकाला जाता है तो यह शस्त्र के अनुपात के अनुसार सुखद होता है।

''बलि चढ़ाने वाला कमल-दल में उपस्थित रक्त की एक चौथाई मात्रा चढ़ाए परंतु किसी भी दशा में इससे अधिक नहीं होना चाहिए, शरीर का भाग आवश्यकता से अधिक नहीं काटा जाना चाहिए। जो अपना रक्त अथवा मांस स्वेच्छा से अर्पित करे। मांस के लिए वह अलसी, मांस, तिल अथवा मदिरा प्राप्त करे।''

जो इन नियमों के अनुसार बलि देता है, उसका मनोरथ पूरा होता है।

काली पुराण, धर्म का यह उपदेश देता है:

मनु द्वारा सदियों तक निर्दिष्ट अहिंसा तंत्रों द्वारा ध्वस्त कर दी गई, जिसका यह विकृततम रूप है। इसमें पशु और मानव हिंसा का प्रभुत्व है। हिंसा का यह उपदेश, जो *काली पुराण* के रुधिर आध्याय में दिया गया है, काफी प्रचलित हो गया था। पशु-बलि के पुनर्राम्भ के प्रमाण कलकत्ता के काली मंदिर में मिलते हैं। यह मंदिर पूरी तरह वधशाला बन गया है जहां हजारों बकरे, देवी काली को प्रसन्न करने के लिए चढ़ाए जाते हैं। यह *काली पुराण* के उपदेशों का परिचायक है। आजकल देवी काली को मनुष्य-बलि नहीं चढ़ाई जाती। परन्तु इसका यह अर्थ नहीं कि ऐसा कभी नहीं हुआ। इसके विपरीत ऐसे अनेक साक्ष्य हैं कि *काली पुराण* के उपदेशों के अनुसार पशु-बलि की तरह ही मानव-बलि दी जाती थी। डॉ. राजेन्द्रलाल मित्र ने लिखा है:[1]

''यह सर्वविदित है कि बहुत समय तक यह पूजा (मनुष्य-बलि) पूरे हिन्दुस्तान में आम बात थी। ऐसे लोगों का अभाव नहीं है, जिन्हें संदेह है कि भारत में कुछ ऐसे स्थल हैं, जहां देवी को प्रसन्न करने के लिए कभी-कभार आज भी मनुष्य की बलि दे दी जाती है। वामाचारियों से संबद्ध पुराने परिवारों में, जिनके पूर्वजों ने दुर्गा

---

1. इंडो-आर्यन्स, भाग 2, पृ. 109-111

और काली-पूजा में विधिपूर्वक मानव-बलियां दी थीं, आजकल भी जीवित मनुष्यों के स्थान पर उनके पुतलों की बलि चढ़ाई जाती है। एक फुट ऊंचा पुतला खोए से बनाया जाता है और काली पुराण की विधि के अनुसार उसका बलिदान किया जाता है। अंतर केवल इतना है कि उस पुतले में प्राण-प्रतिष्ठा के लिए कुछ मंत्र और जोड़ दिए गए हैं। चौबीस परगना के मेरे डिप्टी कलेक्टर मित्र बाबू हेमचन्द्र केर ने बंगाल में पटसन संस्कृत पर एक उत्तम पुस्तक लिखी है उन्होंने मुझे बताया कि बंगाल के पूर्वी क्षेत्रों में इस प्रकार की बलि प्रायः दी जाती है। परन्तु पुतला एक व्यक्ति द्वारा न काटा जाकर परिवार के सभी वयस्क लोगों द्वारा एक साथ काटा जाता है। वे या तो अलग-अलग चाकुओं से एक साथ वार करते हैं अथवा एक ही चाकू को संयुक्त रूप से पकड़ते हैं। इसे शत्रुबल कहा जाता है। नरबलि और शत्रुबलि गुप्त रूप से मध्यरात्रि में दी जाती है। बहरहाल, शत्रुबलि *कालिका पुराण* की नरबलि से एक भिन्न पूजा है, इसका निर्देश वृहन्नला तंत्र में हैं, जिसमें कहा गया है कि उल्लिखित अन्य पूजाएं सम्पूर्ण हो जाने के बाद राजा को खोए से बने अपने शत्रु (पुतला स्वरूप) की बलि देनी चाहिए। उसे अग्नि के समान दहकती आंखों से देखें। भरपूर वार करें और एक ही बारी में उसके दो टुकड़े कर दें। इससे पूर्व उसकी प्राण-प्रतिष्ठा कर ली जाए और जिस व्यक्ति का विनाश किया जाना है, उसका नाम लिया जाए। ओ महेश भार्या! उसके शत्रु का नाश कर।''

इस संबंध में यह जानना महत्वपूर्ण है कि काली शिव की पत्नी हैं। प्रश्न यह है कि क्या शिव पशुबलि स्वीकार करते हैं? उत्तर यह है कि एक समय शिव पशु-बलि पर निर्भर थे। आज के शिवभक्तों को यह बात अनोखी लग सकती है। परन्तु यह यथार्थ है और जो कोई इसका प्रमाण चाहे, वह आश्वलायन गृह्यसूत्र देखें जिसमें शिव की संतुष्टि के लिए वृषभ की बलि का विस्तृत विवरण है। मैं इस आश्वलनायन गृह्य-सूत्र[1] का यथावत पाठ प्रस्तुत करता हूं। उसका कथन है:

1. अब छिद्रित वृषभ (रुद्र के लिए) बलि चढ़ाया जाता है।
2. आर्द्रा-नक्षत्र में अथवा वसंत में।
3. अपने झुण्ड में समाविष्ट।
4. (वृषभ) न कोढ़ी और न ही चितला।
5. कुछ के मत में काली चित्ती वाला।

---

1. सैक्रेड बुक्स ऑफ दी ईस्ट (एस.बी.ई.) भाग 29, पृ. 255-259 (मैक्समूलर)।

6. यदि वह चाहे, काला, यदि इच्छा हो तो ताम्रवर्णी।
7. वह उस पर पानी छिड़कता है, जिसमें उसने चावल और जौ डाले होते हैं।
8. सिर से पूंछ तक (सर्वांग)।
9. मंत्र (सहित) महान देव रुद्र के लिए तैयार हो जा।
10. वह उसे बड़ा होने दे, जब उसके दांत आ जाएं अथवा वृषभ बन जाए।
11. उस क्षेत्र में जो विशिष्ट रूप से शुद्ध हो।
12. ऐसे स्थान पर जो गांव से दिखाई न दे।
13. मध्यरात्रि के पश्चात्।
14. कुछ के मत में सूर्योदय के पश्चात्।
15. फिर पूजा के ज्ञाता ब्राह्मण को बिठाएं। इससे पहले पेड़ के पत्तीदार तने से बलिखम्ब बनाएं, उसमें दो लताओं अथवा कुश की दो रस्सियां मेखला की तरह बांधें। एक सिरा बलि-पशु के सिर के मध्य में बांधें। फिर वही मंत्र बोलें कि जिसकी बलि के लिए लाया गया है, उसकी सहमत् से मैं तुम्हें बांधता हूं।
16. पानी का छींटा उसी प्रकार दिया जाएगा जैसे पशु-बलि में दिया जाता है।
17. हमें भिन्नता बचानी होगी।
18. फिर श्रुतानुसार पत्री के साथ बलि दी जाए।
19. (मंत्र) के साथ ''तव हर, मृदा, सर्व शिवा, भव, महादेव, उग्र, भीम, पशुपति, रुद्र, शंकर, ईशाना स्वाहा''।
20. अथवा अंतिम छ (सूत्र के)।
21. अथवा मंत्र ''तव रुद्र स्वाहा''।
22. फिर चारों दिशाओं में बलि अर्पित करें। मंत्र का भाव है ''रुद्र, यह भेंट तुझे प्रस्तुत है। तू मुझे हानि न पहुंचा।'' इस प्रकार चारों दिशाओं में भेंट चढ़ाई जाए।
23. निम्नांकित मंत्रों से चारों दिशाओं की पूजा की जाए ''रुद्र हम क्या करें''। ''यह प्रार्थना रुद्र के लिए हैं'' ''हे पिता तेरे लिए'' ''अति नमन के साथ ये गीत रुद्र के लिए है''। (*ऋग्वेद* 1. 43, 114, 11, 33 सप्तम 46)

24. रुद्र के लिए सभी बलियों के समय इस क्षेत्र-पूजा की जाए।
25. (चावल की) पुआल और भूसी, पूंछ और खाल, सर, पैर, (बलि दिए गए पशु के) अग्नि में डाले जाएं।
26. समवात्य के अनुसार खाल का कुछ उपयोग किया जाए।
27. अग्नि के उत्तर में दूर्बा घास पर या कुशा के घेरे में (बलि दिए गए पशु का) रक्त चढ़ाया जाए। उसके मंत्र का भाव है, फुफकारने वाले, गर्जनवाले, ढूंढने वाले, जकड़ने वाले सरिसृप जो यहां है, यह तेरे लिए है, इसे ग्रहण कर"।
28. फिर उत्तर की ओर घूमकर, जो सरिसृप के लिए नियत है, कहें- फुफकारने वाले सरिसृप, यहां जो कुछ है, तेरे लिए है, इसे ग्रहण कर।
29. बलिदाता जानता है कि सभी नाम, सभी आयोजक, सारी उत्तेजना से वह प्रसन्न होता है।
30. उन व्यक्तियों की भी वह हानि नहीं करेगा जो पूजा में बैठते हैं। ऐसा समझा जाता है (श्रुति में)।
31. वह बलि के भाग में साझीदार नहीं होगा।
32. वह बलि से संबद्ध कोई पदार्थ गांव में नहीं ले जाएंगे।
33. वह बलि-स्थान से अपने लोगों को दूर रखेंगे।
34. पर वे एक निर्दिष्ट अवसर पर वह (बलि के भोजन) से भाग ले लें, वह सौभाग्यशाली होगा।
35. कटे हुए वृषभ की बलि से धन, क्षेत्र, शुद्धता, पुत्र, पशु, दीर्घायु, दीप्ति मिलती है।
36. बलिदान के पश्चात् वह अन्य पशु न खाए।
37. उसे ऐसे पशुओं का अभाव नहीं रहेगा।
38. फिर वह पशु-विहीन नहीं रहेगा-ऐसा जाना जाता है (श्रुति में)।
39. वह संततीय मंत्र जपता हुआ अपने घर जाए।
40. यदि उसके पशुओं को व्याधि हो तो वह गोशाला में ही उसी देव के लिए बलि दे।

41. पके भोजन का भोग जो उसने बलि में चढ़ाया।
42. बलि–स्थल की घास और अग्य आग में डाल दिया जाए, और वह अपनी गायों को धुएं के बीच से निकालें।
43. संततीय मंत्र पढ़ते हुए वह पशुओं के बीच जाएं।
44. शौनक को नमन–शौनक को नमन।

आजकल शिव, पशु–बलि स्वीकार नहीं करते। शिव–पूजा का यह रूप अहिंसा स्वीकार करने के पश्चात् बदला है। हिंसा से अहिंसा अपनाने के बाद ब्राह्मणों ने शिव को हिंसक से अहिंसक बना डाला। शिव के अहिंसक देवता बन जाने के बहुत बाद काली–पूजा आरम्भ हुई। कुछ भी हो, उनकी पत्नी काली हिंसक देवी बन गई। परिण ाम यह हुआ कि हमें अहिंसक (रक्तपातहीन) देवों को पत्नी रूप में क्रूर–रक्तपिपासु स्त्रियां (देवियां) मिलीं। क्या यह पहेली नहीं? ब्राह्मणों ने ऐसा क्यों किया?

परिशिष्ट-1

वेदों की पहेलियां

वेद हिंदुओं के पवित्र ग्रंथ हैं। उनके संबंध में अनेक प्रश्न उठते हैं। उनकी उत्पत्ति कहां से हुई? उनका सृष्टा कौन है? उनकी सार्वभौमिकता क्या है? ये कुछ प्रश्न हैं।

हम पहले प्रश्न से आरम्भ करते हैं। हिंदुओं के अनुसार, वे सनातन हैं जिसका अर्थ है, वे अनादि-अनंत है, जब कि *अथर्ववेद* से यह कथन मेल नहीं खाता है। फिर इसका कोई औचित्य नहीं। *अथर्ववेद* कहंता है:[1]

"काल से ऋक् ऋचाएं प्रस्फुटित हुई और यजु काल से उपजा।" किन्तु और भी विचार उपलब्ध हैं जो इससे बिलकुल भिन्न हैं।

अथर्ववेद से लेकर यह ध्यान देने योग्य है कि वेद में इस विषय पर दो अन्य प्रसंग हैं। इनमें प्रथम बहुत विवेकपूर्ण नहीं है। वह यह है:[2]

"बता वह स्कंभ कौन है? जो आदि ऋषियों, ऋक, साम, यजु, पृथ्वी और ऋषियों का पालक है ......20। बता वह स्कंभ कौन है जिससे ऋक (ऋचाएं) प्रस्फुटित हुई, जहां से वे यजुस में समाहित हुए, जिससे साम मंत्र उत्पन्न हुए अथर्वन और आंगिरस की वाणी क्या है?"

अथर्ववेद में जो दूसरा भाष्य आया है, उसके अनुसार वेद इन्द्र[3] से प्रस्फुटित हुए।

ऋग्वेद का भाष्य पुरुष सूक्त में उपलब्ध है। इसके अनुसार एक विराट यज्ञ हुआ जिसमें एक रहस्यमय जीव "पुरुष" की बलि चढ़ाई गई। उस "पुरुष" की बलि से

---

1. *अथर्ववेद*, 19.54.3
2. म्यूर द्वारा *संस्कृत टैक्स्ट* में उद्धृत, भाग 3, पृ. 3
3. वही।

यह सामग्री लेखक की प्रस्तुत अंग्रेजी पुस्तक के अध्याय 2 से 6 के अंतर्गत आ चुकी है। अंग्रेजी में इकसठ टंकित पृष्ठ प्राप्त हुए थे जिनका संशोधन नहीं किया गया था। यह सामग्री टंकित कार्बन कापी का अनुवाद है। - संपादक

तीन वेद ऋक्, साम और यजु का आविर्भाव हुआ।

सामवेद और *यजुर्वेद* में वेदों की उत्पत्ति का प्रसंग नहीं है।

इसके पश्चात् के ब्राह्मण ग्रंथों में *शतपथ ब्राह्मण, तैत्तरीय ब्राह्मण, ऐतरेय ब्राह्मण* और *कौषीतकि ब्राह्मण* में ऐसे प्रयास दृष्टिगोचर हैं जिनमें वेदों की उत्पत्ति की व्याख्या की गई है।

शतपथ ब्राह्मण में कई व्याख्याएं है। यह वेदों की उत्पत्ति का श्रेय प्रजापति को देता है। उसके अनुसार प्रजापति ने अपने तप से जगत, धरती, वायु और आकाश बनाए। उन्होंने इन तीनों में ऊष्मा संचारित की। इस ऊष्मा से तीन तेज उत्पन्न हुए। अग्नि, वायु और सूर्य। उसके ताप से तीन वेद उत्पन्न हुए। अग्नि से *ऋग्वेद*, वायु से ययुर्वेद और सूर्य से सामवेद।

ऐतरेय और कौषीतकि ब्राह्मण की भी यही व्याख्या है। *शतपथ ब्राह्मण*[1] ने प्रजापति से वेदों की उत्पत्ति बताई है। भाष्य के अनुसार प्रजापति ने जल से तीन वेद बनाए। *शतपथ ब्राह्मण* कहता है–

''पुरुष प्रजापति की इच्छा हुई, ''मेरी अभिवृद्धि हो, मेरा विस्तार हो''। वे उपासना में बैठ गए, उन्होंने घोर तप किया। इस तप से उन्होंने सर्वप्रथम पवित्र ज्ञान, त्रिवैदिक विज्ञान की रचना की। यह उनका आधार बना। उन्होंने कहा ''प्रज्ञा ब्रह्माण्ड'' का मूल है।'' वेदों के ज्ञान के पश्चात् पुरुष को आधार मिला क्योंकि प्रज्ञा उनका मूल है। इस आधार पर प्रजापति ने घोर तप किया। उन्होंने वाक् (वाणी) से जल का निर्माण किया। उसके विस्तारण से जल अप्प कहलाया। उसकी सर्वत्र व्यापकता से वह ''वारि'' बना। उन्होंने चाहा, मेरा जल से विस्तार हो। इस त्रिवेद विज्ञान से वे जल में प्रविष्ट हुए। तब एक अण्डज उभरा। उन्होंने उसे प्राणवान किया और कहा– ''भव भव पुनर्भव। जब प्रज्ञा का जन्म हुआ। त्रिवेद विज्ञान। फिर पुरुष ने कहा प्रज्ञा ब्रह्मांड की प्रथम सृष्टि है। पुरुष के समक्ष सर्वप्रथम प्रज्ञा की रचना हुई, इसलिए यह उसका मुख बनी। उसे वेद ज्ञाता की संज्ञा दी गई। इस प्रकार आगे वे कहते हैं। वह अग्नि के समान है क्योंकि प्रज्ञा अग्नि का मुख है।''

''क्योंकि अग्नि आर्द्र काष्ठ से उत्पन्न हुई थी। उससे भांति-भांत के धूम्र उभरे। वह परमात्मा का श्वास है, *ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद, अथर्व,* आंगिरसों, इतिहास, पुराण, विज्ञान, उपनिषद्, श्लोक, सूक्त, विभिन्न राजाओं के भाष्य – ये सब उसका श्वास हैं।''

---

1. म्यूर, *संस्कृत टैक्स्ट*, खंड 3, पृ. 8

शतपथ ब्राह्मण में तीसरी व्याख्या है:[1]

''मैंने तुझे सागर में स्थापित किया, वहीं तेरा आसन है। मस्तिष्क सागर है। मानस सागर से वाच द्वारा भगवान ने बेलचे से त्रिवैदिक विज्ञान को खोदकर निकाला। तत्पश्चात् इस मंत्र का उच्चारण किया। प्रज्ञावान देवता जाने, इस आहुति सामग्री को उन्होंने कहां रखा? जिसे ईश्वर ने तेजधार बेलचे से खोदकर निकाला था। मस्तिष्क समुद्र है। वाच तीव्र बेलचा है। त्रिवैदिक विज्ञान समिधा है। इस संदर्भ में मंत्र को उच्चारा। वह मस्तिष्क में समा गया।''

तैत्तरीय ब्राह्मण की तीन व्याख्याएं है। वह कहता है, वेदों के कर्त्ता प्रजापति हैं। वह कहता है प्रजापति ने राजा सोम को बनाया और तत्पश्चात् तीन वेदों की रचना की गई[2]। इस ब्राह्मण की दूसरी व्याख्या[3] का प्रजापति से कोई तात्पर्य नहीं। इसके अनुसार:

''वाच अविनाशी है। वह पूजा में प्रथम प्रसूत है। वेदों की जननी और अमरता का केन्द्र बिन्दु। हममें आनंद स्रजित कर वह यज्ञ बन जाती है। रक्षा की देवी सरस्वती में मेरे आह्वान को सुनने को उद्यत हो। मेधावान ऋषि, मंत्रों के सृष्टा, देवगण जिनका अनुग्रह तप और कठोर उपासना से प्राप्त करते हैं।''

इस सबके ऊपर *तैत्तरीय ब्राह्मण* तीसरी व्याख्या देता है। वह कहता है कि वेद प्रजापति की दाढ़ी से उत्पन्न हुए।

उपनिषदों में भी वेदों की उत्पत्ति की व्याख्या की गई है।

छांदोग्य उपनिषद की व्याख्या *शतपथ ब्राह्मण* के समान है। अर्थात् *ऋग्वेद* अग्नि से उत्पनन हुआ, *यजुर्वेद* वायु से और *सामवेद* सूर्य से उत्पन्न हुआ।

बृहदारण्यक उपनिषद ने जो *शतपथ ब्राह्मण* का अंग है, अलग कथा कही है:

''प्रजापति द्वारा जिनका मृत्यु या यम के साथ तादात्म्य है वाच की रचना कही गई है और उसके माध्यम से आत्मा के साथ वेदों सहित सभी तत्वों का सृजन हुआ। उसी वाच और आत्मा से उसने सबका सृजन किया चाहे वह *ऋग्वेद* हो, यजुस, साम, छंद, यज्ञ या विभिन्न जीव-जंतु हों।''

''तीन वेद तीन तत्व हैं, वाच, मानस और श्वास। वाच *ऋग्वेद* है, मानस *यजुर्वेद* है और श्वास *सामवेद*।''

---

1. म्यूर, *संस्कृत टैक्स्ट*, भाग 1, पृ. 9-10
2. म्यूर, खंड 1, पृ. 8
3. वही पृ. 10

अब हम स्मृतियों पर आते हैं। *मनुस्मृति* में वेदों की उत्पत्ति के विषय में दो सिद्धांत हैं। एक स्थल पर कहा गया है कि वेदों का कर्त्ता ब्रह्मा है।

''हिरण्यगर्भ उसी ब्रह्मा ने सभी के नाम कर्म तथा लौकिक व्यवस्था को पहले वेद शब्दों से जानकर पृथक्-पृथक् बनाया उस ब्रह्मा ने इन्द्रादिदेव, कर्म, स्वभाव, प्राणी-अप्राणी, पत्थर आदि साध्यगण और सनातन यज्ञ की सृष्टि की। उस ब्रह्मा ने यज्ञों की सिद्धि के लिए अग्नि, वायु और सूर्य से नित्य *ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद* को क्रमशः प्रकट किया।

एक अन्य स्थान पर यह माना गया लगता है कि प्रजापति वेदों के सृष्टा हैं जो निम्नलिखित से प्रकट हैं:

''प्रजापति ने तीन वेदों से तीन अक्षर लिए अ, उ, म साथ ही भू, भुवह, और स्व लिया। उसी परम पुरुष प्रजापति ने तीन वेदों से कुछ अंश लिए सावित्री (अथवा गायत्री) आरम्भ में शब्द तत् लिया .... तीन अविनाशी अंशों (भू भुवहस्व) से बना ओउम और गायत्री के तीन चरण ब्रह्मा का मुख माने जाते हैं।''

यह जानना भी रोचक है कि पुराणों ने वेदों के विषय में क्या कहा है? *विष्णु पुराण* कहता है:

''ब्रह्मा ने अपने पूर्वी मुख से गायत्री को बनाया, ऋग् मंत्रों, त्रिवृत समरथांतर तथा यज्ञ और अग्निस्तोम को रचा। अपने दक्षिणी मुख से उन्होंने यजुस मंत्रों को उत्पन्न किया। त्रिष्टुप छंद, पंचदश स्रोम, बृहत् साम और उकथ्य की रचना की। पश्चिमी मुख से साम छंदों और जगति मंत्रों को रचा, सप्तदश स्रोम, वैरूप और अतिरात्र की रचना की। अपने उत्तरी मुख से उन्होंने एकाविंश और अथर्वन् अपतोर्यमन की अनुष्टुप और विराज छंदों में रचना की।''

भागवत पुराण का मत है:

''एक बार चतुर्मुख सृष्टा के मुख से वेदों का प्रस्फुटन हुआ जबकि वे समाधि में लीन थे। मैं सम्पूर्ण विश्व की पूर्ववत रचना कैसे करूं?.......... उन्होंने अपने पूर्वी तथा अन्य मुखों से स्तुति, यज्ञ, मंत्रों और प्रायश्चित सहित ऋक्, यजुस, साम, अथर्वन की सृष्टि की।''

मार्कण्डेय पुराण का मत है-

''1. ब्रह्मा के पूर्व मुख का अगोचर प्रस्फुटन हुआ, उससे एक विभाजन अंडज से समृद्ध ऋचाएं उपजीं, 2. जो पाटल के पुष्प समान, मेधावी परस्पर विभाजनीय होते हुए भी गुथी हुई और रजस गुणों के सदृश्य। 3. उनके दक्षिण मुख से उन्मुक्त यजुस

ऋचाएं फूटीं। कुंदन वर्ण और विभक्त, 4. परम ब्रह्मा के पश्चिमी मुख से साम मंत्र और छंद निस्रत हुए, 5 और 6. वेदों (ब्रह्मा) के उत्तरी मुख से श्यामल मधुमक्खियां और काजल जैसे वर्ण का अथर्वन प्रकट हुआ, जिसकी प्रवृति एक बार भयावह और अभयावह, सम्मोहन को निष्प्रभावी करने में सक्षम निर्विकार और अंधकार दोनों गुणों से युक्त और सुरम्य तथा वपरीत, 7. ऋक् के मंत्र राजसी गुण सम्पन्न यजुस के सात्विक, साम के तामसी और अथर्वन के तामसिक तथा सात्विक दोनों गुण हैं।''

हरिवंश, ब्रह्मा और प्रजापत दोनों सिद्धांतों का पक्षधर है:

''विश्व के विस्तार हेतु ब्रह्मा समाधिस्थ हो गए, चन्द्रमा से ज्योति पुंज निस्रत कया, गायत्री के हृदय में प्रवेश किया, उसके नेत्रों के मध्य में प्रविष्ट होते हुए। उससे तब एक नर रूप चतुष्पद की सृष्टि की, जो ब्रह्मा की तरह द्युतिमान्, अकथनीय, अजर–अमर, अविकारी और निर्गुण, विलक्षण प्रतिभा संपन्न, चंद्र किरनों की तरह निर्मल, प्रदीप और अक्षर युक्त था। परमेश्वर ने ऋग्वेद की रचना की, साथ ही अपने नेत्रों से यजुस, अपनी जिह्वा से सामवेद, और अपने मत्सक से अथर्वन रचा। इन वेदों ने अपनी सृष्टि के साथ ही अपना आकार (क्षेत्र) ग्रहण कर लिया। उसमें वेदों की प्रवृत्तियां उत्पन्न हो गईं, क्योंकि उन्हें विंदांती प्राप्त हुई। तब इन वेदों ने पूर्व–स्थित अनादि–अनंत ब्रह्म (पावन–विज्ञान) का सृजन किया, स्वमेधा जनित गुणों से दिव्य ब्रह्माण्ड रूप धारण किया।''

यह प्रजापति को सृष्टा स्वीकार करता है। यह कहता है कि जब परमपुरुष ने अपने मुख से ब्रह्मांड और हिरण्यगर्भ की रचना की और अपने को विखण्डित करने की इच्छा की उन्हें संदेह था कि यह कैसे होगा।

हरिवंश आगे कहता है:

''जब वह इस प्रकार प्रतिबिम्बित हो रहे थे, तो उनके मुख से ओ३म शब्द निकला। जो पृथ्वी, वायु और आकाश में प्रतिध्वनित हुआ। जब देवाधिदेव ने इसका बार–बार उच्चारण किया तो उनके चित् से मस्तिष्क का सत्व सक्रिय हुआ। उनके हृदय से वषट्कार उद्धेलित हुआ। तब पवित्र और परमोत्कर्ष व्याहृतियां भू, भव, स्व से महान स्मृति बनी, जो पृथ्वी, वायु और आकाश से ध्वनि रूप में परिवर्तित हुई। तब देवी उत्पन्न हुई, श्रेष्ठतम छंद बने। चौबीस पदीय (गायत्री) की रचना हुई। दैवी शब्द तत् से परमेश्वर ने सावित्री रची। तब उसने ऋक्, साम, यजुर्वेद और अथर्वन आदि वेदों, उनकी प्रार्थनाओं और संस्कारों की रचना की।''

वेदों की सृष्टि के संबंध में ग्यारह विभिन्न व्याख्याएं हैं: 1. पुरुष के रहस्यात्मक

यज्ञ से, 2. स्कंभ से, 3. उनके प्रत्यंगों से जैसे उनके केश और मुख, 4. इन्द्र से, 5. काल से, 6. अग्नि, वायु और सूर्य से, 7. प्रजापति के विस्तारण और जल से, 8. ब्रह्मा की श्वास से, 9. परमेश्वर द्वारा मानस सागर की खुदाई से, 10 प्रजापति की दाढ़ी से, 11. वाच के प्रस्फुरण से।

एक साधारण से प्रश्न का इस तरह को बढ़ाचढ़ाकर भ्रामक उत्तर एक पहेली है। इन सब प्रश्नों का उत्तर देने वाले ब्राह्मण हैं। वे सभी वैदिक परम्परा के दास हैं। वही प्राचीन धार्मिक कथाओं के संरक्षक हैं। वे इस सीधे सवाल का फिर ऐसा बेसिर पैर का अस्पष्ट उत्तर क्यों देते हैं?

II

वेदों का रचयिता कौन है? हिंदुओं का विश्वास है कि वेद दैवी रचना है। तकनीकी शब्दावली में वेद अपौरुषेय हैं, अर्थात् मानवेंतर हैं।

इस विश्वास का साक्ष्य क्या है? प्राचीन संस्कृत साहित्य में एक रचना है अनुक्रमणी। वैदिक साहित्य के विभिन्न अंगों का इसमें व्यवस्थित संकेत हैं। प्रत्येक वेद की एक अनुक्रमणी है। कहीं-कहीं एक से अधिक भी हैं। *ऋग्वेद* की सात अनुक्रमणी उपलब्ध हैं। इनमें से पांच शौनक की, एक कात्यायन की और एक किसी अज्ञात लेखक की तैयार की हुई है। *यजुर्वेद* की तीन हैं। इसकी तीन शाखाओं में से प्रत्येक की एक है। ये हैं, आत्रेयी, चारण्या और मध्यांदिन। *सामवेद* की दो अनुक्रमणी हैं। एक का नाम आर्शेय ब्राह्मण है और एक का नाम परिशिष्ट है। *अथर्ववेद* की एक अनुक्रमणी है। इसका नाम बृहत सर्वानुक्रमणी है।

प्रो. मैक्समूलर के अनुसार सबसे पूर्ण अनुक्रमणी कात्यायन की ऋग्वेद के लिए सर्वानुक्रमणी है।

इसकी महत्ता इस कारण है कि 1. इसमें प्रत्येक मंत्र का प्रथम शब्द दिया है, 2. मंत्रों की संख्या है, 3. संकलनकर्ता ऋषि, उसकी परम्परा का नाम, 4. देवता का नाम और 5. प्रत्येक छंद का नाम दिया है। सर्वानुक्रमणी के संदर्भ से यह आभास मिलता है कि विभिन्न ऋषियों ने मंत्रों की रचना की और उनका सम्पूर्ण संकलन *ऋग्वेद* बना। *ऋग्वेद* की अनुक्रमणी के अनुसार यह साक्ष्य मिलता है कि यह वेद पौरुषेय है। अन्य वेदों के विषय में भी यही निष्कर्ष हो सकता है।

अनुक्रमणी यथार्थ है। यह *ऋग्वेद* के मंत्रों से पता चलता है जिसमें ऋषि अपने को वेदों का संयोजक मानते हैं। कुछ उदाहरण निम्नलिखित हैं:

''कण्वों ने तुम्हारे लिए प्रार्थना की, उनकी स्तुति सुनो''

‘‘हे इन्द्र! अश्वों के सारथी अपने प्रभावोत्पादकता हेतु गौतम का मंत्र सुनो’’

‘‘तेरे तेजवर्धनार्थ हे ऐश्वर्यवान अश्विन! मानस द्वारा प्रभावोत्पादक मंत्रों की रचना की गई है।’’

‘‘हे अश्विन! यह सार्थक उपासना मंत्र तेरे लिए गृत्समद ने उच्चारा है।’’

‘‘हे इन्द्र! तू प्राचीन है, जो अश्वों को जोतता है, तेरे लिए गौतम के वंशज नोधाओं ने नया मंत्र रचा है।’’

‘‘सो हे पुरोधा! प्रश्रय हेतु गृत्समद ने मंत्र रचा है, जैसे मनुष्य निर्माण करता है।’’

‘‘ऋषियों ने इन्द्र के लिए एक प्रभावोत्पादक रचना की है और प्रार्थना की है।’’

हे अग्नि! यह मंत्र तेरे लिए रचा है अपनी गउओं और अश्वों का सुख भोग।’’

‘‘हमारे पता इन्द्र के मित्र अयाश्य ने सप्त शीर्ष पवित्र सत्यज इस चौथे महान मंत्र का आह्वान किया है।’’

‘‘हम रहुगणों ने मधुभाषी अग्नि के लिए मंत्रोच्चार किया है। उसका गुणगान करते हैं।’’

‘‘सो आदित्यो, अदितयों और सत्ता–सम्पन्न गण प्लाति पुत्र ने तुम्हारी स्तुति की है। गया ने स्वर्गीय देवों की प्रशस्ति गाई है।’’

‘‘इसी को वे ऋषि पुरोहित यज्ञकर्ता कहते हैं, स्तुति गायक, मंत्रोच्चारक कहते हैं। वही (अग्नि के) तीन शरीरों को जानता है। वही वरदानों की पूर्ति करने वाला प्रमुख है।’’

अनुक्रमणिकाओं के अतिरिक्त और भी साक्ष्य हैं, जिनसे पता चलता है कि वेद अपौरुषेय नहीं हैं। ऋषि वेदों को मानवकृत और ऐतिहासिक रचना मानते हैं। *ऋग्वेद* के मंत्र पूर्ववर्ती और तत्कालीन मंत्रों के बीच भेद करते हैं। उनमें से कुछ इस प्रकार हैं:

‘‘अग्नि जिसकी पूर्ववर्ती और साथ ही वर्तमान ऋषि भी स्तुति करते हैं, देवों को इधर आमंत्रित करेगी।’’

‘‘पूर्ववर्ती ऋषि ने संकटमोचन हेतु तेरा आह्वान किया।’’

‘‘मुझ वर्तमान ऋषि की ऋचाएं सुनो, इस वर्तमान (ऋषि) की।’’

‘‘इन्द्र! तू पूर्ववर्ती ऋषियों के लिए एक आह्लाद था, जिन्होंने तेरी अर्चना की।

जैसे पिपासु के लिए जल। इस मंत्र द्वारा मैं तेरा पुनः पुनः आह्वान करता हूं।’’

‘‘पूर्ववर्ती ऋषयों, देदीप्यमान मुनियों ने बृहस्पति के सम्मुख आह्लादपूर्ण स्वर में प्रस्तुत किया।’’

‘‘हे माधवन किसी पूर्ववर्ती या परवर्ती पुरुष आवा वर्तमान पुरुष में इतना पराक्रम नहीं।’’

‘‘क्योंकि (इन्द्र के) पूर्ववर्ती आराधक हम हो सकते हैं, वे निष्कलंक, अप्राप्य और अनाहूत थे।’’

‘‘हे शक्तिमान देव! इस हेतु लोग तेरे आराधक हैं, जैसे कि पूर्ववर्ती मध्य-युगीन और परवर्ती तेरे मित्र थे और हे परम आहूत, सभी वर्तमान वय वालों की सोच’’

‘‘इन्द्र के लिए हमारे पूर्व पिता सात नवगव ऋषि अपने मंत्रों में भोजन की याचना करते हैं।’’

‘‘हमारे नवीनतम मंत्र से गौरवान्वित हो, क्या आप हमें सम्पदा और संतत सहित भोजन देंगे?’’

ऋग्वेद के गहन अध्ययन से पता चलेगा कि उसके पुराने और नए मंत्रों के बीच अंतर है। उनमें से कुछ निम्न प्रकार है:

‘‘हमारे नवीनतम मंत्र से गौरवान्वित हो, तुम हमें सम्पदा और संतति सहित भोजन प्रदान करो।’’

‘‘हे अग्नि! तूने देवताओं के मध्य हमारी नवीनतम मंत्र आहुति की घोषणा की थी।’’

‘‘हमारे नवीन मंत्रों से तेरा वेग बढ़ेगा। नगर विध्वंसक, पुरंदर हमें प्राणवान आशीर्वाद दें।’’

‘‘शक्ति पुत्र अग्नि को मैं एक नवीन ऊर्जावान मंत्र अर्पित करता हूं जो भाव-वाणी के माध्यम से अभिव्यक्त किया गया है।’’

‘‘जो नवीन अभिव्यक्ति अभी प्रस्फुटित हुई है, उसके द्वारा मैं शक्तिमान संरक्षक को मानस रचना प्रदान करता हूं।’’

‘‘हमारी सहायता हेतु गर्जन करने वाले पुंगव नया मंत्र तुझे उद्बोधित करे।’’

‘‘मैं पूर्वजों की भांति नवीन मंत्र द्वारा तुझे उत्प्रेरित करना चाहता हूं।’’

‘‘तेरी स्तुति में जो नए मंत्र रचे हैं, उनसे तू संतुष्ट हो।’’

‘‘हे सोभारी, इन युवा शक्तिमान, देदीप्यमान, और बुद्धिमान देवों के लिए नए मंत्रों का उच्चारण कर।’’

‘‘गर्जन करने वाले वृत्रहंता इन्द्र! हम अनेक ने तेरे लिए कई मंत्र रचे हैं, जो सर्वथा नवीन हैं।’’

''मैं इस प्राचीन देव को सम्बोधित करूंगा, मेरी नई स्तुति, जिसकी उसे इच्छा है उसे वह सुने।''

''हम अश्वों, पशुधन और सम्पदा की कामना से तेरा आह्वान करते हैं।''

इतने साक्ष्य प्रस्तुत करने पर यह सिद्ध होता है कि वेदों की रचना मनुष्य ने की है जबकि ब्राह्मणें ने कंठशक्त से यह प्रचारित किया कि वेद मानव-रचित नहीं हैं जो एक पहेली है। ब्राह्मणों द्वारा यह प्रचार किस उद्देश्य से किया गया?

III

वेदों की सत्ता क्या है? हिंदुओं में इसके संबंध में दो भिन्न मान्यताएं हैं। पहली यह कि वेद सनातन हैं। इस मान्यता की विवेचना न कर हम इस प्रश्न पर विचार करते हैं क ऐसे मत का औचित्य क्या है? यदि हिंदुओं को विश्वास है कि वेद विश्व के प्राचीन रचित ग्रंथ हैं तो इस पर कोई विवाद नहीं कर सकता। परन्तु इस अद्‌भुत विचार को युक्तिसंगत ठहराने का कोई आधार नहीं है कि ये अनादि हैं। एक बार यह प्रमाणित हो जाने पर कि ऋषि वेदों के सृष्टा हैं तो यह प्रमाणित करने की कोई आवश्यकता नहीं रह जाती कि वेदों का आरम्भ उस काल से मेल खाता है, जब ऋषि हुआ करते थे। यह कहने से कि ऋषि वेदों के सृष्टा हैं यह मान्यता अनर्गल है कि वेद सनातन हैं।

इस मान्यता को जीवित रखने के लिए जो तर्क दिए गए हैं वे भी हास्यास्पद ही हैं।

सर्वप्रथम, यह उल्लेखनीय है कि यह मान्यता निराधार है कि वेदों की रचना परमात्मा ने की है। यह विश्वास नैयायिकों ने जमाया। परन्तु ऐसा लगता है कि पूर्व मीमांसा के प्रणेता जैमिनि के विचारों की हिंदुओं में मान्यता है और वे इस बात के पक्ष में नहीं हैं। मीमांसकों का यह उद्धरण उल्लेखनीय है।

''किन्तु (मीमांसक पूछता है) अमूर्त परमेश्वर ने किस प्रकार वेदों को अभिव्यक्त किया? जिसका तालु और उच्चारण का अन्य अंग नहीं है। इस कारण यह स्वीकार नहीं किया जा सकता कि उसने शब्दों का उच्चारण किया होगा। यह प्रयास (नैयायिक का उत्तर) मान्य नहीं है। क्योंकि परमेश्वर अमूर्त है फिर भी अपने भक्तों को कृतार्थ करने हेतु वह रूप धारण कर सकता है, इस प्रकार यह तर्क कि वेद पौरुषेय नहीं है खण्डनीय है।

''मैं अब (मींमासक कहता है) कि इन संदेहों का निराकरण करता हूं कि इस पौरुषेयत्व का क्या अर्थ है, जिसे प्रमाणित करना है। इसका तात्पर्य है, (1) किसी पुरुष द्वारा उत्पत्ति, जैसे हमारे द्वारा वेदों की उत्पत्ति, जब हम इनका दैनिक पाठ करते

हैं अथवा (2) इसकी अभिव्यक्ति की दृष्टि से क्या यह कोई व्यवस्था है, जो ज्ञान अन्य साक्ष्यों से ग्राह्य है, जैसे कि हमने स्वयं ग्रंथों की रचना की है। यदि पहले अर्थ को ग्रहण किया जाए तो कोई विवाद नहीं होगा। यदि दूसरे भाव को ग्रहण किया जाए तो मेरा प्रश्न है कि क्या इस कारण वेदों को प्रामाणिक माना जाए कि हमें इनसे आभास होता है अथवा (क) इस कारण कि यह दैवी वाक्य है। अथवा (ख) यह अगम ज्ञान है। प्रथम विकल्प (क), कि वेदों की प्रामाणिकता इसलिए है कि यह व्याख्या मात्र है यदि *मालतीमाधव* अथवा अन्य निरपेक्ष रचनाओं के कथन को देखा जाए तो यह सही नहीं हो सकता क्योंकि यह सिद्धांत निरापद नहीं। यहीं दूसरी ओर आप कहते हैं। (ख) वेदों की सामग्री अन्य प्रामाणिक ग्रंथों से भिन्न है, इससे भी दार्शनिक सहमत नहीं होंगे क्योंकि वेद वाक्य, वह वाक्य है जिसे अन्य साक्ष्यों से प्रमाणित नहीं किया जा सकता। अब यदि यह स्थापित किया जा सके कि वेदवाक्य मात्र उसी को प्रमाणित करता है, जो अन्य साक्ष्यों से प्रमाणिक है तो हम उसी दलदल में फंस जाएंगे, जैसे कोई व्यक्ति कहे कि उसकी माता एक बंध्या नारी थी। और यदि हम यह स्वीकार कर लें कि परमेश्वर ने कोई स्वरूप धारण किया होगा तो यह मान्य नहीं होगा क्योंकि बिना किसी तत्व के उन्होंने ऐसा कुछ व्यक्त किया हो, जो अतीन्द्रिय हो। यह संभव नहीं, वह भी जब तक कोई देशकाल परिस्थिति न हो। न ही यह सोचा जा सकता है कि उनके नेत्र तथा दूसरी इन्द्रियों में ऐसे ज्ञानप्रसार की कोई शक्ति थी। पुरुष केवल वही जान सकता है जो उसने साक्षात् देखा है।

किसी सर्वज्ञ रचयिता की कल्पना से असहमत यही गुरु (प्रभाकर) ने कहा है। ''जब किसी सर्वज्ञ को चुनौती दें जिसने किसी तत्व के संपूर्ण रूप को देखा हो तो वह कल्पना बहुत ही धुंधली अथवा अति सूक्ष्म होगी क्योंकि कोई भी इन्द्रिय अपने निश्चित धर्म से विरत नहीं हो सकती, जैसे श्रवणेद्रिय किसी स्वरूप को देख नहीं सकती। इस प्रकार वेदों की सत्ता किसी इहलौकिक ज्ञान से संपन्न नहीं है जो किसी संपूर्ण अमूर्त अरूप देवता से प्राप्त हुआ हो।''

नैयायिकों के मत को निरस्त करने हेतु जैमिनि ने उपरोक्त तर्क प्रस्तुत किए हैं। तदुपरांत जैमिनि पूर्व मीमांसा में सकारात्मक तर्क देते हैं कि वे किसी भी प्रकार ब्रह्म वाक्य नहीं है किन्तु उससे भी श्रेष्ठ हैं। उनका कथन:

''परवर्ती सूक्तियों में उद्घोषित किया गया है कि ध्वनि का संयोजन और उसका अर्थ सनातन है। वह चाहते हैं कि प्रमाणित करें कि यह (संयोजन) की सनातनता शब्द की सनातनता अथवा स्वर पर निर्भर है, हम प्रश्न के प्रथमांग से आरंभ करते हैं अर्थात् उस सिद्धांत से कि ध्वनि सनातन नहीं है।''

''कतिपय अर्थात् नैयायिक कहते हैं कि ध्वनि एक रचना है क्योंकि हम जानते हैं कि यह प्रयासोत्पन्न है, यदि यह सनातन होती तो ऐसा न होता।''

''कि अपने संक्रमण स्वभाव के कारण यह सनातन नहीं है अर्थात् यह एक क्षण में ही विलीन हो जाती है''। क्योंकि इसके संबंध में हम क्रिया को 'निकालना' कहते हैं अथवा हम ध्वनि निकालते है।

''क्योंकि विभिन्न व्यक्तियों को इसकी अनुभूति तत्काल होती है और परिणामतः श्रवणेन्द्रिय के तत्काल सम्पर्क में आती है दूरस्थ और निकटस्थ। यदि यह सनातन और एकमेव होती तो ऐसा न होता।''

''क्योंकि ध्वनि के मूल और संशोधित दो रूप होते हैं ''दधि अत्र'' और ''दधी अत्र'' के रूप में प्रस्तार के नियम से मूल ध्वनि ह्रस्व 'इ' दीर्घ 'ई' में बदल जाती है। इस प्रकार जिस तत्व में परिवर्तन हो जाता है, वह सनातन नहीं है।'' क्योंकि यदि अधिक संख्या में व्यक्ति समवेत ध्वनि करते हैं तो उनका विस्तार हो जाता है। फलतः मीमांसकों का सिद्धांत तथ्यहीन हो जाता है। जो कहते हैं कि ध्वनि मानव–प्रयत्न से प्रकट ही की जाती है, उत्पन्न नहीं की जाती क्योंकि सहस्रों वक्ता भी उसके अर्थ में विस्तार नहीं कर सकते, उसके स्वर का ही विस्तार करते हैं। जैसे एक सहस्र दीपक भी एक घड़े के आकार का विस्तार नहीं कर सकते।''

मीमांसकों के इस सिद्धांत के विरुद्ध, इन आपत्तियों का निम्न सूत्रों के द्वारा उत्तर दिया है कि ध्वनि प्रकट की जाती है और उसके उच्चारण उसे उत्पन्न नहीं कर सकतेः

''परंतु दोनों सिद्धांतों के अनुसार यथा जो स्वीकार करता है कि ध्वनि की उत्पत्ति होती है और दूसरे के अनुसार जो कहते है कि वह मात्र प्रकट की जाती है, दोनों के अनुसार वह क्षणिक है। परन्तु इन दोनों मतों के अनुसार अभिव्यक्ति का सिद्धांत अगले मंत्र से प्रकट है, जो यथार्थ है।'' काल विशेष में सनातन ध्वनि सुनाई नहीं पड़ती है। उसका कारण है कि कर्ता और कर्म का सम्पर्क नहीं बन पाता। ध्वनि शाश्वत है। उदाहरणार्थ–क्योंकि हम एक स्वर ''क'' से अवगत हैं जो हमें प्रायः सुनाई पड़ता है क्योंकि यह सहज प्रक्रिया है तो हमें उसकी सहज कल्पना होती है। नीरवता में जब किसी वक्ता के मुख से वायु का संयोजन और वियोजन होता है तो उससे वातावरण तरंगित होता है और इस प्रकार ध्वनि का आभास होता है जो सदैव विद्यमान रहती है। चाहे उसका आभास न भी होता हो उसके संचरण पर आपत्ति का यह उत्तर है।

''ध्वनि करना'' का अर्थ है एक क्रिया अथवा ''उच्चारण''। जैसे सूर्य का दर्शन एक साथ अनेक व्यक्ति करते हैं, वैसे ही ध्वनि भी एक साथ अनेक व्यक्तियों द्वारा सुनी जाती है। ध्वनि सूर्य की भांति सर्वव्यापी है। यह कोई सूक्ष्म तत्व नहीं है। इसलिए सभी को समान रूप से ग्राह्य है चाहे कोई निकटस्थ हो अथवा दूरस्थ।''

''सूत्र 10 में वर्णित है कि ''इ'' स्वर ''ई'' में परिवर्तित हो जाता है। वह ''इ'' का रूपांतरण नहीं है बल्कि ''ई'' एक भिन्न स्वर है। परिणाम निकलता है कि ध्वनि का रूपांतरण नहीं होता।''

''जब कई व्यक्ति समवेत स्वर में बोलते हैं तो कोलाहल ही बढ़ता है, स्वर वही रहता है। कोलाहल का अर्थ है भिन्न-भिन्न दिशाओं से वायु के संयोजन-वियोजन का एक साथ कानों में प्रवेश। इसी कारण उसका विस्तार होता है।''

''ध्वनि सनातन होनी चाहिए क्योंकि वह अन्य लोगों तक अर्थ प्रेषित करती है। यदि वह सनातन न होती तो जब तक श्रोता उसका भाव जानता, तब तक वह उपस्थित ही न रहती और इस प्रकार श्रोता भाव-ग्रहण करने से वंचित रह जाता क्योंकि वह उपस्थित ही नहीं रहती।''

''ध्वनि सनातन है क्योंकि वह सदैव सही और समान होती है और अनेक व्यक्ति उसे एक साथ समान रूप से सुनते हैं और यह नहीं माना जा सकता कि वे सभी गलती करें।''

''यदि 'गौ' (गाय) शब्द को 10 बार दोहराएं तो श्रोता कहेंगे कि दस बार ''गौ'' कहा गया है। वे यह नहीं कहेंगे कि ''गौ'' की ध्वनि के दस शब्द कहे गए हैं। इस प्रकार यह ध्वनि की शाश्वतता का एक और प्रमाण है।''

''ध्वनि सनातन है, क्योंकि हमारे पास यह मानने के लिए कोई आधार नहीं है कि इसका क्षय हो जाता है जैसा कि सूत्र 20 में।''

''परन्तु यह कहा जा सकता है कि ध्वनि वायु का रूपांतरण है क्योंकि इसका उद्गम वायु का संयोजन है क्योंकि शिक्षा (वेदांग) का कथन है कि ध्वनि के अनुरूप हवा निकलती है और इस प्रकार यह वायु से उत्पन्न होती है। इसलिए सनातन नहीं हो सकती।''

इस आपत्ति का निराकरण सूत्र 22 में किया गया है:

''ध्वनि वायु का रूपांतरण नहीं है। यदि ऐसा होता तो श्रवणेंद्रिय के समक्ष कोई संगत तत्व न होता।''

इस न्यायबद्ध सार को देखते हुए कि ''ध्वनि सनातन है और वेद के शब्द भी ध्वनि हैं, इस कारण वेद भी सनातन हुए'' हम तर्कों की कीचड़ में फंसना नहीं चाहते। आश्चर्य यह है कि ब्राह्मणों ने वेदों के सनातन होने का यह सिद्धांत क्योंकर प्रचारित किया? अपने सिद्धांत के समर्थन में उन्होंने ऐसे अनाप-शनाप तर्क क्यों गढ़ डाले? ब्राह्मणों ने यह स्वीकार क्यों नहीं कर लिया कि वेद ब्रह्मवाक्य नहीं है?

वेदों की सत्ता के विषय में दूसरी मान्यता यह है कि वे मात्र पावन और पवित्र ही नहीं हैं बल्कि वे संशय-रहित हैं।

यह समझना कठिन है कि ब्राह्मणों ने वेदों को संशय-रहित बताने के प्रयास क्यों किए?

नियमों के संदर्भ में वेदों में कोई अटल भाव नहीं है। वेदों में धर्म कौ नैतिक भावना प्रदान नहीं की। वेदों के तीन अंशों को मुश्किल से ही नैतिक परिधि में ढाला जा सकता है।

पहला यम-यमी संवाद है जो भाई-बहन थे :

''यमी ने यम से कहा कि मैं तुझे प्रणय-निमंत्रण देती हूं। हम अविरल पारावार से निकल कर इस भूखंड के सूनेपन में अकेले हैं, तू मुझे अपना प्रणय सुख दे।'' यम को बहन से सहवास करने की इच्छा नहीं थी, उसने कहा, ''तेरा प्रिय तुझसे प्रणय का इच्छुक नहीं है क्योंकि हम दोनों सहोदर हैं।'' तब यमी बोली, ''सभी अनश्वर संसार का आनन्द लूटते हैं। नश्वरों को यह सुख उपलब्ध नहीं होता। तू मुझसे वैसे ही संसर्ग कर जैसे विधाता ने अपनी पुत्री से किया था। तू मेरी देह से वही आनन्द लूट।'' यम ने पलटकर उत्तर दिया ''जो अतीत में हो चुका है, हमें वैसा नहीं करना चाहिए क्योंकि हम सत्यवादी हैं। असत्य कैसे कहेंगे?'' यमी आतुर थी। वह बोली, ''जो परम स्वरूप है, उसी देव ने गर्भ में ही हमारी रचना मिथुन-युगल के रूप में की है, भला उसी इच्छा के विपरीत कोई जा सकता है! धरती और आकाश हमारा मिलन देखने को आतुर हैं।'' यम सहमत नहीं हुआ। आरम्भ की बात कौन जानता है और कौन बता ही सकता है? परन्तु यमी का मन नहीं मान रहा था। उसने फिर कहा, ''मेरी इच्छा तुमसे सहवास की हो रही है। तू उसे पूरा कर, मैं अपने प्रियतम पर अपना सर्वस्व न्यौछावर करती हूं। हमारा मिलन होना ही चाहिए, वैसे ही जैसे रथ के दो पहिए होते हैं। ''यम ने यमी को समझाया'' परमात्मा ने धरती पर अनेक जीव बनाए हैं, तू मेरे सिवाय किसी को भी अपना ले और उसी प्रकार चल जैसे रथ के दो पहिए चलते हैं। फिर यम ने यह भी समझाया कि अब वह समय आ गया है कि बहन उसी को पति चुनेगी, जो उसका भाई नहीं होगा। इसलिए हे शुभे, किसी अन्य का हाथ थाम और आनन्द ले।'' यमी ने कातर होकर कहा, ''क्या वह भी

कोई भाई है जिसकी बहन को कोई नाथ न हो। क्या कोई ऐसी बहन होगी जसे ऐसे दुर्भाग्य का सामना करना पड़े। मेरी उत्कट इच्छा है तू उसे पूरा कर, आ और मुझमें एकाकार हो जा।'' यम अटल रहा और दो टूक उत्तर दिया, ''मैं तुझसे कभी सहवास नहीं करूंगा। जो बहन से संसर्ग करता है, वह पापी कहलाता है। मेरे सिवाय किसी अन्य से देह-सुख प्राप्त कर। तेरे भाई का ऐसा करने का कोई विचार नहीं है।'' यमी ने अंत में दुखी मन से कहा, ''यम, तू बड़ा निर्बल हृदय है। तू मेरे मन की, मेरे मानस की स्थिति नहीं समझता। क्या तुझसे कोई नारी ऐसे लपटेगी, जैसे घोड़े से तंग लिपटता है, अथवा जैसे कसी वृक्ष से कोई लता लिपट जाती है।'' ''यम ने अंत में कहा, तू भी किसी अन्य पुरुष के साथ वैसे ही लिपट जा जैसे वृक्ष से लता लिपट जाती है। उसका प्रणय प्राप्त कर, वह भी तुझसे वैसे ही मिलन को आतुर हो, तक तू अतीव सुख पा।'' यम ने उसका और भी शुभ चाहा, उसने कहा:

''राक्षस हंता अग्नि हमारी प्रार्थना स्वीकार करे, दुरात्मा से त्राण दे, जो व्याधि के रूप में तेरे भ्रूण को आक्रांत कर सके, जो अंत:काष्ठ की भांति तेरे गर्भाशय को निरस्त करे।''

''अग्नि देव हमारी अर्चना को स्वीकार करें, नरभक्षियों को नष्ट करें जो व्याधि के रूप में तेरे गर्भाशय पर दुष्प्रभाव डालते हैं, जो अंत:काष्ठ की भांति तेरी कोख को रीती कर सकते है।''

''दुरात्मा से हमें त्राण दे, जो पुंसत्व का हरण करते हैं। गर्भ ठहरते ही उसे विस्थापित करते हैं, जो नवजात शिशु का हनन करना चाहते हैं।''

''हमें दुरात्मा से त्राण मिले जो तेरी जंघा को विलग करता है, जो पति-पत्नी के बीच बाधा बनता है, जो तेरी कोख में प्रविष्ट होता है। बीज-हरण करता है। हमें उस दुरात्मा से त्राण मिले, जो भ्राता, अथवा पति इतर प्रियतम के रूप में तुझ तक पहुंचता है और गर्भपात करना चाहता है।''

''हमें दुरात्मा से त्राण मिले जो तुझे नींद या अंधेरे में छल लेता है, तुझ तक आकर गर्भपात कर देता है।''

वेदों में दो चीजें हैं, पहली यह कि उनमें ऋषियों की आशाएं और आकांक्षाएं समाविष्ट जैसा कि म्यूर ने कहा है:

''इस पूरी रचना का स्वरूप और इनसे प्राप्त प्रमाणों के अनुसार जिन परिस्थितियों में ये रचे गए, उनसे पता चलता है कि आदि कवियों के सहज रूप में व्यक्तिगत अभिलाषा और मनोभावों का प्रकटीकरण था जिन्होंने सर्वप्रथम इन्हें गाया था। इनमें आर्य ऋषियों ने अपने प्राचीन देवताओं की तरह-तरह से स्तुति गाई और उन्हें संतुष्ट

होने का आह्वान किया। ऐसे अनेक वरदान मांगे, जिनकी मानव मात्र को लालसा होती है, जैसे स्वास्थ्य, सम्पदा, चिरायु, पशुधन, संतति, शत्रु-विजय, पाप-मुक्ति और शायद स्वर्ग सुख भी।''

यही दृष्टिकोण *निरुक्त* के लेखक यास्क का भी है, जो कहते हैं:

(''पूर्वोक्त खंड में चार प्रकार की ऋचाएं हैं) (क) जो देवता की अनुपस्थिति में संबोधित हैं, (ख) जिसमें उसको समक्ष जानकर संबोधन किया गया है, (ग) जिसमें आराधक को उपस्थित और आराध्य को अनुपस्थित माना गया है। वे अत्यधिक हैं। (घ) जबकि, जो स्वगत हैं, वे विरले ही हैं। ऐसा भी हुआ है कि देवता की प्रशंसा बिना वरदान की कामना के लिए की गई है। जैसे कि मंत्र *(ऋग्वेद)* 1.32 ''मैं इन्द्र के शौर्य का वर्णन करता हूं।'' आदि। फिर बिना स्तुति किए वरदान की कामना की गई है, जैसे ''मैं अपने चक्षुओं से अच्छा देखूं, मेरा मुख कांतिमान हो और कानों से भली भांति सुनूं।'' ऐसा *अथर्ववेद* (यजुर) और बलि सूत्रों में बार-बार कहा गया है। फिर इसमें हम शपथ और शाप भी पाते हैं। (*ऋग्वेद* 7.104,15) ''यदि मैं यातुधान हूं तो आज ही मैं मर जाऊं'' आदि। फिर हम पाते हैं कि कुछ विशिष्ट परिस्थितियों को दर्शाने वाले मंत्र (*ऋग्वेद* दस, 129,2) तब मृत्यु नहीं थी न अमरत्व आदि। कुछ परिस्थितियों में विलाप भी उपलब्ध है, जैसे कि मंत्र (*ऋग्वेद* दस, 95,14) ''रूपवान देवता प्रस्थान करेगा और अब कभी नहीं लौटेगा आदि। कहीं लांछन और प्रशंसा है, जैसा कि (*ऋग्वेद.* दस, 117,6) ''वह व्यक्ति जो अकेला खाता, अकेला पाप-कर्म करता है आदि''। द्यूतक्रीड़ा के विषय में मंत्र है (*ऋग्वेद.* 10, 34,13) जिसमें द्यूतक्रीड़ा की निंदा की गई है और कृषि कार्य की प्रशंसा। इस प्रकार जिन उद्देश्यों से ऋचाओं की सृष्टि हुई, वे विविध प्रकार की हैं।''

सूक्त 12 (155वां)

देव, राजयक्ष्मा का उपचार है: ऋषि है कश्यपपुत्र विव्रीहन; छंद अनुष्टुप है।

1. मैं तेरी आंखों, तेरे शीर्ष, तेरी नासिका, तेरे कर्ण, तेरी ठोड़ी, तेरी मानस, तेरी जिव्हा का रोगहरण करता हूँ।

2. मैं तेरी ग्रीवा, तेरी शिराओं, तेरी अस्थियों, तेरे संधिक्षेत्रों, तेरे बाहुओं, तेरे स्कंधों और तेरी कलाइयों का रोगहरण करता हूँ।

3. मैं तेरी अंतड़ियों, तेरी गुदा, तेरे उदर, तेरे वृषक, तेरे यकृत और तेरे अन्य अंगों का रोगहरण करता हूँ।

4. मैं तेरी जंघाओं, तेरे घुटनों, तेरी एड़ियों, तेरे पैर के पंजों, तेरी कटि, तेरे नितम्बों

और तेरे गुप्तांगों का रोगहरण करता हूँ।

5. मैं तेरे मूत्रमार्ग, तेरे मूत्राशय, तेरे बालों, तेरे नखों और तेरी पूरी देह का रोगहरण करता हूँ।

6. मैं तेरे प्रत्येक अंग, प्रत्येक बाल, प्रत्येक जोड़, जहां भी वह उत्पन्न हो, तेरी पूरी देह का रोगहरण करता हूँ।

जैसा कि प्रोफेसर विल्सन समझते हैं, *ऋग्वेद* (सबसे विशाल ग्रंथ) में छलनी से मुश्किल से कोई ऐसा उदाहरण मिलेगा जिससे प्रकट होता हो कि उसमें कोई सैद्धांतिक अथवा दार्शनिक विवेचन है। उसमें विभिन्न परवर्ती सिद्धांतों का संकेत ही नहीं, उसमें पुनर्जन्म की ओर भी कोई इंगित नहीं है, न इससे संबद्ध किसी अन्य सिद्धांत का, न ही विश्व की बार-बार सृष्टि का। आर्यों के सामाजिक जीवन पर प्रकाश डालने के लिए वेदों में पर्याप्त सामग्री मिलती है। इसके लिए वे उपयोगी हो सकते हैं। यह आदिम जीवन का चित्रण है। उनमें प्रगति का कोई प्रसंग नहीं, उनमें दोष अधिकांश और गुण न्यूनतम है।

वेदों के सार और विषयवस्तु को देखते हुए यह आश्चर्यजनक है कि ब्राह्मण क्योंकर इस अंधविश्वास को संशय-रहित मानते हैं।

यदि मंत्र-सृष्टा ऋषि स्वयं दावा करते तो संशय-रहित होने के सिद्धांत का कोई औचित्य ठहराया जा सकता था। किन्तु यह स्पष्ट है कि ऋषियों ने ऐसा आडम्बर नहीं रचा। इसके विपरीत उन्होंने कई बार जिज्ञासा-स्वरूप अपनी अज्ञता को स्वीकार किया है। *ऋग्वेद* के निम्नांकित मंत्र उनकी भावना के प्रतीक हैं:

''अज्ञ हूं, मेरे मानस (ज्ञान) से परे हैं, मैं देवताओं का अज्ञात आवास जानना चाहता हूं, ऋषि ने अपना जनेऊ बछड़े के खुर तक खींचा।'' [6. अज्ञ (हूं) मैं उन ऋषियों से पूछता हूं जिन्हें इस विषय में ज्ञान है, अनजान (मैं पूछता हूं) कि मैं जानूं कि अजन्मों के रूप में क्या है जो इन छह लोकों को कैसे सँभालते हैं?] 37. मुझे पता नहीं कि मैं ऐसा हूं, मुझे आश्चर्य होता है कि मेरा ज्ञान सीमित है, जब बलि से प्राप्त प्रथम पुत्र (सत्य) मुझे प्राप्त हुआ, तब मैं उस शब्द का आनन्द लेता हूं।''

''वन क्या थे, वृक्ष क्या थे, उन्होंने जिससे स्वर्ग और पृथ्वी बनाई, जो अब तक अक्षय विद्यमान हैं, कितने दिन, कितने प्रातः बीत चुके हैं?''

''इन दोनों स्वर्ग और धरा में से कौन पहला है? कौन अंतिम है? ये कैसे उत्पन्न हुए? हे ऋषि, कौन जानता है?''

''कितनी अग्नियां हैं? कितने सूर्य हैं? कितने सवेरे हैं? कितने जल हैं? पिता, मैं तुमसे उपहास नहीं कर रहा हूं। मैं ऋषि सचमुच पूछ रहा हूं जिससे मैं जान सकूं।'' 5. ''वहां किरणें तिर्यंक फैलती हैं, यह नीची हैं अथवा ऊंची? वहां जनन शक्ति थी और महान शक्तियां थीं प्रयत्न स्वाध्याय नीचे है या ऊपर 6. कौन जानता है यह किसने बनाया है? यह सृष्टि कब हुई? कहां से आई? परमात्मा इस ब्रह्मांड की सृष्टि के पश्चात् जन्मा और कौन जानता है यह कब रची गई? क्या किसी ने इसकी रचना की? अथवा नहीं? जो सर्वोच्च स्वर्ग में रहता है, उसने यह ब्रह्मांड रचा। वह सचमुच जानता है अथवा नहीं?''

इस अमोघता या संशयरहित सिद्धांत के बारे में कुछ अन्य बिंदु भी हैं, जिन पर ध्यान देना जरूरी है।

IV

प्रथम प्रश्न यह है कि यह मान्यता मौलिक है अथवा भारत के इतिहास में कालातीत में जड़ दी गई। सामान्यतः यह मत प्रकट किया जाता है कि यह एक मूलभूत सिद्धांत है। सर्वप्रथम धर्मसूत्रों में इस विषय पर प्रकाश डाला गया है जो सर्वप्रथम विधिग्रंथ हैं। उनका संकेत है कि यह विकास सही नहीं है। वेदों की संशयहीनता के संबंध में गौतमधर्म सूत्र ने निम्नांकित नियम प्रतिपादत किए हैं:

''वेद पवित्र विधान के उद्‌गम हैं'' 1.1

''और उनकी परम्पराएं तथा रीतियां जो (वेदों को) जानते हैं''– 1.2

''यदि समान (अधिकारों वाली) शक्तियों के बीच संघर्ष हो किसी एक का अनुसरण करें, सुखी रहें''– 1.4

वशिष्ठ धर्म सूत्र का वचार इस प्रकार है:

''पवित्र विधान पाठों और ऋषि परम्पराओं से निर्धारित किए गए हैं''– 1.4.

''(नियमों के अनुसार) निश्चय न हो पाने पर इन (दो सूत्रों) शिष्टों की सत्ता सर्वोपरि है।''– 1.5.

''जो कामनारहित हैं शिष्ट (कहलाते हैं)– 1.6.

बौधायन का मत निम्न प्रकार है: (प्र 1, अध्या 1 कंडिका 1)

1. प्रत्येक वेद में पवित्र नियमों की शिक्षा है।

2. हम उसके अनुसार व्याख्या करेंगे।

3. (पवित्र विधान) की शिक्षा परम्पराओं में है। (स्मृति का दूसरा स्थान है।)

4. शिष्टों के व्यवहार का तीसरा स्थान है।

5. शिष्ट नि:संदेह (वे हैं) जो निस्पृह 'ईर्ष्या से मुक्त' दर्प से मुक्त, मात्र दस दिन के लिए अन्न-संग्रह से संतुष्ट होते हैं, लोभ से मुक्त, पाखण्ड, अज्ञान, स्वार्थ, अनिश्चय बुद्धि तथा क्रोध से रहित हैं।

6. जो शिष्ट (कहलाते हैं) जिन्होंने पवित्र विधान के अनुसार वेद-वेदांग का अध्ययन किया है, जो जानते हैं कि इनसे किस प्रकार संदर्भ लिए जाएं, मान्य पाठ से भावानुकूल साक्ष्य प्रस्तुत कर सकें।''

7. उनके विफल हो जाने पर न्यूनतम दस सदस्यों की सभा (विधान के विवादित प्रश्नों पर निर्णय दें।)

8. अब वे उद्धृत करते हैं (निम्नांकित मंत्र): ''चार पुरुष, उनमें से प्रत्येक किसी वेद मीमांसा का ज्ञाता हो, वेदांग को जानता हो, जो पवित्र विधान का वाचन करें, एवं विभिन्न तीन सिद्धांतों के अनुयायी, तीन ब्राह्मणों की मिलकर एक सभा बनती है, जिसमें न्यूनतम दस सदस्य हों।''

9. इसमें पांच अथवा तीन अथवा एक निर्विवाद व्यक्ति हो सकता है जो (सम्बद्ध प्रश्न पर) पवित्र विधान के अनुकूल निर्णय करें। किन्तु एक हजार मूर्ख मिलकर भी निर्णय नहीं कर सकते।

10. काष्ठ निर्मित हाथी, चमड़े से बना मृग, अशिक्षित ब्राह्मण इन तीनों में कुछ नहीं होता, ये दर्शनीय पदार्थ हैं।

आपस्तम्ब धर्म सूत्र द्वारा लिया गया दृष्टिकोण स्पष्ट है जो निम्न सूत्र से लिया गया है:

''हम सब बताएंगे कि गुणकर्म क्या है? जो दैनिक जीवन के व्यवहार का अंग बनते हैं।'' 1.1.

''इन अधिकारों (उपरोक्त कर्तव्य पालन के) को सहमति (समझौता) कहते है। जो विधि को समझते हैं''। 1.2.

''और (शीर्ष अधिकारी) मात्र वेद हैं।'' 1.3.

धर्मसूत्रों का विवेचन प्रकट करता है कि वेदों की संशयहीनता की मान्यता एक ऐतिहासिक प्रक्रिया है। इससे प्रदर्शित होता है कि विवाद की बात पर इनमें से किसे संशय-रहित माना जाए? 1. वेद, 2. परंपरा (स्मृति), 3. शिष्टों के व्यवहार, 4. सभा

में समझौता; ये चार अधिकार केन्द्र थे। यह समय वशिष्ठ और बौधायन के धर्मसूत्रों का काल था। गौतम के काल में ही वेदों की एकछत्र सत्ता स्थापित हुई। एक ऐसा समय भी था जब सभा का निर्णय सत्ता का केन्द्र था। यह बौधायन का युग था। अंत में विवेचन से यह भी प्रकट होता है कि एक ऐसा समय था जब वेदों को अधि कार संपन्न ग्रंथ नहीं माना जाता था, बल्कि सत्ता का केन्द्र विद्वानों की सभा का निर्णय हुआ करता था। यह काल था, जब आपस्तम्ब[1] ने अपने धर्मसूत्रों की रचना की अर्थात् ईसा से 600 से लेकर 200 वर्ष पूर्व[2] तक।

इस प्रकार यह स्पष्ट है कि वेदों को जानबूझकर सनातन बनाने का प्रयास किया गया। जिनको पहले ऐसा नहीं माना जाता था। अब प्रश्न यह है कि वे कौन–सी परिस्थितियां और क्या इरादे थे, जिनके अनुसार ब्राह्मणों ने यह प्रचारित किया कि वेद एकछत्र और परमसत्ता के केन्द्र हैं।

वेदों की सनातनता से दूसरा सम्बद्ध यह है कि ब्राह्मणों ने भेदभाव क्यों बरता और वेदों के कुछ अंशों तक ही संशयहीनता का सिद्धांत क्यों लागू किया? पूरे वैदिक साहित्य को इस श्रेणी में क्यों नहीं रखा? इस प्रश्न को समझने के लिए यह जानना आवश्यक है कि वैदिक साहित्य का क्या अर्थ है? ''वैदिक साहित्य'' शब्द का प्रयोग दो अर्थों में है। उसके अंग हैं– (1) संहिता, (2) ब्राह्मण, (3) आरण्यक, (4) उपनिषद और (5) सूत्र। जब इसका विस्तृत अर्थ किया जाता है तो इसमें दो अंग और जुड़ जाते हैं। (6) इतिहास, और (7) पुराण।

पहली बात ध्यान में रखनी चाहिए कि एक समय था जब यह सारा साहित्य एक ही श्रेणी में आता था और इनके बीच उद्घाटित अथवा लौकिक, अलौकिक अथवा मानवीय, तथा प्राधिकृत अथवा अप्राधिकृत के आधार पर कोई भेद नहीं था। यह बात शतपथ ब्राह्मण से स्पष्ट है, जो कहता है:

''पुरुष प्रजापति की इच्छा हुई कि ''मेरी अभिवृद्धि हो, मेरा विस्तार हो''। वे समाधिस्थ हो गए, उन्होंने घोर तप किया। इस तप से उन्होंने त्रिदेव विज्ञान–प्रज्ञा की रचना की। यह उनका आधार बना। उन्होंने कहा– 'प्रज्ञा ब्रह्मांड का मूल्य है'। वेदों के ज्ञान के पश्चात् पुरुष को आधार मिला कि प्रज्ञा उसका मूल है। इस आधार पर प्रजापति ने घोर तप किया। (9) उन्होंने वाच से जल कर रचना की। उसके विस्तरण से जल

---

1. *आपस्तम्ब धर्मसूत्र में वेदों के प्रसंग से भ्रम नहीं होना चाहिए। आपस्तम्ब वेदों की सत्ता स्वीकार नहीं करता। उसमें वेदों का ज्ञान परिषद की सदस्यता की अर्हता भर है जिसकी मान्यता ही वैध है।*
2. *मैक्समूलर के अनुसार यह सूत्रों का युग है। आपस्तम्ब प्राचीनतम है।*

''अप्प'' कहलाया। उसकी सर्वत्र व्यापकता से वह ''वारि'' बना। (10) उन्होंने चाहा, ''मेरा जल से विस्तार हो''। इस त्रिवेद विज्ञान से वे जल से प्रविष्ट हुए, तब एक अण्डज उभरा। उन्होंने उसे प्राणवान किया और कहा, ''भव भव पुनर्भव''। तब प्रज्ञा का जन्म हुआ। त्रिवेद विज्ञान। फिर पुरुष ने कहा, 'प्रज्ञा ब्रह्मांड की प्रथम सृष्टि है।' पुरुष के समक्ष सर्वप्रथम प्रज्ञा की रचना हुई। इसलिए यह उसका मुख बनी। इस प्रकार आगे वह कहते हैं ''वह अग्नि के समान है क्योंकि प्रज्ञाा अग्नि का मुख है।''

''आर्द्र काठ से उपजी अग्नि उससे उठे भिन्न-भिन्न धुंए। उनकी श्वास प्रक्रिया से महान *ऋग्वेद* बना, *यजुर्वेद* बना, *सामवेद* बना, *अथर्ववेद*, इतिहास, पुराण, विज्ञान, उपनिषद, श्लोक, सूत्र विभिन्न प्रकार के भाष्य बने। यह सब उसका श्वास बने।''

परन्तु जब ब्राह्मणों ने संशय-रहित होने के सिद्धांत को स्थापित करने का मन बनाया तो उन्होंने वैदिक सहित्य को दो भागों में विभक्त कर दिया। 1. श्रुति और 2. अश्रुति। प्रथम विभाजन में उन्होंने आठ अंगों में से केवल दो को श्रेष्ठ रखा। संहिता और ब्राह्मण, शेष को उन्होंने अश्रुति घोषित कर दिया। यह बताना संभव नहीं कि यह अंतर कब उत्पन्न हुआ परन्तु यह प्रश्न अधिक महत्वपूर्ण है कि किस आधार पर यह भेद किया गया। आरण्यक और उपनिषद् क्यों छांट कर बाहर कर दिए गए? पहले समझा जा सकता है कि इतिहास और पुराणों को श्रुति से क्यों वंचित किया गया? जिस समय यह भेद किया गया, तब वे इतने आरम्भिक और अविकसित थे कि उन्हें शायद ब्राह्मणों में सम्मिलित कर लिया गया।

साथ ही यह बात भी समझ में आती है कि आरण्यकों का श्रुति के अंग के रूप में उल्लेख क्यों नहीं किया गया? ब्राह्मणों के अंग थे और शायद इसी कारण यह उल्लेख करना अनावश्यक था कि यह श्रुति का अंग है, उपनिषद और सूत्रों का प्रश्न एक पहेली ही बना हुआ है। इन्हें श्रुति से अलग क्यों रखा गया? परन्तु सूत्रों का मामला अलग है। वे श्रुति की श्रेणी से निश्चित रूप से विलग कर दिए गए जिसको समझना बुद्धि से परे है। यदि यह बात तर्कसम्मत है कि ब्राह्मणों को श्रुति में सम्मिलित किया जाना चाहिए, उसी कसौटी पर यह बात खरी नहीं उतरती कि सूत्रों को शामिल क्यों न किया जाए? जैसा कि प्रोफेसर मैक्समूलर कहते हैं:

''हम इस बात को समझ सकते हैं कि किस प्रकार कोई देश अपनी राष्ट्रीय काव्य रचना का श्रेय किसी अलौकिक पुरुष को दे सकता है? विशेष रूप से तब, जबकि उस काव्य में देवों को सम्बोधित प्रार्थनाएं और मंत्र समाविष्ट हों। परन्तु ब्राह्मण ग्रंथों के गद्य-साहित्य के विषय में यह कहना कठिन है। ब्राह्मण ग्रंथ स्पष्ट रूप से मंत्रों की

अपेक्षा बाद की रचनायें हैं। इसी कारण इन्हें श्रुति में समाहित किया गया होगा कि इनकी सामग्री ब्रह्मज्ञान युक्त है। ब्राह्मण-ग्रंथों के अधिकांश दावों के बारे में यह कल्पना की गई होगी क इसकी रचना दैवी है, जिनका उद्‌गम सामान्य पद्य अथवा मंत्र नहीं हो सकते। किन्तु हमें इस तर्क को मान्यता देने की आवश्यकता नहीं, जिसके कारण ब्राह्मण-ग्रंथों ने अपने को मंत्र-रचना के समकालीन माना है। इसका कोई कारण समझ में नहीं आता कि ब्राह्मण-ग्रंथों और मंत्रों का रचनाकाल अधिक प्राचीन है। तो हम इस सहज विचार को क्यों अस्वीकार कर दें कि यदि सूत्रों और भारत के लौकिक साहित्य की तुलना की जाए तो उनका महत्व समान बनता है। ऐसी घटना सामान्य है जहां पवित्र ग्रंथों का यह नियम है कि बाद की रचनाओं को प्राचीन रचनाओं से जोड़ दिया जाता है, जैसा कि ब्राह्मण-ग्रंथों के साथ हुआ। किन्तु हम कठिनाई से ही यह कल्पना कर सकते हैं, जब तक कोई पक्ष इन तिरस्कृत रचनाओं के सिद्धांत विशेष की प्रामाणिकता अमान्य घोषित करने के लिए प्रयत्नशील न हो, पुराने अंशों को पवित्र रचनाओं से हटा दिया जाए और उन्हें बाद की रचनाएं बना दिया जाए। सूत्रों के परवर्ती साहित्य में ऐसा कुछ नहीं है। ऐसी कल्पना का कोई आधार नहीं है। हमें ब्राह्मण और मंत्रों की अपेक्षा उनके परवर्ती होने के सिवाय ऐसा कोई कारण नहीं दिखता कि सूत्रों को श्रुति न बनाया जाए। क्या ब्राह्मण ग्रंथकारों को स्वयं ज्ञात था कि ऋषियों की अधिकांश रचनाओं और ब्राह्मण ग्रंथों के उद्‌भव तक युगों बीत चुके थे? इस प्रश्न का उत्तर सकारात्मक है, किन्तु जिस दुस्साहस के साथ भारत के ब्रह्मज्ञानियों ने ब्राह्मण-ग्रंथों को वही पद और मंत्रों के समान उनका काल-निर्धारण किया, उससे यह प्रकट होता है कि इसका कोई विशिष्ट कारण रहा होगा कि सूत्रों को उतनी ही पावनता और प्रामाणिकता न दी जाए।''

तीसरा प्रश्न उन परिवर्तनों से संबद्ध है जिसके अनुसार श्रुति और उनकी संशयहीनता की श्रेणी निर्धारित हुई। मनु ने 'ब्राह्मणों' को श्रुति की श्रेणी से अलग[1] कर दिया जैसा कि उसकी स्मृति से स्पष्ट है:

''श्रुति का अर्थ है, वेद और स्मृति का अर्थ है विधान, इनकी विषय-सामग्री पर तर्क नहीं किया जा सकता क्योंकि इनमें कर्त्तव्य-बोध है। वे ब्राह्मण, जो बुद्धिवादी लेखों पर आधारित हैं, वे ज्ञान के इन दो स्रोतों की निंदा करेंगे, उन्हें संशयवादी और निंदक जानकर बहिष्कृत किया जाए। जो कर्त्तव्य-बोध चाहते हैं, उनके लिए श्रुति

---

1. इसमें विवाद हो सकता है कि वेद में ब्राह्मण को सम्मिलित किया गया है, जो तथ्य भी है। लेकिन मुझे ऐसा लगता है कि मनु ने स्मृति का प्रयोग प्रतिबंधित रूप में किया, जिससे कि ब्राह्मण बाहर रहा। इसे इस तथ्य से भी बल मिलता है जैसा कि *मनुस्मृति* में ब्राह्मण का कोई संदर्भ नहीं है सिवाय एक स्थान पर (4.100) जहां वह कहता है कि केवल मंत्र के भाग के अध्ययन की जरूरत है।

सर्वोच्च सत्ता है।''

चौथा प्रश्न पुराणों के उस दावे से संबंधित है, जो पुराणों को रचना की दृष्टि से वेदों से उच्च स्थान देता है। *वायु पुराण* का कथन[1] है:

''सर्वप्रथम सभी शास्त्र, पुराण ब्राह्मण के मुख से प्रस्फुटित हुए। तदुपरान्त उनके मुख से वेद।'' *मत्स्य पुराण* वेदों से केवल पूर्ववर्ती होना ही घोषित नहीं करता बल्कि वह उनकी गुणवत्ता, सनातनता और स्वर के साथ पहचान को भी श्रेष्ठ मानता है। पहले केवल वेदों को इन गुणों से सम्पन्न कहा गया था। वह कहता[2] है:

''सर्वप्रथम, अविनाशी पितामह (ब्रह्मा) उत्पन्न हुए, फिर वेद, उसके अंगोपांग तथा उनके पाठ के विभिन्न साधन जन्मे और प्रकट हुए। ब्रह्मा ने जिन शास्त्रों का प्रस्फुटन किया उनमें सहस्त्रों कोटि मंत्रों के विस्तृत आयाम वाले शाश्वत ध्वनि जनित शुद्ध शास्त्र, पुराण प्रथम जो शुरू के जाप से जन्मे, फिर वेदों का उद्गम हुआ। तभी मीमांसा और न्याय और अन्य प्रमाण जन्मे 5. उनसे (ब्रह्मा) जो वेदों के अध्ययन में आस्थावान थे, संतति के इच्छुक थे उनके मानस-पुत्र जन्मे। वे इस कारण मानस-पुत्र कहलाए कि सर्वप्रथम उनके मानस से प्रस्फुटित हुए थे।''

भागवत पुराण वेदों के समान प्रामाणिकता का दावा करता है-

''ब्रह्मरात्र का निर्णय है कि पुराण भागवत कहलाता है, जो वेदों के समान है।''

ब्रह्मवैवर्त पुराण ने स्पष्टत: दावा किया है वह वेदों से श्रेष्ठ है। वह कहता है:

''जिस श्रद्धेय ऋषि के विषय में आपने प्रश्न किया है और जो आपकी इच्छा है, पुराणों का सार अति विख्यात *ब्रह्मवैवर्त पुराण* है जो समस्त पुराणों और वेदों की त्रुटियों का परिष्कार करता है इस को मैं जानता हूं।''

इस निरूपण से वेदों के संबंध में अनेक पहेलियां उपजती हैं। यह तीन पहेलियां तो हैं ही कि .... ब्राह्मण इस बात पर क्यों बल देते हैं कि वेदों की सत्ता सनातन है, कि वे अपौरुषेय और बिना किसी देवता के उत्पन्न हुए और वे संशय-रहित हैं। इसके अतिरिक्त, वेदों के विषय में एक और पहेली है कि एक समय वेदों की कोई सत्ता नहीं थी और ना ही वे संशय-रहित थे। ब्राह्मणों को, इस बात की आवश्यकता क्यों अनुभव हुई कि उन्हें संशय-रहित घोषित करें। ब्राह्मणों ने सूत्रों को श्रुति की श्रेणी में क्यों विलग किया? ब्राह्मणों ने वेदों के संशय-रहित होने के सिद्धांत को क्यों किनारे कर दिया और पुराणों को वह स्थान दे डाला?

---

1. म्यूर द्वारा *संस्कृत टैक्स्ट*, खंड 3, पृ. 47 पर उद्धृत।
2. वही. पृ. 28

परिशिष्ट - 2

वेदांत की पहेली

प्राचीन भारतीय दार्शनिकों ने षट्दर्शन का जो सिद्धांत प्रतिपादित किया है, उसमें वास्तव में सबसे विख्यात है वेदांत दर्शन। केवल नाम के कारण ही नहीं, बल्कि हिंदुओं में इसकी जितनी मान्यता है, उतनी अन्य दर्शनों की नहीं। वेदों के प्रत्येक अनुयायी को वेदांत पर गर्व है। वह केवल इसको मानता ही नहीं बल्कि वह यह भी समझता है विश्व को दार्शनिक विचारों के योगदान में यह सर्वाधिक मूल्यवान है। वह समझता है कि वेदांत-दर्शन वेदों की शिक्षा का लक्ष्य है। उसे कभी भी यह संदेह नहीं हुआ कि भारत के इतिहास में वेदांत कभी वेद-द्रोही रहा है अथवा उसमें वेदों का खण्डन किया गया है। उसे इस बात का कभी विश्वास नहीं होता कि एक समय ऐसा भी था, कि उसका अर्थ वर्तमान अर्थ से पूर्णतः भिन्न था, जिनके अनुसार वेदांत का अर्थ यह किया जाता था कि इसमें वैदिक विचारों की उपज है और यह ऐसे विचारों का साकार रूप है जो वैदिक साहित्य के अधिमत की परिधि से बाहर है। वास्तव में यही बात थी।

यह सत्य है कि वेदों और वेदांत के बीच यह विचार भिन्नता 'उपनिषद' शब्द से परिलक्षित नहीं होती थी, जो उस साहित्य की व्यापक पहचान है जो वेदांत-दर्शन ने प्रचलित किया और जिसकी व्युत्पति के विषय में बहुत मतभेद हैं।

अधिकांश यूरोपीय विद्वान इस बात पर सहमत हैं कि उपनिषद् की व्युत्पति ''षद्'' धातु से हुई है, जिसका अर्थ है, बैठना। इसके पश्चात् ''नि'' का अर्थ है 'नीचे' और ''उप'' का अर्थ है, पास, जिसके कारण इसका सम्पूर्ण अर्थ निकलता है, किसी एक व्यक्ति के पास सामूहिक रूप में जाकर बैठना। जैसा कि प्रोफेसर मैक्समूलर ने कहा है, इस व्युत्पति के संबंध में दो आपत्तियां हैं। पहली बात तो यह है कि ऐसा लगता है कि इसका आशय उपनिषद सहित इसके अन्य भागों से है और इसकी कभी व्याख्या नहीं की गई कि उसका अर्थ इतना सीमित क्यों निकाला गया?

मूल अंग्रेजी में 'वेदांत की पहेली' शीर्षक से 21 पृष्ठों की टंकित प्रति प्राप्त हुई थी। यह अध्याय पूर्ण लगता है और लेखक द्वारा कोई संशोधन नहीं किया गया है। – संपादक

दूसरी बात है कि उपनिषद् का भाव समागम से मेल नहीं खाता। जब भी इस शब्द का प्रयोग हुआ है, इसके अर्थ हैं- सिद्धांत, गुह्य सिद्धांत अथवा इसका सरलार्थ है, दार्शनिक पुस्तक का शीर्षक, जिसमें गुह्य सिद्धांत निहित हों। मैक्सूमलर के अनुसार तीसरी व्याख्या है, जैसा शंकर ने *तैत्तिरीय उपनिषद* 2-9 में कहा है कि उपनिषद् में परम आनन्द समाहित है। इस संबंध में मैक्समूलर कहते हैं:

''आरण्यकों में ऐसी व्युत्पत्तियां भरी पड़ी हैं जिनमें वास्तविक अर्थ बताने के स्थान पर शब्द-जाल अधिक है। फिर भी उनसे अर्थ निकालने में सहायता मिलती है।''

बहरहाल, प्रोफेसर मैक्समूलर उपनिषद शब्द का मूल ''षद'' धातु मानते हैं जिसका अर्थ है विनाश अर्थात् ऐसा ज्ञान जो अज्ञान का विनाश करता है, मोक्ष मार्ग में ब्रह्मलीन होने के लिए संसार का कारण बताता है। प्रोफेसर मैक्समूलर कहते हैं कि भारतीय विद्वानों में उपनिषद के इस अर्थ पर सहमति है।

यदि यह स्वीकर कर लिया जाए कि उपनिषद का वास्तविक अर्थ यही है तो इस सिद्धांत के पक्ष में एक साक्ष्य होगा कि भारतीय इतहास में एक समय था जब वेदांत को विचारों की ऐसी धारा समझा जाता था जिसका वेदों के साथ टकराव हो। परंतु यह बात इस पर निर्भर नहीं है कि इस सिद्धांत के समर्थन के लिए निरुक्ति की सहायता ली जाए। कुछ बेहतर प्रमाण और भी हैं। पहली बात तो यह है कि 'वेदांत' शब्द का प्रयोग ''वेदों के अंतिम ग्रंथ'' के रूप में नहीं लिया गया जैसा कि वे हैं। मैक्समूलर[1] का मत है:

''वेदांत एक तकनीकी शब्द है और मूल रूप से इसका अर्थ वेदों का अंतिम अंश नहीं है। और न ही वैदिक साहित्य का अध्याय है, अर्थात् वेदों का अंतिम भाग। *तैत्तिरीय आरण्यक* (सम्पादक राजेन्द्र मित्र, पृष्ठ 820) जैसे ग्रंथों में कुछ ऐसे अंश हैं। जिनसे भारतीय और यूरोपीय विद्वानों को भ्रांति हुई है कि वेदांत का सरल-सीधा अर्थ है वेदों का उपसंहार। ''यो वेदादू स्वर: प्रकटो वेदांते का प्रतिष्ठित:', ओ३म से वेद का आरम्भ होता है और उसी से वेद का समापन होता है। यहां वेदांत का जो सीधा अर्थ है, वेदादू के विपरीत है, जैसा क इसका अनुवाद किया गया है। उनका अनुवाद वेदांत अथवा उपनिषद असम्भव है। वेदांत दर्शन के रूप में *तैत्तिरीय आरण्यक* (पृष्ठ 817) में दिग्दर्शित हुआ है। नारायणी उपनिषद के एक मंत्र में, जिसकी आवृति मुण्डकोपनिषद् 3.2.6 में तथा अन्यत्र भी हुई है ''वेदांतविज्ञान सुनिश्चितता:'' जो विद्वान वेदांत मर्मज्ञ हैं, उनके अनुसार वह वेदों का उपसंहार नहीं'' और श्वेताश्वतर उप 6.22 'वेदांत प्रमाण गुहय्म' नहीं है। भाष्यकार के मत में यह वेद का उपसंहार नहीं जो कालांतर में बहुवचन के रूप में प्रयुक्त हुआ है अर्थात् '*क्षुरीकोपनिषद* 10 (बिबलि इंड पृ. 210) पुंडारिकेति

1. *दी उपनिषदाज,* (एस.बी.ई.), खंड 1, भूमिका।

वेदांतेषु निगाद्यते, वेदांत में छांदोग्य तथा अन्य उपनिषदों को पुण्डरीक कहा गया है। जैसा कि भाष्यकार ने कहा है, परन्तु प्रत्येक वेद का अंतिम ग्रंथ नहीं।

इस संबंध में *गौतम धर्म* सूत्र में स्पष्ट साक्ष्य उपलब्ध है। अध्याय 19 के 12वें मंत्र में शुद्धीकरण पर गौतम का कथन[1] है:

शुद्धीकरण (पाठ है) उपनिषद्, वेदांत, संहिता सभी वेदों के पाठ हैं आदि-आदि।

इससे यह स्पष्ट है कि गौतम के समय उपनिषद् और वेद अलग-अलग माने जाते थे और वे वेदों का अंग नहीं माने जाते थे। हरदत्त्स ने अपने भाष्य में कहा है, आरण्यक के वे अंश जो (उपनिषद) नहीं हैं, वेदांत कहलाते हैं, यह निर्विवाद साक्ष्य है कि उपनिषद वैदिक सिद्धांतों से भिन्न थे।

भगवद्गीता में वेद के उल्लेख से भी इस विचार को बल मिलता है। *भगवद्गीता* में 'वेद' शब्द का अनेक स्थानों पर उल्लेख है। भट्ट के अनुसार इस शब्द का प्रयोग इस भाव से किया गया है कि लेखक का आशय उपनिषद नहीं है।

उपनिषदों को वेदों के धार्मिक साहित्य से इस कारण विलग किया गया कि उपनिषदों में वेदों की इस शिक्षा का विरोध किया गया है कि धार्मिक कार्य और बलि ही मोक्ष का एक मात्र साधन हैं। कतिपय उपनिषदों से कुछ उदाहरण प्रस्तुत करके उनका वेदों के विरुद्ध होना प्रमाणित किया जा सकेगा। *मुण्डकोपनिषद्* का कथन है:

''देवों में सर्वप्रथम सृष्टि के रचयिता और विश्व-परिपालक ब्रह्मा उत्पन्न हुए। उन्होंने अपने ज्येष्ठ पुत्र अथर्व को ब्रह्मज्ञान दिया। (2) अथर्वन ने ब्रह्मा से प्राप्त ज्ञान अंगिरा मुनि को प्रदान किया। इसके पश्चात्, अंगिरा ने भारद्वाज गोत्रोत्पन्न सत्यवाह को यह ज्ञान दिया। उसने अपने उत्तराधकारी आंगिरस को यह परम्परा सौंपी, (3) शौनक विधिपूर्वक आंगिरस की शरण में आए और उनसे पूछा 'हे भद्रेय ऋषि वह क्या है जिसके माध्यम से ब्रह्मांड का ज्ञान प्राप्त होता है' (4) आंगिरस ने उत्तर दिया', 'दो विद्याएं प्रसिद्ध हैं। एक परा और दूसरी अपरा' (5) इनमें *ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद* और *अथर्ववेद* आते हैं। इसी में स्वरांकन शास्त्रीय व्याकरण भाष्य, पिंगल, गणित और ज्योतिष आते हैं। श्रेष्ठ विज्ञान वह है जो अविनाशी इन्द्रियगोचर होता है।''

छांदोग्य उपनिषद के कथनानुसार:

''मुझे उपदेश करें।'' ऐसा कहते हुए नारद जी सनत्कुमार के पास गए। नारद से सनत्कुमार ने कहा – तुम जो कुछ जानते हो, उसे बतलाते हुए मेरे पास आओ, फिर मैं तुम्हें तुम्हारे ज्ञान से आगे उपदेश करूंगा। (2) ऐसा सुनकर नारद ने कहा, ''मैं *ऋग्वेद* पढ़ा हूं, *यजुर्वेद*, सामवेद और चौथा *अथर्ववेद* भी जानता हूं। सिवाय इनके इतिहास, पुराण

1. *सैक्रेड बुक्स आफ दी ईस्ट*, खंड 2, पृ. 275

रूप पंचमवेद, वेदों का वेद व्याकरण, श्राद्धकल्प, गणित, उत्पातज्ञान, कलानिधि शास्त्र, तर्कशास्त्र, नीतिशास्त्र, निरुक्त, शिक्षाकल्प, छन्द और चितिरूप ब्रह्मविद्या, भूतशास्त्र, धनुर्वेद, ज्योतिषविद्या, गारुड़विद्या, नृत्य, यह सब मैं जानता हूं। (3) यह सब जानते हुए भी वह मैं केवल शब्दार्थ मात्र ही जानता हूं, आत्मा को मैं नहीं जानता। मैंने आप पूज्यजनों जैसे महापुरुषों से सुना है आत्मज्ञानी शोक को पारकर जाता है। मैं तो शोक करता हूं। ऐसे शोकग्रस्त मुझे शोक से पारकरें, अर्थात् मुझे अभय प्राप्त कराएं। ऐसा सुनकर सनत्कुमार ने नारद से कहा– अभी तक यह जो कुछ तुम जानते हो वह नाममात्र ही है, (4) क्योंकि ऋग्वेद नाम है, यजुर्वेद, सामवेद, चौथा अथर्वण वेद, पांचवां वेद इतिहास पुराण, व्याकरण, श्राद्धकल्प, गणित, उत्पात ज्ञान, निधिज्ञान, तर्कशास्त्र, नीतिशास्त्र, निरुक्त, वेद विद्या, भूतविद्या, धनुर्वेद, ज्योतिष, गारुड़, विद्या संगीतादि कला और शिल्पशास्त्र – ये सब भी नाम ही हैं। (अतः प्रतिमा में विष्णु बुद्धि के समान) तुम नाम की ब्रह्म बुद्धि से उपासना करो। (5) वह जो नाम ब्रह्म है, ऐसी उपासना करता है, जहां तक नाम की गति है, वहां तक नाम के विषय में उस उपासक की यथेष्ट गति हो जाती है। जो "यह ब्रह्म है" इस प्रकार नाम की उपासना करता है। नारद ने कहा, 'क्या नाम से बढ़कर भी कोई वस्तु है? सनत्कुमार ने कहा, नाम से भी बढ़कर वस्तु है। तब नारद ने कहा, मुझे उसका ही उपदेश करें।"

बृहदारण्यक उपनिषद् कहता है:

इस (सुषुप्तावस्था में) पिता, पिता नहीं होता है, माता, माता नहीं होती है, अर्थात् वहां जन्य भाव संबंध नहीं रह जाता। लोक, अलोक हो जाते हैं। देव, देव नहीं और वेद, वेद नहीं हो पाते हैं, अर्थात् सभी साध्य-साधन का अभाव हो जाता है। यहां पर चोर, चोर नहीं होता है। भ्रूण हत्यारा, अभ्रूणहत्यारा हो जाता है। चांडाल-चांडाल नहीं रह जाता है। पौल्कस, पौल्कस नहीं हो पाता है। परिव्राजक अपरिव्राजक और वानप्रस्थी अतापस हो जाता है। इस समय संत (प्राणी) का लाभ या हानि से कोई संबंध नहीं रह जाता, न गुण से, न पाप से, क्योंकि तब वह हृदयस्थ समस्त दुखों को विस्तृत कर जाता है।

कठोपनिषद का मत निम्न प्रकार से है:

"आत्मा उपदेश से प्राप्त नहीं। न ही ज्ञान से, न पठन-पाठन से। वह उसी को प्राप्त होती है जिसे वह चाहे। आत्मा उसी शरीर में वास करती है जिसे वह चुन लेती है।"

"यद्यपि आत्मा का ज्ञान कठिन है तथापि समुचित साधनों से उसे जाना जा सकता है। वह (लेखक) कहता है इसे प्राप्त नहीं किया जा सकता। वे न तो उपदेश से, न वेदों के ज्ञान से, न बुद्धि से, न पुस्तकों के रखने से, न मात्र पठन-पाठन से। फिर वह कैसे प्राप्य हो, वह यह कहता है?"

उपनिषदों में कितनी प्रतिकूलता है और इनकी दार्शनिकता कितनी असंगत है,

इसका आभास तभी हो सकता है जब कोई हिंदुओं की विवाह-पद्धति 'अनुलोम' और 'प्रतिलोम' शब्दों का उत्पत्ति समझेगा। उसकी उत्पत्ति के विषय में काणे का कथन है:[1]

"अनुलोम और प्रतिलोम (विवाह की परम्परा) ये दोनों वैदिक साहित्य में दुर्लभ हैं। *बृहदारण्यक उपनिषद* (II,1.15) और कौषीतकि बृहदारयण्क उपनिषद IV, 18 में 'प्रतिलोम' शब्द का प्रयोग उस स्थिति के लिए किया गया है, जब कोई ब्राह्मण ज्ञान प्राप्त करने के लिए क्षत्रिय के पास जाए।"

अनुलोम का अर्थ है, शास्त्रानुसार सहज परम्परा से कार्य सम्पन्न होना, प्रतिलोम का अर्थ है, सहज परम्परा के विपरीत। श्री काणे के कथनानुसार प्रतिलोम की परिभाषा के संदर्भ में यह स्पष्ट है कि उपनिषदों को वैदिक साहित्य की मान्यता नहीं है। उन्हें यदि तिरस्कृत भी नहीं किया गया है तो भी वैदिक ब्राह्मणों ने उनका स्थान तुच्छ रखा है। यह समझना एक पहेली है कि ब्राह्मण, जो वेदांत के विरोधी थे, कालातीत में वही उसके समर्थक और पक्षधर क्यों बन गए।

II

यह वेदांत की एक पहेली है। एक अन्य बात भी है, केवल वेदांती ही वेद विरोधी नहीं हैं। न वे यह मानते हैं कि मोक्ष का साधन कर्मकाण्ड है। सर्व दर्शन संग्रह के लेखक माधवाचार्य ने वेदों के दो विरोधियों का जिक्र किया है वे हैं चार्वाक और बृहस्पति। वैदिकों पर उनकी आलोचना अधिक तार्किक है। निम्नांकित उद्धरण से चार्वाक का विरोध परिलक्षित होता है जो उन्होंने वेद के विरोध में कहा है।[2]

"यदि आपको इस पर आपत्ति है, यदि परलोक में सुख जैसा कुछ नहीं तो बुद्धिमान अग्निहोत्र क्या करें? बल क्यों दे? जिन पर भारी अपव्यय होता है और थकान होती है? आपकी आपत्ति को कोई भिन्न साक्ष्य नहीं माना जा सकता क्योंकि अग्निहोत्रादि जीविकोपार्जन के साधन मात्र हैं। क्योंकि वेद में तीन दोष हैं। अर्थात् मिथ्या-कथन, अन्तर्विरोध और पुनरुक्ति। तब फिर छद्म वेशी जो स्वयं को वैदिक पंडित मानते हैं, तथा परस्पर संघर्षरत रहते हैं, उनमें ज्ञान मार्गी कर्मकांडियों की मान्यताओं को असत्य ठहराते हैं और कर्मकांडी ज्ञान मार्गियों की मान्यताएं ठुकरा देते हैं, अंततः तीनों वेद पोंगापंथियों के असंगत चारण काव्य के रूप में रह जाता है। इस संबंध में प्रसिद्ध लोक-कथन इस प्रकार हैं-

"अग्निहोत्र, तीनों वेद, तापस के तीन-पद और भस्म रमाकर कुरूप होना,"

---

1. *हिस्ट्री ऑफ धर्मशास्त्र, खंड 2, भाग 1, पृ. 52*
2. *सर्व दर्शन संग्रह (कावैल द्वारा अनूदित), पृ. 64*

ये बृहस्पति के कथनानुसार उनकी कमाई के धंधे हैं जो मनुष्यता तथा बुद्धि रहित हैं।

बृहस्पति वेदों के विरोध में अधिक साहसी एवं उग्र थे, जैसा कि माधवाचार्य ने उद्धृत किया है। बृहस्पति का तर्क[1] है:

स्वर्ग की कोई सत्ता नहीं है, मोक्ष कुछ नहीं है। न ही पुनर्जन्म होता है। न चार जातियों के कर्म, क्रम आदि कोई वास्तविक प्रभाव उत्पन्न करते हैं। अग्निहोत्र, तीनों वेद, तापस के तीन पद, और शरीर पर भस्म ईश्वर ने उनकी कमाई का साधन बनाया जो ज्ञान और पौरुष विहीन हैं। ज्योति स्तोम संस्कार में, यदि कोई जीव काट दिया जाता है और यदि वह सीधे स्वर्गगामी होता है तो बलिदाता अपने पिता की बलि क्यों नहीं दे देता?

यदि श्राद्ध से परलोक संतुष्ट होते हैं तो इहलोक में भी जब कोई यात्रा आरम्भ करता है तो यात्रा प्रबंध करना व्यर्थ है।''

यदि श्राद्ध से परलोक में संतुष्टि होती है तो इहलोक में उन्हें भोजन क्यों नहीं दिया जाता जो स्वर्ग से विमान आने की प्रतीक्षा में बैठे हैं।

जब तक जीवन है तो सुख से क्यों न रहें। क्यों न ऋण लेकर भी घी पिएं।

यदि मरणोपरांत देह भस्म बन जाती है तो वापस कैसे आ सकती है?

देह त्याग के पश्चात् कोई यदि परलोक चला जाता है तो वह अपने परिजन के मोह में फंसकर लौट क्यों नहीं आता?

इस प्रकार सब कमाई के धंधे हैं जो ब्राह्मणों ने बना रखे हैं।

ये सभी संस्कार मृतकों के लिए हैं अन्यत्र इनसे कोई फल नहीं मिलता, तीनों वेदों के सृष्टा विदूषक और दुरात्मा हैं।

पंडितों, झारपड़ी, तुरपड़ी के सर्वविदित सूत्र और देवी के लिए परोक्ष पूजा सभी अश्वमेघ की प्रशंसा में हैं।

इनका अन्वेषण इन्हीं विदूषकों ने किया और इसी कारण पुरोहितों को विभिन्न प्रकार से चढ़ावा मिल जाता है।

जबकि इसी प्रकार निशाचरों ने मांस-भक्षरण की प्रशंसा की है।

वैदिक ब्राह्मणों और वेदांतियों ने किस प्रकार सांठ-गांठ हो गई, परन्तु उन्होंने चार्वाक और बृहस्पति को क्यों स्वीकार नहीं किया? इस पहेली का उत्तर नहीं मिलता।

---

1. *सर्व दर्शन संग्रह,* पृ. 10

III

तीसरी पहेली इस प्रकार है। इसका विवरण देना युक्तिसंगत है, क्योंकि इसका संबंध वेदों और वेदांत से है। केवल ऊपरी तौर पर ही नहीं बल्कि दार्शनिक निरूपण आवश्यक है क्योंकि इससे व्यवस्थावाद के दो विद्‌वानों का प्रश्न जुड़ा है, जिनका संस्कृत साहित्य में ऊंचा स्थान है। वे हैं, जैमिनि और बादरायण। इनमें पहला मीमांसा का प्रणेता है और दूसरा ब्रह्म सूत्रों का रचयिता है। इनके विषय में, पहले भी जिक्र किया जा चुका है और वैदिक आस्थाओं तथा वेदांतिक अनुमानों के प्रसंग में कुछ संकेत दे दिए गए हैं। अब हमें एक-दूसरे के दर्शन के विषय में इनके विचारों की तुलना करनी है।

इस संबंध में जैमिनि और बादरायण द्‌वारा विषय प्रतिपादन में दोनों के सादृश्यवाद की ओर सहसा ध्यान आकृष्ट होता है। जैसा कि प्रोफेसर बेलवल्कर ने स्पष्ट कया है, वेदांत-सूत्र कर्मसूत्रों से घनिष्ठता से जुड़े हुए हैं। प्रणाली विज्ञान और पारिभाषिकता के संबंध में बादरायण ने बड़ी सावधानी से जैमिनि का अनुसरेंण किया है। श्रुति के पाठ के संबंध में वह जैमिनि के भाष्य को स्वीकार करते हैं। उन्होंने जैमिनि की शब्दावली को उसी भाव से प्रयुक्त किया है, जैसे जैमिनि ने। उन्होंने वैसे ही उदाहरण भी दिए हैं, जैसे जैमिनि ने दिए हैं।

सादृश्यवाद प्रकट करता है कि बादरायण ने यह अनुभव किया होगा कि वह एक विपरीत दर्शन के प्रणेता हैं जिस पर जैमिनि ने प्रहार किया है और प्रहारों का उत्तर उन्होंने जैमिनि की शैली में ही दिया है।

प्रश्न यह है कि क्या बादरायण ने जैमिनि के विरोधी की भूमिका अपनाई? वेदांत के प्रति जैमिनि के व्यवहार पर बादरायण स्वयं स्वीकार करते हैं कि जैमिनि उनके विरोधी हैं। बादरायण के सूत्र 2-7 में यही कहा गया है और शंकराचार्य ने अपने भाष्य में उसकी व्याख्या की है। जैमिनि का मत है:

''कोई उस समय तक बलि नहीं देता जब तक कि उसे इस बात का ज्ञान न हो कि वह शरीर से भिन्न है और मृत्यु उपरांत वह स्वर्ग जाएगा, जहां उसे बलि का फल प्राप्त होगा। आत्मज्ञान संबंधी-ज्ञान किसी का मार्ग दर्शन मात्र है। इस प्रकार बलि का उस पर प्रभुत्व है।''

संक्षेप में जैमिनि के मत में वेदांत का कथन है कि आत्मा देह से भिन्न है और वह देह से अधिक काल तक अस्तित्व में रहती है। ऐसा पर्याप्त नहीं है। आत्मा का मनोरथ स्वर्ग प्राप्ति हो सकता है। किन्तु वह स्वर्गारूढ़ नहीं हो सकती जब तक कि वैदिक यज्ञ न किया जाए। यहीं इनके कर्मकाण्ड की शिक्षा है। इस प्रकार उनका कर्मकाण्ड ही मुक्ति मार्ग है। इस प्रकार ज्ञानकांड निरर्थक है। इसीलिए जैमिनि उन

---

1. देखें बादरायण सूत्र 3, और शंकर की टिप्पणी।

लोगों के विरुद्ध है जो वेदांत[1] में आस्था रखते हैं;

''विदेह राजा जनक ने यज्ञ किया जिसमें उदारतापूर्वक दक्षिणा दी गई (बृह. 3.1.1.), ''मान्यवर! मैं बलि दे रहा हूं (छांदो. 5.11.5) जनक और अश्वपति दोनों ही आत्मज्ञानी थे। यदि वे दोनों ही आत्मज्ञानी थे तो वे मुक्ति पा चुके थे। फिर यज्ञ करने की आवश्यकता ही नहीं थी, परन्तु दोनों प्रसंगों में कहा गया है कि उन्होंने यज्ञ किया। इससे प्रमाणित होता है कि मुक्ति तभी मिल सकती है जब यज्ञ किया जाए और जैसा कि वेदांती कहते हैं, मुक्ति आत्मज्ञान से प्राप्त नहीं होती।''

जैमिनि ने एक रचनात्मक बात कही है कि शास्त्रों में निरापद कथन[1] है ''आत्मज्ञान यज्ञ की अपेक्षा गौण है।'' जैमिनि इसे उचित[2] बताते हैं कि दोनों (ज्ञान और कर्म) समानांतर चलते हैं (मृत आत्मा को फल देने हेतु)। जैमिनि बादरायण के ज्ञानकांड को स्वतंत्र साधन नहीं मानते। वे इसके दो आधार बताते हैं। प्रथम ''आत्म-ज्ञान स्वत: कोई फलदायी नहीं।'' द्वितीय ''वेदों की सत्ता के अनुसार ज्ञान कर्म की अपेक्षा गौण है।''

बादरायण के ज्ञान-कांड पर जैमिनि की क्या स्थिति है? उनका उल्लेख बादरायण ने अपने सूत्रों 8-17 में किया है।

पहला[3] मत है कि जैमिनि ने जिस ''आत्मा'' का जिक्र किया है, वह सीमित आत्मा है अर्थात् आत्मा और परमात्मा भिन्न है और शास्त्रों में परमात्मा को मान्यता है।

बादरायण का दूसरा[4] मत है कि वेद आत्मज्ञान के पक्षधर हैं और वेदों की यज्ञ में भी आस्था है।

बादरायण का तीसरा मत[5] है कि जिनकी वेदों में निष्ठा है, उन्हें ही यज्ञ की अनुमति है। परन्तु जो उपनिषदों के अनुगामी हैं, उन पर यह निर्देश लागू नहीं। जैसी कि शंकराचार्य ने व्याख्या की है:

''जिन्होंने वेद पढ़े हैं और जो कर्मकांड के ज्ञाता हैं वे यज्ञ करा सकते हैं। उनके लिए यज्ञ कराना निषिद्ध है, जिन्होंने उपनिषदों से आत्मज्ञान अर्जित किया है। ऐसे ज्ञान की कर्मकांड से कोई तुलना नहीं।''

बादरायण का चौथा मत[6] है कि जन्हें ब्रह्मानंद प्राप्त है, उनके लिए कर्मकांड वैकल्पिक है। जैसा कि शंकराचार्य ने स्पष्ट किया है:

''कि कुछ लोगों ने स्वत: ही कर्मकांड का त्याग कर दिया है। बात यह है कि

---

1. *बादरायण* सूत्र 4
2. देखें *बादरायण* सूत्र 5
3. *बादरायण* सूत्र 6, शंकर की टिप्पणी।
4. *बादरायण* सूत्र 7, शंकर की टिप्पणी।
5. देखिए *बादरायण* सूत्र 8
6. देखिए *बादरायण* सूत्र 8

ज्ञान प्राप्ति के उपरांत भी कुछ लोग दूसरों के सम्मुख उदाहरण प्रस्तुत करने हेतु कर्मकांड करना पसंद करते हैं, जबकि कुछ उसका परित्याग कर देते हैं। जो आत्मज्ञानी होते हैं, उनके लिए कर्मकांड की बाध्यता नहीं होती।''

उनकी अंतिम और निर्णायक टिप्पणी[1] है कि:

''आत्मज्ञान कर्मकांड का प्रतिरोधी है। इसलिए वह कर्मकांड का साधन नहीं है।'' और इसके समर्थन में वे उन शास्त्रों का सहारा लेते हैं[2] जो संन्यास को चौथा आश्रम मानते हैं और संन्यासियों को कर्मकांड द्वारा नियत यज्ञ से मुक्त रखते हैं।

बादरायण के सूत्रों में अनेक ऐसे सूत्र पाए जाते हैं जो दोनों परम्पराओं के विद्वानों के परस्पर विरोधी विचारों को परिलक्षित करते हैं। परन्तु उपरोक्त में से एक ही पर्याप्त है जिसकी अपनी विशेषता है। यदि कोई इस विषय की उपेक्षा कर देगा तो स्थिति विभिन्न हो जाती है। जैमिनि ने वेदांत को मिथ्याशास्त्र, भ्रमजाल और मोहमाया कहकर निंदा की है और उसे सतही, अनावश्यक तथा निराधार बताया है। इस लांछन के विरुद्ध बादरायण ने क्या किया? क्या उन्होंने भी जैमिनि के कर्मकांड को मिथ्याशास्त्र, भ्रमजाल और मोहमाया कहकर निंदा की है और उसे सतही, अनावश्यक तथा निराधार बताया है? उन्होंने मात्र अपने वेदांत शास्त्र का औचित्य ठहराया है। परन्तु उनसे और अधिक अपेक्षा थी। हम अपेक्षा कर सकते थे कि बादरायण भी जैमिनि के कर्मकांड को मिथ्या धर्म कहते। बादरायण में साहस नहीं है। इसके विपरीत वे क्षमाप्रार्थी बनते हैं। वे स्वीकार कर लेते हैं कि जैमिनि का कर्मकांड शास्त्रों पर आधारित है और शास्त्र प्रामाणिक तथा पवित्र हैं जिनका खण्डन नहीं किया जा सकता।

यही इतिश्री नहीं है। बादरायण ने कहा कि उपनिषद् के दो भाव हैं। उन्होंने इस बात पर बल दिया कि उपनिषद वैदिक साहित्य के अंग हैं। उनका कथन है कि दोनों एक–दूसरे के पूरक हैं। वेदांत अथवा ज्ञानकांड, वेदों के कर्मकांड के विरुद्ध नहीं हैं। दरअसल, बादरायण के वेदांत–सूत्र का यही स्वरूप है।

बादरायण का यह सिद्धांत, जो वेदांत सूत्रों का महत्व देता है और जिसके अनुसार उपनिषद वेदों का अंग हैं और वेद तथा उपनिषदों में कोई टकराव नहीं है– यह उपनिषद काल वेद तथा उपनिषद के संबद्ध सूत्रों के विपरीत है। बादरायण का रवैया समझ में नहीं आता। परन्तु यह स्पष्ट है कि बादरायण का मामला एक ऐसे विचित्र और दयनीय व्यक्ति का है जिसने अपना संघर्ष इसी बात को स्वीकार करके प्रारंभ किया कि अपने विरोधी की श्रेष्ठता को स्वीकार कर लिया। वेदों में संशयहीनता के संदर्भ में बादरायण ने जैमिनि की सत्ता क्यों स्वीकार कर ली? उसने सत्य का मार्ग क्यों छोड़ा, एक अटल सत्य का साथ। यह ऐसी पहेली है जिसका उत्तर अपेक्षित है।

1. देखिए *बादरायण* सूत्र 16
2. देखिए *बादरायण* सूत्र 17

परिशिष्ट – 3

त्रिमूर्ति की पहेली

जितनी सच्चाई इस बात में है कि हिंदू धर्म सम्प्रदायों का मिश्रण है, उतना ही सच यह भी है कि यह धर्म विभिन्न जातियों से मिलकर बना है। परन्तु जितना ध्यान सम्प्रदायों के अध्ययन पर दिया गया है, उससे आधा भी जातियों के अध्ययन पर नहीं दिया गया। यह जितनी दुर्भाग्य की बात है उतनी ही विचित्र भी। सम्प्रदायों ने भी भारत के इतिहास में उतनी ही भूमिका निभाई है जितनी जातयों ने। दरअसल जिस प्रकार कुछ जातियों ने भारत का इतिहास रचा है, उसी प्रकार सम्प्रदायों का भी उसमें योगदान है।

जितने सम्प्रदायों से मिलकर हिंदू धर्म बना है वे असंख्य हैं उन सबका उद्‌भव पता लगाना असम्भव है और इन पंथों की तुलना करना इस अध्याय की परिधि में नहीं आ सकता। हम इतना ही कर सकते हैं कि उनमें से कुछ अति महत्वपूर्ण पंथों को ही देखें और तत्संबंधी समस्याओं पर विचार करें। भारतीय इतिहास में इनमें से तीन अति महत्वपूर्ण हैं। एक वह है जो ब्रह्मा से संबद्ध है, दूसरा विष्णु से और तीसरा पंथ शिव अथवा महेश का अनुयायी है। जिन्होंने इन पंथों के इतिहास का अध्ययन किया है, निम्नांकित प्रश्न उन्हें झकझोर देंगे।

बौद्धों की रचना चुल्ल निदेश में तत्कालीन भारत के विभिन्न पंथों का संकेत दिया है। हम इन्हें सम्प्रदाय और पंथों में निम्नांकित रूप में विभाजित करते हैं:

1. पंथ

क्रम सं.	सम्प्रदाय का नाम	मत का तत्व
1.	आजीविका श्रावक[1]	आजीविका[2]

1. *श्रावक का अर्थ है अनुशासन*
2. *अपनी आजीविका के लिए विशेष नियमों का पालन करने वाला भिक्षुक*

इस पहेली को पहेली सं. 11 के साथ पढ़ा जाये जो देवताओं के उत्थान तथा पतन सं संबंधित हैं। 'त्रिमूति की पहेली' मूल विषयसूची में नहीं है, न ही सरकार को प्राप्त पाण्डुलिपि में यह निहित थी। यह प्रति श्री एस.एस. रेगे ने उपलब्ध कराई है। – संपादक

2.	निगंठ श्रावक	निगंठ[1]
3.	जटिल श्रावक	जटिल[2]
4.	परिव्राजक श्रावक	परिवाजक[3]
5.	अवरुद्ध श्रावक	अवरुद्धक

2. पंथ

क्र. सं.	सम्प्रदाय का नाम	पूजा देव का नाम
1.	हस्ति वृत्तिका (व्रती)[4]	हस्ति[5]
2.	अश्व वृत्तिका	अश्व[6]
3.	गो वृत्तिका	गो[7]
4.	कुकुर वृत्तिका	कुकुर[8]
5.	काक वृत्तिका	काक[9]
6.	वासुदेव वृत्तिका	वासुदेव
7.	बल्देव वृत्तिका	बल्देव
8.	पूर्णभद्र वृत्तिका	पूर्ण भद्र
9.	मणिभद्र वृत्तिका	मणिभद्र
10.	अग्नि वृत्तिका	अग्नि
11.	नाग वृत्तिका	नाग
12.	सुपर्ण वृत्तिका	सुपर्ण
13.	यक्ष वृत्तिका	यक्ष
14.	असुर वृत्तिका	असुर
15.	गंधर्व वृत्तिका	गंधर्व
16.	महाराज वृत्तिका	महाराज
17.	चन्द्र वृत्तिका	चन्द्र
18.	सूर्य वृत्तिका	सूर्य

1. सभी बन्धनों से मुक्त भिक्षुक
2. अपने सिर के केशों की चोटी बनाने वाले भिक्षुक
3. समाज को छोड़ने वाले भिक्षुक
4. तपस्वी 5. हाथी 6. घोड़ा
7. गाय 8. कुत्ता 9. कौआ

19.	इन्द्र वृत्तिका	इन्द्र
20.	ब्रह्म वृत्तिका	ब्रह्मा
21.	देव वृत्तिका	देव
22.	दिशा वृत्तिका	दिशा

त्रिदेवो के पंथों की उपर्युक्त सूची में विभिन्न देवों के पंथों के साथ तुलना से दो निष्कर्ष निकलते हैं। एक निष्कर्ष यह है कि ब्रह्मा और महेश की उपासना नई कपोल कल्पना है जो चुल्ल निदेश के बाद आरम्भ हुई। दूसरा निष्कर्ष यह है कि सभी पुरानी आस्थाएं लुप्त हो गईं। इस अद्भुत परिवर्तन का कारण स्पष्ट है कि नई पद्धति उस समय तक प्रचलित नहीं हो सकती थी जब तक कि ब्राह्मण उनका प्रचार न करते। साथ ही यदि ब्राह्मण उनके प्रचार से हाथ नहीं खींच लेते तो पुरानी पद्धति लुप्त नहीं हो सकती थी। इतिहास के विद्यार्थी को जो प्रश्न भ्रम में डालता है, वह है कि ब्राह्मणों ने नये पंथों की कल्पना क्यों की? प्राचीन आस्थाओं को तिलांजलि क्यों दे डाली? यह प्रश्न केवल जटिल ही नहीं है बल्कि विद्वानों को भ्रम में भी डाल देता है कि इस उथल-पुथल में इन्द्र जैसे देवताओं का भी लोप हो गया। इन्द्र एक वैदिक देवता है। वैदिक देवताओं में वह महानतम है। यदि हजारों साल तक भी नहीं तो सैकड़ों वर्षों तक ब्राह्मणों ने इन्द्र की परम देव के रूप में पूजा और स्तुति की। वह क्या वजह थी कि ब्राह्मणों ने इन्द्र की अवहेलना करके ब्रह्मा, विष्णु और महेश की पूजा आरंभ कर दी? ब्राह्मणों द्वारा आस्थाएं बदल देने का कारण आध्यात्मिक था अथवा व्यावसायिक?

शिव कौन थे जिन्हें इन्द्र के स्थान पर अपना लिया गया? दक्ष प्रजापति का यज्ञ और उसमें शिव की भूमिका शिव के विषय में महत्वपूर्ण प्रकाश डालती है। कथा इस प्रकार है कि राजा दक्ष ने हिमालय पर कहीं एक यज्ञ किया। इस यज्ञ में देव, दानव, पिशाच, नाग, राक्षस और ऋषि सभी सम्मिलित हुए। परंतु दक्ष ने शिव को आमंत्रित नहीं किया, इसलिए वे नहीं आए। एक ऋषि दधीचि ने दक्ष की भर्त्सना की कि शिव को क्यों निमंत्रित नहीं किया और यज्ञ करना चाहते हो। दक्ष ने शिव को आमंत्रित करने से इंकार कर दिया और कहा ''मैंने आपके रूद्र जैसे बहुत से देखें हैं आप जाइए मैं शिव को कुछ नहीं समझता''। दधीचि ने कहा ''तुमने शिव के विरुध षडयंत्र किया है, ध्यान रखना तुम्हारा यज्ञ सफल संपन्न नहीं होगा।'' महादेव ने यह सुना तो अपने मुख से एक राक्षस उत्पन्न किया और राक्षस ने दक्ष के यज्ञ का विध्वंश कर दिया। इससे पता चलता है कि एक समय ब्राह्मण शिव को पूज्य देवता नहीं मानते थे या इससे पता चलता है कि शिव ब्राह्मणों की यज्ञ प्रथा के विरुद्ध थे।

आर्यों और अनार्यों के बीच भिन्नता संस्कृति के आधार पर थी, जातीय आधार पर नहीं। सांस्कृतिक भेद दो बिन्दुओं पर था। आर्य चातुर्वर्ण्य में विश्वास रखते थे। अनार्य इसके विरुद्ध थे। दक्ष के यज्ञ के विषय में इन तथ्यों के संदर्भ में यह स्पष्ट है कि शिव एक अवैदिक और अनार्य देव थे। प्रश्न यह है कि वैदिक संस्कृति के स्तंभ ब्राह्मणों ने शिव को देवता कैसे मान लिया?

एक विद्वान के मस्तिष्क को उलझा देने वाला तीसरा प्रश्न वह परिवर्तन और संशोधन है जिसे ब्राह्मणों ने शिव ओर विष्णु के मौलिक स्वरूप में कर डाला।

हिंदू इससे परिचित नहीं हैं कि शिव एक अवैदिक और अनार्य देवता है। वे उन्हें वेदों में उल्लिखित रुद्र के साथ जोड़ते हैं। इसी कारण हिंदुओं का रुद्र शिव के समान है। *यजुर्वेद* की *तैत्तिरीय संहिता* में एक मंत्र है, जिसमें रुद्र की स्तुति है। इस मंत्र में रुद्र अर्थात् शिव को चोरों, दस्युओं, डकैतों के देवता के रूप में वर्णित किया गया है। उन्हें, पतितों, कुम्हारों और लोहारों का राजा बताया गया है। प्रश्न यह है कि ब्राह्मणों ने चोरों, डाकुओं के राजा को अपना परमदेव कैसे मान लिया?

रुद्र के चरित्र के संबंध में भी एक परिवर्तन हुआ जिसे ब्राह्मणों ने अपना देव शिव मानकर किया था। आश्वलायन गृह्य–सूत्र में रुद्र की उपासना की समुचित विधि बताई गई है। इसके अनुसार शिव की उपासना में बृषभ बलि दी जाती है। इस सूत्र में बलि की ऋतु और नक्षत्र का भी उल्लेख है। इसमें गृहस्थों से कहा गया है कि वे अपने बाड़े के सर्वश्रेष्ठ बृषभ का चयन करें, उसका रंग भी बताया गया है, और कहा गया है कि वह मोटा–ताजा होना चाहिए। उसे चावल के मांड और जौ के पानी से छका दिया जाना चाहिए। तब इसका वध किया जाए और रुद्र के नामों का उच्चारण कर उसे बलि चढ़ा दिया जाए। उसकी पूंछ, खाल और पैर अग्नि को सौंप दिए जाएं। स्पष्ट है कि रुद्र एक हिंसक देव था जिसके लिए जीव–बलि आवश्यक थी। प्रश्न यह है कि ब्राह्मणों ने शिव से मांसाहार क्यों छुड़वा दिया और उन्हें शाकाहारी क्यों बना दिया?

हिंदू भारत भर में बिना लज्जा और पश्चाताप के लिंग पूजा–शिश्न पूजा का महत्व स्वीकारते हैं। लिंग पूजा शिव से जुड़ी है और सामान्यत: यह कहा जाता है कि शिव की सच्ची पूजा की विधि शिव लिंग पूजा ही है। क्या लिंग पूजा का संबंध शिव से सदा था? प्रोफेसर दाण्डेकर के लेख 'विष्णु इन द वेदाज' में एक रोचक तथ्य दिया गया है। प्रोफेसर दाण्डेकर कहते हैं:

''इस संबंध में सर्वाधिक महत्वपूर्ण शब्द ''सिपिविष्त'' हैं। इसका वेदों में विष्णु के संबंध में विशिष्ट उल्लेख है। जिस छंद में यह शब्द आया है वह है ऋ.वे.

(7-99.7; 7-100.5-6) और जान -बूझकर इस शब्द का अर्थ दुर्बोध सा रखना ही इसका उद्देश्य है। वैदिक मंत्र-दृष्टाओं ने जानबूझ कर विष्णु के स्वाभाविक संदर्भ में बड़ी चतुराई से छिपाकर 'सिपिविष्त' शब्द का प्रयोग किया है। इस शब्द की व्याख्या के लिए अनेक प्रयास किए गए। परन्तु कुछेक ने ही दार्शनिक पक्ष संतुष्ट करने का प्रयत्न किया, लेकिन विष्णु के सही चरित्र का वर्णन नहीं हुआ। भाषाशास्त्र की दृष्टि से ''सेप'' शब्द (लिंग) को ''सिपि'' से अलग नहीं किया जा सकता। इसी प्रकार 'सिप' शब्द जिसकी मूल धातु प्राकृत 'क्षेप', लैटिन ओइपपुस, सैपियो आदि मिलता है। यहां तक कि निरुक्त (5-7) में भी संकेत से इस विचार की पुष्टि होती है। यद्यपि इसकी असली व्याख्या स्पष्ट नहीं है। इसी के साथ इस शब्द का मूल यह आभास देता है कि पूरे शब्द का अर्थ है ''परिवर्तनशील लिंग, फूला हुआ और सिकुड़ता हुआ लिंग''। अब हम सहज ही समझ सकते हैं कि वैदिक मंत्र-दृष्टाओं ने विष्णु के संदर्भ में छिपाते हुए और घुमा-फिरा कर इस शब्द की व्याख्या की है। इस संबंध में यह उल्लेखनीय है जो निरुक्त (5-8,9) में विष्णु के नाम के बारे में प्रयुक्त किया है। विष्णु के संबंध में वैदिक साहित्य में ऐसे ही और भी प्रसंग हैं जिनमें उनकी सृजनशीलता, उत्पादन-क्षमता और स्वजीवन का अन्तर्बोध होता है।

वैदिक श्राद्ध में एक और अस्पष्ट-सी क्रिया है और वह है अंगुष्ठ। बिना नाखून का अंगूठा पितरों को चढ़ाई जाने वाली सामग्री में डुबोया जाता है। यह क्रिया विष्णु के नाम पर की जाती है। अंगुष्ठ निःसंदेह लिंग का द्योतक है। इस प्रकार विष्णु इस क्रिया में, वैदिक कर्मकाण्ड में लिंग से संबद्ध हैं। बाद के साहित्य में अंगुष्ठ विष्णु की पहचान है। इस बारे में हमें एक और साक्ष्य मिलता है आई.एस. (6.2.4.2)। धरतीमाता के गर्भ में विष्णु का प्रवेश गर्भाधान संस्कार का सांकेतिक वर्णन है। ''तनवर्धनः'' विष्णु के संदर्भ में प्रयुक्त होता है (7-99.1:8-100.2)। इसे भी लिंग प्रवृत्ति में गिना जा सकता है। परवर्ती साहित्य में विष्णु को हिरण्यगर्भ और नारायण कहा गया है। विष्णु के व्यक्तित्व पर सिनीवली (अ.वे. 7-46, 3) भी उल्लेखनीय है। 'विस्तीर्ण नितम्बा' नारी रति-क्रिया को सुखद बनाने वाले विष्णु के चरित्र पर प्रकाश डालती है। सांख्यायन के गृह्यसूत्र (1.22.13) के मंत्र (10.184.1) के अनुसार वह गर्भधारण संस्कार में सहभागी होता है। इससे पता चलता है कि विष्णु भ्रूण का अमोघ संरक्षक है। अ.वे. (7.17.4) के अनुसार विष्णु का रतिक्रिया से प्रत्यक्ष संबंध है, विष्णु के दो विशेषण, विष्णु निसिकाय (7.36.9) वीर्य संरक्षक और ''सुमज्जनी (1 156.2) सहज प्रसूति स्वयं में इसके प्रमाण हैं। शब्द पौरुषेय विष्णु के लिए प्रयुक्त हुआ है। ऋ. वे. (ई 155.3-4) वृषकपि मंत्रों (10.86) में कहा गया है कि इन्द्र क्लांत हो गए। तब एक सुगठित शरीर कामुक

वानर ने उनमें कोई औषधि प्रविष्ट की। इसके माध्यम से उनकी शक्ति फिर लौट आई। परवर्ती साहित्य में वृषकपि विष्णु को ही कहा गया है। यह शब्द विष्णु सहस्रनाम में भी सम्मिलित है।

प्रो. दाण्डेकर द्वारा प्रस्तुत प्रमाणों के अनुसार लिंग–पूजा मूल रूप में विष्णु से ही संबद्ध थी, पुराणों में लिंग–पूजा विष्णु से नहीं जुड़ी हुई है। पुराणों में इसे शिव के साथ जोड़ दिया गया। यह आश्चर्यजनक परिवर्तन है। विष्णु, जो आरंभ से ही लिंग पूजा से संबद्ध थे, उनका संबद्ध इससे तोड़ दिया गया और शिव का लिंग–पूजा से कोई लेना–देना नहीं था, वह उनके मत्थे मढ़ दी गई। प्रश्न यह है कि ब्राह्मणों का क्या इरादा था जो उन्होंने विष्णु को लिंग–पूजा से मुक्त करके शिव को इसके साथ लपेट दिया?

अब अंतिम प्रश्न यह है कि ब्रह्मा, विष्णु और महेश के परस्पर संबंधों के संदर्भ में इस से बढ़कर कोई बात नहीं हो सकती जो भगवान दत्तात्रेय के जन्म के विषय में हैं। संक्षेप में कहानी इस प्रकार है कि एक बार तीनों देवों की पत्नियां सरस्वती, लक्ष्मी और पार्वती एक स्थान पर बैठी बात कर रहीं थी, तभी नारद जी प्रकट हुए। वार्ता के बीच एक प्रश्न उठा कि संसार में सबसे बड़ी पतिव्रता नारी कौन है? नारद ने कहा कि अत्रि ऋषि की पत्नी अनसूया सबसे बड़ी सती है। तीनों देवियां इससे चमक उठीं और प्रत्येक ने अपने आपको सब से बड़ी पतिव्रता सती नारी बताया। नारद जी नहीं माने और उनमें से प्रत्येक के व्यभिचार के अनेक प्रसंग प्रस्तुत किए। वे शांत तो हो गईं परन्तु भीतर प्रतीशोध की भावना प्रबल हो उठी। वे अनसूया के मुकाबले अपनी स्थिति बताना चाहती थीं। उन्होंने सोच–विचार कर षडयंत्र रचा कि अनसूया के साथ अवैध संभोग कराकर उसका शील भंग कराया जाए। अपनी योजना के अनुसार तीनों देवियों ने अपने पतियों के शाम को घर लौटने पर दोपहर में नारद के साथ हुए संवाद का जिक्र किया और बताया कि नारदजी ने उन्हें किस प्रकार लज्जित किया है और अपनी पत्नियों के अपमान का कारण वे हैं। यदि उन्होंने अनसूया के साथ व्यभिचार किया होता तो वह भी उनकी श्रेणी में आ जाती और नारद को उनका अपमान करने का अवसर न मिलता। उन्होंने अपने पतियों से पूछा कि क्या वे अपनी पत्नियों का ख्याल रखते हैं? यदि हां तो क्या यह उनका कर्त्तव्य नहीं है कि वे अनसूया का शील भंग करने के लिए तुरन्तु प्रस्थान करें और उसे सतीत्व के उस शिखर से नीचे धकेल दें, जिस पर उसे नारद ने बैठा बताया है। देवता सहमत हो गए कि यह उनका कर्त्तव्य है और वे इससे मुंह नहीं मोड़ सकते।

तीनों देव सती का शील-हरण करने अत्रि की कुटिया की ओर चल पड़े। इन तीनों ने ब्राह्मण भक्षुओं का वेष धारण किया। जब वे वहां पहुंचे, अत्रि बाहर गए हुए थे। अनसूया ने उनका स्वागत किया और उनके लिए भोजन तैयार किया। जब भोजन तैयार हो गया तो उनसे आसन पर बैठकर भोजन करने के लिए कहा। तीनों देवों ने उत्तर दिया कि वे उसी स्थिति में उसके घर भोजन करेंगे, जब वह निर्वस्त्र होकर भोजन परोसे। प्राचीन भारत में आतिथ्य का नियम था कि ब्राह्मण भिक्षुक असंतुष्ट होकर न लौटे। वह जो मांगे, उसे दिया जाए। इस नियम के अनुसार अनसूया निर्वस्त्र होकर भोजन परोसने को सहमत हो गई। जब वह इस स्थिति में भोजन परोस रही थी तो अत्रि आ गए। जब उन्होंने अत्रि को आते हुए देखा तो वे नवजात शिशु बन गए। इन तीनों को अत्रि ने पालने में लिटा दिया। उसमें इन तीनों के सभी अंग जुड़कर एक हो गए परन्तु सिर अलग-अलग रहे। इस प्रकार दत्तात्रेय बने, जो तीनों देव ब्रह्मा, विष्णु और महेश का संयुक्त रूप हैं।

इस कहानी में अनैतिकता की दुर्गंध भरी पड़ी है और इसके अंत को जान-बूझकर ऐसा मोड़ दिया गया है, जिससे ब्रह्मा, विष्णु और महेश के उस वास्तविक कुकर्म पर पर्दा डाल दिया जाए। उन्होंने अपनी पत्नियों के समक्ष सती अनसूया को गिरा दिया जैसा कि कहानी में निहित है। किसी समय हिंदुओं में यह प्रचलित था कि ब्रह्मा, विष्णु और महेश की समान स्थिति है और उनके कार्य एक-दूसरे के पूरक हैं। प्रतिस्पर्धात्मक नहीं। उन्हें त्रिमूर्ति कहा जाता था- एक साथ तीनों और एक में तीन। सभी विश्व के नियंता, ब्रह्मा सृष्टा, विष्णु पालक और शिव संरक्षक हैं।

सामंजस्य की यह स्थिति अधिक दिनों नहीं चली। इन तीनों देवों के चारण ब्राह्मण तीन शिविरों में बंट गए। प्रत्येक के अनुयायी ने दूसरे के आराध्य को गिराने के लिए कमर कस ली। इसका परिणाम यह निकला कि एक देव के अनुयाई ब्राह्मणों ने दूसरे के विरुद्ध बदनामी और नीचा दिखाने का अभियान छेड़ दिया।

यह बड़ी रोचक और जानने योग्य बात है कि ब्राह्मणों ने ब्रह्मा के साथ क्या रचना रची? कोई समय था जब ब्रह्मा को सत्ता और गौरव से सर्वोच्च शिखर पर रखा जाता था। उन्होंने ब्रह्मा को जगत का प्रथम प्रजापति कहा। वह उनके साथ एकमेव परमदेव थे। ब्राह्मणों ने अवतारवाद का आविष्कार किया जिसका अर्थ है, भगवान आवश्यकता पड़ने पर मानव अथवा पशु किसी भी रूप में अवतरित हो सकता है। इसके पीछे दो उद्देश्य थे। पहला, भगवान की श्रेष्ठता बताना, जिसमें उनका स्वार्थ हो और दूसरे, देवताओं और अन्य व्यक्तियों के बीच संघर्ष को स्वीकार करना।

ब्राह्मणों ने विभिन्न पुराणों में अवतारों की झड़ी लगा दी, और प्रत्येक पुराण ने विभिन्न अवतारों की अलग–अलग रचना की, जो निम्नांकित सूची में दर्शाया है:

क्र.सं.	हरिवंश के अनुसार	नारायणी आख्यान के अनुसार	वाराह पुराण के अनुसार	वायु पुराण के अनुसार	भागवत् पुराण के अनुसार
1.	वाराह	हंस	कूर्म	नरसिंह	सनत्कुमार
2.	नरसिंह	कूर्म	मत्स्य	वामन	वाराह
3.	वामन	मत्स्य	वाराह	वाराह	
4.	परशुराम	वाराह	नरसिंह	कूर्म	नरनारायण
5.	राम	नरसिंह	वामन	संग्राम	कपिल
6.	कृष्ण	वामन	परशुराम	आदिवक	दत्तात्रेय
7.		परशुराम	राम	त्रिपुरारी	यज्ञ
8.		राम	कृष्ण	अंधकार	रासभ
9.		कृष्ण	बुद्ध	ध्वज	पृथ्वी
10.		कल्कि	कल्कि	वृत्र	मत्स्य
11.				हलाहल	कूर्म
12.				कोलाहल	धन्वंतरी
13.					मोहिनी
14.					नरसिंह
15.					वामन
16.					परशुराम
17.					वेद व्यास
18.					नरदेव
19.					राम
20.					कृष्ण
21.					बुद्ध
22.					कल्कि

इन पुराणों में ये सभी अवतार विष्णु के बताए गए हैं। परन्तु आरंभ में जब अवतारों की धारणा शुरू हुई तो दो अवतारों सूकर[1] और मत्स्य[2] को बाद में विष्णु का अवतार कहा गया है। पहले ये ब्रह्मा के माने जाते थे। जब ब्राह्मणों ने शिव और विष्णु को भी ब्रह्मा के समान पद देना स्वीकार कर लिया तो भी फिर से उन्होंने ब्रह्मा की सत्ता विष्णु और शिव से ऊपर माननी आरंभ कर दी। ब्राह्मणों ने उन्हें शिव[3] का जनक बताया और प्रचारित किया कि यदि विष्णु[4] सृष्टि के पालकर्ता हैं तो वे सभी ब्रह्मा की आज्ञा से ही यह कार्य सम्पादन कर रहे हैं। देवों की एकाधिक संख्या होने के कारण उनके बीच सदैव संघर्ष की स्थिति विद्यमान रहती थी और विवाद निपटाने के लिए किसी मध्यस्थ और निर्णायक देव की आवश्यकता थी।

पुराणों में ऐसे संघर्ष, यहां तक देवताओं के बीच युद्धों की कहानियां भी भरी पड़ी हैं। रुद्र और नारायण[5] के बीच तथा कृष्ण और शिव[6] के बीच संघर्ष हुआ। इन संघर्षों के समय ब्राह्मणों ने ब्रह्मा को मध्यस्थ बना डाला।

वही ब्रह्माण, जिन्होंने ब्रह्मा को इतना ऊंचा स्थान दिया था, उसी के पीछे पड़ गए, उन्हें नीचा दिखाने लगे, उन पर कीचड़ उछालने लगे। उन्होंने प्रचार आरम्भ किया कि ब्रह्मा सचमुच शिव और विष्णु से हीन हैं। अपनी पुरानी कथनी के विपरीत ब्राह्मणों ने कहा कि ब्रह्मा शिव से पैदा हुए थे और कुछ ने कहा वह विष्णु[7] से पैदा हुए थे।

ब्राह्मणों ने शिव और ब्रह्मा के परस्पर संबंधों को पलट दिया। अब ब्रह्मा के पास मोक्ष देने का अधिकार नहीं रहा। शिव ही मुक्ति दे सकते थे ब्रह्मा एक साधारण देवता बन गए जो अपने मोक्ष[8] के लिए शिव और शिवलिंग के उपासक हो गए। उन्होंने ब्रह्मा को शिव[9] का सारथि बना डाला।

ब्राह्मणों को ब्रह्मा का स्थान गिराये जाने से अभी संतोष नहीं हुआ था। उन्होंने हद दर्जे तक उनकी बदनामी की। उन्होंने एक कहानी उछाल दी कि ब्रह्मा ने अपनी पुत्री सरस्वती से बलात्कार किया। यह कथा *भागवत पुराण*[10] में दोहराई गई है[11]:

---

1. *रामायण*–म्यूर द्वारा संस्कृत टैक्स्ट में उद्धृत, खंड 4, पृ. 33
2. *महाभारत*–वनपर्व एवं लिंग पुराण–म्यूर, वही, पृ. 38–39
3. *विष्णु पुराण*–म्यूर, वही. पृ. 392
4. *रामायण*–म्यूर, वही, पृ, 477
5. *महाभारत शांति पर्व,* म्यूर द्वारा उद्धृत खंड 4, पृ, 240
6. *महाभारत शांति पर्व*–पृ. 279
7. *महाभारत अनुशासन पर्व,* म्यूर, वही, पृ. 188
8. *भागवत पुराण*–वही, पृ. 43
9. *महाभारत*–म्यूर द्वारा संस्कृत टैक्स्ट में उद्धृत, खंड 4, पृ. 192
10. वही, पृ. 193
11. *म्यूर संस्कृत टैक्स्ट,* खंड 4, पृ. 47

''हे क्षत्रियो! हमने सुना है कि स्वायंभुव (ब्रह्मा) के मन में अपनी अबला और मोहक पुत्री वाच के प्रति कामुकता जगी, जिसके मन में उनके प्रति कामभाव नहीं था। ऋषियों और मारीचि के नेतृत्व में मुनियों और उनके पुत्रों ने अपने पिता के कुकर्म पर उन्हें फटकारा, ''तुमने ऐसा किया जो तुमसे पहले किसी ने नहीं किया, न तुम्हारे बाद कोई ऐसा करेगा।'' विधाता होते हुए क्या तुम्हें अपनी पुत्री से विषय भोग करना चाहिए था? अपने उन्माद को क्या तुम रोक नहीं सकते थे? संसार के तुम्हारे जैसे गौरवशाली व्यक्ति के लिए यह प्रशंसनीय नहीं है। जिनके कार्यों की मर्यादा के कारण व्यक्ति का आनन्द प्राप्त होता है, जिस विष्णु की दीप्ति से यह ब्रह्मांड प्रकाशित होता है, जो उसी से फूटती लौ है, वही विष्णु धर्मपरायणता को बनाए रखे। ''अपने पुत्रों के व्यवहार को देखकर, जो प्रजापतियों के स्वामी को ऐसा कह रहे थे, वे शर्म से गढ़ गए और अपने शरीर का विखंडन कर दिया। उसके भयानक अवशेष उस क्षेत्र में फैल गए और वही कोहरे के नाम से विख्यात हुआ।''

ब्रह्मा के विरुद्ध ऐसा अपकर्ष एवं अपमानजनक आक्रमण होने से वे तिरस्कृत हो गए। इसमें कोई आश्चर्य नहीं कि भारत में उनकी उपासना लुप्त हो गई और वे औपचारिक रूप में ही त्रिमूर्ति में सहयोगी रह गए।

ब्रह्मा के मैदान से बाहर हो जाने पर रह गए शिव और विष्णु। ये दोनों भी कभी शांति से नहीं बैठे। दोनों के बीच प्रतिस्पर्धा, संघर्ष जारी रहा। आइए, देखें इस प्रचार-युद्ध में उन्होंने अपने विपक्षियों की क्या गत बनाई। कोई-सा भी पक्ष अपने विरोधी देव का पंथ समाप्त करने में सफल न हो सका। शिव और विष्णु की उपासना जारी रही और फलती-फूलती रही। इसके बावजूद कालांतर में अनेक पंथ अस्तित्व में आए और उनको कभी राहु ने नहीं ग्रसा। इसका प्रमुख कारण यह है कि ब्राह्मणों ने धुंआधार प्रचार और प्रतिप्रचार जारी रखा। प्रचार-तंत्र किस प्रकार चलता रहा, वह कुछ निम्न उदारहणों से जाना जा सकता है।

विष्णु वैदिक देवता सूर्य से संबद्ध है और शिवभक्त उनका संबंध अग्नि से जोड़ते हैं। इसका आशय यह प्रकट करना था कि यदि विष्णु का उद्गम वैदिक है तो शिव का उद्गम भी वैदिक है। जन्म के आधार पर कोई भी एक-दूसरे से घट कर नहीं है।

शिव विष्णु से बड़े हों और विष्णु इनसे कम न हों। विष्णु के सहस्र नाम[1] हैं तो शिव के भी सहस्र नाम होने चाहिए और ऐसा ही हुआ।[2] विष्णु के अपने प्रतीक[3] हैं। इसी प्रकार शिव के भी होने चाहिए और उनके अपने[4] प्रतीक हैं।

---

1. *देखें विष्णु सहस्रनाम।*
2. *पद्म पुराण में उद्धृत।*
3. *ऊपर देखें।*
4. *वे है। (1) बहती गंगा, (2) चन्द्र, (3) शेष नाग, (4) जटा-जूट।*

महिमा-मण्डन के लिए एक देव के भक्तों ने जिस प्रकार पक्ष में प्रचार किया, उसके उत्तर में दूसरों ने भी अपने पक्ष में वैसा ही प्रतिप्रचार किया। गंगावतरण[1] का प्रसंग एक उदाहरण है। शिव-भक्त उसकी उत्पत्ति शिव की जटाओं से मानते हैं, परन्तु वैष्णव इसे मानने को तैयार नहीं थे। उन्होंने एक और कथा गढ़ डाली। वैष्णवों के आख्यान के अनुसार पतित-पावनी गंगा बैकुंठ (विष्णु के निवास) से निकलती है। उसका उद्गम विष्णु के चरणों से है और कैलाश पर आकर वह शिव के मस्तक पर उतरती है। इस कथा के दो निष्कर्ष हैं। प्रथम यह कि गंगा का उद्गम विष्णु के चरणों से है, शिव की जटा से नहीं। फिर, शिव का पद विष्णु से नीचा है क्योंकि उनके मस्तक पर गंगा की धार विष्णु के चरणों से गिरती है।

दूसरा उदाहरण देखें जो देवों और असुरों द्वारा सागर-मंथन का है। उन्होंने मंदराचल पर्वत को मथानी बनाया और शेषनाग को रस्सी (रज्जू)। विष्णु ने कूर्म अवतार लिया और पृथ्वी को अपनी पीठ पर धारण किया तथा मंथन के समय उसके स्पंदन को नियंत्रित किया। यह कथा विष्णु की महिमा बढ़ाने के लिए रची गई। शिव का स्थान, इसमें गौण है। इसके अनुसार समुद्र-मंथन से चौदह रत्न निकले। इनमें से हलाहल एक था। यदि कोई इस हलाहल का पान न करता, वह समस्त विश्व को नष्ट कर सकता था। शिव ही उसके पान के लिए तत्पर हुए। इससे यह संकेत मिलता है कि विष्णु द्वारा दोनों विरोधी समूहों, देव और असुरों का सागर मंथन की अनुमति देकर विश्व के विनाश का द्वारा खोल दिया गया था और उन्होंने अविवेकपूर्ण कार्य किया था। शिव की महिमा बताई गई है कि उन्होंने विष-पान करके विष्णु की करतूत से होने वाले अनिष्ट से विश्व को बचा लिया।

तीसरा उदाहरण भी यह प्रकट करता है कि विष्णु मूर्ख थे और शिव ने ही अपनी विलक्षण बुद्धिमत्ता और पराक्रम से विष्णु को उनकी करनी से त्राण दिलाया। यह कथा अक्रूरासुर[2] की है। अक्रूर ऋक्ष के मुख वाला एक राक्षस था। इसके बावजूद वह नियमित रूप से वेद पाठ करता था और भक्ति कर्म करता था। विष्णु उससे अत्यंत प्रसन्न हो गए और उसे मनचाहा वरदान देने का वचन देने को मान गए। अक्रूरासुर ने वर मांगा कि त्रैलोक्य का कोई भी प्राणी उससे अधिक बलशाली न हो, न उसे मार सके। विष्णु ने उसे वरदान दे दिया। परन्तु वह इतना ढीठ हो गया कि जब उसने देवताओं को त्रास दिया तो वे छिप गए और वह विश्व का शासक बन बैठा। असुर के अत्याचारों से लाचार विष्णु काली तट पर चिंतित बैठे थे। उनका रोष स्पष्ट दिख रहा था। उनकी आंखों के सामने ऐसे आकार जीव प्रकट हुआ जो पहले त्रिलोक में विद्यमान नहीं था। वह रौद्र रूपी महादेव थे, जिन्होंने क्षण भर में

1. *मूर, हिंदू पेनथियन, पृ. 40-41*
2. *यह कहानी विष्णु आगम में कही जाती है और मूर के हिंदू पेनथियन पृ, 19-20 में उल्लिखित है।*

विष्णु को त्राण दिलाया।

इसके जवाब में भस्मासुर की कथा प्रचलित हुई जिसमें शिव को मूर्ख बताया गया है और विष्णु उस के परित्राण कर्त्ता दिखाए गए हैं। भस्मासुर ने शिव को एक वरदान के लिए प्रसन्न कर लिया। वरदान यह था कि भस्मासुर जिसके भी सिर पर हाथ फिराएगा, वह भस्म हो जाएगा। शिव ने वरदान दे दिया। भस्मासुर ने शिव के वरदान से उन्हें ही भस्म करने की ठानी। शिव भयभीत होकर भागे और विष्णु के पास पहुंचे। विष्णु ने मोहिनी रूप धारण किया और भस्मासुर के पास गए। वह उन्हें देखकर आसक्त हो गया। मोहिनी रूपी विष्णु ने कहा कि वह एक शर्त पर उसकी हो जाएगी, जैसे–जैसे वह क्रिया करे, वैसे ही भस्मासुर अनुसरण करे। विष्णु ने इस प्रकार भस्मासुर का हाथ उसके सिर पर रखवा दिया। परिणाम यह निकला कि भस्मासुर का काम तमाम हो गया और विष्णु को यह श्रेय मिला कि उन्होंने शिव को उनकी भूल के संभावित विनाश से बचा लिया।

इन देवताओं के बीच इस प्रश्न पर प्रतिस्पर्धा और शत्रुता का ज्वलंत प्रमाण मिलता है कि पहले कौन जन्मा? एक कथा *स्कंद पुराण* में आती है। *स्कंद पुराण* कहता है कि विष्णु देवी के वक्षस्थल पर सो रहे थे। उनकी नाभि से कमल प्रकट हुआ और वह पुष्प जल की सतह पर आ गिया। उसमें से ब्रह्मा प्रकट हुए। उन्होंने जब यह देखा कि इस अनन्त में कोई जीव नहीं है तो उन्होंने सोचा सर्वप्रथम वे ही उत्पन्न हुए हैं और इस प्रकार उन्होंने स्वयं को भावी सृष्टि से पूर्व–जन्मा बताया। फिर भी यह विश्वास करने के लिए कि उनकी प्रभुसत्ता को चुनौती कौन दे सकता है, उन्होंने कमल–नाल को खींचा तो विष्णु को सोता हुआ पाया। उन्होंने जोर से पूछा तू कौन है।' विष्णु ने कहा, मैं प्रथम जन्मा हूं और जब ब्रह्मा ने अपने को पूर्व जन्मा बताया तो दोनों में युद्ध छिड़ गया। तभी महेश प्रकट हुए और कहा पहले मेरा जन्म हुआ। परन्तु मैं तुम दोनों में से किसी के भी लिए यह स्थिति त्यागने के लिए तैयार हूं, जो मेरी शिखा तक पहुंचे अथवा मेरे पांवों के तल तक। ब्रह्मा तुरन्त तैयार हो गए किन्तु वे थक गए थे पर बिना बात के प्रयत्न के अनिच्छुक हो गए। इसलिए उन्होंने अपना इरादा त्याग दिया। वे महादेव की ओर मुड़े और कहा, 'उन्होंने अपनी बात पूरी कर दी है और उनके माथे का मुकुट देख लिया है और साक्षी के लिए प्रथम जन्मी गाय को बुला लिया। इस गर्व और झूठ पर शिव को क्रोध आ गया। उन्होंने कहा कि ब्रह्मा की कोई पूजा नहीं होगी और गाय मुख विकृत हो जाएगा।' फिर विष्णु आए। उन्होंने यह स्वीकार किया कि वे शिव के चरण तल नहीं देख पाए। तब उन्होंने उनसे कहा कि देवों में वही प्रथम जन्मे हैं और उनका पद सर्वोच्च है। इसके पश्चात् शिव ने ब्रह्मा का पांचवा मुख काट डाला और इस प्रकार उनका मान भंग हुआ। उनकी शक्ति और प्रभाव क्षीण हो गए।

इस कथा के अनुसार ब्रह्मा का यह दावा झूठा था कि उनका जन्म सर्वप्रथम हुआ है। इसके लिए वे शिव के दण्ड के भागी बने। विष्णु को प्रथम जन्मा कहलाने का अधिकार मिला। ब्रह्मा के अनुयायियों ने शिव की सहायता के लिए विष्णु द्वारा ब्रह्मा का स्थान छीन लेने पर बदला लेने की ठानी। इसलिए उन्होंने एक और कथा[1] रच डाली। जिसके अनुसार, विष्णु ब्रह्मा के नथुनों से सूकर में उत्पन्न हुए और स्वाभाविक रूप से वाराह बन गए। विष्णु के वाराह-अवतार का यह बहुत क्षुद्र विश्लेषण है।

देवताओं के बीच खींचतान ने वही रूप ले लिया जैसे व्यापारियों में प्रतिस्पर्धा पनप जाती है। इसका परिणाम यह निकला कि शैव वैष्णवों और वैष्णव शैवों को गरियाने लगे।

यह तथ्य त्रिदेवों के विषय में है जिसका परवर्ती इतिहास में जिक्र है कि त्रिदेव की अवधारणा कोई नवीन नहीं थी। यह यास्क से प्राचीन है। अनगिनत देवताओं की संख्या घटाने के उद्देश्य से प्राचीन ब्राह्मणों ने कुछ देवताओं की जड़ काटने का मार्ग अपनाया और शेष से श्रेष्ठ बताने की चेष्टा की। इन प्रमुख देवताओं की संख्या तीन निश्चित की गई। इनमें से दो अग्नि और सूर्य थे। तीसरे स्थान के लिए इन्द्र और वायु में प्रतिस्पर्धा थी। परिणामस्वरूप एक त्रिमूर्ति बनी जिसमें अग्नि, इन्द्र और सूर्य थे अथवा अग्नि, वायु और सूर्य थे। नई त्रिमूर्ति की अवधारणा से प्राचीन अवधारणा के ही समान थी किन्तु उसके देवता बदल गए। इस त्रिमूर्ति का प्रत्येक देवता नवीन था। ऐसा लगता है प्रथम त्रिमूर्ति के विलुप्त हो जाने के काफी बाद तक किसी नई परम्परा का अस्तित्व नहीं था। चुल्ल निदेश में केवल ब्रह्म-वृत्तिका का उल्लेख है। शिव वृत्तिका तथा विष्णु वृत्तिका का कोई चिह्न नहीं है। इसका अर्थ यह हुआ कि चुल्ल निदेश के समय तक शिव और विष्णु की पूजा शुरू नहीं हुई थी। ब्रह्मा के पश्चात् इन्हें उनके साथ जोड़कर त्रिमूर्ति बना दी गई। हमारे मानस में ब्राह्मणों द्वारा त्रिमूर्ति-रचना में निभाई गई भूमिका के विषय में अनेक प्रश्न उत्पन्न होते हैं।

पहला प्रश्न यह है कि ब्राह्मणों को अपने देवताओं पर कितनी आस्था है? उन्होंने कितने सरल ढंग से अपने देवताओं के एक समूह को दूसरे के लिए तिरस्कृत कर दिया? इस संबंध में यहूदी पुजारियों और 'नेबूचादनेज्जार' की याद आती है :

1. ''नेबूचादनेज्जार[1] राजा ने एक स्वर्ण मूर्ति बनवाई, जिसकी ऊंचाई साठ हाथ और चौड़ाई छह हाथ की थी। उसने उसे बेबीलोन के मैदान दुरा में स्थापित कराया।
2. तब नेबूचादनेज्जार ने प्रान्तों के सभी क्षत्रपों, शासकों, न्यायाधीशों, कोषाधिपतियों, अमात्यों आदि को बुलाया कि वे मूर्ति के समर्पण के समय उपस्थित हों।

---

1. *ओल्ड टैस्टामैंट - डोनियाल, अध्याय 3, पद्य 1-23*

3. फिर क्षत्रप, शासक, न्यायाधीश, कोषाधिपति, अमात्य आदि उस समय तक उपस्थित रहे जब तक कि राजा द्वारा बनवाई गई मूर्ति स्थापित हुई।
4. तब अग्रदूतों ने ऊंचे स्वर में कहा ''हे लोगो! हे शासको! तुम्हारे लिए आदेश है।''
5. कि जिस समय तुम वाद्यवृंद (कार्नेट, बांसुरी, वीणा, बीन, सारंगी, तारवाद्य) सुनो तो नेबूचादनेज्जार द्वारा निर्मित स्वर्णमूर्ति को साष्टांग दंडवत् पूजा करो।
6. और जो कोई भी दण्डवत् नहीं करेगा, उसे आग में झौंक दिया जाएगा।
7. इसलिए उस समय जब सब लोगों ने विभिन्न वाद्यों का नाद सुना तो सभी लोग, सभी राष्ट्र, बहुभाषा–भाषी लेट गए और नेबूचादनेज्जार राजा द्वारा स्थापित मूर्ति की पूजा की।
8. तभी कोई चाल डीएन्स वहां आया और यहूदियों को अपशब्द कहे।
9. उन्होंने राजा नेबूचादनेज्जार से कहा ''हे राजा तू अमर रहे।''
10. हे राजा! तूने एक आदेश जारी किया है कि जब कोई व्यक्ति विशेष वाद्यवृंद सुने तो वह स्वर्णमूर्ति की पूजा करे।
11. जो आदेश का पालन नहीं करेंगे उन्हें भट्टी में झौंक दिया जाएगा।
12. कुछ ऐसे यहूदी हैं, जो आप के आदेश से बेबीलोन में बसे हैं। वे हैं शाद्राच, मेशाच, अबेद–नेगो। हे राजा! ये तेरे आदेश का पालन नहीं करते, वे तेरे देवता का वंदन भी नहीं करते, तेरे द्वारा स्थापित मूर्ति को नहीं पूजते।
13. तब नेबूचादनेज्जार भड़क उठा। तब कुपित राजा ने आदेश दिया कि शाद्राच, मेशाच और अबेदा–नेगो को पेश किया जाए। तब वे राजा के सामने लाए गए।
14. नेबूचादनेज्जार ने उनसे पूछा– ''क्या यह सच है शाद्राच, मेशाच, अबेद–नेगो तुम मेरे देवता की दंडवत् अभ्यर्थना नहीं करते, स्वर्णमूर्ति की पूजा नहीं करते जो मैंने स्थापित की है?
15. अब तुम तैयार रहो। जब तुम अमुक–अमुक वाद्यों की आवाज सुनो तो झुक कर उस मूर्ति की पूजा करो जो मैंने बनवाई हैं। परन्तु यदि तुम पूजा नहीं करोगे तो तुम्हें तुरन्त दहकती हुई भट्टी में झौंक दिया जाएगा और ऐसा कौन–सा देवता है जो तुम्हें मेरे हाथों से बचा लेगा।
16. शाद्राच, मेशाच और अबेद–नेगो ने राजा से कहा ''हे नेबूचादनेज्जार, इस मामले में हम तेरी परवाह नहीं करते।

17. अगर ऐसा होता है तो जिस देवता की हम पूजा करते हैं वह हमें उस दहकती भट्टी से निकाल लेगा और हे राजा वह हमें तेरे हाथों से भी बचा लेगा।
18. तो हे राजा, यह जान ले, यदि ऐसा होता है तो हम किसी देवता की पूजा नहीं करेंगे, न ही उस स्वर्णमूर्ति की, जो तूने स्थापित की है।''
19. तब नेबूचादनेज्जार आग-बबूला हो गया और उसके चेहरे की रंगत बदल गई। वह बोला और आदेश दिया कि भट्टी को गर्माएं।
20. फिर उसने सेना के सबसे शक्तिशाली व्यक्ति से कहा कि वह शाद्राच, मेशाच और अबेद-नेगो को बांध कर दहकती भट्टी में डाल दें।
21. तब उन व्यक्तियों को उनके कोट, उनके जुराबों, उनके टोप और दूसरे कपड़ों समेत बांध कर दहकती भट्टी में डाल दिया।
22. क्योंकि राजा के आदेश थे, भट्टी दहक उठी थी। लपटों ने उन लोगों को जलाकर भस्म कर दिया, जो शाद्राच, मेशाच और अबेद-नेगो लाए थे।
23. और वे तीनों व्यक्ति शाद्राच, मेशाच और अबेद-नेगा दहकती भट्टी में झोंक दिए गए।''

ब्राह्मणों ने पहली त्रिमूर्ति को क्यों तिरोहित कर दिया? इसका कोई संकेत नहीं कि देवों के प्रति आस्था की पूर्व शपथ हेतु उन्हें बाध्य किया गया था। क्या यह लाभ प्राप्ति का सौदा था?

दूसरा प्रश्न यह है कि क्या तीन देवों के भक्तों ने जीओ और जीने दो का मार्ग अपना लिया था? एक सम्प्रदाय दूसरे की पोल खोलने के लिए क्यों उद्यत था? इन सम्प्रदायों के बीच नाम के लिए सैद्धांतिक मतभेद भी नहीं था। उनका धर्मशास्त्र, ब्रह्मांड विज्ञान और दर्शनशास्त्र सभी समान था। इसलिए गुत्थी और जटिल हो जाती है। क्या यह पांथिक संघर्ष राजनीतिक था? क्या ब्राह्मणों ने धर्म को राजनीति बना दिया था? वरना झगड़े का कारण क्या था?

परिशिष्ट - 4

स्मार्त धर्म तथा तांत्रिक धर्म

II - स्मार्त धर्म

स्मृत-धर्म के पवित्र साहित्य में स्मृतियां अथवा संहिताएं आदि समाविष्ट हैं। ये स्मृतियां भारत की विधि-विधान हैं। इस विधि-विधान की परिधि इतनी व्यापक हो गई कि उसमें विधि, सरकार, समाज, विभिन्न जातियों के नागरिकों के अधिकार और कर्त्तव्य, पापों का प्रायश्चित और अपराधों के लिए दंड-व्यवस्था का प्रावधान है। इसके शुरू के निरपेक्ष अंशों पर हम इस समय अध्ययन नहीं कर रहे हैं। इसके उसी भाग के अंश प्रासंगिक हैं जो पूर्णतः धार्मिक हैं।

स्मृत-धर्म अर्थात् स्मृतियों पर आधारित धर्म पांच सिद्धांतों पर आधारित है। इसका प्रथम सिद्धांत है, त्रिदेव में आस्था, जिसमें ब्रह्मा, विष्णु और महेश सम्मिलित हैं। इस त्रिमूर्ति में ब्रह्मा जगत का सृष्टा है, विष्णु पालनहार और शिव संहारक हैं। श्रुत-धर्म के तैंतीस देवताओं के स्थान पर स्मृत-धर्म तीन देवों तक सीमित हैं।

स्मृत-धर्म का दूसरा सिद्धांत है संस्कार। स्मृत-धर्म के अनुसार प्रत्येक गृहस्थ को कुछ संस्कार करने होते हैं। यदि वह ऐसा नहीं करता है तो पतित हो जाता है, गरिमा से च्युत हो जाता है......

पौराणिक धर्म में दंड एवं प्रायश्चित का महत्वपूर्ण स्थान है। श्रुत धर्म में यम दुरात्माओं को और दंड नहीं देता। जीवन में किए गए पाप का दंड मृत्यु के पश्चात् भोगना पड़ता है अथवा नहीं, यह ज्ञात नहीं है परन्तु इस संबंध में पुराणों ने यम की शक्ति का बहुत विस्तार कर दिया है।

(मूल अंग्रेजी में उपरोक्त सामग्री टाइप किए हुए 21 पृष्ठ में है। आगे के पृष्ठ

'स्मार्त-धर्म और तांत्रिक धर्म' पर अंग्रेजी में कुछ पृष्ठ मिले थे। स्मृत-धर्म, खंड-2 और तांत्रिक धर्म, खंड-3 में प्रस्तुत किया गया है। खंड 1 में श्रुत धर्म पर सामग्री थी। स्मृत धर्म पर मात्र एक पृष्ठ की सामग्री भी पृ. 21 पर है। अंग्रेजी में तांत्रिक धर्म 55वें पृष्ठ से प्रारम्भ होता है और पृष्ठ 56 को छोड़कर 65 तक चलता है। लेखक ने हाथ से लिखे तीन पृष्ठ और जोड़े हैं। - संपादक

गायब हैं। पृष्ठ सं. 55 से 65 पर नीली स्याही से संशोधित एवं अनुदेशित यह सामग्री, सिर्फ पृष्ठ 56 को छोड़कर लेखक की हस्तलिपि में है। –संपादक)

''यम मृतकों का न्याय करता है। वह नरक का स्वामी है। जो मरता है, उसके समक्ष प्रस्तुत किया जाता है। फिर उसका सामना पाप–पुण्य का लेखा–जोखा रखने वाले चित्रगुप्त से होता है। पुण्यात्मा स्वर्ग अथवा एलीसियम को भेज दी जाती है जबकि पापात्माओं को नरक अथवा तरतारस में डाल दिया जाता है।''

''भयानक चित्रगुप्त की गर्जना प्रलयंकारी बादलों की गरज के समान है, वह काजल के चमकते पर्वत के समान है। शस्त्रों की चमक के समान आतंकोत्पादक है, उसकी बत्तीस भुजाएं हैं, जो तीन योजन लंबी है, लाल–लाल आंखें हैं, लंबी नाक है, उसके नुकीले और लंबे–लंबे दांत हैं, उसकी आंखें दीर्घ पोखर के समान हैं। उसके भंडार में काल और व्याधियों की भरमार है।''

पाप का दंड मृत्योपरांत भोगना पड़ेगा। इसी प्रकार पापमुक्ति के लिए निश्चित प्रायश्चित का विधान है।

परन्तु पाप क्या है? पौराणिक धर्म के अनुसार, इसका अर्थ नैतिक दुराचार नहीं है, इसका अर्थ है पौराणिक विधि–विधान का पालन न करना। यह है पौराणिक धर्म।

III- तांत्रिक धर्म

तांत्रिक धर्म शक्ति की पूजा कर केन्द्रित है। शक्ति का शाब्दिक अर्थ है, ऊर्जा किन्तु तंत्रवाद में इसका तात्पर्य है पुरुषदेवता की सहगामिनी नारी। तांत्रिक धर्म का विशाल साहित्य है और हिंदुओं के धार्मिक साहित्य की अलग शाखा है। यह समझना आवश्यक है कि हिंदुओं के शाक्त मत में अपने व्यापक पौराणिक चरित्र मौजूद हैं। अनेक नारी देवियां हैं, जिनका हिंदू देवकुल में विशिष्ट स्थान है।

मूलरूप से तांत्रिक धर्म पौराणिक धर्म का विस्तार है। पुराणों में ही प्रथम बार अविवाहित नारी देवियों को मान्यता मिली। फिर विवाहित देवियों की मान्यता हुई, जो देव–पत्नियां थीं। इसका आधार यही है कि देवताओं की पत्नियों की देवी–रूप में पूजा की जाए। इसी कारण पुराणों ने शक्तिमत चलाया। पुराणों के अनुसार कोई देवता चाहे अकेला हो, उसका दोहरा चरित्र है। उनका एक रूप प्रशांत है और दूसरा विकराल। क्रियाशील रूप शक्ति कहलाता है। पुराणों में देवताओं की शक्ति का मानवीकरण देव पत्नी के रूप में किया गया है। यही शक्ति–मत (शाक्तमत) का आधार है अर्थात् किसी देवपत्नी की आराधना।

शक्ति मत का सार है- देवी की नैसर्गिक शक्ति के रूप में विशिष्ट पूजा, जो एक जगतजननी, जगदंबा है, एक शक्तिशाली रहस्यमय तत्व है। जो दो विशिष्ट कार्यों का संचालन और नियंत्रण करती है। पहला है प्राकृतिक भुभुक्षा और आवेग पर, चाहे शारीरिक संवर्धन के लिए खान-पान अथवा कामवासना अर्थात् साहचर्य से जीव-वृद्धि। दूसरा, सिद्धि, चाहे किसी के व्यक्तिगत उत्कर्ष हेतु हो अथवा शत्रु विनाश के लिए।

यहां यह समझना आवश्यक है कि हिंदुओं के शाक्त मत में इतने व्यापक पौराणिक चरित्र हैं, इनमें अनेक नारी देवियां हैं, जिनका हिंदू देवकुल में विशिष्ट स्थान है।

इसके बावजूद, तांत्रिक नारी देवकुल की व्यूह-रचना फैलती गई। इसके अनेक रूप-स्वरूप बने। शक्ति मत का उद्‌गम शिवभार्या है। इस बात पर सभी सहमत हैं कि वही सम्पूर्ण नारी पौराणिक प्रथा का उद्‌गम है। इस परम्परा में उनका सर्वोच्च स्थान है और यह भी उल्लेखनीय है कि उनमें पुरुष देवता शिव के लक्षण विद्यमान हैं। उनका सामान्य दाम्पत्य संबंध ही नहीं हैं अपितु उनके गुणों का भी संचरण हो गया है। हम पहले ही उल्लेख कर चुके हैं कि किस प्रकार देवगण शिव के प्रभामण्डल के चारों ओर एकत्र हो गए। सभी देवों के गुण और कर्म उनमें समा गए और वे स्वयं अपने उपासकों के लिए देवाधिदेव महादेव बन गए। इसी प्रकार, बल्कि इससे भी बढ़कर उनकी भार्या शक्ति-पूजा परम्परा की महादेवी बन गई जिसमें ब्रह्मा, विष्णु और शिव की नारी अभिव्यक्ति होती है और वह उनके कार्यों को स्वयं सम्पन्न करती है। इसी कारण ब्रह्मा और विष्णु की पत्नियां भी उनकी पुत्री मानी जाती हैं क्योंकि उनके गुण-कर्म विपरीत और प्रतिफूल हैं। इसलिए इनसे हिंदू विचारधारा के सम्मुख कोई कठिनाई नहीं आती। वह हर प्रकार अपने पति का दूसरा रूप हैं बल्कि एक ऐसा स्वरूप जिसमें और भी रंग भर दिए गए हैं। क्योंकि एक समय शिव भी वर्ण और प्रकृति से श्वेत-शुक्ल थे और एक समय श्याम। इस प्रकार उनके श्वेत गुण भी अर्ध श्वेत (जब उनका नाम गौरी है) और अर्ध श्याम (जब उनका नाम काली है)।

फिर इन विपरीत लक्षणों में विभिन्न संशोधन हुए और इनमें अनवरत रूप से वृद्धि होती गई। गौरवर्ण और शांत स्वभाव वाली देवियां उमा, गौरी, लक्ष्मी, सरस्वती आदि कहलाईं और जिस प्रकार शिव के 1008 नाम अथवा विशेषण हैं, उसी प्रकार उनकी भार्या के भी। उन सबसे संबंध जुड़ा हुआ है। उनकी न्यूनतम एक सहस्र नाम से प्रार्थना की जाती है। कुछ उनकी सौम्य मूर्ति के नाम से हैं और कुछ विकराल के। उल्लेखनीय हैं कि तंत्रों के अनुसार यदि कोई व्यक्ति ''म'' अक्षर से आरम्भ होने वाले उनके आठ नामों का जाप करता है तो राजा स्वयं उसका सेवक बन जाएगा, सभी उसे प्रेम करेंगे और उनके सभी दुख-संताप दूर हो जाएंगे।

संक्षेप में, शाक्तों की सभी देवियां अथवा शक्तियां शव की नारी–शक्ति में समा. हित हो जाती हैं। उनकी संख्या अगणित हो जाती है और उनके भिन्न–भिन्न रूप उभर आते हैं।

परन्तु यह पूजा एक साधारण बात बन गई। शिव के साथ दुर्गा, विष्णु के साथ लक्ष्मी, कृष्ण के साथ राधा, राम के साथ सीता की उपासना आरम्भ हो गई। शक्तियों की संख्या निश्चित नहीं की गई है।

किसी समय केवल आठ शक्तियां गिनी जाती थी, किसी समय नौ। जैसे, वैष्णवी, ब्राह्मणी, रौद्री, माहेश्वरी, नरसिंही, वाराही, इन्द्राणी, कार्तिकी और प्रधाना। लक्ष्मी के अतिरिक्त विष्णु की पचास शक्तियां और गिनी जाती हैं, शिव अथवा रुद्र की दुर्गा अर्थात् गौरी सहित पचास ओर शक्तियां हैं। सरस्वती, विष्णु, रुद्र और ब्रह्मा की शक्ति हैं। *वायु पुराण* के अनुसार शिव की नारी प्रवृति के दो रूप हैं, आधी असित (अश्वेत) और आधी सित (श्वेत), इनमें से प्रत्येक का विस्तार हो गया। श्वेत और शांत स्वभाव की देवियों में उमा, गौरी, लक्ष्मी, सरस्वती आदि सम्मिलित हैं ओर अश्वेतों तथा विकराल देवियों में दुर्गा, काली, चण्डी और चामुण्डा आदि शामिल हैं।

बहरहाल, शीघ्र ही सारी शक्तियों का लोक प्रचार हो गया। इसके परिणामस्वरूप उनके अनगिनत स्वरूप और रूप उभर आए।

इस मानवीकरण का आधार विष्णु के अवतार थे जिसमें दैवी–प्रभाव की मात्रा के अनुसार वर्गीकरण हुआ जैसे पूर्णशक्ति, अंशरूपिणी, काल रूपिणी कालांश रुपिणी। इसकी अंतिम श्रेणी में ब्राह्मण से लेकर नीचे तक की जातियों की साधारण स्त्री भी सम्मिलित कर ली गई। जिन्हें यह समझकर पूजा जाने लगा कि इन पर देवी आती है। यह नहीं भूलना चाहिए शाक्त मतावलंबियों की दृष्टि से प्रत्येक स्त्री साक्षात देवी है।

फिर भी अधिक प्रचलित वर्गीकरण महाविद्याओं के रूप में प्रारंभ हुआ। विष्णु के दस अवतारों की तरह इनकी संख्या भी दस ही रखी गई है। यह महाविद्याएं कहलाती हैं और देवी की महान विद्याओं का स्रोत हैं। इनके विभिन्न गुण हैं। इसी प्रकार इनका नामकरण किया गया है। 1. काली (श्यामा) कृष्ण वर्ण विकराल और प्रचण्ड स्वभाव, 2. तारा, सौम्य स्वरूप, विशेष रूप से कश्मीर में पूजी जाती है। 3. षोड्शी, सोलह वर्ष की सुंदर कन्या (त्रिपुरा भी कहलाती है जो मालाबार में पूजी जाती है)। 4. भुवनेश्वरी, 5. भैरवी 6. छिन्नमस्तका निर्वस्त्र देवी, हाथ में रक्त रंजित खड्ग दूसरे हाथ में अपना ही कटा हुआ सिर जो अपने ही शीशहीन धड़ से उबलते रक्त का पान करती है, 7. धूमवती, धुएं के रूप में, 8. बगुला, बकमुखी, 9. मातंगी, भंगी जाति की स्त्री, 10. कमलात्मिका। इनमें से प्रथम दो विशेष रूप से महाविद्याएं हैं। अगली पांच विद्याएं हैं और शेष तीन सिद्ध विद्याएं हैं।

देवियों का अगला मानवीकरण अथवा स्वरूप मातृ अथवा मातृका अथवा महामातृ कहलाता है। भारत के कृषक वर्ग में प्रत्येक पंथ में उपासनीय मातृदेवी से महाविद्याओं के संबंध अधिक महत्वपूर्ण हैं। इस पर अगले अध्याय में और विस्तारपूर्वक विचार किया जाएगा।

मातृ इस प्रकार है– 1. वैष्णवी, 2. ब्राह्मी अथवा ब्राह्मणी। प्रायः ब्रह्मा की भांति चतुर्मुखी होती है। 3. कार्तिकेयी कभी–कभी मयूरी कहलाती है, 4. इन्द्राणी, 5. यमी, 6. वाराही, विष्णु के वाराह अवतार से सम्बद्ध, 7. देवी अथवा इंसानी, शिव भार्या के रूप में एक हाथ में त्रिशूल धारी, 8. लक्ष्मी। इनमें से प्रत्येक देवी माता की गोद में एक बच्चा है।

माताओं से घनिष्ठ संबंधित आठ नायिकाओं का भी मानवीकरण किया गया है। इनका माता होना आवश्यक नहीं। इनकी कल्पना केवल अवैध संभोग के संबंध में की गई है। इनके नाम हैं, बालिनी, कामेश्वरी, विमला, अरुणा, मेदिनी, जयनी, सर्वेश्वरी तथा कौलेसी।

दूसरा रूप है योगिनियों का। ये आठ पिशाचिनियां हैं, जो दुर्गा की सेवा के लिए बनाई गई हैं। कभी–कभी उस देवी का रूप भी धारण कर लेती हैं। इनकी संख्या साठ अथवा चौंसठ हैं और ये एक करोड़ तक हो सकती हैं।

एक अन्य नगण्य–सा वर्ग है डाकिनी और साकिनी। ये साधारणतः प्रेमिकाएं अथवा अति घृणित प्रवृतियों वाली राक्षसियां हैं और देवियों के समक्ष इनका रूप चंचल भृत्या के समान है, जो हर समय इनकी सेवा में रहती हैं।

परन्तु इनका प्रचण्डतम रूप काली है जिसकी कलकत्ता में पूजा होती है।

काली के स्वरूप के संबंध में तांत्रिकों के दो परिच्छेदों का रूपांतरण इस प्रकार है :

"मद्य और नैवेद्य से पूजा की जानी चाहिए उस काली की जिसका मुख भयानक रूप से खुला हुआ है, बाल बिखरे हुए हैं, जो चतुर्भुजा है, उसने उन महाबलियों की मुंडमाला पहन रखी है जिनका उन्होंने संहार किया है और रक्तपान किया है। उनके करकमलों में खडग है जो निर्भीक है और वरदान देती है। जो विशाल मेघ के समान काली है और आकाश ही उसके वस्त्र हैं। उन्होंने नरमुण्ड माला धारण की है। उसी में रक्त की बूंद टपकाती हुई एक गर्दन है। दो शवों के कुण्डल पहने है। उनके हाथों में दो शव हैं, जिनके लंबे–लंबे दांत और मुस्कराता चेहरा है, जिनका रूप विरूप है, जो श्मशानवासिनी है। (लाशें खाती है) जो अपने पति महादेव की छाती पर खड़ी है।"

(अंग्रेजी पांडु लिनपि के पृष्ठ संख्या 63-64 अप्राप्य हैं। 65 वें पृष्ठ की सामग्री नीचे दी जा रही है जिसका अंतिम पैरा लेखक की हस्तलिपि में है।)

तांत्रिक पूजा ऋतु अथवा पौराणिक पूजा से बिलकुल भिन्न है। इसका मूल दर्शन जो उपासना का सर्वोत्तम रूप है वह यह है कि मनुष्य की स्त्री के साथ मैथुन इच्छाओं की पूर्ण रूपेण संतुष्टि होनी चाहिए। तांत्रिक पूजा में पंच मकार की प्रधानता है। पंचमकार निम्न प्रकार हैं:

1. मद्यपान, 2. मांस भक्षण, 3. मत्स्य सेवन, 4. मुद्रा सेवन, और 5. मैथुन।

तांत्रिक पूजा में भी ये क्रियाएं सम्पन्न की जाती हैं। यह बताने की आवश्यकता नहीं कि जो निषेध हैं, तंत्र में वे भी मान्य हैं, बल्कि तंत्र पूजा में स्त्री से मैथुन पूजा का एक अंश है। हिन्दू धर्म का इस तरह का विकास है। इस इतिहास को पढ़कर सच्चे धर्म का विद्वान यह पूछने के लिए अवश्य बाध्य हो जाएगा "हिन्दू धर्म में नैतिकता का क्या स्थान है।"

धर्म, निःसन्देह रूप से कई प्रश्नों से आरम्भ होता है।

"मैं क्या हूं?" ब्रह्मांड किसने बनाया?" "यदि ईश्वर ने बनाया है तो उससे हमारा क्या संबंध है?" "ईश्वर को प्रसन्न करने का सम्यक मार्ग क्या है?" "अहं तथा ब्रह्म में क्या अंतर है?" ''किसे श्रेष्ठ जीवन कहते हैं?" अथवा "ईश्वर कैसे प्रसन्न होता है"? आदि।

इनमें से कई प्रश्न धर्मतत्व, आत्मतत्व, दर्शन और नैतिकशास्त्र से जुड़े हुए हैं, जो धर्म के विभिन्न तत्व हैं। परन्तु एक प्रश्न है, जो धर्म की शिक्षा एवं प्रचार से पूछा जाता है और जो अनुत्तरित है कि श्रेष्ठ जीवन क्या है? जिस धर्म में ऐसा नहीं वह धर्म नहीं।

ब्राह्मणों ने हिंदूधर्म को इस प्रकार नग्न क्यों किया? उसे नैतिकता विहीन क्यों किया? हिंदूधर्म इसको छोड़कर कुछ नहीं है जिसमें अनगिनत देवी-देवता और पेड़-पौधे पूजे जाते हैं, तीर्थ यात्राएं की जाती हैं, और ब्राह्मण को दक्षिणा दी जाती है। क्या इस धर्म की रचना मात्र इसलिए की गई है कि ब्राह्मणों की रोटी-रोजी चलती रहे? क्या उन्होंने कभी सोचा है कि नैतिकता ही समाज का आधार है और जब तक धर्म में नैतिकता का समावेश नहीं किया जाता वह...... तत्व है। ब्राह्मणों को इन प्रश्नों का उत्तर देना है।[1]

---

1. पाण्डुलिपि में यह अक्षर नष्ट हो गया है।

परिशिष्ट - 5

वेदों की निर्भ्रान्ता

हिन्दुओं से यह आशा की जाती है कि वे प्रतिदिन वेद पाठ करें। *शतपथ ब्राह्मण* में इसके कारण बताए गए हैं। उसका कहना है:

"केवल ये पांच महा त्याग हैं जिनका अत्यधिक महत्व है जैसे, जीव-जंतुओं को दाना आदि चुगाना, मनुष्यों को दान, पिता की सेवा, भगवत् पूजा, और वेद पाठ (ब्रह्म यज्ञ) 2. जीवित प्राणियों को प्रतिदिन दाना पानी दें[1]। उनके प्रति इतना ही कर्तव्य है। किसी को कुछ न कुछ दान प्रतिदिन दें। चाहे कटोरी भर पानी ही पिलाएं, मानव के प्रति दान-दक्षिणा का कर्त्तव्य पूरा हो जाता है। ईश्वर की पूजा में भी प्रतिदिन भागीदार बनना चाहिए[2]। यहां तक कि लकड़ी का गट्ठा चढ़ाकर भी। यह ईश्वर की भक्ति पूर्ण हुई। 3. अब हैं वेदों के प्रति कर्तव्य। इसका अर्थ है उनका एकांत पाठ[3]। इस कार्य में वाणी जुहू है, आत्मा उपभृत है, नेत्र ध्रुव हैं और बुद्धि श्रुव[4] है। सत्य अर्पण है और स्वर्ग लक्ष्यसिद्धि। जो इसे जानकर प्रतिदिन वेद-पाठ करता है, वह अविकारी लोक में जाता है। वह विद्यमान से तीन गुना बड़ा लोक है। उस लोक में सम्पदा का साम्राज्य है। इसलिए वेदों का अध्ययन किया जाए। 4. *ऋग्वेद* की ऋचाएं भगवान के लिए दूध का अर्घ्य हैं। जो इसे जानता है वह प्रतिदिन वेद पाठ करता है। प्रतिदिन भगवान को दुग्ध अर्पण से संतुष्ट करता है और देवता संतुष्ट होकर उसे धनधान्य से सम्पन्न, स्वास्थ्य, पौरुष तथा दैहिक शक्ति प्रदान करते हैं। उन्हें विलक्षण वरदान देते हैं। पिता की सेवा से घी और शहद की नदियां बहती हैं। 5. ईश्वर के लिए यजुस मंत्रों का पाठ घी की आहुति है। जो इसे जानता है, जो इनका नित्य पाठ करता है, वह देवताओं को घी

---

1. जैसा कि मैंने जे. आफरेच्ट को पढ़ा है इसके अनुसार पक्षियों को दाना डाला जाता था। यह बोटलिंग्क और रोथ शब्द कोश में है। दूसरे यज्ञ के बारे में कोलब्रुक के मिस्लेनियस ऐस्सेज पृष्ठ-150, 153, 182 देखें। फुट नोट 203
2. यह कात्यायन के श्रौत सूत्र से संबद्ध है जिसका उल्लेख प्रो. आफरेच्ट ने किया है। यह मनुस्मृति में भी उपलब्ध है अध्याय 3, 210, 214, 218
3. स्वाध्याय स्वयशाखाध्यानम् (अपनी शाखा में वेद-अध्ययन)
4. प्रो. मूलर के फ्युनरल राइटस आफ ब्राह्मन्स लेख में इनके चित्र दिए हैं देखें जर्नल ऑफ दि जर्मन ओरि. सै. क्सन खण्ड 9

दि इनफालिबिल्टी ऑफ वेदाज पर छह पृष्ठों की यह टंकित प्रति है और लेखक ने इसमें कोई संशोधन या परामर्श अंकित नहीं किया। इस अध्याय के बाद का हिस्सा उपलब्ध नहीं है। - संपादक

की आहुति से प्रसन्न करता है और वे संतुष्ट होकर, उसे संतुष्ट करते हैं (पूर्वोक्त की भांति)। 6. *सामवेद* के मंत्र देवताओं को सोम का तर्पण हैं। जो यह जानता है, वह प्रतिदिन उनका पाठ करता है। देवताओं को साम का तर्पण करता है और वे संतुष्ट होकर आदि (पूर्वाक्तानुसार) 7. अथर्वन और आंगिरस (अथर्वांगिरस)[1] के मंत्र देवताओं को वसा का अर्पण करते हैं। जो इसे जानता है, वह इनका नित पाठ करता है और देवताओं को वसा से संतुष्ट करता है और वे आदि (पूर्वोक्तानुसार) 8. निर्दिष्ट और वैज्ञानिक लेख, संवाद परम्पराएं, कथाएं, मंत्र और आरती देवताओं को शहद की आहुतियां हैं। जो इसे जानता है और नित्य इनका पाठ करता है, वह देवताओं को शहद की आहुति देता है और वे आदि (पूर्वोक्तानुसार) 9. इन वैदिक आहुतियों के लिए चार वषट्कार हैं, जब हवा चले, बिजली चमके, बादल गरजें, वृक्षादि गिरें तो जो व्यक्ति जानता है, यह इन्हें क्रम से पढ़ें। यह पाठ अनवरत रहना चाहिए।[2] जो ऐसा करता है, वह एक ही बार मृत्यु को प्राप्त होता है और ब्रह्म में लीन हो जाता है। यदि वह तीव्रता से न भी पढ़ पाए, उसे देवताओं से संबद्ध अंश का पाठ करना चाहिए। इस प्रकार वह अपने जीवित प्राणियों से वंचित नहीं होगा।"

9. 5, 7, 1 : "अब वैदिक साहित्य के अध्ययन का गुणगान आता है। जो अध्ययन-अध्यापन प्रिय है, ऐसा कार्य करने वाला व्यक्ति धैर्यवान होता है, किसी के अधीन नहीं होता। वह सफल मनोरथ होता है। उसे सुखद निद्रा आती है, वह अपना वैद्य स्वयं है। अपने मन पर नियंत्रण रखता है, उसका चित्त स्थिर रहता है, यश और बुद्धि बढ़ती है, मानवजाति को शिक्षित करने की क्षमता रखता है। इस प्रकार शिक्षित पुरुष ब्राह्मण है। वह चार अधिकारों का पात्र है। आदर, दक्षिणा, दमन मुक्ति और वध के भय से मुक्ति। 2. दोनों लोकों में जो श्रेष्ठ जाने जाते हैं, उसमें वेदों का अध्ययन सर्वोच्च है, जो इसको जान कर अध्ययन करता है। इस प्रकार इनका अध्ययन करते रहना चाहिए। 3. जब कोई व्यक्ति वैदिक मंत्रों का अध्ययन करता है, वह सम्पूर्ण यज्ञ करता है अर्थात् जो भी उसे जाने वैसे अध्ययन करे आदि आदि। 4. और ऐसा व्यक्ति भी जो उबटन से सुगंधित हो, रत्नाभूषित हो, भोजन में तृप्त हो और सुख शैल पर आसीन हो, वेदों का अध्ययन करता है तो वह सर्वांग तप करता है,[3] यह जानते हुए अध्ययन करता है उसे आदि। 5. *ऋग्वेद* की ऋचाएं मधु हैं, *सामवेद* की घी, यजुस की अमृत, जब कोई वाको-वाक्य पढ़ता है या पौराणिक आख्यान पढ़ता है तो वे दोनों उबले दूध और पके मांस की आहुतियों के समान हैं। 6. जो यह जानकर

---

1. अथर्व संहिता इस तरह कही जाती है।
2. देखें बोटलिंग्क और रोया वु शब्द कोश, एस.वी. छाम्बर।
3. प्रो. वेबर ने यह वाक्य दूसरी प्रकार से लिखा है, इण्ड स्टड 10, पृ. 112, जैसे; वह (पवित्र अग्नि से) सर्वांग जलाता है। इसी संबंध में आगे कहा गया है कि नक मौदगल्य ने तैत्तिरीय आरण्यक में कहा है, स्वाध्याय प्रवचने इव तद् ही तपः। आरण्यक 7, 8 में कहा गया है कि अध्ययन और अध्यापन साथ चलना चाहिए जैसे आध्यात्मिक कर्मकांड यथा सत्यम तप, दम, साम, अग्निहोत्र, यज्ञ आदि, देखें इण्डि स्टड 2.214 और 10, 113.

नित्यप्रति *ऋग्वेद* के मंत्र पढ़ता है, वह देवताओं को मधु से संतुष्ट करता है और वे प्रसन्न होकर उसके सभी मनोरथ पूर्ण करते हैं। 7. और जो यह जानकर नित्य साम मंत्र पढ़ता है, वह देवताओं को घी से संतुष्ट करता है और वे संतुष्ट होकर (यथोपरि) 8. जो यह जानकर नित्य यजुस मंत्र पढ़ता है, वह देवताओं को अमृत से संतुष्ट करता है और (यथोपरि) 9. जो यह जानकर नित्य वाकोवाक्य प्राचीन कथाओं का अध्ययन करता है, वह देवताओं को दूध और मांस की आहुतियों से संतुष्ट करता है और वे (यथोपरि) 10. पानी बहता है, सूर्य और चन्द्रमा घूमते हैं, नक्षत्र घूमते हैं। यदि किसी दिन ब्राह्मण वेदाध्ययन नहीं करता, वह दिन उसके लिए ऐसा ही है जैसे घूमने वाले वे तत्व स्थिर हो जाएं। इसलिए यह अध्ययन आवश्यक है। कोई व्यक्ति जब *ऋग्वेद, सामवेद* अथवा यजुस की आहुति दे रहा हो अथवा किसी गाथा या काव्य का पाठ कर रहा हो तो इस बीच उसे टोका न जाए।"

मनु जो *शतपथ ब्राह्मण* की पुष्टि करते हैं, कहते हैं:

वेद पितरों की देवताओं की और पुरुषों की दिव्य आंखें हैं, ये मानव की शक्ति और समझ के बाहर हैं यह निष्कर्ष है, जो परम्पराएं वेद विहीन हैं और सभी विधर्मी मत परलोक में वृथा हैं क्योंकि उनका आधार ही अंधकार है। वेदों की परिधि के अतिरिक्त अन्य ग्रंथ उभरते हैं और नष्ट हो जाते हैं। सभी निर्मूल्य हैं और झूठे हैं। चार वर्ण, तीन लोक, चार आश्रम जैसे थे, वैसे हैं और आगे वैसे ही रहेंगे। ये वेद वर्णित हैं। जिन पदार्थों में स्पर्श, स्वाद, ध्वनि, रूप और गंध है, इन सबका ज्ञान वेदों में है। उनकी उत्पत्ति गुण, लक्षण और कर्म भी हैं। शाश्वत वेद चराचर के रक्षक हैं। इसलिए मेरे विचार में वह इस जगत, मानव सेवा के निर्देश, राजसी अधिकार, न्याय प्रक्रिया, और विश्व–सत्ता का मुख्य तत्व हैं, बस वही सुपात्र है जो वेदों को जानता है। जैसे शक्ति पाकर अग्नि हरे वृक्षों तक को जला देती है इसी प्रकार वेद–ज्ञाता अपनी आत्मा के दोषों को पचा लेता है, जो उसके कार्यों से जन्मे हों। जो वेदों का मूल तत्व जानता है, वह जीवन के किसी भी मोड़ पर क्यों न हो, बह्मलीन होने को अग्रसर है, इहलोक में भी उसके लिए यह संभव है।

फिर भी, मनु को संतोष नहीं है। वह और आगे बढ़ जाते हैं और नए सिद्धांत का प्रतिपादन करते हैं –

श्रुति का अर्थ है – वेद, स्मृति का अर्थ है – विधान, उनके विषय को किसी तर्क से चुनौती नहीं दी जा सकती क्योंकि इनसे कर्त्तव्य–बोध होता है। जो बाह्मण बौद्धिक लेखों पर विश्वास रखते हैं, वे ज्ञान के इन दो प्राथमिक स्रोतों की अवमानना करते हैं।[1] गुणीजन उन्हें वेदों के प्रति संशयवादी और विद्रोही जानकर उनका बहिष्कार कर दें।.... 13. जो कर्त्तव्य ज्ञान चाहते हैं, उसके लिए श्रुति सर्वश्रेष्ठ स्रोत है।"

1. इसे 12, 106 के साथ पढ़ा जाना चाहिए जिसमें लिखा गया है आर्शाम धर्मोपदेशम च वेदशास्त्र विरोधिना यस तर्केनानुसंधाते सा धर्मेन वेद नापरह। वही केवल वही कर्त्तव्य बोध से परिचित हैं जो ऋषियों का अनुगमन करते हैं, तर्क द्वारा जो वेद विरुद्ध नहीं हैं।

भाग II

सामाजिक

अनुक्रमणिका की मूल सारणी के अनुसार लेखक ने भाग प्रथम और तृतीय का वर्गीकरण उन्हें धार्मिक और राजनीतिक नाम देकर स्वयं ही कर दिया था, जबकि भाग दो का नामकरण नहीं किया गया था। बहरहाल, इस भाग को सामाजिक नाम दिया गसा है, ऐसी पहेली संख्या 21 में एक पृष्ठ पर उल्लेख है जिसका नामक है "ब्राह्मणों ने भारतीय नारी का स्तर क्यों गिराया" यह अध्याय खंड तीन में भी सम्मिलित है, वहां इसका नाम है "क्रांति और प्रतिक्रांति"। देखिए अध्याय-17। इसलए इसे इस भाग में नहीं रखा गया है।

सोलहवीं पहेली

चातुर्वर्ण्ये-क्या ब्राह्मण अपनी उत्पत्ति से परिचित हैं?

प्रत्येक हिंदू का यह मूल विश्वास है कि हिंदुओं की सामाजिक व्यवस्था दैवीय है। इस दैवीय व्यवस्था के तीन आधार हैं। प्रथम, समाज चार वर्णों में विभक्त है- 1. ब्राह्मण, 2. क्षत्रिय, 3. वैश्य और 4. शूद्र। द्वितीय, चारों वर्णों की स्थिति एक-दूसरे से जुड़ी है। उसमें चरण-दर-चरण असमानता है। ब्राह्मणों का स्थान सर्वोपरि है। क्षत्रिय ब्राह्मणों के नीचे हैं, परन्तु वैश्यों और शूद्रों से ऊपर हैं। वैश्य ब्राह्मणों और क्षत्रियों से नीचे हैं, परन्तु शूद्रों से ऊपर हैं। शूद्र सबसे नीचे हैं। तृतीय, चारों वर्णों का व्यवसाय निश्चित है। ब्राह्मणों का व्यवसाय अध्ययन-अध्यापन है, क्षत्रियों का कार्य लड़ना है। वैश्यों का कार्य व्यापार है और शूद्रों का शारीरिक श्रम से तीनों वर्णों की सेवा करना है। यह हिन्दुओं की वर्ण-व्यवस्था कहलाती है। यह हिंदूधर्म की आत्मा है। वर्ण-व्यवस्था को छोड़कर हिन्दुओं में ऐसा कुछ नहीं है, जिसमें वे अन्य धर्मों से भिन्न हों। इस कारण यह आवश्यक है कि इस बात का विवेचन किया जाए कि वर्ण-व्यवस्था का प्रचलन कैसे हुआ?

इसकी उत्पत्ति की व्याख्या के लिए हमें हिन्दुओं के प्राचीन शास्त्रों का मंथन करना होगा कि वे इस विषय में क्या कहते हैं?

I

यह अच्छा होगा कि सर्वप्रथम वेदों के विचारों को देखा जाए। इस विषय पर *ऋग्वेद* के दसवें मण्डल के नब्बेवें श्लोक में इस प्रकार कहा गया है:

1. "पुरुष के एक सहस्त्र शीश हैं, एक सहस्त्र चक्षु, एक सहस्त्र चरण। वह पृथ्वी पर सर्वत्र परिपूर्ण व्यापक है। उसने दस अंगुलियों से हर छोर से समस्त भूमंडल को आच्छादित कर रखा है।" 2. "पुरुष स्वयं सम्पूर्ण (ब्रह्मांड) है जो वर्तमान है। (जो

यह 33 पृष्ठों का टंकित आलेख है। संशोधन लेखक ने स्वयं किए हैं। सभी पृष्ठ अलग-अलग थे और टैग से बंधे थे। शीर्ष पृष्ठ लेखक ने हाथ से लिखा है। - संपादक

भावी है) वह अमरता का स्वामी है, भोजन से उसका विस्तार होता है। 3. उसकी महानता ऐसी है और पुरुष सर्वश्रेष्ठ है। सारी सृष्टि उसका क्षेत्र है और उसका तीन चौथाई अविनाशी अंश अंतरिक्ष में है। 4. पुरुष का तीन चौथाई अंश उर्ध्व है, उसका एक चौथाई अंश यहां पुनः विद्यमान है, फिर उसका सर्वत्र विलय हो गया। उन सभी पदार्थों में जो भक्षण करते हैं और भक्षण नहीं करते। 5. उससे विराज उत्पन्न हुआ और विराज से पुरुष। जन्म लेते ही वह धरती से आगे बढ़ गया, आगे भी और पीछे भी। 6. जब देवी ने पुरुष की आहुति से यज्ञ किया, वसंत उसका घी था, ग्रीष्म लकड़ी और शरद समिधा। 7. यह बलि पुरुष जो सर्वप्रथम जन्मा, उन्होंने बलि घास पर जला दिया। उसके साथ देवताओं, साध्यों और ऋषियों ने आहुति दी। 8. इस ब्रह्मांड यज्ञ से दही और मक्खन उपलब्ध हुए। इससे वे नभचर और थलचर बने जो वन्य और पालतू हैं। 9. ब्रह्मांड यज्ञ से *ऋग्वेद* और *सामवेद* की ऋचाएं निकलीं, छंद और यजुस निकले। 10. उससे अश्व जन्मे और दोनों जबड़ों वाले सभी पशु जन्मे, मवेशी जन्मे और उसी से अजा मेष जन्मे। 11. जब (देवों के) पुरुष को कितने भागों में काटकर विभाजित कर दिया। उसका मुख क्या था? उसकी कितनी भुजाएं थीं? (कौन से दो तत्व) उसकी जंघाएं और चरण बताई गई हैं। 12. ब्राह्मण उसका मुख था, राजन्य उसकी भुजाएं बनीं, जो वैश्य (बना) वह उसकी जंघाएं थीं, शूद्र उसके पैरों से उत्पन्न हुए। 13. उसकी आत्मा (मानस) से चन्द्रमा, उसके चक्षु से सूर्य, उसके मुख से इन्द्र और अग्नि, उसके श्वास से वायु बनी। 14. उसकी नाभि से मारुत बना, उसके शीर्ष से आकाश बना, उसके चरणों से धरती उसके कर्ण से दिशाएं और इस प्रकार विश्व बना। 15. जब देवता यज्ञ कर रहे थे, उन्होंने पुरुष को एक बलि-जीव के रूप में बांधा। इसके लिए सात छड़ियों की, सात टुकड़ों की समिधा चढ़ाई गई। 16. इस यज्ञ में देवताओं ने आहुति दी। ये प्रथम अनुष्ठान थे। इन शक्तियों ने आकाश से कहा पूर्व साध्य, देवतागण कहां हैं।"

इस मंत्र वृंद का सर्वविदित नाम "पुरुष सूक्त" है और यह जाति और वर्ण-व्यवस्था का शास्त्रीय सिद्धांत माना जाता है।

अन्य वेदों में इस सिद्धांत की कहां तक पुष्टि की गई है?

सामवेद के मंत्रों में पुरुष सूक्त सम्मिलित नहीं किया गया, न इसमें वर्ण-व्यवस्था की कोई अन्य व्याख्या की है।

यजुर्वेद की दो शाखाएं हैं, 'श्वेत' और 'कृष्ण'।

कृष्ण यजुर्वेद में तीन संहिताएं और मंत्रों का समूह है। ये हैं कठ संहिता, मैत्रायणी संहिता और तैत्तिरीय संहिता।

श्वेत यजुर्वेद में मात्र एक संहिता है - वाजसनेयी संहिता।

कृष्ण यजुर्वेद की मैत्रायणी और कठ संहिताओं में *ऋग्वेद* के पुरुष सूक्त का कोई संदर्भ नहीं है, न उसमें वर्ण-व्यवस्था की उत्पत्ति का मूल बताने का कोई प्रयास है।

कृष्ण यजुर्वेद की तैत्तिरीय संहिता और श्वेत यजुर्वेद की वाजसनेयी संहिता में वर्ण-व्यवस्था के संबंध में कुछ संकेत हैं।

वाजसनेयी संहिता में वर्ण-व्यवस्था के आरंभ के संबंध में केवल एक प्रसंग है। दूसरी ओर तैत्तिरीय संहिता में दो प्रसंग हैं। इन दोनों प्रसंगों के संदर्भ में दो बातें उल्लेखनीय हैं। प्रथम यह कि इन दोनों में रंच-मात्र भी साम्य नहीं है। वे नितांत भिन्न हैं। दूसरे यह कि एक में तो श्वेत यजुर्वेद की वाजसनेयी संहिता से पूर्णतः साम्यता है। तैत्तिरीय संहिता का मूल पाठ निम्न प्रकार से है जिसे स्वतंत्र व्याख्या कहा जा सकता है-

"वह (वृात्य) भावावेश से भर उठा तब राजन्य प्रकट हुआ।"

"जिसके घर यह जाने वाला वृात्य अतिथि रूप में आता है, उसे वह (राजा) स्वयं से श्रेष्ठ जानकर उसका सम्मान करें। ऐसा करके वह राजपद अथवा अपनी सत्ता पर आघात नहीं करता। उससे ब्राह्मण प्रकट हुआ और क्षत्रिय। उन्होंने कहा "हम किस में प्रवेश करें आदि"

वाजसनेयी संहिता में सम्मिलित व्याख्या जो तैत्तिरीय संहिता[1] से साम्य रखती हैं, इस प्रकार हैं-

"उसने एक के साथ स्तुति की। प्राणी बने, प्रजापति राजा थे। उन्होंने तीन के साथ स्तुति की, ब्राह्मण की रचना हुई। ब्राह्मणस्पति शासक थे। उन्होंने पांच के साथ स्तुति की, विद्यमान पदार्थ उत्पन्न हुए। ब्राह्मणस्पति शासक थे। उन्होंने सात के साथ स्तुति की, सात ऋषिगण उत्पन्न हुए। धातृ शासक थे। उन्होंने नौ के साथ स्तुति की, पितृ उत्पन्न हुए। अदिति स्वामी थे। उन्होंने ग्यारह के साथ स्तुति की, ऋतुएं उत्पन्न हुईं। आर्तव स्वामी थे। उन्होंने तेरह के साथ स्तुति की, मास उत्पन्न हुए। वर्ष राजा था। उन्होंने पन्द्रह के साथ स्तुति की, क्षत्रिय उत्पन्न हुआ। इन्द्र राजा थे। उन्होंने सत्रह के साथ स्तुति की, पशु उत्पन्न हुए। बृहस्पति राजा थे। उन्होंने उन्नीस के साथ स्तुति की, शूद्र और आर्य (वैश्य) उत्पन्न हुए। दिवस और रात्रि शासक थे। उन्होंने इक्कीस के साथ स्तुति की, अविभाजित खुरधारी पशु उत्पन्न हुए। वरुण राजा थे। उन्होंने तेईस के साथ स्तुति की, लघु पशु उत्पन्न हुए। पुशान राजा थे। उन्होंने पच्चीस के साथ स्तुति की, वन्य-जीव उत्पन्न हुए। वायु राजा थे। (ऋ.वे.10.90,8) उन्होंने सत्ताईस के साथ स्तुति की, धरती और स्वर्ग विलग हुए। वसु, रुद्र और आदित्य

---

1. खण्ड, 4. प्रपाठक, 3. श्लोक 10

उनसे विलग हो गए, वे राजा थे। उन्होंने उन्तीस के साथ स्तुति की, वृक्ष उत्पन्न हुए। सोम राजा थे। उन्होंने इकत्तीस के साथ स्तुति की, प्राणी उत्पन्न हुए। मास के पक्ष राजा थे। उन्होंने इकत्तीस के साथ स्तुति की, विद्यमान पदार्थ शांत हो गए। प्रजापति परमेष्ठी राजा थे।"

यहां यह उल्लेनीय है कि न केवल *ऋग्वेद* और *यजुर्वेद* में ही असमानता है, बल्कि *यजुर्वेद* की दो संहिताओं में ही, वर्णों की उत्पत्ति जैसे महत्वपूर्ण विषय पर विषमता है।

अब हम *अथर्ववेद* पर आते हैं। इसमें भी दो व्याख्याएं हैं। उसमें पुरुष सूक्त सम्मिलित है। यद्यपि, जिस क्रम में *ऋग्वेद* के मंत्र हैं, वह वैसा नहीं है। महत्वपूर्ण बात यह है कि *अथर्ववेद* पुरुष सूक्त से संतुष्ट नहीं है। इसकी अलग व्याख्या भी है। एक व्याख्या निम्नलिखित[1] है:

"सर्वप्रथम ब्राह्मण उत्पन्न हुआ। उसके दस सिर और दस मुख थे। उसने सर्वप्रथम सोमपान किया, उसने विष को प्रभावहीन किया।

"देवता राजन्य से भयभीत थे, जब वह गर्भ में था। उन्होंने उसे बंधन-ग्रस्त कर दिया जब वह गर्भ में था। परिणामस्वरूप, वह राजन्य बंधनयुक्त उत्पन्न हुआ। यदि वह अजन्मा निर्बंध होता तो वह अपने शत्रुओं का वध करता। राजन्य, कोई अन्य जो चाहे कि वह बंधन-मुक्त उत्पन्न हो और अपने शत्रुओं का हनन करता रहे तो *उसे वे एन्द्र ब्राह्स्पत्य आहुतियां दें।* राजन्य के लक्षण इन्द्र जैसे हैं और ब्राह्मण बृहस्पति है। ब्राह्मण के माध्यम से ही कोई राजन्य को बंधन-मुक्त कर सकता है। स्वर्णबंध, एक उपहार, स्पष्ट रूप से उसे बंधन से मुक्त करता है।"

एक अन्य व्याख्या, उन व्यक्तियों का उल्लेख करती है, जो मनु की संतति है, उनका निम्नांकित उद्धरण[2] में उल्लेख है:

"प्रार्थनाएं और मंत्र पहले इन्द्र की उपासना में उस उत्सव में संकलित हुए जिसे अथर्वन, पिता मनु, और दधीचि ने सुशोभित किया। "हे रुद्र। यज्ञ से पिता मनु ने जो सम्पदा अथवा सहायता ग्रहण की, तेरे निर्देश में हमें वही सब प्राप्त हो।"

"आपके वे पवित्र उपचार, हे मरुत। वे जो बहुत मांगलिक हैं, हे शक्तिशाली देव। वे जो बहुत लाभप्रद हैं, जिनको हमारे पिता मनु ने पसंद किया है, रुद्र के वे वरदान और सहायता, हमें प्राप्त हों।"

"जो प्राचीन मित्र दैवी शक्ति से सम्पन्न था। पिता मनु ने उसके प्रति देवों की सफलता के प्रवेश द्वार की भांति मंत्र रचे थे।"

---

1. म्यूर, संस्कृत टैक्स्ट, खण्ड 1, पृष्ठ 21-22
2. म्यूर, संस्कृत टैक्स्ट, खण्ड 1, पृष्ठ 162-65

"यज्ञ मनु हैं, हमारे पालक पिता"

"देवों, तुमने हमें उत्पन्न किया, पोषित किया और हमारे प्रति अनुग्रह किया; हमें पिता मनु के मार्ग से विचलित न करो।"

"वह (अग्नि) जो मनु की संतति के बीच देवताओं के उद्बोधक स्वरूप निवास करता है, वह इनका भी स्वामी है।"

"अग्नि, देवताओं सहित और मनु की संतान सहित मंत्रोच्चार से विविध यज्ञ कर रहे हैं, आदि "तुम देवों, वज और ऋभुगण जैसे देवों को प्रसन्न करते हो। मानुष की संतति के बीच शुभ दिन देवताओं के मार्ग से हमारे यज्ञ में आओ।"

"मनुष-जन ने यज्ञ में अग्नि उद्बोधक की स्तुति की।"

"मनुष्यों के स्वामी अग्नि ने जब भी कृतज्ञ मानुष-जन के आवास को प्रदीप्त किया, उसने राक्षस जन को मार भगाया।"

इस संदर्भ में स्थिति के निरूपण के लिए एक क्षण रुक कर विचार करते हुए यह बात बिल्कुल स्पष्ट होती है कि चार वर्णों की उत्पत्ति के विषय में वेदों में कोई सर्वसम्मति नहीं है। किसी अन्य वेद ने *ऋग्वेद* की पुष्टि नहीं की है कि ब्राह्मण प्रजापति के मुख से उत्पन्न हुए, क्षत्रिय भुजाओं से, वैश्य जंघाओं से और शूद्र पैरों से।

II

अब हम ब्राह्मण साहित्य पर आएं और देखें कि इस प्रश्न पर वे क्या कहते हैं?

शतपथ ब्राह्मण की व्याख्या इस प्रकार है:[1]

"प्रजापति ने" ''भू" जपते हुए यह पृथ्वी बनाई, "भुवः" के साथ वायु बनाई, "स्वाहा" के साथ आकाश बनाया। ब्रह्मांड का इस संसार से सह-अस्तित्व है। अग्नि सर्वत्र व्याप्त है। "भू" कहकर प्रजापति ने ब्राह्मण उत्पन्न किया, "भुवः" से क्षत्रिय, "स्वाहा" से विस बनाया। अग्नि सर्वत्र व्याप्त है। भू कहकर प्रजापति ने स्वयं को उत्पन्न किया, भुवः कहकर संतति रची। "स्वाहा" से पशु उत्पन्न हुए। यह विश्व स्व, संतति और पशु है, अग्नि सर्वत्र व्याप्त है।"

शतपथ ब्राह्मण की एक अन्य व्याख्या[2] है। यह निम्नांकित है:

"भाष्यकार के अनुसार यहां ब्रह्मा अग्नि रूप में विद्यमान थे। जिसमें ब्राह्मण वर्ण का रूप है। पहले यह एक मात्र (ब्रह्मांड) थे। एक रहते उनकी वृद्धि नहीं हुई। उन्होंने शक्ति से एक श्रेष्ठ क्षात्र (क्षेत्र) उत्पन्न किया अर्थात् देवताओं में वे जिनमें

1. म्यूर, संस्कृत टैक्स्ट, खण्ड 1, पृष्ठ 17
2. म्यूर, संस्कृत टैक्स्ट, खण्ड 1, पृष्ठ 20

शक्ति है (क्षत्राणि), इन्द्र, वरुण, सोम, रुद्र, परजन्य, यम, मृत्यु, ईशान। इस प्रकार क्षात्र से श्रेष्ठ कोई नहीं। इसलिए ब्राह्मण राजसूय यज्ञ में क्षत्रिय से नीचे बैठते हैं। वह क्षत्रिय की गरिमा स्वीकार करता है। ब्रह्मा, क्षत्रिय का उदगम है। इस प्रकार, यद्यपि राजा की श्रेष्ठता है अंत में वह उद्गम हेतु ब्राह्मण के आश्रय में जाता है। वह अति दयनीय बन जाता है। उसी के समान जिसकी श्रेष्ठता आहत होती है। 24. उसका विस्तार नहीं हुआ। उसने विस् उत्पन्न किया। देवताओं की इस श्रेणी में वसु, रुद्र, आदित्य, विश्वदेव, मारुत आते हैं। 25. उसकी वृद्धि नहीं हुई। उसने शूद्र–वर्ण पूशान उत्पन्न किया। यह पृथ्वी पूशान है। सो वह सभी का पोषण करती है। 26. उसकी वृद्धि नहीं हुई, उसने शक्ति से एक विलक्षण रूप उत्पन्न किया। न्याय (धर्म) यह शासक है (क्षात्र) अर्थात् न्याय। इस प्रकार न्याय से श्रेष्ठ कुछ नहीं। इसलिए निर्बल बलवान से त्राण को न्याय मांगता है, जैसे एक राजा से। यह न्याय सत्य है। परिणामस्वरूप ऐसे व्यक्ति के विषय में, वे कहते हैं– "यह सत्य बोलता है, क्योंकि उसमें दोनों गुण हैं।" 27. यह ब्रह्म, क्षात्र, विस् और शूद्र हैं। अग्नि के माध्यम से देवताओं में वह ब्रह्मा बन जाता है, मनुष्यों में ब्राह्मण। (दैवी), क्षत्रिय के माध्यम से (मनुष्य) एक क्षत्रिय, (दैवी) वैश्य से एक (मनुष्य) वैश्य, (दैवी), शूद्र के माध्यम से एक (मनुष्य) शूद्र बनता है। अब वह देवों में अग्नि और मनुष्यों में ब्राह्मण है, और वे वास के इच्छुक हैं।"

तैत्तिरीय ब्राह्मण में तीन व्याख्याएं हैं। प्रथम इस प्रकार है:[1]

यह समस्त (ब्रह्मांड) ब्रह्मा द्वारा रचित है। मनुष्य कहते हैं कि वैश्य ऋक, ऋचाओं से बना है। वे कहते हैं *यजुर्वेद* के गर्भ से क्षत्रिय उत्पन्न हुआ है। *सामवेद* से ब्राह्मण प्रकट हुआ। यह शब्द प्राचीन है, घोषित प्राचीन।

दूसरी कहती है:[2]

"ब्राह्मण, वर्ण देवों से प्रकट हुआ, शूद्र असुरों से"

तीसरी इस प्रकार है:[3]

"वह शुष्क भोजन से स्वेच्छा से दुग्ध की आहुति दे। शूद्र दुग्ध की आहुति न दें क्योंकि शूद्र शून्य से जन्मा है। वे कहते हैं कि जब शूद्र दूध चढ़ाता है, वह आहुति नहीं है। शूद्र अग्निहोत्र में दूध से आहुति न दे क्योंकि वे इसे शुद्ध नहीं करते। जब उसे छान लिया जाये, तब वह आहुति है।"

अब ब्राह्मणों के साक्ष्य को देखें; वे पुरुष सूक्त का कहां तक अनुमोदन करते हैं? उनमें से कोई नहीं करता।

---

1. म्यूर, *संस्कृत टैक्स्ट,* खण्ड 1, पृष्ठ 17
2. वही, पृ. 21
3. वही, पृ. 21

III

अगली बात यह देखनी है कि वर्ण-व्यवस्था के संबंध में स्मृतियों की क्या व्याख्या है। उसका ज्ञान आवश्यक है। मनु ने इस संबंध में कहा है[1]:

"उस (स्वयंभू) ने इच्छा करके और अपनी देह से विभिन्न जीवों की रचना के मनोरथ से पहले सागर की सृष्टि की और उसमें एक बीज छोड़ दिया। 9. यह बीज एक स्वर्णिम अंडज बन गया। सूर्य के आकार का; उससे वह स्वयं ब्रह्मा बनकर उत्पन्न हुए, सारे संसार का जनक। 10. जलधि नारा: कहलाया क्योंकि वह नर से उत्पन्न हुआ था और क्योंकि यह उनकी प्रथम क्रिया थी, इसलिए वे नारायण जाने जाते हैं। 11. वे अजर अगोचर, विद्यमान और अविद्यमान कर्ता पुरुष से उत्पन्न हुए, इसलिए जगत में ब्रह्मा कहलाए। 12. एक वर्ष तक अंडज में रहकर महिमामय पुरुष अपनी ध्यानावस्था से युग्म बन गए।"

"कि विश्व में प्राण प्रतिष्ठा हो, उन्होंने ब्राह्मण, क्षत्रि, वैश्य और शूद्रों की रचना की जो उनके मुख, भुजाओं, जंघाओं और चरणों से उत्पन्न हुए। 32. अपनी देह को दो भागों में विभक्त कर परमात्मा (ब्रह्मा) एक अंग पुरुष और दूसरा अंग नारी बन गया उसमें उन्होंने विराज की सृष्टि की। 33. हे श्रेष्ठ द्विजो, जानो कि मैं ही वह पुरुष विराज स्वयं समस्त संसार का रचयिता हूं। 34. प्राणियों की उत्पत्ति हेतु मैंने कठोर उपासना की और सर्वप्रथम दस महर्षि, महान ऋषि, जीवों के स्वामी बनाए। 35. यथा मरीचि, अत्रि, आंगिरस, पुलस्त्य, पुलह, क्रतु, प्रचेतस, वशिष्ठ, भृगु और नारद की रचना की। 36. उन्हें महान शक्ति प्रदान की, सात अन्य मनु, देवता और देवियां और अपार शक्तिमान महर्षि उत्पन्न किए। 37. यक्ष, राक्षस, पिशाच, गंधर्व, अप्सरा, असुर, नाग, सरिसृप, विशाल पक्षी, और भिन्न-भिन्न पितर, 38. बिजली, गगन गर्जन, मेघ, शकुन अपशकुनकारी ध्वनियां, धूम्रकेतु और विभिन्न-विभिन्न तारागण, 39. किन्नर, कपि, मीन, विविध पक्षी, पशु, मृग, मानव, वन्य पशु और दो जबड़ों वाले पशु। 40. विशाल और लघु आकार के रेंगने वाले जीव मुख, जुएं, मक्खियां, पिस्सू, डांस, वन मक्खी, और विविध अचर पदार्थ 41. इस प्रकार अपने प्रयत्नों और अपने तपोबल से प्रत्येक जीव के पूर्व कर्मों के अनुसार समस्त चर-अचर जगत का सृजन किया।"

मनु ने अपनी 'स्मृति' में उन आधारभूत कारणों के विषय में एक अन्य मत प्रकट किया है, जिनके परिणामस्वरूप मनुष्यों को चार श्रेणियों[2] में विभाजित किया गया है:

---

1. म्यूर, *संस्कृत टैक्स्ट,* खण्ड 1, पृ. 36-37
2. वही, पृष्ठ. 41

"अब मैं संक्षेप में बताता हूं कि किस क्रम से अपने गुणानुसार आत्माएं अपनी स्थिति को पहुंचती हैं। 40. सत्व सम्पन्न आत्माएं देवता बन जाती हैं, रजोगुणयुक्त मनुष्य बनते हैं, जबकि तमोगुण वाली वन्य-जंतु होती हैं- यह तीन गतियां हैं। 43. हाथी, अश्व, शूद्र और प्रताणनीय म्लेच्छ, सिंह, बाघ और सूकर की मध्यम अंधकार स्थिति को प्राप्त होते हैं। 46. राजा, क्षत्रिय, राज पुरोहित और वे व्यक्ति जिनका मुख्य व्यवसाय वाद-प्रतिवाद है वे दुर्वासना की मध्य स्थिति को प्राप्त होते हैं। 48. भक्त, तापस, ब्राह्मण, विमानारूढ़ देवतागण, तारामंडल, दैत्यों में न्यूनतम सदगुणी होते हैं। 49. अग्निहोत्री, ऋषि, देवतागण, वेद, दिव्य ज्योर्तिपुंज, वर्ष, पितृगण, साध्यगण द्वितीय प्रकार के सदगुण युक्त होते हैं। 50. स्रष्टा ब्रह्मा, सदाचारिता, जो महान् (महत्) है, जो अव्यक्त है, उसमें सर्वाधिक सद्गुण विद्यमान होते हैं।"

हां, मनु *ऋग्वेद* को मान्यता प्रदान करते हैं परन्तु उनके विचारों की तुलना करना व्यर्थ है। उसमें, मौलिकता का अभाव है। वह *ऋग्वेद* के ही अनुगामी हैं।

IV

यह अच्छा रहेगा कि हम *रामायण* और *महाभारत* से इस मत की तुलना करें।

रामायण का कथन है कि चारों वर्ण, मनु की संतान हैं, दक्ष की पुत्री और कश्यप[1] भार्या।

"सुनो, मैं तुम्हें बताता हूं। सर्वप्रथम प्रजापतियों ने प्रारंभ किया जो सबसे पूर्व समय में जन्मे थे। सर्वप्रथम कर्दम थे, फिर वोकृत, शेष, समस्रेय, शक्तिमान बहुपुत्र, स्थाणु, मरीचि, अत्रि, प्रबल क्रतु, पुलस्त्य, आंगिरस, प्रचेतस, पुलह, दक्ष, फिर वैवस्वत, अरिष्टनेमी और गौरवमूर्ति कश्यप जो अंतिम थे। दक्ष प्रजापति की साठ कन्याएं बताई जाती हैं। उनमें से अदिति, दिति, दनु, कालिका, ताम्र, क्रोध, मनु और अनला इन आठ सुन्दर कन्याओं का विवाह कश्यप से हुआ। प्रसन्न होकर कश्यप ने कहा- "तुम मेरे समान पुत्र उत्पन्न करो, तीनों लोकों का पोषण करो। अदिति, दित्ति, दनु, और कालिका तत्पर हो गईं किन्तु अन्य तैयार न हुईं। अदिति से तैंतीस देवता उत्पन्न हुए। आदित्य, वसु, रुद्र और दो अश्विनी पुत्र। कश्यप पत्नी मनु से मनुष्य जन्मे ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र। ब्राह्मण का जन्म मुख से हुआ, क्षत्रिय का वक्ष से, वैश्य जंघाओं से, शूद्र चरणों से जन्मे। ऐसा वेद कहते हैं। अनला से शुद्ध फलों वाले वृक्ष उत्पन्न हुए।" आश्चर्य! नितात आश्चर्य कि वाल्मीकि ने चार वर्णों की रचना प्रजापति के स्थान पर कश्यप से बताई। स्पष्ट है कि उनका ज्ञान सुनी-सुनाई बातों तक सीमित था। यह स्पष्ट है कि उन्हें यह ज्ञात नहीं था कि वेद क्या कहते हैं।

---

1. म्यूर, *संस्कृत टैक्स्ट,* खण्ड 1, पृ. 116-117

अब *महाभारत* चार स्थानों पर चार भिन्न-भिन्न व्याख्याएं देता है। प्रथम इस प्रकार है:

"महान् ऋषियों की भांति भव्यता से जन्मे प्रचेता के दस पुत्र गुणवान और पवित्र प्रतिष्ठित हुए और उनसे पूर्ण गौरवशाली प्राणी उनके मुख से प्रज्ज्वलित होने वाली अग्नि से स्वाहा हो गए। उनसे दक्ष प्रचेतस जन्मे और विश्व के जनक दक्ष से ये जगत। विरनी के सहवास से मुनि दक्ष को अपने समान एक सहस्र पुत्र पुत्र प्राप्त हुए जिन्हें नारद ने मोक्ष का मार्ग बताया और सांख्य का अनुपम ज्ञान दिया। संतति वृद्धि के मनोरथ से दक्ष प्रजापति ने पचास पुत्रियां उत्पन्न कीं। उनमें से दस धर्म को दे दीं। तेरह कश्यप को, सत्ताइस काल नियंता इन्दु (सोम) को ...... अपनी तेरह में से सर्वश्रेष्ठ पत्नी दक्षयानि से मारीचि पुत्र कश्यप को इन्द्र के पश्चात् अपनी शक्ति में अद्वितीय आदित्य तथा वैवस्वत प्राप्त हुए। वैवस्वत से शक्तिमान पुत्र यम वैवस्वत उत्पन्न हुआ। मार्तण्ड, (सूर्य, वैवस्वत) को बुद्धिमान और वीरपुत्र मनु उत्पन्न हुए और प्रसिद्ध यम उसका (मनु) अनुज प्राप्त हुआ। बुद्धिमान मनु धार्मिक था जिसने एक प्रजाति चलाई। इस प्रकार उससे जन्मे (परिवार) मनुष्य, मानव जाति कहलाई। हे राजन! उससे ब्राह्मण क्षत्रियों के साथ उत्पन्न हुए।"

यहां प्रतिपादित सिद्धांत ठीक वैसा ही है जैसा कि *रामायण* में। भिन्नता मात्र इतनी है कि *महाभारत* में मनु को चार वर्णों का प्रणेता कहा गया है और दूसरे, इसमें यह नहीं कहा गया है कि चार वर्ण, मनु के चार अंगों से उत्पन्न हुए।

महाभारत की दूसरी व्याख्या[1] *ऋग्वेद* के पुरुष सूक्त के समान है। वह इस प्रकार है:

"राजा ऐसे व्यक्ति को अपना राज पुरोहित नियत करे जो दुष्टता का प्रतिरोधी हो। इस विषय में वे यह प्राचीन कथा सुनाते हैं, जिसमें इला पुत्र मातृस्वन (वायु) और पुरुरवा का संवाद सन्निहित है। पुरुरवा ने कहा: "तुम मुझे बताओ कि कब ब्राह्मण, कब अन्य तीन जातियां उत्पन्न हुई और कब श्रेष्ठता (प्रथम की) स्थापित हुई? मातृस्वन ने उत्तर दिया-" ब्राह्मण का जन्म ब्रह्मा के मुख से हुआ, उसकी भुजाओं से क्षत्रिय, उसकी जंघाओं से वैश्य जबकि इन तीन वर्णों की सेवा हेतु उसके चरणों से चतुर्थ वर्ण शूद्र उत्पन्न हुआ। जन्मते ही ब्राह्मण धर्मतत्व की रक्षार्थ धरती पर भूतजात का स्वामी बन गया। फिर सृष्टा ने पृथ्वी का शासक क्षत्रिय उत्पन्न किया। प्रजा की संतुष्टि को दण्ड धारण हेतु द्वितीय यम उत्पन्न किया और ब्रह्मा का यह आदेश था। इन तीन वर्णों को वैश्य धन-धान्य उपलब्ध कराए और शूद्र सेवा करें।" जब इला पुत्र ने पूछा: ''वायु! मुझे बताओ, अपनी धन-सम्पदा सहित यह पृथ्वी किस के अधिकार

1. म्यूर, *संस्कृत टैक्स्ट,* खण्ड 1

में है, ब्राह्मण के अथवा क्षत्रिय के?" वायु ने उत्तर दिया, ''अपनी ज्येष्ठता के आधार पर पृथ्वी पर विद्यमान समस्त सम्पदा का स्वामी ब्राह्मण है, जो कर्त्तव्य-विधान में पारंगत है, उन्हें यह ज्ञात है। ब्राह्मण जो खाता है, पहनता है, लुटाता है, वह उसी का है। वह सभी जातियों में श्रेष्ठ है। प्रथम जन्मा और सर्वश्रेष्ठ। जिस प्रकार कोई स्त्री अपना पति (पहला) छिन जाने पर अपने देवर, जेठ को दूसरा पति बना लेती है, उसी प्रकार विपत्ति में ब्राह्मण पहला आश्रय है और इसके बाद कोई और"।

महाभारत के शांति पर्व में तीसरी व्याख्या दी गई है:[1]

भृगु ने उत्तर दिया: इस प्रकार ब्रह्मा ने पहले अपनी शक्ति से प्रजापतियों के समान भव्य सूर्य और अग्नि को रचा। तब स्वामी ने सत्य, धर्मनिष्ठा, कठोर-भक्ति, सनातन वेद गुणकर्म, और स्वर्ग (प्राप्ति हेतु) की शुद्धता की सृष्टि की। उसने देवता, दानव, गंधर्व, दैत्य, असुर, महाराग, यक्ष राक्षस, नाग, पिशाच और मानव, ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र सभी वर्ण प्राणी रचे। ब्राह्मण का वर्ण गौर, क्षत्रिय का लाल, वैश्य का पीत और शूद्र का काला बनाया। तब भारद्वाज ने प्रतिवाद किया:" यदि हर जाति के चार वर्ण (रंग) उसका परिचायक हैं तो इससे पहचान में भ्रांति होती है। लालसा, क्रोध, भय, लोभ, संताप, कुंठा, भूख, क्लांति, हम सब में समान हैं। तब जाति किस से निर्धारित होती है? स्वेद, मूत्र, मल, श्लेष्मा, पित्त और रक्त सब में समान हैं (सभी में शारीरिक विकार हैं) तब जाति किस से निर्धारित होती हैं? अवर्णित चल और अचल पदार्थ हैं, इनका वर्ण कैसे निर्धारित होता है"? भृगु ने उत्तर दिया, "जातियों में कोई अंतर नहीं है।"

शांति पर्व में ही चौथी व्याख्या दी गई है। वह कहती है:

भारद्वाज ने फिर पूछा परमश्रेष्ठ ब्रह्मर्षि, मुझे बताएं वे क्या गुण हैं कि जिन से कोई ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य अथवा शूद्र बन जाता है?" भृगु कहते हैं, "जो शुद्ध है, प्रसव तथा अन्य संस्कारों से पवित्र हैं, जिसको वेदों का सम्पूर्ण अध्ययन है, संस्कारों को शुद्धतापूर्वक पूर्णता से अनुष्ठान सम्पन्न करते हैं, जो चढ़ावे से बचे पदार्थ ग्रहण करते हैं, अपने धर्म-गुरु से सम्बद्ध हैं, सदैव धर्मपरायण हैं और सत्य को समर्पित हैं--ब्राह्मण कहलाते हैं। उसमें सत्य के दर्शन होते हैं। जिसमें सत्य, उदारता, अनाक्रामकता, उपकारिता, सादगी, धैर्य और कठोर भक्ति परिलक्षित हैं--ब्राह्मण हैं। जो राजपद के कर्त्तव्य का पालन करता है, जिसे वेदाध्ययन का व्यसन है और जो आदान-प्रदान से प्रसन्नता अनुभव करता है, वह क्षत्रिय कहलाता है। वह जो लगनपूर्वक पशुपालन करता है, जिसको कृषि कार्यों में रुचि है, जो शुद्ध है और वेदों के अध्ययन में पारंगत है- वह वैश्य है। वह जो हर प्रकार के भोजन व्यसनी है, सभी कार्य करता

1. म्यूर, *संस्कृत टैक्स्ट*, खंड 1, पृ. 139-40

है, जो अस्वच्छ है, जिसने वेदों का परित्याग कर दिया है, जो पवित्र कर्म नहीं करता, परम्परा से शूद्र कहलाता है और यह (जो मैंने बताया) शूद्र के लक्षण हैं और यह एक ब्राह्मण में नहीं मिलते (ऐसा) शूद्र शूद्र ही रहेगा जो ब्राह्मण (ऐसा करता है) ब्राह्मण नहीं होगा।"

एक स्थान को छोड़कर अन्यत्र *महाभारत* वर्ण–व्यवस्था की वैदिक उत्पत्ति का समर्थन नहीं करता।

V

आइये अब यह देखें कि वर्ण–व्यवस्था के संबंध में पुराण क्या कहते हैं?

हम *विष्णु पुराण* से आरम्भ करते हैं। चार वर्णों की उत्पत्ति पर *विष्णु पुराण* में तीन सिद्धांत हैं। एक में यह आरोप मनु के सिर जाता है। विष्णु पुराण का मत है:

"ऐहिक अण्डज से पूर्व देव ब्रह्मा हिरण्यगर्भ, विश्व के शाश्वत नियंता, जो ब्रह्मा के तत्वरूप थे, जिसमें दिव्य विष्णु सन्निहित थे, जो ऋक, यजुस, साम, और *अथर्ववेद* के रूप में जाने जाते हैं, विद्यमान थे। ब्रह्मा के दाएं अंगूठे से प्रजापति दक्ष उत्पन्न हुए, दक्ष की पुत्री अदिति थी, उससे वैवस्त उत्पन्न हुआ, उससे मनु प्रकट हुआ। मनु के पुत्र थे इक्ष्वाकु, नृग, धृष्ट, शर्याति, नरिष्यन्त, प्रमसु, नाभागनिदिष्ट, करुष और पृषघ्र। कुरुष से करुषगण महाशक्तिवान क्षत्रिय उत्पन्न हुए। निदिष्ट का पुत्र नाभाग वैश्य बना।''

यह व्याख्या अपूर्ण है। इसमें मात्र क्षत्रिय और वैश्यों की उत्पत्ति बताई गई है। उसमें ब्राह्मण और शूद्र की उत्पत्ति की कोई व्याख्या नहीं है। *विष्णु पुराण* में एक और भिन्न कथन है। उसके अनुसार:

''पुत्र कामना में मनु ने मित्र और वरुण की आहुति दी किन्तु होत्री पुजारी द्वारा मंत्र के गलत उच्चारण कर दिए जाने पर एक पुत्री हुई। उसका नाम इला था। तब मित्र और वरुण की कृपा से मनु से उसे सुद्युम्न नामक पुत्र का जन्म हुआ। परन्तु महादेव के कोप के कारण वह भी नारी रूप में परिवर्तित हो गया। वह नारी सोम पुत्र बुध के आश्रम के निकट विचरती रही। बुध उस पर आसक्त हो गया और उन दोनों से एक पुत्र उत्पन्न हुआ–पुरुरवा। जन्म के उपरान्त उस देवता की जो ऋक, यजुस, साम और अथर्ववेद मानस आहुति से उत्पन्न हुआ, जो यज्ञ–पुरुष का रूप है उसकी ऋषियों ने पूजा की जिन का मनोरथ था कि सुद्युम्न अपना पुरुषत्व पुनः प्राप्त कर लें। देवताओं की कृपा से इला फिर सुद्युम्न बन गया।

''*विष्णु पुराण* के अनुसार अत्रि ब्रह्मा का पुत्र और सोम का पिता था, जिसे ब्रह्मा ने पादपों ब्राह्मणों और तारों का स्वामी बनाया। राजसूर्य यज्ञ के पश्चात् सोम मदांध हो गया और देवताओं के गुरु बृहस्पति की पत्नी तारा का अपहरण कर के ले गया,

जिसके लिए उसकी भर्त्सना की गई। ब्रह्मा, देवताओं और ऋषियों ने बृहस्पति की पत्नी लौटाने का अनुनय-विनय भी की। किन्तु उसने उसे नहीं लौटाया। सोम का पक्ष उष्ण-गण ने लिया जबकि अंगिरस के शिष्य रुद्र ने बृहस्पति की सहायता की। दोनों ओर से घमासान युद्ध हुआ जिसमें देवता और दैत्यों ने क्रमशः दोनों पक्षों में युद्ध किया। ब्रह्मा बीच में पड़े और सोम को विवश किया कि वह बृहस्पति को उसकी पत्नी लौटा दें। इस बीच वह गर्भवती हो गई और एक पुत्र बुध को जन्म दिया। बहुत अनुरोध करने पर उसने स्वीकार कर लिया कि सोम ही बुध का पिता है। जैसा कि पहले बताया जा चुका है, पुरुरवा मनु की पुत्री इला और बुध का पुत्र था।

"पुरुरवा के छह पुत्र थे। उनसे ज्येष्ठतम अयुस था। अयुस के पांच पुत्र थे। नहुष, क्षत्रवृद्ध, रम्भ, रजि, अनेनस।"

"क्षत्रवृद्ध का पुत्र था सुनहोत्र जिसके तीन पुत्र कास, लेस और गृत्समद थे। अंतिम पुत्र से शौनक उत्पन्न हुआ जिसने चार वर्ण बनाए। कास का एक पुत्र था कासिराज, उसका भी पुत्र था दीर्घतमस क्योंकि धन्वंतरि दीर्घतमस था।

तीसरे कथन के अनुसार[1] वर्ण-व्यवस्था के जनक ब्रह्मा थे। वह इस प्रकार हैं:

नेत्रेय[2] कहते हैं: तुमने मुझे मानव-सृष्टि के संबंध में बताया; अब हे ब्राह्मण! मुझे विस्तार से बताओ कि ब्रह्मा ने इसकी सृष्टि किस प्रकार की? मुझे बताओ, उसने कैसे और किस गुण से वर्ण बनाए और ब्राह्मण तथा अन्य के कार्य कौन-कौन से हैं? पराशर ने उत्तर दिया: 3. अपने विचार के अनुसार ब्रह्मा की कामना जगत-सृष्टि की हुई। जिनमें सत्व होता है वे उनके मुख से उत्पन्न हुए, 4. जिनमें रजोगुण होता है, वे उसके वक्ष से जन्मे, जिनमें रजोगुण और तमोगुण होता है, वे उनकी जंघाओं से जन्मे। अन्य उनके चरणों से उत्पन्न हुए जिनके मुख्य लक्षण हैं कलुष। इससे वर्ण-व्यवस्था बनी, ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र, जो क्रमशः मुख, वक्ष, जंघा और चरणों से बने हैं।"

विष्णु पुराण में ऋग्वैदिक सिद्धांत को सांख्य दर्शन का अनुमोदन प्राप्त है।

हरिवंश पुराण में दो सिद्धांत आते हैं। एक[3] के अनुसार वर्णों की उत्पत्ति मनु की एक संतान से हुई:

गृत्समद का पुत्र शुनक था, उससे शौनक ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र उत्पन्न हुए।

"विताठ पांच पुत्रों के पिता थे। वे थे सुहोत्र, सुहोत्री, गया, गर्ग और कपिल। सुहोत्र के दो पुत्र थे, कासक और राजा गृत्समति। उसके पुत्र ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य थे।"

---

1. म्यूर, *संस्कृत टैक्स्ट,* खंड 1, पृ. 61-2
2. *विष्णु पुराण* वार्तालाप के रूप में है जिसमें शिष्य मैत्रेय प्रश्न पूछता है और ऋषि पराशर उसके प्रश्नों का उत्तर देते हैं।
3. म्यूर, *संस्कृत टैक्स्ट,* खण्ड 1, पृ. 227

दूसरे आख्यान के अनुसार उनकी उत्पत्ति विष्णु से हुई जो ब्रह्मा से प्रकट हुए थे और प्रजापति दक्ष बन गए। यह इस प्रकार है:[1]

"जनमेजय[2] कहता है: "हे ब्राह्मण, मैंने ब्रह्मयुग (वर्णन) सुना है जो आदि युग था। मेरी भी कामना है क्षत्रिय युग के विषय में सारगर्भित और विस्तार से अनेक प्रेक्षणों के आधार यज्ञ के सोदाहरण उल्लेख का सम्पूर्ण विवरण दें। वैशंपायन ने उत्तर दिया, "मैं उस युग के विषय में बताता हूँ जिसका यज्ञों के कारण आदर है और जो मुक्ति में अनेक कर्मों की विशिष्टता से सम्पन्न है, जिसका आदर तब के मनुष्यों के कारण किया जाता है। मुक्ति के लिए अबाध धर्म किए जाते थे। ब्रह्म के प्रति चित्त की एकाग्रता थी और संयम था। ब्राह्मणों के उद्देश्य महानतम थे। ब्राह्मण अपने व्यवहार से गौरवान्वित और मर्यादित थे। संयम का जीवन व्यतीत करते थे। बाह्मणों के अनुसार अनुशासन था, वे अपने कर्त्तव्यपालन में त्रुटिहीन थे। उनका ज्ञान अथाह था। वे मननशील थे। तब सहस्रों युग व्यतीत होने पर ब्राह्मणों की सत्ता शिखर पर थी। तब ये मुनि इस विश्व के विलयन में सम्मिलित हुए। ब्रह्मा से विष्णु प्रकट हुए। इन्द्रिय ज्ञान से परे हो गए और ध्यानस्थित हो गए। दक्ष प्रजापति बन गए और अनेक प्राणियों की सृष्टि की। ब्राह्मण को रूपराशि (चन्द्रमा को प्रिय) और अक्षय बनाया गया। क्षत्रियों को नश्वर तत्वों से रचा। एकांतरण से वैश्य बने और धूम्र परिष्करण से शूद्रों को बनाया गया। जब विष्णु वर्णों पर विचार कर रहे थे तो ब्राह्मण को गौर, लाल, पीत तथा नीले रंग से बनाया गया। इस प्रकार विश्व में मानव वर्णों में विभाजित हो गये। उनकी चार पहचान हुई, ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र। एक स्वरूप अनेक कार्य। दो पैरों पर चलने वाला अत्यंत आश्चर्यजनक शक्तिमान और अपने व्यवसाय में पारंगत। तीन उच्च वर्णों के संस्कारों का वेदों में निधारण हुआ। प्राणियों की योगावस्था से ब्रह्मा प्रकट हुए। विष्णु जैसी उसी ध्यानावस्था से-भगवान प्रचेतस (दक्ष) अर्थात् महान योगी विष्णु अपनी मेधा एवं ऊर्जा से ध्यानावस्था से कर्मक्षेत्र में उतरे। उन्मूलन से शूद्र उपजे; वे संस्कार रहित हैं इस कारण वे शुद्धि संस्कारों में सम्मिलित नहीं हो सकते, न पवित्र विज्ञान से उनका संबंध है, वैसे ही जैसे ईंधन के घर्षण से अग्नि उत्पन्न होती है और लुप्त हो जाती है। उसकी यज्ञ में कोई आवश्यकता नहीं। इसी प्रकार धरती पर घूमने वाले शूद्र हैं। कुल मिला कर (बलि देने के अतिरिक्त किसी उपयोग के नहीं)। अपने जन्म के कारण, उनका जीवन शुद्धता से वंचित रखा गया है और उनकी अनावश्यकता वेदों में नियत है।"

भागवत पुराण[3] में भी वर्णों की उत्पत्ति की व्याख्या है। इसका कथन है:

"कई सहस्र वर्षों के उपरांत अपने कर्मों और प्रकृतिक गुणों से विद्यमान आत्मा

---

1. म्यूर, *संस्कृत टैक्स्ट,* खंड 1, पृ. 152-53
2. *हरिवंश पुराण* जनमेजय और वैशंपायन के बीच संवाद है।
3. म्यूर, *संस्कृत टैक्स्ट,* खंड 1, पृ. 156

ने जल पर उतराते अण्डज को जीवरूप प्रदान किया। फिर पुरुष ने उसका विखण्डन कर उससे एक सहस्र जंघाएं, चरण, भुजाएं, चक्षु, मुख और शीर्ष प्रकट किए। विश्व व्यवस्थापक ने अपने सहयोगी ऋषियों के साथ विश्व की रचना की। उन्होंने अपनी कटि से सात अधो भुवन रचे और ऊर्ध्व मूल से और सात उर्ध्व भुवनों की रचना की। ब्राह्मण पुरुष का मुख था, क्षत्रिय उसकी भुजाएं, वैश्य उसकी जंघाओं से उपजे और शूद्र उस देव पुरुष के चरणों से जन्मे। पृथ्वी उनके पैरों से बनी, वायु उनकी नाभि से। उनके हृदय से स्वर्ग और उनके वक्ष से महालोक बने।''

अब अंत में *वायु पुराण* देखें। यह क्या कहता है? इसके अनसुार मनु ने वर्ण-व्यवस्था रची।

गृत्समद का पुत्र शुनक था। उससे शौनक जन्मा। उसी के परिवार में ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र उत्पन्न हुए द्विज मानव विभिन्न कर्मो के साथ जन्मे।

VI

कैसी अव्यवस्था है? ब्राह्मण चार वर्णों की उत्पत्ति के विषय में एकरूपता और ठोस प्रमाण क्यों नहीं प्रस्तुत करते?

वर्णों की सृष्टि के विषय में एकमत नहीं है। *ऋग्वेद* का कथन है कि चार वर्ण प्रजापति ने बनाए। वह यह नहीं बताता कि कौन से प्रजापति ने। हम यह जानना चाहते हैं कि किस प्रजापति ने वर्ण बनाए क्योंकि प्रजापति अनेक हैं। यह मान भी लें कि प्रजापति ने बनाए तो भी सहमति नहीं है। एक का कहना है कि ब्रह्मा ने बनाए, दूसरे का मत है कश्यप ने। तीसरे का विचार है मनु ने बनाए।

इस प्रश्न पर कि सृ ष्टा ने - जो भी वह रहा हो, कितने वर्ण बनाए, जिनमें समानता नहीं। *ऋग्वेद* के अनुसार वर्ण चार थे। परन्तु अन्य अधिकारी विद्वान कहते हैं केवल दो वर्ण बनाए गए। कुछ का विचार है ब्राह्मण और क्षत्रिय और कुछ मानते हैं ब्राह्मण और शूद्र।

संबंधों के विषय में, सृष्टा के मनोरथ के प्रश्न पर *ऋग्वेद* चारों वर्णों में एक के बाद एक असमानतों का नियम निर्धारित किया है जो वर्ण विशेष के उद्गम अंग के महत्व के अनुसार श्रेष्ठ या हीन है। जबकि *श्वेत यजुर्वेद, ऋग्वेद* के सिद्धांत से सहमत नहीं। ऐसे ही उपनिषद, *रामायण, महाभारत* और पुराण भी कहते हैं, किन्तु *हरिवंश पुराण* विस्तार से बताता है कि शूद्र द्विज हैं।

ऐसा लगता है कि इस कुटिलता का कारण चातुर्वर्ण्य की कहानी को सनातन रूप देना है जिसे ब्राह्मणों ने स्थापित परम्पराओं के विपरीत *ऋग्वेद* से जोड़ दिया।

उद्देश्य क्या था? ब्राह्मणों का इस सिद्धांत रचना के पीछे क्या प्रयोजन था?

सत्रहवीं पहेली

चार आश्रम – उनका कारण और परिणति

समाज को चार वर्णों में विभाजित कर डालना ही हिंदू समाज की एक मात्र विशिष्टता नहीं है। आश्रम धर्म भी एक अन्य है फिर भी इन दोनों में एक अंतर है। वर्ण धर्म समाज के संगठन का सिद्धांत है। दूसरी ओर आश्रम किसी के व्यक्तिगत जीवन को विनियमित करने का सिद्धांत है।

आश्रम धर्म के अनुसार व्यक्ति का निजी जीवन चार चरणों में विभाजित किया गया है। 1. ब्रह्मचर्य आश्रम, 2. गृहस्थाश्रम, 3. वानप्रस्थ आश्रम और 4. संन्यास आश्रम। ब्रह्मचर्य का सरलार्थ और भावार्थ है– अविवाहित स्थिति। इसका भावार्थ है– गुरु के पास विद्याध्यन करना। गृहस्थाश्रम का अर्थ है– वैवाहिक और पारिवारिक जीवन। संन्यास का तात्पर्य है– सांसारिकता का परित्याग। यह संसार के वीतराग की स्थिति है। वानप्रस्थ आश्रम – गृहस्थ एवं सन्यास के मध्य की स्थिति है। इसके अधीन यह समाज का अंग होता है किन्तु समाज से दूर रहता है। इसके नाम के अनुरूप अरण्य–निवास करना होता है।

हिंदुओं की मान्यता है कि समाज के कल्याण के लिए वर्ण–धर्म की भांति आश्रम–धर्म का पालन भी अनिवार्य है। वे दोनों को संयुक्त नाम देकर वर्णाश्रम धर्म कहते हैं। ये दोनों मिलकर हिंदू समाज की कठोर मर्यादाएं निर्धारित करते हैं। इससे पूर्व कि हम इसके तात्पर्य, विशदस्वरूप और इसकी उत्पत्ति पर विचार करें, यह ठीक रहेगा कि हम आश्रम–धर्म को समझ लें। आश्रम–धर्म दिग्र्शन का साधन है।

इस सन्दर्भ में *मनुस्मृति*[1] से कुछ प्रासंगिक अंश पुनः प्रस्तुत हैं:

"गर्भ धारण के आठ वर्ष पश्चात् उपनयन संस्कार कराया जाए। क्षत्रिय का गर्भधारण के ग्यारह वर्ष पश्चात्, किन्तु वैश्य का बारह वर्ष उपरांत।"

---

1. *मनुस्मृति*, अध्याय 2, पृ. 36

यह 18 पृष्ठों की पाण्डुलिपि है। यह टंकित प्रथम प्रति है जिसमें थोड़ा अंश लेखक की हस्तलिखित लिपि में है। – संपादक

"कोई द्विज यदि वेदाध्ययन नहीं करता है और अन्य (सांसारिक ज्ञान) के अध्ययन में रत रहता है तो वह शीघ्र ही, अपितु अपने जीवन काल में ही शूद्र की स्थिति प्राप्त करता है और उसके बाद उसकी संतति भी।"[1]

"गुरु के अधीन तीन वेदों के (अध्ययन) का व्रत छत्तीस वर्ष तक धारण किया जाए अथवा इसवें अर्द्धांश अथवा चतुर्थांश अथवा जब तक उनका पूरा ज्ञान न हो जाए, यह व्रत रखा जाए।"

"जो उचित क्रम से तीन वेदों, अथवा दो अन्यथा एक का भी अध्ययन, बिना नियमोल्लंघन, कर लेता है, वह गृहस्थाश्रम में प्रवेश करे[2]।"

"विद्यार्थी, गृहस्थ, एकांतवासी और तापस इनकी चार स्थितियां हैं। इन सबका उद्‌गम गृहस्थ है।"

"किन्तु सभी (अथवा) कोई भी नियम, जिसका विधानानुकूल पालन किया गया हो, ब्राह्मण को उच्च स्थिति प्रदान करता है।"

"और वैदिक नियमानुसार और स्मृति के अनुरूप गृहस्थ को उन सबमें श्रेष्ठ बताया गया है क्योंकि वह अन्य तीनों का सहायक है[3]।"

"कोई द्विज स्नातक जो नियमानुसार गृहस्थ धर्म निभा चुका हो वह दृढ़ संकल्प करे कि वह अपनी इन्द्रियों का दमन करेगा, अरण्य में रहेगा (निम्नलिखित नियमों का अनुसरण करेगा)।"

"जब कोई गृहस्थ यह देखे कि उसकी त्वचा में झुर्रियां पड़ने लगी हैं और उसके बाल पकने लगे हैं और उसके पुत्रों को पुत्र (पौत्र) हो गए हैं तब वह वन को प्रस्थान करे[4]।"

"परन्तु इस भांति अपने जीवन का तीसरा भाग वनों में व्यतीत के उपरांत चौथे पन में, वह सभी सांसारिकताओं का परित्याग कर तापस का जीवन बिताए।"

"तापस रूप में जो क्रम से चरणों में यज्ञ पूर्ण करके, इन्द्रियों का दमन करके, क्लांत हो जाता है (भिक्षादान और भोजन करा कर) वह मृत्यु उपरांत सुख भोगता है।"

"जब वह तीनों ऋणों से उऋण हो जाता है तो मोक्ष के लिए सुरति लगाए, जो उऋण हुए बिना मुक्ति चाहता है, उसका पतन होता है।"

---

1. *मनुस्मृति*, अध्याय 2, 168
2. वही, अध्याय 3, 1-2
3. वही, अध्याय 4, 87-9
4. वही, अध्याय 4, 1-2

"नियमानुसार वेदाध्ययन, पवित्र विधानुसार पुत्रवान होकर, योग्यतानुसार यज्ञ करके वह अपना ध्यान मोक्ष पर लगाए।"

"कोई द्विज जो वेदाध्ययन बिना, पुत्रवान हुए बिना, यज्ञ के बिना मोक्ष चाहता है, उसका पतन होता है।"[1]

इन नियमों से यह स्पष्ट है कि मनु के अनुसार आश्रम-धर्म के तीन रूप हैं। प्रथम यह कि यह शूद्रों और महिलाओं के लिए नहीं है। द्वितीय यह कि ब्रह्मचर्य अनिवार्य है। ऐसे ही गृहस्थ, वानप्रस्थ और संन्यास अनिवार्य नहीं है। तृतीय यह कि इनका निर्धारित क्रम से पालन किया जाए। प्रथम ब्रह्मचर्य, द्वितीय गृहस्थ, तृतीय वानप्रस्थ और चतुर्थ संन्यास। कोई एक को लांघकर दूसरे आश्रम में नहीं जा सकता।

व्यक्तिगत जीवन में नियोजित अर्थ-व्यवस्था के लिए बताई जाने वाली इस आश्रम प्रणाली पर विहंगम दृष्टि डालने पर कुछ प्रश्न उत्पन्न होते हैं। वेदों के संदर्भ में आश्रमों का यह सिद्धांत अज्ञात है। वेदों में ब्रह्मचारी का उल्लेख है, परन्तु ब्रह्मचर्य को जीवन का प्रथम और अनिवार्य सोपान बनाए जाने का कोई प्रसंग नहीं है। ब्राह्मणों ने व्यक्तिगत जीवन में ब्रह्मचर्य को अनिवार्य क्यों बनाया? आश्रम धर्म के संबंध में यह प्रथम भ्रांति है।

दूसरा प्रश्न यह है कि मनु ने व्यक्ति के लिए, एक ही क्रम में आश्रम प्रणाली क्यों रखी? इसमें संदेह नहीं रहा है कि एक समय ऐसा था, जब कोई ब्रह्मचारी तीनों में से कोई-सा भी आश्रम अपना सकता था। वह गृहस्थ बन सकता था अथवा गृहस्थ बने बिना संन्यासी भी बन सकता था। यह तुलना करें कि धर्मसूत्र इस विषय में क्या कहते हैं?

वशिष्ठ धर्म सूत्र[2] का मत है:

"चार सोपान हैं: विद्यार्थी, गृहस्थ, एकांतवास और तापस।"

"जिस व्यक्ति ने एक, दो अथवा तीन वेदों का अध्ययन विद्यार्थी धर्म का उल्लंघन किए बिना किया है, वह जिस आश्रम में जीवन बिताना चाहे, बिता सकता है।"

गौतम धर्म सूत्र[3] का मत है:

"कोई (बताता है कि) वह (जिसने वेदाध्ययन किया है) किसी भी आश्रम का चयन कर सकता है।"

धर्मसूत्रों के विचार जानने पर यह स्पष्ट है कि एक समय था, जब गृहस्थाश्रम

1. *मनुस्मृति*, अध्याय 6, 33-37
2. *मनुस्मृति*, अध्याय 7, श्लोक 1, 2, 3
3. वही, अध्याय 3, श्लोक 1 और 2

वैकल्पिक था। ब्रह्मचर्य के पश्चात् कोई वानप्रस्थ अथवा संन्यास आश्रम में प्रवेश कर सकता था। मनु ने विकल्प क्यों समाप्त किया और गृहस्थ को क्यों अनिवार्य बनाया? उन्होंने वानप्रस्थ से पूर्व गृहस्थ को और संन्यास से पूर्व वानप्रस्थ को अनिवार्य क्यों घोषित किया?

गृहस्थाश्रम के पश्चात् जीवन के दो सोपान हैं, वानप्रस्थ और संन्यास। प्रश्न यह है कि मनु ने यह आवश्यक क्यों माना कि गृहस्थाश्रम के पश्चात् दो आश्रम और रखे जाएं? संन्यास-आश्रम ही क्यों पर्याप्त नहीं? वानप्रस्थ और संन्यास-आश्रम के लिए निर्धारित नियम कुछ इतने समान हैं कि असमंजस होता है।

मनु ने वानप्रस्थ और संन्यास की जो तुलनात्मक संहिता बनाई है, उसकी सारणी निम्नांकित है:

वानप्रस्थ के लिए संहिता

"कृषि द्वारा अर्जित समस्त प्रकार के आहार तथा समस्त संपत्ति को छोड़कर वन में जाने की इच्छा नहीं करने वाली अपनी पत्नी को पुत्रों के उत्तरदायित्व में सौंपकर तथा वन में साथ जाने की इच्छा करने वाली अपनी पत्नी को साथ में लेकर वन को जाए।" अध्या. 6-3

"पवित्र अग्नि और यज्ञ पात्र आदि लेकर ग्राम से बाहर वन में जाकर जितेन्द्रिय होकर रहे।" अध्या. 6-4

"तापस योग्य विविध पवित्र खाद्य पदार्थ, कंद-मूल, फल आदि से पूर्वोक्त पंचमहायज्ञों का विधिपूर्वक पालन करता रहे।" अध्या. 6-5

"मृग आदि का चर्म या पेड़ों का वल्कल धारण करे, सायंकाल तथा प्रातःकाल स्नान करे और सर्वदा जटा, दाढ़ी, मूंछ एवं नख को (उच्छेदन रहित) धारण करे।" अध्या. 6-6

"जो भोज्य पदार्थ हो, उसी से बलि करे, सामर्थ्यानुसार दान दे, भिक्षा दे और जल, कंद तथा फलों की भिक्षा देकर आये हुए अतिथियों का सत्कार करे।" अध्या. 6-7

"सर्वदा वेदाभ्यास में लगा रहे, ठंडा-गर्म, सुख-दुख, अपमान आदि द्वंद्वों को सहन करे, सबसे मित्रभाव रखे, मन को वश में रखे, दानशील बने, दान न ले, सब जीवों पर दया करे" अध्या. 6-8

"दर्श, पौर्णमास पर्वों को यथासमय त्याग नहीं करता हुआ विधिपूर्वक तीन अग्नियों के साथ अग्निहोत्र करता रहे।" अध्या. 6-9

"नक्षत्रेष्ठि, आग्रहायण याग, चातुर्मास्य याग, उत्तरायण याग और दक्षिणायन याग को श्रोतस्मार्त विधि से क्रमशः करे।" अध्याय 6-10

"वसन्त तथा शरद ऋतु में पैदा हुए एवं स्वयं लाये गये पवित्र मुन्यन्नों से पुरोडश तथा उबले अन्न करूको शास्त्रानुसार अलग-अलग तैयार करे।" अध्या. 6-11

"वन में उत्पन्न अत्यंत पवित्र और हविष्यान्न से देवों के उद्देश्य हवन कर बचे हुए अन्न का भोजन करें तथा स्वयं बनाये हुए लवण को काम में लायें।'' अध्या. 6-12

"भूमि तथा जल में उत्पन्न शाकों (सब्जियों), पवित्र पुष्प, मूल तथा फल को, और पवित्र वृक्ष-उत्पादों और अरण्य-फलों से शोधित तैल का भोजन करे।" अध्या. 6-13

"मधु, मांस, पृथ्वी में उत्पन्न छत्रांक, भूस्तृण, शिग्रक और लसोड़े के फूल का त्याग करे।" अध्या. 6-14

"पूर्वसंचिता मुन्यन्न, पुराने वस्त्र और शाक कन्द एवं फल का आश्विन मास में त्याग कर दे।" अध्या. 6-15

"वन में भी हल से जुती हुई भूमि में उत्पन्न या किसी के फेंके हुए अन्न को तथा ग्राम में उत्पन्न मूल और फल को क्षुधा पीड़ित होकर भी न खाए।'' अध्या. 6-16

"अग्नि में पकाये हुए अन्न आदि को खाने वाला बने, अथवा नियम समय पर पकने वाले पदार्थों को खाने वाला बने अथवा पत्थर से पीस कर या दांतों से चबाकर खाने वाला बने।" अध्या 6-17

"भोजन पात्रों को वह खाने के बाद तुरंत धोए, या एक मास का संग्रह रखे, अथवा छः मास या वर्ष पर्यंत का समुचित प्रबंध करे।" अध्या. 6-18

"यथाशक्ति अनन को लाकर सायंकाल या दिन में या एक दिन पूरा उपवास कर दूसरे दिन सायंकाल या तीन रात उपवास कर चौथे दिन सायंकाल भोजन करे।" अध्या. 6-19

"अथवा शुक्ल तथा कृष्णपक्ष में चान्द्रायण के नियम से भोजन करे, अथवा अमावस्या तथा पूर्णिमा को दिन या रात्रि में केवल एक बार पकाई हुई ययागूका भोजन करे।" अध्या. 6-20

"अथवा वैखानस आश्रम में रहने वाला सर्वदा वेुवल समय पर पके और स्वयं गिरे हुए फल-मूल से ही जीवन निर्वाह करे।" अध्या. 6-21

---

1. *मनुस्मृति,* अध्याय 6, श्लोक 38-45
2. वही, अध्याय 6, 207
3. वही, अध्याय 6, 208

"भूमि पर लेटे तथा टहले या पैर के अगले भाग पर दिन में कुछ समय तक खड़ा रहे या बैठा रहे तथा प्रातःकाल मध्याह्नकाल तथा सायंकाल में स्नान करे।" अध्या. 6-22

"अपनी तपस्या को बढ़ाता हुआ ग्रीष्म ऋतु में पंचाग्नि ले, वर्षा ऋतु में खुले मैदान में रहे और शीत ऋतु में गीला कपड़ा धारण करे।" अध्या. 6-23

"तीनों समय स्नान करता हुआ देवताओं, ऋषियों तथा पितरों का तर्पण करे और कठोर तपस्या करता हुआ अपने शरीर को सुखा दे।" अध्या. 6-24

"वानप्रस्थाश्रम के नियमानुसार वैतानिक अग्नि को आत्मा में रखकर वन में भी अग्नि और गृह का त्यागकर केवल मूल और फूल को खाये।" अध्या. 6-25

"सुख साधक साधनों में उद्योग को छोड़कर ब्रह्मचारी भूमि पर सोने वाला निवास-स्थान में ममस्वरहित हो पेड़ों के मूल को घर समझ कर निवास करे।" अध्या. 6-26

"जीवन निर्वाह के लिये केवल तपस्वी वानप्रस्थाश्रमियों के यहां भिक्षाग्रहण करे और उनका भी अभाव होने पर वन में निवास करने वाले अन्य गृहस्थ द्विजों से भिक्षा ग्रहण करे।" अध्या. 6-27

"उन वनवासी गृहस्थों का भी अभाव होने पर वन में ही निवास करता हुआ ग्राम से वृक्ष-पत्रों में या सकारों के खंडों में अथवा हाथ में ही भिक्षा को लाकर केवल आठ ग्रास भोजन करे।" अध्या. 6-28

"वन में निवास करता हुआ ब्राह्मण इन नियमों को तथा शास्त्रोक्त नियमों का पालन करते हुए और आत्मसिद्धि के लिए उपनिषदों तथा वेदों में कथित वचनों का अभ्यास करे।" अध्या. 6-29

संन्यासी के लिए संहिता

"जिसमें समस्त सम्पत्ति को दक्षिणा रूप में देते हैं ऐसे प्राजापत्य यज्ञ को अनुष्ठान कर और उसमें कथित विधि से अपने में अग्नि का आरोपकर ब्राह्मण घर से संन्यास आश्रम को ग्रहण करे।" अध्या. 6-38

"जो सब प्राणियों को अभय देकर गृह से संन्यास ले लेता है, वह ब्रह्मज्ञानी तेजोमय लोक होता है। अर्थात् वह उन लोकों को प्राप्त करता है।" अध्या. 6-39

"जिस द्विज से जीवों को लेशमात्र भी भय नहीं होता, शरीर से विमुक्त हुए उस द्विज को कहीं से भी भय नहीं होता।" अध्या. 6-40

1. *मनुस्मृति*, अध्याय 6, श्लोक 209

"पवित्र कमण्डल, दंड आदि से युक्त मौन धारण किया हुआ घर से निकला हुआ और उपस्थित इच्छा प्रवर्तक वस्तु में निःस्पृह होकर संन्यास ग्रहण करे।" अध्या. 6–41

"अकेले सिद्धि को देखता हुआ द्विज दूसरे किसी का साथ न करके अकेला ही मोक्ष के लिए चले, इस प्रकार वह किसी को नहीं छोड़ता है और न उसे कोई छोड़ता है।" अध्या. 6–42

"लौकिक अग्नि से रहित, गृह से रहित, शरीर में रोगादि होने पर भी चिकित्सा आदि का प्रबंध न करने वाला, स्थिर बुद्धिवाला, ब्रह्म का मनन करने वाला और ब्रह्म में भी भाव रखने वाला संन्यासी भिक्षा के लिए ग्राम में प्रवेश करे।" अध्या. 6–43

"खपरा, पेड़ों की जड़, पुराना व मोटा या वृक्ष के वल्कल कपड़ा, अकेलापन, ममता और सबमें समान भाव, ये मुक्ति के लक्षण हैं।" अध्या. 6–44

"मरने या जीने की चाह ने करे किन्तु नौकर जिस प्रकार वेतन की प्रतीक्षा करता है, उसी प्रकार काल की प्रतीक्षा करता रहे।" अध्या. 6–45

"ब्रह्म ध्यान में लीन योगासनों में बैठा हुआ, अपेक्षा से रहित, मांस की अभिलाषा से रहित और शरीर मात्र सहायक से युक्त मोक्ष सुख को चाहने वाला इस संसार में विचरण करे।" अध्या. 6–49

"चमत्कार और शकुन विचार, नक्षत्र विद्या, हस्तरेखा विज्ञान के चातुर्य, अंगविद्या, अनुशासन आदि के सहारे किसी भी प्रकार की भिक्षा लेने की इच्छा न करे।" अध्या. 6–50

"बहुत से वानप्रस्थों या अन्य साधुओं, ब्राह्मणों, पक्षियों, कुत्तों या दूसरे भिक्षुओं से युक्त घर में न जाए।" अध्या. 6–51

"बाल, नाखून और दाढ़ी–मूंछ कटवाकर, भिक्षापात्र, दण्ड तथा कमण्डल को लिये हुए, किसी प्राणी को पीड़ित न करता हुआ सर्वदा विचरण करे।" अध्या. 6–52

"उसके भिक्षापात्र धातु के न हों, छिद्र रहित हों, उनकी शुद्धि यज्ञ में चमस के समान केवल पानी से होती है।" अध्या. 6–53

"तुम्बा, लकड़ी, मिट्टी, बांस के पाच्यतियों के हों ऐसा स्वायंभुव पुत्र मनु ने कहा है।" अध्या. 6–54

"संन्यासी जीवन–निर्वाह के लिये दिन में एक बार ही भिक्षा ग्रहण करे, तथा उसको भी अधिक प्रमाण में लेने में आसक्ति न करे, क्योंकि भिक्षा में आसक्ति रखने वाला संन्यासी विषयों में भी आसक्त हो जाता है।" अध्या. 6–55

"घरों में जब धुआं दिखाई न पड़ता हो, मूसल का शब्द न होता हो, आग बुझ गयी हो, सब लोग भोजन कर चुके हों, और खाने के पत्तल बाहर फेंक दिये गये हों, तब भिक्षा के लिए संन्यासी सर्वदा निकले।" अध्या. 6-56

"भिक्षा न मिलने पर विषाद और मिलने पर हर्ष न करे। जितनी भिक्षा से जीव निर्वाह हो सके, उतने ही प्रमाण में भिक्षा मांगे। दण्ड, कमण्डल आदि की मात्रा में भी आसक्ति न करे।" अध्या. 6-57

"विशेष रूप से आदर-सत्कार के साथ मिलने वाली भिक्षा की सर्वदा निंदा करे, क्योंकि पूजापूर्वक होने वाली भिक्षा प्राप्ति से मुक्त भी संन्यासी बंध जाता है।" अध्या. 6-58

"विषयों की ओर आकृष्ट होती हुई इन्द्रियों को थोड़ा भोजन और एकांतवास के द्वारा रोके।" अध्या. 6-59

"इन्द्रियों को अपने-अपने विषयों से रोकने से, राग और द्वेष के त्याग से और प्राणियों की अहिंसा से मुक्ति के योग्य होता है।" अध्या. 6-60

"जब विषयों में दोष की भावना से सब विषयों से निःस्पृह हो जाता है, तब इस लोक में तथा परलोक में नित्यसुख को प्राप्त करता है।" अध्या. 6-80

"इस प्रकार सब संगों को धीरे-धीरे छोड़कर तथा सब द्वंद्वों से छुटकारा पाकर ब्रह्म में ही लीन हो जाता है।" अध्या. 6-81

"यह सब परमात्मा में ध्यान से होता है। अध्यात्म ज्ञान से शून्य ध्यान का फल कोई भी नहीं प्राप्त करता है।" अध्या. 6-82

"यज्ञ तथा देव के प्रतिपादक वेदमंत्र को, जीवन के स्वरूप के प्रतिपादक वेदमंत्र को और ब्रह्मप्रतिपादक वेदान्त में वर्णित मंत्र को जपे।" अध्या. 6-83

"वेदार्थ को नहीं जानने वाले के लिए यही वेद शरण है, और वेदार्थ जानने वाले के लिए स्वर्ग चाहने वालों के लिए भी वेद शरण है।" अध्या. 6-84

"इस क्रम से जो द्विज संन्यास लेता है वह इस संसार में पाप को नष्ट कर उत्कृष्ट ब्रह्म को प्राप्त करता है।" अध्या. 6-85

वानप्रस्थ की संन्यास से और गृहस्थाश्रम की संन्यास से तुलना करने पर इनके मध्य स्पष्ट साम्यता का पता चलता है। जब वानप्रस्थ की संन्यास से तुलना करते हैं तो उनके अनुसार जीवनयापन में बहुत कम अंतर मिलता है। प्रथम यह कि वानप्रस्थ अपनी पत्नी और सम्पत्ति के अधिकार का त्याग नहीं करता है। परन्तु संन्यासी को दोनों का त्याग करना पड़ता है। दूसरी बात यह है कि वानप्रस्थ का निवास स्थायी

होता है, चाहे वह वनवास ही क्यों न हो। किन्तु संन्यासी का आवास स्थायी नहीं होता, यहां तक कि वनों में भी उसे स्थान-स्थान पर रमण करना होता है। तीसरे यह कि संन्यासी के लिए शास्त्रों की व्याख्या करने पर प्रतिबंध है, जबकि वानप्रस्थ के लिए ऐसी कोई शर्त नहीं है। जहां तक अन्य बातों का प्रश्न है, वे एक समान हैं।

गृहस्थाश्रम और वानप्रस्थाश्रम के बीच भी बहुत साम्य है। मूलरूप से वानप्रस्थी गृहस्थ ही है जैसे वानप्रस्थी का वैवाहिक जीवन जारी रहता है। गृहस्थी के समान वह सम्पत्ति का स्वामी रहता है। गृहस्थ की भांति वह संसार का त्याग नहीं करता। वह वैदिक धर्म का पालन करता है। गृहस्थाश्रम और वानप्रस्थ के बीच तीन बातों का अंतर है: (1) गृहस्थ के भोजन और वस्त्र पहनने में कोई सादगी नहीं है, जबकि वानप्रस्थ के लिए ऐसी व्यवस्था है, (2) गृहस्थ समाज के मध्य रहता है, जबकि वानप्रस्थ को वनों में रहना होता है, (3) वानप्रस्थी, वेदांत का अध्ययन कर सकता है, जबकि गृहस्थ वेदों तक ही सीमित रहता है। शेष बातों में साम्यता है।

गृहस्थाश्रम और वानप्रस्थ तथा संन्यास आश्रम के बीच इतनी सारी साम्यताओं के रहते हुए, यह समझना कठिन है कि मनु ने गृहस्थाश्रम और संन्यास के बीच वानप्रस्थ की रचना क्यों की, क्योंकि एक आश्रम दूसरे से बिल्कुल भिन्न होता है। वास्तव में केवल तीन आश्रम हो सकते थे- (1) ब्रह्मचर्य, (2) गृहस्थ, (3) संन्यास। शंकराचार्य का मत भी ऐसा ही लगता है, जिन्होंने अपने ब्रह्म-सूत्र में, संन्यास को सही बताते हुए पूर्व मीमांसा परम्परा के विपरीत तीन ही आश्रमों की बात कही है।

मनु को वानप्रस्थाश्रम की बात कैसे सूझी? उनको प्रेरणा कहां से मिली? जैसा कि पहले कहा जा चुका है, ब्रह्मचर्य के पश्चात् गृहस्थाश्रम अनिवार्य नहीं था। ब्रह्मचारी गृहस्थाश्रम अपनाए बिना सीधा संन्यासी बन सकता है। परन्तु मानव का अन्य भी एक चरण था। जो ब्रह्मचारी तुरन्त विवाह नहीं करना चाहता था, वह अरण्यमानस[1] (वनवासी) बन सकता था। वे ऐसे ब्रह्मचारी थे, जो अविवाहित रहकर अध्ययन जारी रखना चाहते थे। ये अरण्यवासी आबादी से दूर वनों में रहते थे। जिन वनों में अरण्य तापस बसते थे, वे आरण्यक कहलाते थे। यह स्पष्ट है कि मनु का वानप्रस्थ दो भिन्नताओं के कारण मौलिक अरण था। 1. वह वैवाहिक जीवन में प्रवेश करने से पूर्व स्वबंधित 'अरण' था और 2. यह अरण अवस्था, द्वितीय अवस्था के स्थान पर तृतीय अवस्था कहलाती थी। मनु का पूरा कार्यक्रम इस सिद्धांत पर आधारित था कि विवाह अनिवार्य है। कोई ब्रह्मचारी यदि संन्यासी बनना चाहता है तो उसे वानप्रस्थ में जाना होता था और वानप्रस्थ बनने के लिए गृहस्थ बनना अनिवार्य था अर्थात् उसे विवाह करना चाहिए। मनु ने विवाह से मुक्ति को असंभव बना दिया। क्यों?

---

1. राजा कुमुद मुकर्जी-*एंशिएंट इंडिया एजूकेशन,* पृ. 6

अठारहवीं पहेली

मनु का पागलपन या मिश्रित जातियों की उत्पत्ति की ब्राह्मणवादी व्यवस्था

किसी विचारगोष्ठी के लिए यदि कोई *मनुस्मृति* का अध्ययन करेगा तो वह पाएगा कि उसने जातियों की कई श्रेणियां की हैं। उनके नाम हैं: 1. आर्य जातियां, 2. अनार्य जातियां, 3. व्रात्य जातियां, 4. पतित जातियां और 5. संकर जातियां।

आर्य जातियों का अर्थ है चार वर्ण: ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र। दूसरे शब्दों में मनु चार वर्णों को आर्यवाद का सार मानते हैं। अनार्य का अर्थ है वे जातियां जो चातुर्वर्ण्य को स्वीकार नहीं करती हैं जिन्हें वह दस्यु कहता है अथात् जिन्हें वह अनार्य[1] जाति मानता है। व्रात्य जातियां वे हैं, जो कभी वर्णों को मानती थीं परन्तु बाद में जिन्होंने इसके विरुद्ध विद्रोह कर दिया।

मनु द्वारा वर्णित व्रात्य जातियां निम्न प्रकार हैं:

व्रात्य ब्राह्मण	व्रात्य क्षत्रिय	व्रात्य वैश्य
1. भृग्ग कंटक	1. झल्ल	1. सुधन्वन
2. अवन्त्य	2. मल्ल	2. आचार्य
3. वाताधान	3. लच्छवी	3. करुष
4. पुष्पदा	4. नट	4. विजनमान
5. सैख	5. करण	5. मैत्र
	6. खस	6. सत्वत
	7. द्रविड़	

1. मनु 10.45। यह श्लोक दो कारणों से अत्यंत महत्वपूर्ण है। एक तो यह कि इसमें शूद्रों को दस्यु से भिन्न बताया गया है। दूसरे, इससे पता चलता है कि शूद्र आर्य हैं।

यह 20 पृष्ठ की पाण्डुलिपि है, जिसका शीर्षक है – 'ओरीजिन आफ मिक्स्ड कास्ट्स' हालांकि मूल टाइप की पाण्डुलिपि में लेखक ने हाथ से लिखकर कुछ पृष्ठ जोड़े हैं। पाठ में लेखक ने संशोधन भी किए हैं।
– संपादक

पतित जातियों में मनु ने उन्हें सम्मिलित किया है जिन क्षत्रियों ने आर्य अनुष्ठान त्याग दिए थे जो शूद्र बन गए थे और ब्राह्मण पुरोहित जिनके यहां नहीं आते थे। मनु ने इनका उल्लेख इस प्रकार किया है:

1. पौंड्रक, 2. चोल, 3. द्रविड़, 4. काम्बोज, 5. यवन, 6. शक, 7. पारद, 8. पल्लव, 9. चीन, 10 किरात, 11. दर्द।

संकर जातियां मनु के अनुसार वे हैं, जिनके माता-पिता का वर्ण भिन्न था।

इन संकर जातियों की भी कई श्रेणियां हैं। विभिन्न आर्यवर्णों की संतानों का भी विभाजन दो श्रेणियों में किया गया है, (क) अनुलोम, (ख) प्रतिलोम 2. अनुलोम और प्रतिलोम से उत्पन्न जातियां, 3. अनार्यों और आर्यों की अनुलाम और प्रतिलोम संतानों। मनु ने जिन जातियों को संकर जातियों की सूची में रखा है, उनकी विभिन्न श्रेणियां निम्न प्रकार से हैं:

मिश्रित आर्य जातियों की संतानें

पिता	**माता**	**जाति का नाम**	**अनुलोम अथवा प्रतिलोम**
ब्राह्मण	क्षत्रिय	?	
ब्राह्मण	वैश्य	अम्बष्ट	अनुलोम
ब्राह्मण	शूद्र	निषाद (पाराशव)	अनुलोम
क्षत्रिय	ब्राह्मण	सूत	प्रतिलोम
क्षत्रिय	वैश्य	?	
क्षत्रिय	शूद्र	उग्र	अनुलोम
वैश्य	ब्राह्मण	वैदेहक	प्रतिलोम
वैश्य	क्षत्रिय	मागध	प्रतिलोम
वैश्य	शूद्र	करण	अनुलोम
शूद्र	ब्राह्मण	चाण्डाल	प्रतिलोम
शूद्र	क्षत्रिय	क्षत्रिय	प्रतिलोम
शूद्र	वैश्य	आरोगव	प्रतिलोम

2. आर्य अनुलोम प्रतिलोम से उत्पन्न जातियां

पिता	माता	जाति का नाम
1. ब्राह्मण	उग्र	अव्रत्य
2. ब्राह्मण	अम्बष्ट	आभीर
3. ब्राह्मण	आभीर	धिागवन
4. शूद्र	निषाद	कुकुतक

3. अनुलोम और प्रतिलोम के बीच विवाह जनित जातियां

पिता	माता	जाति का नाम
1. वैदेह	आयोगव	मैत्रेयक
2. निषाद	आयोगव	मार्गव (दाल) कैवर्त्त
3. निषाद	वैदेह	कारवर
4. वैदेहक	अम्बष्ट	वेन
5. वैदेहक	कारवर	आन्ध्र
6. वैदेहक	निषाद	मेद
7. चाण्डाल	वैदेह	पाण्डुसोपाक
8. निषाद	वैदेह	अहिंदक
9. चाण्डाल	पुक्कस	श्वपाक (सोपाक)
10. चाण्डाल	निषाद	अन्त्यवासिन
11. क्षत्रिय	उग्र	श्वपाक

संकर जतियों की मनु की सूची में परवर्ती स्मृतिकारों ने वृद्धि की है। इनमें उशनस स्मृति, बौधायन स्मृति, वशिष्ठ स्मृति, याज्ञवल्क्य स्मृति और *सूत संहिता के रचियता सम्मिलित* हैं।

उशनस स्मृति के नाम इस प्रकार हैं:

संकर जाति का नाम	पिता की जाति	माता की जाति
1. पुलक्ष	शूद्र	क्षत्रिय
2. येकज	पुलक्ष	वैश्य
3. चर्मकारक	आरोग्य	ब्राह्मण
4. वेनुक	सूत	ब्राह्मण

बौधायन स्मृति में निम्नलिखित नाम जोड़े गए:

संकर जाति का नाम	पिता की जाति	माता की जाति
1. क्षत्रिय	क्षत्रिय	वैश्य
2. ब्राह्मण	ब्राह्मण	क्षत्रिय
3. वेन	वैदेहक	अम्बष्ट
4. श्वपाक	उग्र	क्षत्रिय

मनु की सूची में वशिष्ठ स्मृति में एक नाम जोड़ा गया है:

संकर जाति का नाम	पिता की जाति	माता की जाति
वेन	शूद्र	क्षत्रिय

मनु. की सूची में याज्ञवल्क्य स्मृति में दो नाम जोड़े गए हैं:

संकर जाति का नाम	पिता की जाति	माता की जाति
1. मुर्धवसिक	ब्राह्मण	क्षत्रिय
2. महिष्य	क्षत्रिय	वैश्य

सूत संहिता के रचनाकार की बड़ी वृहद सूची है। उसमें तरेसठ जातियां हैं।

संकर जाति का नाम	पिता की जाति	माता की जाति
1. अम्बष्ट	क्षत्रिय	वैश्य
2. उर्ध्वनापित	ब्राह्मण	वैश्य
3. कटकर	वैश्य	शूद्र
4. कुंभकार	ब्राह्मण	वैश्य
5. कुंड	ब्राह्मण	विवाहित ब्राह्मण
6. गोलक	ब्राह्मण	विधुर ब्राह्मण
7. चक्री	शूद्र	वैश्य
8. दोसन्तया	क्षत्रिय	शूद्र
9. दोसन्ती	क्षत्रिय	शूद्र
10. पटट्नशाली	शूद्र	वैश्य
11. पुलिन्द	वैश्य	क्षत्रिय
12. बह्यादस	शूद्र	ब्राह्मण
13. भोज	वैश्य	क्षत्रिय
14. महिकार	वैश्य	वैश्य
15. मानविक	शूद्र	शूद्र
16. म्लेच्छ	वैश्य	क्षत्रिय
17. शालिका	वैश्य	क्षत्रिय
18. शौडिक	ब्राह्मण	शूद्र
19. सुलिखा	ब्राह्मण	शूद्र
20. सापर्ण	ब्राह्मण	क्षत्रिय
21. आग्नेयनर्तक	अम्बष्ट	अम्बष्ट
22. अपितर	ब्राह्मण	दौसन्ती
23. आश्रमक	दंतकेवल	शूद्र

24. उदबंध	सनक	क्षत्रिय
25. करण	नट	क्षत्रिय
26. कर्मा	करण	क्षत्रिय
27. कर्मकार	रेणुका	क्षत्रिय
28. करमर	माहिष्य	करण
29. कुक्कुण्ड	मागध	शूद्र
30. गुहक	श्वपाच	ब्राह्मण
31. चर्मोपजीवी	वैदेशिका	ब्राह्मण
32. चमकार	आयोगव	ब्राह्मणी
33. चर्मजीवी	निषाद	करुषी
34. तक्ष	माहिष्य	करण
35. तक्षवृति	उग्र	ब्राह्मण
36. दंतकवेलक	चाण्डाल	वैश्य
37. दस्यु	निषाद	आयोगव
38. द्रुमिल	निषाद	क्षत्रिय
39. नट	पिछल्ल	क्षत्रिय
40. नापित	निषाद	ब्राह्मण
41. नीलादिवर्णविक्रेता	आयोगव	चिरकरी
42. पिछल्ल	मल्ल	क्षत्रिय
43. पिंगल	ब्राह्मण	आयोगव
44. भागलब्ध	दौसंती	ब्राह्मणी
45. भरुष	सुधन्वा	वैश्य
46. भैरव	निषाद	शूद्र
47. मातंग	विजन्मा	वैश्य
48. मधुक	वैदेहिक	आयोगव
49. मालाकार	दस्यु	वैश्य

50. मैत्रा	विजन्मा	वैश्य
51. रजक	विदेह	ब्राह्मण
52. रथकार	माहिष्य	करण
53. रेणुक	नापित	ब्राह्मण
54. लोहकार	माहिष्य	ब्राह्मणी
55. वर्धकी	माहिष्य	ब्राह्मण
56. वार्य	सुधन्वा	वैश्य
57. विजन्मा	भरुष	वैश्य
58. शिल्प	माहिष्य	करण
59. श्वपच	चाण्डाल	ब्राह्मणी
60. सनक	मागध	क्षत्रिय
61. समुद्र	तक्षवृति	वैश्य
62. सात्वत	विजन्मा	वैश्य
63. सुनिषाद	निषाद	वैश्य

मनु द्वारा रचित पांच जातियों की श्रेणियों में से चार को तो सरलता से समझा जा सकता है। परन्तु इनमें से पांचवी श्रेणी संकर जाति के विषय में भी ऐसे ही नहीं कहा जा सकता। मस्तिष्क में अनेक प्रश्न उठते हैं। पहली बात तो यह है कि मनु की यह सूची यंत्रवत् है। यह एक सम्पूर्ण सूची नहीं है, जिसमें संकर जातियों की सभी संभावनाएं हों।

अनुलोम और प्रतिलोम विवाहों से आर्य जातियों से उत्पन्न मिश्रित जातियों के विषय में चर्चा आती है तो मनु द्वारा जातियों के नाम स्पष्ट किए जाने चाहिए थे। चार में से प्रत्येक वर्ण के बारह अनुलोम-प्रतिलोम जातियां जन्मी। यदि उन्होंने ऐसा किया होता तो अड़तालिस जातियां बननी चाहिए थीं। दरअसल उन्होंने मिश्रित विवाहों से जनित केवल चार जातियों का उल्लेख किया है।

अनुलोम और प्रतिलोम विवाहों के कारण जन्मी 144 जातियों की सूची मनु को प्रस्तुत करनी चाहिए थी, क्योंकि इन विवाहों की संख्या बारह है। वास्तव में मनु ने केवल ग्यारह जातियां बताई हैं। इन ग्यारह जातियों के निर्माण के विषय में उन्होंने केवल पांच के मिश्रण का उल्लेख किया है। इनमें से एक (वैदेह) अनुलोम प्रतिलोम

की सूची से बाहर है। आठ का प्रसंग छोड़ ही दिया गया है।

आर्य और अनार्य जातियों के मेल से उत्पन्न संकर जातियों के विषय में भी उनके कथन में विसंगति है। हमें सर्वप्रथम तो आर्यों के प्रत्येक वर्ण के अनार्यों से मिश्रण में उत्पन्न जातियों की सूची प्राप्त होनी चाहिए थी। यह अप्राप्य है। हम यह मान लेते हैं कि एक ही अनार्य जाति दस्तु थी। फिर भी हमें प्रत्येक अनुलोम प्रतिलोम के प्रतिफल में 12 जातियों का ज्ञान होना चाहिए। वास्तव में मनु ने केवल एक-मिश्रण का उल्लेख किया है।

संकर जातियों पर विचार करते समय मनु ने व्रात्य और आर्य जातियों के मिश्रण पर ध्यान नहीं दिया। व्रात्य और अनुलोम-प्रतिलोम का भी कोई उल्लेख नहीं है और न व्रात्य और अनार्य जातियों के संयोग का।

मनु की इन त्रुटियों में कुछ तो ज्वलंत और महत्वपूर्ण हैं। ब्राह्मण और क्षत्रियों से उत्पन्न संकर जाति को लेते हैं। मनु इस संबंध में मौन हैं कि इनमें कौन सी जाति बनी। न ही उन्होंने यह स्पष्ट किया है कि वे विवाह अनुलोम थे अथवा प्रतिलोम। मनु ने यह उल्लेख नहीं किया। क्या ऐसा मान लें कि उनके समय ऐसी संकर जातियां उत्पन्न ही न हुई हों? या वे ऐसा उल्लेख करने से भय खाते थे? यदि वह बात थी तो डर किस का था?

मनु तथा अन्य स्मृतिकारों ने संकर जातियों के जो नाम गिनाए हैं, उनमें से कुछ जाली लगते हैं क्योंकि जिन जातियों को जारज उत्पत्ति का बताया गया है, मनु से पूर्व उनका नाम किसी ने नहीं सुना था और न यह पता चलता है कि तब से आज तक वे कहां विलीन हैं। आज उनका कोई पता नहीं है और कभी उनका उल्लेख नहीं मिलता। जाति एक अमिट परंपरा है और एक बार बन जाने पर उसका अलग अस्तित्व जारी रहता है जब तक कि उसे लुप्त हो जाने का कोई विशेष कारण न हो। ऐसा हो तो सकता है किन्तु नाममात्र को।

ये आयोगव, धिगवान, उग्र, पुक्कस, श्वपाक, श्वपच, पांडुश्वपाक, अहिंदक, बंदिका मट्टा, महिकार, शालिका, शंडिका, शुलिका, यकज, कुकुंद कौन हैं? यह तो थोड़े से ही गिनाए गए हैं। ये कहां गए? इनका क्या हुआ?

अब हम मनु की अन्य स्मृतिकारों से तुलना करें। उन्होंने किन जातियों का उल्लेख किया है। क्या वे इन संकर जातियों की उत्पत्ति के विषय में एकमत हैं? ऐसा नहीं है। यह निम्नांकित तालिका से स्पष्ट है-

1. आयोगव

स्मृति	पिता	माता
1. मनु	शूद्र	वैश्य
2. उशनस	वैश्य	क्षत्रिय
3. याज्ञवल्क्य	शूद्र	वैश्य
4. बौधायन	वैश्य	क्षत्रिय
5. अग्नि पुराण	शूद्र	क्षत्रिय

2. उग्र

स्मृति	पिता	माता
1. मनु	क्षत्रिय	शूद्र
2. उशनस	ब्राह्मण	शूद्र
3. याज्ञवल्क्य	क्षत्रिय	वैश्य
4. वशिष्ठ	क्षत्रिय	वैश्य
5. सूत	वैश्य	शूद्र

3. निषाद

स्मृति	पिता	माता
1. मनु	ब्राह्मण	शूद्र
2. उशनस	ब्राह्मण	शूद्र
3. बौधायन	ब्राह्मण	शूद्र
4. याज्ञवल्क्य	ब्राह्मण	शूद्र
5. सूत संहिता	ब्राह्मण	शूद्र
6. सूत संहिता	ब्राह्मण	वैश्य
7. वशिष्ठ	वैश्य	शूद्र

4. पुक्कस

स्मृति	पिता	माता
1. मनु	निषाद	शूद्र
2. बृहद् विष्णु	शूद्र	क्षत्रिय

5. मागध

स्मृति	पिता की जाति	माता की जाती
1. मनु	वैश्य	क्षत्रिय
2. सूत	वैश्य	क्षत्रिय
3. बौधायन	शूद्र	वैश्य
4. याज्ञवल्क्य	वैश्य	क्षत्रिय
5. बृहद विष्णु	वैश्य	क्षत्रिय
6. बृहद विष्णु	शूद्र	क्षत्रिय
7. बृहद विष्णु	वैश्य	ब्राह्मण

6. रथकार

स्मृति	पिता की जाति	माता की जाति
1. उशनस	क्षत्रिय	ब्राह्मण
2. बौधायन	वैश्य	शूद्र
3. सूत	क्षत्रिय	ब्राह्मण

7. वैदेहक

स्मृति	पिता की जाति	माता की जाति
1. मनु	शूद्र	वैश्य
2. मनु	वैश्य	ब्राह्मण
3. याज्ञवल्क्य	वैश्य	ब्राह्मण

यदि विभिन्न स्मृतियों में संकर जातियों की उत्पत्ति के विषय में हुए उल्लेखों पर ध्यान दिया जाए तो फिर विचारों में इतनी व्यापक भिन्नता क्यों है? दो जातियों के मेल से तीसरी जाति की रचना तार्किक हो सकती है परन्तु उन्हीं दो वर्णों के मिश्रण से भिन्न-भिन्न जातियां कैसे बन गईं? यही तो मनु और उनके अनुयायी कहे गए हैं। निम्नांकित तथ्यों को देखें:

1. क्षत्रिय पिता और वैश्य माता का संयोग:

   क. बौधायन कहते हैं कि वह संतति क्षत्रिय हैं।

   ख. याज्ञवल्क्य का कथन है कि वह महिष्य है।

   ग. सूत का मत है कि यह अम्बष्ट है।

2. शूद्र पिता और क्षत्रिय माता का संयोग:

   क. मनु कहते हैं कि वह संतति क्षत्रिय है।

   ख. उशनस के अनुसार पुलक्ष है।

   ग. वशिष्ठ का मत है कि वह वेन है।

3. ब्राह्मण पिता और वैश्य माता का मेल:

   क. मनु के अनुसार संतति अम्बष्ट है।

   ख. सूत का मत है वह अर्ध्वनापित है। उसका एक और कथन है कि वह कुंभकार है।

4. वैश्य पिता और क्षत्रिय माता का मेल:

   क. मनु की दृष्टि में वह संतति मागध है।

   ख. सूत का मत है: 1. भोज, 2. म्लेच्छ, 3. शालिक, 4. पुलिंद ये एक ही मिश्रण की जातियां हैं।

5. क्षत्रिय पिता और शूद्र माता का मेल:

   क. मनु का कथन है वह संतति उग्र है।

   ख. सूत के अनुसार, 1. दौसंतया, 2. दौसंती और 3. शुलिका एक ही मिश्रण से बने हैं।

6. शूद्र पिता और वैश्य माता का मेल:

   क. मनु का कथन है, वह संतत आयोगव है।

   ख. सूत ने उसे- 1. पटट्नशाली, और 2. चक्री कहा है।

अब एक अन्य प्रश्न पर विचार किया जाए। क्या संकर जातियों की उत्पत्ति के विषय में मनु की व्याख्याएं ऐतिहासिक रूप से सत्य हैं?

आभीर से आरम्भ करते हैं। मनु कहते है कि ये ब्राह्मण पुरुष और अम्बष्ट नारी की जारज संतान है। इस संबंध में इतिहास क्या कहता है? इतिहास कहता है कि आभीर (जिसका अपभ्रंश अहीर है) एक चरवाहा जनजाति थी जो सिंध कहे जाने वाले निचले उत्तर-पश्चिमी जिलों में विचरते थे। वह एक स्वतंत्र शासक जनजाति थी और *विष्णु पुराण*[1] के अनुसार आभीरों ने मगध विजय कर लिया था एवं कई वर्षों तक वहां शासन किया।

अम्बष्टों[2] के विषय में मनु का कथन है कि वे ब्राह्मण पुरुष और वैश्य स्त्री की संतान हैं। पतंजलि का कथन है कि अम्बष्ट लोग अम्बष्ट देश के निवासी हैं। यह निर्विवाद है कि अम्बष्ट एक स्वतंत्र जनजाति थी। चन्द्रगुप्त मौर्य की राजसभा में यूनानी दूत मेगस्थनीज ने अम्बष्टों का उल्लेख किया है कि वह पंजाब की एक जनजाति थी जिसने भारत पर सिकंदर के आक्रमण के समय उसके साथ युद्ध किया। अम्बष्टों का *महाभारत* में भी उल्लेख है। उनकी राज्य-व्यवस्था और शौर्य का सम्मानजनक वर्णन है।

मनु कहते हैं कि आंध्र[3] द्वितीय श्रेणी की जारज संतान थी जो वैदेहक पुरुष और कारवार स्त्री से उत्पन्न बताए गए हैं, जो स्वयं जारज थे। ऐतिहासिक साक्ष्य नितांत भिन्न हैं। आंध्र वे लोग हैं जो दक्षिण के पठार के पूर्वी भाग में निवास करते हैं। आंध्रों का मेगस्थनीज ने भी उल्लेख किया है। प्लीनी द एल्डर (77 ई.) ने वर्णन किया है कि यह दक्षिणवासी एक शक्तिशाली जाति है जिसकी दक्षिण में सार्वभौम सत्ता है। उनके अधिकार में अनेक गांव हैं जिनके तीन नगरों का परकोटा है, उनकी रक्षा खाई खंदकों से होती और अपने राजा को एक लाख पैदल, दो हजार अश्वारोही और एक हजार हाथी उपलब्ध कराते हैं।

मनु के अनुसार मागध[4] वैश्य पुरुष और क्षत्रिय नारी से उत्पन्न जारज संतान हैं। वैयाकरण पाणिनि ने "मगध" की व्युत्पत्ति भिन्न प्रकार से की है। उनके अनुसार "मागध" का अर्थ है मगध देशवासी। इस समय मगध का अर्थ है बिहार के पटना और गया जनपद। ज्ञात समय से ही उन्हें स्वतंत्र सार्वभौम बताया गया है, उनका

---

1. भाग 4, अध्या 24
2. अम्बष्टों के लिए देखें *जायसवाल की, हिन्दू पोलिटी,* भाग 1, पृ. 73-4
3. आंध्र के लिए देखिए, '*अर्ली डायनैस्टिज आफ आंध्र देश*' भावराजू वेंकट कृष्ण राव। उन्हें सातवाहन भी कहा जाता है।
4. मगध के इतिहास के लिए देखें *एंसिएंट इण्डियन ट्राइब्स,* अध्याय 4 : बी.सी. ला

सर्वप्रथम उल्लेख *अथर्ववेद* में आया है। प्रसिद्ध जरासंध मगध का राजा था, जो पांडवों का समकालीन था।

मनु का कथन है कि निषाद ब्राह्मण पुरुष और शूद्र स्त्री की जारज संतान हैं। इतिहास के साक्ष्य बिल्कुल भिन्न हैं। निषाद एक देशी जनजाति थी, जिनका स्वतंत्र प्रदेश और अपने राजा होते थे। यह एक बहुत प्राचीन जनजाति है। *रामायण* में गुहा को निषाद राज बताया गया है, जिसकी राजधानी श्रृंगवेरपुर थी। जब राम वनवास को जा रहे थे, तो उसने उनका आतिथ्य किया था।

वैदेहक के विषय में मनु का मत है कि वे वैश्य पुरुष और ब्राह्मण स्त्री की जारज संतान हैं। व्युत्पत्ति शास्त्र के अनुसार वैदेहक[1] का अर्थ विदेह देश के निवासी से है। प्राचीन विदेह बिहार के दरभंगा और चम्पारन जनपद में स्थित था। यह देश और इस के निवासियों का इतिहास अत्यन्त प्राचीन है। *यजुर्वेद* में भी इसका उल्लेख है। राम की पत्नी सीता, जनक की पुत्री थी, जो विदेह के राजा थे। उसकी राजधानी मिथिला थी। ऐसे और भी बहुत से तथ्यों की विवेचना की जा सकती है। ये ही पर्याप्त हैं। इनके आधार पर कहा जा सकता है कि मनु ने इतिहास को भ्रष्ट कर डाला और अत्यंत सम्मानित तथा शक्तिशाली जनजातियों को जारज घोषित कर दिया। बड़े-बड़े समुदायों को थोक के भाव जारज बता डालने वाले मनु ने व्रात्यों को छोड़ दिया। परन्तु परवर्तियों ने वही कार्यक्रम जारी रखा और व्रात्यों को भी जारज कह दिया। मनु के अनुसार कर्ण व्रात्य थे। परन्तु *ब्रह्मवैवर्त पुराण* ने उन्हें जारज बताया है और कहा है कि वे वैश्य पिता और शूद्र माता की संतान हैं। मनु ने पौंड्रकों को व्रात्य माना है। किन्तु *ब्रह्मवैवर्त पुराण* में उन्हें वैश्य पिता और चुन्दी माता की संतान बताया है। मल्ल को मनु व्रात्य कहते हैं किन्तु *ब्रह्वैवर्त पुराण* में वे लेत्त पिता और तीव्र माता से उत्पन्न हुए हैं। वृहज्जकौतुक को मनु व्रात्य ब्राह्मण मानते हैं। परन्तु गौतम संहिता में वे ब्राह्मण पिता और वैश्य मां के पुत्र-पुत्री हैं। मनु ने यवनों को व्रात्य क्षत्रिय घोषित किया है। लेकिन गौतम संहिता में वे क्षत्रिय पिता और शूद्र मां से जन्मे हैं। मनु किरातों को व्रात्य क्षत्रिय कहते हैं। वल्लाल चरित्र में उन्हें वैश्य पिता और ब्राह्मण माता की संतान कहा गया है।

यह स्पष्ट है कि मनु ने जिन जातियों को जारज कहा है, उनमें से कई की उत्पत्ति स्वतंत्र है, फिर भी मनु और अन्य स्मृतिकार उन्हें जारज बताते हैं। उनके प्रति ऐसा पागलपन क्यों? क्या उनके पागलपन की कोई पद्धति है?

---

1. विदेह के इतिहास के लिए देखें *क्षत्रिय क्लांस इन बुद्धिस्ट इंडिया,* भाग 2, अध्याय 1 द्वारा बी.सी. ला

इन तथ्यों पर विचार करने के पश्चात् यह एक पहेली ही है कि मनु ने संकर जातियों का प्रश्न क्यों खड़ा किया। आखिर इसके पीछे उनका तात्पर्य क्या था?

ऐसा संभव है कि मनु को यह बात समझ में आ गई थी कि चातुर्वर्ण्य-व्यवस्था का ढांचा चरमरा रहा है और उन जातियों की बड़ी उपस्थिति जो ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य अथवा शूद्रों की परिधि में नहीं आती थीं, चातुर्वर्ण्य के विफल हो जाने का उत्तम प्रमाण था। इसलिए उन्हें चातुर्वर्ण्य के नियमों को अनदेखा करके चातुर्वर्ण्य से बाहर की जातियों के अस्तित्व के विषय में प्रकाश डालने के लिए विवश होना पड़ा।

पर क्या मनु ने अनुभव किया कि उन्होंने जो व्याख्या की थी, वह कैसी भयानक थी। उनकी व्याख्या के क्या अर्थ निकलते हैं?

उनके कथन से समाज के मानव-चरित्र और विशेषकर स्त्री जाति पर क्या कलंक पुत गया है? यह स्पष्ट है कि पुरुष और नारियों के बीच गुप्त संबंध थे क्योंकि चातुर्वर्ण्य ने प्रतिबंधित कर दिया था। किन्तु ये गुप्त संबंध इक्का-दुक्का रहे होंगे। वे बड़े स्तर पर नहीं हो सकते थे। परन्तु जब तक हम यह नहीं समझ लेते कि बड़े दुराचार इतने व्यापक स्तर पर विद्यमान थे, इस बात का औचित्य नहीं ठहराया जा सकता कि मनु द्वारा वर्णित इतने सारे चाण्डाल और अस्पृश्य समाज में पैदा हो गए हैं।

मनु ने कहा है कि चाण्डाल जाति ब्राह्मण स्त्री और शूद्र पुरुष के बीच अवैध संभोग का परिणाम है। क्या यह सच हो सकता है? इसका अर्थ तो यह हुआ कि ब्राह्मण स्त्रियों का चरित्र बहुत भ्रष्ट रहा होगा। शायद इसका अर्थ शूद्रों[1] से संभोग करने को उनके मन में विशेष आकर्षण हो। क्या इस पर विश्वास किया जा सकता है?

चाण्डलों की जनसंख्या इतनी अधिक है कि यदि प्रत्येक ब्राह्मण स्त्री भी एक शूद्र की रखैल रही होगी तो भी समाज में चाण्डाल इतने अधिक पैदा न होते जितनी कि चाण्डालों की जनसंख्या है।

संकर जाति संबंधी इस सिद्धान्त के प्रतिपादन से पहले क्या मनु ने सोचा कि इस देश में इतने अधिक जन-समुदाय को अकुलीन घोषित कर दिया जाए और वे सामाजिक एवं नैतिक दृष्टि से नीच कहलाए जाकर समाज में रहें? उन्होंने क्यों कहा कि जातियां दोगली हैं जबकि वास्तव में इन जातियों का स्वतंत्र अस्तित्व था?

---

1. मेगस्थनीज का कथन है कि ब्राह्मणों को अपनी पत्नियों पर संदेह है इसलिए उन्होंने अपने दार्शनिक सिद्धांत उन्हें नहीं बताए कि कहीं वे इन्हें कुपात्रों को न बता दें।

उन्नीसवीं पहेली

पितृत्व से भातृत्व की ओर: ब्राह्मणों को इससे क्या मिला?

हिंदू विधान पर अपने शोध प्रबंध में मयने ने संकेत दिया है कि सगोत्रता विधान में कुछ विसंगतियां हैं। उनका कथन है:

हिंदू विधान में इतनी विसंगतियां और कहीं नहीं हैं, जितनी पारिवारिक संबंधों के प्रसंग में हैं। इससे न केवल प्राचीन समाज और आधुनिक समाज के बीच में निरंतरता पूर्णतया छिन्न-भिन्न हो गई है बल्कि प्राचीन व्यवस्था की विभिन्न प्रणालियों के बीच प्रत्यक्ष टकराव भी दृष्टिगोचर होता है। उसमें एक उत्तराधिकार विधान है, जिसमें अविरल चौदह पीढ़ियों तक पुरुष पूर्वज की संभावना का अनुमान किया जाता है। साथ ही कुटुम्ब-विधान है जिसमें कतिपय स्वीकृत पद्धतियां शील भ्रष्टीकरण और बलात्कार के प्रति मात्र प्रियोक्तियां हैं। जहां बारह प्रकार के पुत्रों को मान्यता है और इनमें से अधिकांश का पिता से कोई रक्त-संबंध नहीं होता।

इन विसंगतियों का अस्तित्व वास्तव में विद्यमान है जो हिन्दू-विवाह तथा पितृत्व विधान का अध्ययन करने पर स्पष्ट हो जाएगा।

हिन्दू विधान में आठ प्रकार के विवाहों को मान्यता है। उनके नाम इस प्रकार हैं:

1. ब्रह्म 2. देव, 3. आर्ष, 4. प्रजापात्य 5. आसुर, 6. गंधर्व, 7. राक्षस और 8. पिशाच।

ब्रह्म विवाह के अनुसार किसी वेद ज्ञाता को वस्त्रालंकृत पुत्री उपहार में दे दी जाती थी जिसे उसका पिता स्वेच्छा से आमंत्रित करके उसकी सम्मानपूर्वक अगवानी करता था।

देव-विवाह वह था जब कोई पिता अपने घर यज्ञ करने वाले पुरोहित को दक्षिणास्वरूप अपनी पुत्री दान कर देता था।

आर्ष विवाह के अनुसार वर वधू के पिता को उसका मूल्य चुका कर प्राप्त करता था।

यह ग्यारह पृष्ठों की टंकित सामग्री है। अध्याय के शीर्षक को छोड़कर लेखक की हस्तलिपि में और कुछ भी नहीं जोड़ा गया है। – संपादक

प्रजापात्य विवाह का अर्थ है, वर द्वारा वधू के पिता से पुत्री प्रदान करने का आग्रह। प्रजापात्य और ब्रह्म विवाह में अंतर यह था कि एक में पिता द्वारा पुत्री को उपहारस्वरूप तो दे दिया जाता था किन्तु इसके लिए आग्रह की आवश्यकता थी। आसुर विवाह वह था, जब वर-वधू के पिता और इसके संबंधियों को उनकी पुत्री के बदले क्षमता भर सम्पति देता था और पुत्री को भी धन दिया जाता था। आर्ष और आसुर विवाह के मध्य कोई अंतर नहीं था। दोनों में पुत्री बेची जाती थी। अंतर मात्र इतना था कि आर्ष में पुत्री का मूल्य निश्चित किया जाता था जबकि आसुर विवाह में मूल्य निश्चित नहीं किया जाता था।

गंधर्व विवाह से आशय यह है जिसमें अधार्मिक तथा इन्द्रिय सुख हेतु परस्पर सहमति से विवाह होता था। राक्षस विवाह उसे कहते थे जब किसी कन्या को वर-पक्ष वाले बरबस उठा ले जाते थे। जब यह सहायता के लिए रोती-चिल्लाती थी तो उसका घर ध्वस्त करा दिया जाता और उसके परिजन और उनके मित्रों को युद्ध में आहत कर दिया जाता था अथवा उनका वध कर दिया जाता था।

पिशाच विवाह का अर्थ है किसी कन्या के साथ बलात्कार, जबकि वह निद्रामग्न हो अथवा उसे अतिमादक मदिरा पिलाकर उसकी बुद्धि का हरण कर लिया गया हो।

हिन्दू विधान के अनुसार तेरह प्रकार के पुत्र होते थे। 1. औरस, 2. क्षेत्रज, 3. पुत्रिका पुत्र, 4. कानीन, 5. गुह्मज, 6. पुनर्भव, 7. सहोदज, 8. दत्तक, 9. कृत्रिम, 10. क्रीत 11. अपविध, 12. स्वयंदत्त, और 13. निषाद।

औरस पुत्र वे होते थे जो किसी व्यक्ति द्वारा अपनी वैध पत्नी से उत्पन्न किए जाते थे।

"पुत्रिकापुत्र" से आशय है, पुत्री से उत्पन्न पुत्र। इसका महत्व यह है कि इस प्रथा के अनुसार कोई पिता, जिसका अपना पुत्र नहीं होता था, वह अपनी पुत्री से किसी व्यक्ति द्वारा पुत्र उत्पन्न कराता था। यदि इस शारीरिक संबंध के कारण उस कन्या को पुत्र प्राप्त हो जाता था तो वह बालक पुत्रीका पुत्र कहा जाता है। किसी व्यक्ति को यह अधिकार प्राप्त था कि अपनी पुत्री का विवाह कर देने के पश्चात् भी पुत्र प्राप्ति हेतु उसे विवश कर सकता था कि उसकी पुत्री उसके द्वारा नियत पुरुष के साथ संभोग करे। इसी कारण यह चेतावनी दी जाती थी कि उस कन्या के साथ विवाह न किया जाए, जिसके भ्राता न हों।

क्षेत्रज के शब्दार्थ और भावार्थ समान हैं। इसका अर्थ है-क्षेत्र से उत्पन्न पुत्र-क्षेत्र का अर्थ है पत्नी। हिंदू आदर्शों के अनुरूप स्त्री खेत के समान है और पति उस खेत का स्वामी है। यदि पति की मृत्यु हो जाती थी अथवा वह जीवित होता था परन्तु नपुंसक होता था अथवा उसे असाध्य रोग होता था तो उसका भ्राता अथवा अन्य सपिण्ड व्यक्ति उससे पुत्र उत्पन्न कर सकता था। इस प्रथा को "नियोग" कहते थे। इस प्रकार उत्पन्न पुत्र "क्षेत्रज" कहलाता था।

यदि कन्या अपने पिता के घर अवैध संबंधों के कारण गर्भवती हो जाती और

किसी पुत्र को जन्म देती और यदि फिर उसका विवाह हो जाए तो विवाह पूर्ण जन्मे पुत्र पर उसके पति का अधिकार हो जाता है जो "कानीन" कहलाता था।

"गुह्मज" वे पुत्र होते थे, जब किसी स्त्री के अपने पति से संबंध तो हों, परन्तु यह समझना कठिन हो कि पुत्र उसी का है अर्थात् जहां यह संदेह हो कि पुत्र अनाचार का परिणाम है। जब इस बात का साक्ष्य न हो तो अनुमान के आधार पर वह पुत्र उस स्त्री के पति का होता है। वह इसी कारण 'गुह्मज' कहलाता है कि उसका पिता संदिग्ध है।

"सहोदज" वे पुत्र होते थे जब कोई कन्या अपने विवाह के समय गर्भवती होती थी और यह निश्चय नहीं होता था कि पुत्र उसके पति का है जिसके उस कन्या के साथ पहले से ही शारीरिक संबंध होते थे अथवा वह किसी अन्य व्यक्ति का बीज है। परन्तु यह निश्चिंत था "सहोदज" उस गर्भवती स्त्री से उस व्यक्ति का उत्पन्न पुत्र माना जाता था जिसके साथ उस कन्या का विवाह होता था। "पुनर्भव" उस स्त्री का पुत्र है जिसे उसके पति ने त्याग दिया हो और वह अन्य के साथ सहवास के पश्चात् पुनः अपने घर आ गई हो। इससे ऐसी स्त्री के पुत्र का भी बोध होता है जो एक नपुंसक, अस्पृश्य, अथवा पागल या मृत पति के बाद दूसरा पति चुन लेती है।

"पारासव"[1] वे पुत्र होते थे जो किसी ब्राह्मण द्वारा शूद्र नारी से उत्पन्न किए जाते थे। शेष पुत्र गोद लिए गए पुत्र होते थे जिन पर पितृत्व अधिकार होता था।

"दत्तक" ऐसा पुत्र है जिसे उसके माता-पिता किसी को दे देते थे। उसे प्राप्तकर्ता का पुत्र माना जाता था।

"कृत्रिम" पुत्र का अर्थ है केवल प्राप्तकर्ता की इच्छा से प्राप्त पुत्र। 'क्रीत' ऐसा पुत्र, जिसे उसके अभिभावकों से क्रय किया जाता था।

"अपविध" ऐसा पुत्र है जिसका उसके जनक परित्याग कर दे और पुनः गोद ले लें और अपना पुत्र मान लें।

"स्वयंदत्त" ऐसा पुत्र है जिसे उसके जनक त्याग दें और वह किसी से यह कहकर आश्रय मांगे कि "मुझे अपना पुत्र बनाओ"। यदि स्वीकार कर लिया जाता है तो पुत्र माना जाता है।

यह उल्लेखनीय है कि विवाह की कई प्रणालियां शील भ्रष्टीकरण और बलात्कार की प्रियाक्तियां हैं और कई पुत्रों का अपने पिता से कोई रक्त संबंध नहीं होता था। मनु के समय तक ये विभिन्न प्रकार के विवाह और पुत्र वैध माने जाते थे और मनु ने जो परिवर्तन किए हैं वे मामूली हैं। जहां तक विवाहों का संबंध है मनु[2] ने उन्हें अवैध घोषित नहीं किया। उन्होंने मात्र इतना कहा है कि आठ में से प्रथम छह ब्रह्म, देव, आर्ष, प्रजापात्य, असुर, गंधर्व-राक्षस और पिशाच, क्षत्रिय के लिए वैध हैं और

1. उसमें निषाद भी है। जीमूतवाहन पारासव और निषादों को भिन्न मानता है। पारासव शूद्र कन्या से ब्राह्मण द्वारा उत्पन्न है और निषाद ब्राह्मण द्वारा शूद्र पत्नी से उत्पन्न है।

2. मनु. 3.23

तीन-असुर, गंधर्व और पिशाच वैश्य और शूद्र के लिए वैध हैं।

इसी प्रकार वे बारह प्रकार के पुत्रों में से किसी की भी श्रेणी विलग नहीं करता। इसके विपरीत वे उन्हें परिजन स्वीकार करते हैं। उन्होंने मात्र इतना परिवर्तन किया है कि उत्तराधिकार-नियम को बदल दिया है और उनके दो वर्ग कर दिए: 1. उत्तराधि कारी तथा परिजन, और 2. परिजन, किन्तु उत्तराधिकारी नहीं। वह कहते हैं[1]:

159. किसी का वैध पुत्र वह है जो उसने अपनी पत्नी से उत्पन्न किया हो, दत्तक पुत्र ही मान लिया गया पुत्र हो, गुह्य पुत्र, और उत्पन्न कराया गया पुत्र हो। यही छह उत्तराधिकारी या परिजन होने के पात्र हैं।

160. एक अविवाहित किशोरी से उत्पन्न पुत्र, पत्नी के साथ सहवास से प्राप्त पुत्र, पुनर्विवाहिता स्त्री से उत्पन्न पुत्र, स्वयं प्राप्त पुत्र और शूद्र स्त्री से प्राप्त पुत्र ऐसे पुत्र हैं, जिन्हें उत्तराधिकार प्राप्त नहीं होता किन्तु सगोत्री हैं।

162. यदि किसी पुरुष के दो उत्तराधिकारी पुत्र हैं और एक पुत्र उसकी पत्नी से उत्पन्न हुआ है, प्रत्येक (दोनों पुत्रों में से) दूसरे के वंचित हो जाने पर अपने पिता की सम्पत्ति का अधिकारी है।

163. किसी व्यक्ति का पुत्र ही पैतृक सम्पत्ति का अधिकारी है किन्तु कटुता से बचने के लिए दूसरे को निर्वाह उपलब्ध कराए जाएं।

सगोत्रता विधान का एक और अंग है जिसमें बहुत परिवर्तन किए गए हैं किन्तु जिसकी ओर किसी का ध्यान नहीं गया। वह है बालक का वर्ण निर्धारण। बालक का वर्ण क्या हो? उसे पिता का वर्ण मिलता है या माता का। मनु से पूर्व पिता का माना जाता था, माता के वर्ण का कोई महत्व नहीं था। इस संबंध में कुछ ऐसे उदाहरण हैं जो इस शोध की पुष्टि करते हैं।

पिता		**माता**		**बालक**	
नाम	**वर्ण**	**नाम**	**वर्ण**	**नाम**	**वर्ण**
1. शांतनु	क्षत्रिय	गंगा	अज्ञात	भीष्म	क्षत्रिय
2. पराशर	ब्राह्मण	मत्स्यगंधा	मछेरा	कृष्णद्वैपायन	ब्राह्मण
3. वशिष्ठ	ब्राह्मण	अक्षमाला	–	पायन	–
4. शांतनु	क्षत्रिय	मत्स्यगंधा	मछेरा	विचित्रवीर्य	क्षत्रिय
5. विश्वामित्र	क्षत्रिय	मेनका	अप्सरा	शकुंतला	क्षत्रिय
6. ययाति	क्षत्रिय	देवयानी	ब्राह्मण	यदु	क्षत्रिय
7. ययाति	क्षत्रिय	शर्मिष्ठा	आसुरी	द्रुह्य	क्षत्रिय
8. जरत्कारु	ब्राह्मण	जरत्कारी	नाग	आस्तीक	ब्राह्मण

1. मनु. 9.159-60: 162-63: पृ., 359-60

मनु क्या करते हैं? संतान के वर्ण-निर्णय संबंधी विधान में मनु के परिवर्तन क्रांतिकारी हैं। मनु[1] ने निम्नांकित नियम निर्धारित किए:

5. "सभी वर्णों में वे संतान, जिनका जन्म सहज विवाहित पत्नियों से होता है जो उसी वर्ण की कन्या रही हों, वे उसी वर्ण (जो पिता का है) के माने जाएंगे।"

6. "द्विज द्वारा उस पत्नी से उत्पन्न संतान, जो एक वर्ण नीचे की हो, वे भी (अपने पिता के समान) वर्ण में गिने जाएंगे भले ही माता के दोष उनमें रहे हों।"

14. द्विजों के वे पुत्र, जो एक वर्ण नीचे की पत्नियों से उत्पन्न होंगे, जिनको उसी क्रम में गिना गया है, मातृ दोष के कारण अनन्तर (एक वर्ण नीचे) समझे जायेंगे।"

41. "(आर्यों से) उत्पन्न छह पुत्र, जो समान अथवा एक वर्ण नीचे की पत्नियों से जन्मेंगे, उनके कर्त्तव्य द्विजों के समान होंगे परन्तु जिनका जन्म नियमोल्लंघन से होता होगा, कर्त्तव्य के संबंध में वे शूद्रवत होंगे।"

मनु ने निम्नांकित भिन्नताएं नियत की हैं:

1. जहां पिता और माता समान वर्ण के हों।

2. जहां माता का वर्ण पिता से एक वर्ण निम्न हो जैसे ब्राह्मण पिता, क्षत्रिय माता क्षत्रिय पिता, वैश्य माता और वैश्य पिता और शूद्र माता।

3. जहां माता का वर्ण पिता से एकाधिक वर्ण नीचे हो जैसे ब्राह्मण पिता और वैश्य अथवा शूद्र माता, और क्षत्रिय पिता तथा शूद्र माता।

पहली श्रेणी में संतान का वर्ण पिता का वर्ण होगा। दूसरी श्रेणी में भी पिता का वर्ण ही मिलेगा। परन्तु तीसरी श्रेणी में उन्हें पितृ नहीं मिलेगा। मनु ने यह स्पष्ट नहीं किया है कि पिता का वर्ण नहीं मिलेगा तो फिर कौन सा वर्ण मिलेगा? परन्तु मनु के सभी भाष्यकार मेधातिथि, कुल्लुक भट्ट, नारद और नंदपण्डित कहते हैं यह स्पष्ट है कि ऐसी संतानों को माता का वर्ण दिया जाएगा। संक्षेप में कहा जा सकता है कि मनु ने पितृवर्ण को मातृवर्ण में परिवर्तित कर दिया।

यह एक महान क्रांतिकारी परिवर्तन है। यह एक दुखद स्थिति है कि जिसे बहुत कम लोग समझ पाए हैं कि प्रचलित विवाह पद्धतियां, पुत्रों की श्रेणियां, अनुलोम विवाह और पितृ वर्ण के सिद्धांत का औचित्य, वर्ण व्यवस्था जबकि ब्राह्मणों की इच्छा थी कि वह बंद पद्धति रहे एक मुक्त व्यवस्था बनी रही। कहा जाए तो वर्ण-व्यवस्था में अनेक छिद्र थे। वर्ण-व्यवस्था से विवाह पद्धतियों का कोई संबंध नहीं था। राक्षस और पिशाच विवाहों में, विवाह की हर संभावनाओं के परिपेक्ष्य में पुरुष निम्न वर्ण के थे और स्त्रियां उच्च वर्ण से संबंधित थीं।

पुत्रत्व विधान में भी अत्यंत दोष थे क्योंकि शूद्रों के पुत्र ब्राह्मण बन सकते थे। उदाहरणार्थ, गुह्यज, सहोदज, कानीन। कौन कहता है कि ये शूद्र से अथवा ब्राह्मण से क्षत्रिय या वैश्य से उत्पन्न हुए हैं? ये सन्देह अनुलोम प्रथा से संभव थे, जिसमें यह कानूनी मान्यता थी जो पितृवर्ण प्रथा से संबद्ध थी, जिसके अनुसार यह गुंजायश थी कि निम्न वर्ण के व्यक्ति उच्च वर्ण में आ जाएं। कोई शूद्र कभी ब्राह्मण, क्षत्रिय अथवा

1. मनु, अध्याय 10, श्लोक 5, 6, 14 और 41 पृ. 402, 403, 404 और 412

वैश्य नहीं बन सकता था किन्तु किसी शूद्र स्त्री की संतान वैश्य बन सकती थी यदि वैश्य का उससे विवाह हो जाता। इसी प्रकार वह संतान क्षत्रिय और ब्राह्मण भी बन सकती थी यदि उसकी शादी क्षत्रिय या ब्राह्मण से संपन्न हो जाती। निम्न श्रेणी का उच्च श्रेणी में मिश्रण या संमिलन एक सकारात्मक और विश्वसनीय प्रक्रिया थी चाहे वह अप्रत्यक्ष माध्यम से ही क्यों न हो? यह प्राचीन व्यवस्था का परिणाम था। इसके दूसरे परिणाम थे। यह थे कि किसी वर्ण के व्यक्ति मिश्रित और समुच्चय समुदाय बन जाते थे। ब्राह्मण वर्ग में ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र समुदाय की स्त्रियों से उत्पन्न संतानें हो सकती थीं और उन्हें ब्राह्मणों को प्राप्य अधिकार प्राप्त थे। क्षत्रिय समुदाय में क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र स्त्रियों से उत्पन्न संतानें हो सकती थीं और उन्हें क्षत्रियों के अधिकार प्राप्त होते थे। इसी प्रकार वैश्य समुदाय में वैश्य तथा शूद्र स्त्रियों से उत्पन्न संतानें वैश्य समझी जाती थीं और उन्हें वही अधिकार प्राप्त थे।

मनु ने जो परिवर्तन किए, वह हिन्दुओं के मौलिक आदर्शों के विरुद्ध थे। पहली बात तो यह है कि यह हिन्दुओं के क्षेत्र-क्षेत्रज विधान का ही विरोध करता है। इस विधान के अनुसार, जो संतान सम्पत्ति अधिकार से संबंधित है, कहा गया है कि संतान का अधिकारी मात्र औपचारिक पति है वास्तविक पिता नहीं। वह इस बात को ऐसे कहते हैं[1]:

इस प्रकार वे पुरुष, जिनका किसी स्त्री से वैवाहिक संबंध नहीं है, परन्तु किसी ऐसी स्त्री के गर्भ में उनका बीज है जो किसी अन्य की पत्नी है तो संतान पर पति का अधिकार होगा। परन्तु वह उससे कोई लाभ नहीं उठा सकता। जब तक क्षेत्र के स्वामी और बीज डालने वाले के बीच कोई सहमति न हो। स्पष्ट रूप से जमीन का स्वामी पिता है, क्योंकि भूमि का महत्व बीज से अधिक है।

यही कारण है कि बारह प्रकार के पुत्रों का अधिकार नियत किया गया।

यह परिवर्तन निर्धारित नियम के विरुद्ध था। हिंदू परिवार रोम की भांति पितृ सत्तात्मक हैं। दोनों समाजों में पिता को परिवार के सदस्यों पर अधिकार है। मनु इससे अवगत थे और उसकी अधिक दशाओं को स्वीकार कर लिया। हिंदू पिता के अधि कारों की परिभाषा करते हुए मनु कहते हैं :

तीन व्यक्ति, पत्नी, पुत्र और दास सामान्यतः किसी सम्पत्ति के स्वामी नहीं हो सकते। जो सम्पत्ति उन्होंने अर्जित की हो, उसका भी स्वामी वही है जिससे वे सम्बद्ध हैं।

वह परिवार के प्रमुख की है-अर्थात् पिता की। यह नियम भी था कि पिता पुत्र द्वारा अर्जित सम्पत्ति का स्वामी है। पितृत्व सत्तात्मक विधान में परिवर्तन का अर्थ है पिता की निश्चित हानि।

मनु ने पितृ-सावर्ण्य को मातृ-सावर्ण्य में क्यों परिवर्तित किया?

---

1. मयने - *हिन्दू ला,* पृ. 83

बीसवीं पहेली

कलि वर्ज्य अथवा पाप को पापकर्म घोषित किए बिना स्थगन की ब्राह्मणवादी कला

ब्राह्मणों की कलिवर्ज्य नामक हठधर्मी बहुत कम लोगों को ज्ञात है। कलियुग को अन्य ब्राह्मणवादी हठधर्म से इसको भ्रमित नहीं करना चाहिए।

कलिवर्ज्य की हठधर्मी में कुछ प्रथाओं और व्यवहारों को गिनाया गया है जो अन्य युगों में व्यावहारिक थीं लेकिन कलियुग में उनके अनुपालन पर पाबंदी है। इन अनुदेशों के प्रसंग विभिन्न पुराणों में यत्र-तत्र उपलब्ध हैं, परन्तु *आदित्य पुराण* में उन्हें संहिताबद्ध[1] करके संग्रहीत कर दिया गया है। कलिवर्ज्य प्रथाएं निम्नांकित हैं:

1. विधवा से पुत्र उत्पन्न करने हेतु पति के भाई की नियुक्ति।
2. किसी (विवाहित) स्त्री का पुनर्विवाह (उसका जिसका विवाह पक्का नहीं हुआ) (अथवा उसका जिसका विवाह पक्का हो गया था) दूसरे पति के साथ प्रथम पति की मृत्यु के उपरांत।
3. तीनों द्विज वर्णों के बीच अन्य वर्णों की कन्याओं से विवाह।
4. आततायी ब्राह्मण का सीधे युद्ध में भी वध।
5. किसी द्विज से व्यवहार (उसके साथ खान-पान जैसा व्यवहार) जो समुद्र यात्रा पर जाता है, चाहे उसने प्रायश्चित भी क्यों न कर लिया हो?
6. सात्र का उपनयन कराना।
7. जल हेतु कमण्डल लेकर चलना।
8. लम्बी यात्रा पर जाना।

---

1. मैंने उन्हें महामहोपाध्याय काणे के पेपर से लिया है।

यह नौ पृष्ठों का टंकित आलेख है। लेखक ने अनेक संशोधन किए हैं। कलिवर्ज्य पर सभी टिप्पणियां इस भाग के परिशिष्ट में हैं। – संपादक

9. गोमेध में गाय की बलि।
10. श्रौतमणि यज्ञ तक में मद्यपान।
11. और 12 अग्निहोत्र के पश्चात् बचे हुए प्रसाद को ग्रहण करने हेतु उसमें प्रयुक्त कलछी को चाटना और बाद में अग्निहोत्र में उस कलछी का प्रयोग करना।
13. शास्त्रानुसार आश्रम जीवन यापन में प्रवेश।
14. (जन्म और मृत्यु होने पर) व्यवहार और वैदिक ज्ञान के आधार पर अशुचिता की अवधि घटाना।
15. प्रायश्चित स्वरूप मौत का विधान ब्राह्मणों के लिए।
16. नैतिक पाप (स्वर्ण) चोरी को छोड़कर और पापियों (महापातकों) के साथ संपर्क होने पर (गुप्त) प्रायश्चित।
17. वर, अतिथि और पितरों को मंत्रों के साथ जानवरों के मांस की भेंट।
18. औरस तथा दत्तक पुत्र के अतिरिक्त अन्य को पुत्रों के रूप में स्वीकार करना।
19. उन व्यक्तियों के साथ प्रायश्चित के उपरांत भी संपर्क, जिन्होंने उच्च जाति की महिला के साथ संभोग किया है।
20. यदि किसी वृद्ध अथवा सम्मानित व्यक्ति की पत्नी ने परपुरुष से संभोग किया है और उसके लिए वह प्रताड़ित की गई है, उसका परित्याग।
21. किसी एक व्यक्ति के लिए दूसरे का वध।
22. झूठन छोड़ना।
23. जीवन के लिए (पैसा लेकर) किसी देवता विशेष की मूर्ति की पूजा का संकल्प।
24. मृत्यु के उपरांत अग्निक्रिया के अधीन फूल चुनने के पश्चात् उन व्यक्तियों का स्पर्श।
25. ब्राह्मण द्वारा पशु की वास्तविक बलि।
26. ब्राह्मण द्वारा सोम पादप का विक्रय।
27. छह बार का भोजन अथवा छ समय तक भूखा रहने के उपरांत भी ब्राह्मण का शूद्र से भी भोजन ग्रहण करना।

28. ब्राह्मण गृहस्थ का अपने शूद्र वर्ण के दास के हाथ से बना भोजन ग्रहण करना, गोशाला में और उन व्यक्तियों के हाथ का भोजन करना जो बटाई पर उसकी खेती करते हैं।
29. बहुत लम्बी तीर्थ यात्रा पर जाना।
30. गुरु पत्नी के साथ वैसा व्यवहार जैसा स्मृतियों में गुरु के लिए निर्धारित है।
31. ब्राह्मण द्वारा विपरीत परिस्थितियों में गलत कार्यों द्वारा जीवनयापन के लिए कल के लिए भोजन की परवाह न करना।
32. जातकर्म होम के समय ब्राह्मण द्वारा अरनी (अग्नि उत्पन्न करने के लिए दो लकड़ियों के खण्ड) स्वीकार करना जिसके अनुसार शिशु के जातकर्म से उसके पाणिग्रहण तक के संस्कार कराने का कार्यक्रम हो।
33. ब्राह्मण द्वारा सतत यात्रा।
34. बांस निर्मित फूंकनी के बिना आग में मुंह से फूंक मारना।
35. शास्त्रों में वर्णित प्रायश्चित के पश्चात् भी किसी ऐसी स्त्री को जाति में सम्मिलित होने की स्वीकृति देना जो बलात्कार से कलंकित हो चुकी हो।
36. संन्यासी द्वारा सभी वर्णों (शूद्रों सहित) से भिक्षा ग्रहण करना।
37. जमीन से निकाने जाने वाले जल का पान करने हेतु दस दिन तक प्रतीक्षा।
38. अध्यापक को दीक्षांत पर (मांगने पर) शास्त्रानुसार दक्षिणा।
39. ब्राह्मण और अन्यों के लिए शूद्रों से भोजन बनवाना।
40. वृद्धों द्वारा चट्टान से अथवा आग में कूदकर आत्महत्या।
41. झूठे पानी का सम्मानित व्यक्तियों द्वारा आचमन, चाहे वह गाय का ही झूठा क्यों न हो?
42. पिता और पुत्र के मध्य झगड़े में साक्षी को दंडित करना।
43. संन्यासी जहां रात हो जाए, वहीं शयन करे।

इस कलिवर्ज्य संहिता के विषय में यह आश्चर्य की बात है कि इसके महत्व को पूर्ण समझा नहीं गया। इसे उन वर्जित कार्यों की सूचीमात्र समझा गया जो कलियुग में निषिद्ध हैं। परन्तु वर्जित कार्यों की सूची के पीछे और कुछ भी है। इसमें संदेह नहीं है कि कलिवर्ज्य संहिता में अनेक कार्यों के लिए वर्णन है। परन्तु प्रश्न यह

है कि क्या इन कार्यों को अनैतिक माना गया है, निंदित पापकर्म अथवा समाज में हानिकर? इसका उत्तर है नहीं। प्रश्न यह है कि यदि वर्जित है तो निंदित क्यों नहीं है? यही कलिवर्ज्य संहिता की पहेली है। बिना निंदित बताए प्राचीनकाल के इन व्यवहारों को वर्जित घोषित करने की प्रणाली प्राचीन प्रणाली के विपरीत है। एक उदाहरण लेते हैं। आपस्तम्ब धर्म सूत्र में सम्पूर्ण सम्पत्ति ज्येष्ठ पुत्र को ही दिया जाना वर्जित है। परन्तु वह इसकी निंदा करता है। ब्राह्मणों ने यह प्रणाली क्यों अपनाई कि वर्जित है किन्तु निंदित नहीं। इस परित्याग के पीछे कोई विशेष कारण होना चाहिए। वह कारण क्या है?

परिशिष्ट-I

वर्णाश्रम धर्म की पहेली

वर्ण धर्म और आश्रम धर्म के दो मताग्रहों की ओर पहले ही ध्यान दिलाया जा चुका है, जिन दोनों से मिलकर वर्णाश्रम धर्म बनता है और जो हिंदुत्व का मूल आधार है। इन अजीब सिद्धांतों पर प्राचीन लेखकों के क्या विचार हैं? मैं उन पर प्रकाश डालने से नहीं रह सकता।

I

पहले वर्ण धर्म से प्रारंभ करते हैं। यह उचित होगा कि वेदों में प्रकट किए विचारों को सर्वप्रथम एक स्थान पर एकत्रित किया जाए।

इस विषय पर *ऋग्वेद* के दसवें मंडल में 90 वें मंत्र को देखना है। वह इस प्रकार है :

1. "पुरुष के एक सहस्र शीश हैं, एक सहस्र चक्षु, एक सहस्र चरण। वह सर्वत्र परिपूर्ण व्यापक है। उसने दस अंगुलियों से हर ओर से समस्त भूमंडल को आच्छादित कर रखा है।" 2. "पुरुष स्वयं सम्पूर्ण (ब्रह्मांड) है, जो वर्तमान है, जो भावी है। वह अविनाशी स्वामी है। भोजन से उसका विस्तार होता है। 3. उसकी समानता ऐसी है और पुरुष सर्वश्रेष्ठ है। सारी सृष्टि उसका क्षेत्र है और उसका तीन चौथाई अविनाशी अंश अंतरिक्ष में है। 4. पुरुष का तीन चौथाई अंश उर्ध्व है, उसका एक चौथाई अंश यहां पुनः विद्यमान है। फिर उसका सर्वत्र विलय हो गया। उन सभी पदार्थों में जो भक्षण करती हैं और भक्षण नहीं करती। 5. उससे विराज उत्पन्न हुआ और विराज से पुरुष। जन्म लेते ही वह धरती से आगे बढ़ गया आगे भी और पीछे भी। 6. जब देवों ने पुरुष की आहुति से यज्ञ किया तो वसंत उसका घी था ग्रीष्म लकड़ी और शरद समिधा। 7. यह बलि पुरुष जो सर्वप्रथम जन्मा उन्होंने बलि घास पर जला दिया।

---

1. यह पहेली 16-17 का मिला-जुला परिशिष्ट है जिसका शीर्षक है "वर्णाश्रम धर्म"। इसको मूल अनुक्रमणिका में सम्मिलित नहीं किया गया है, इसलिए इसे परिशिष्ट में रखा गया है। यह कहना कठिन है, कौन-सा पाठ बाद का है। दोनों पाठों में उद्धरण पहले नहीं गये हैं जबकि कई भाष्य बदले गए हैं। यह 55 पृष्ठों का आलेख है। इनमें लेखक के संशोधन नहीं हैं। -संपादक

उसके साथी देवताओं साध्यों और ऋषियों ने आहुति दी। 8. इस ब्रह्मांड यज्ञ से दही और मक्खन उपलब्ध हुए। इससे वे नभचर और थलचर बने जो वन्य और पालतू हैं। 9.ब्रह्मांड यज्ञ से *ऋग्वेद* और *सामवेद* की ऋचाएं निकलीं, छंद और यजुस निकले। 10. उससे अश्व जन्में और दोनों जबड़ों वाले सभी पशु जन्मे, मवेशी जन्मे और उसी से अजा मेष जन्मे। जब (देवों ने) पुरुष को कितने भागों में काटकर विभाजित कर दिया। उसका मुख्य क्या था। उसकी कितनी भुजाएं थीं। (कौन से दो तत्त्व) उसकी जंघाएं और चरण बताई गई हैं। 12. ब्राह्मण उसका मुख था, राजन्य उसकी भुजाएं बनी, जो वैश्य (बना) वह उसकी जंघाएं थीं, शूद्र उसके पैरों से उत्पन्न हुए। 13. उसकी आत्मा (मानस) से चन्द्रमा, उसके चक्षु से सूर्य, उसके मुख से इन्द्र और अग्नि, उसके श्वास से वायु बनी। 14. उसकी नाभि से मारुत बनी, उसके शीर्ष से आकाश बना, उसके चरणों से धरती, उसके कर्ण से दिशाएं और इस प्रकार विश्व बना। 15. जब देवता यज्ञ कर रहे थे, उन्होंने पुरुष को एक बलि-जीव के रूप में बांधा। इसके लिए सात डंडिया अग्नि के चारों ओर थी और तीन बार लकड़ियों की सात टुकड़ों की समिधा चढ़ाई गई। 16. इस यज्ञ में देवताओं ने आहुति दी। यह प्रथम अनुष्ठान था। इन शक्तियों ने आकाश से कहा पूर्व साध्यगण, कहां है?"

इस मंत्र वृंद का सर्वविदित नाम पुरुष सूक्त है और यह जाति और वर्ण व्यवस्था का शास्त्रीय सिद्धांत माना जाता है।

सर्वप्रथम यह जांच करनी है कि अन्य किस वेद में वर्ण-व्यवस्था की उत्पत्ति *ऋग्वेद* के पुरुष सूक्त की भांति मानी गयी है? अलग-अलग वेदों के मत का अनुशीलन करने पर आश्चर्यजनक परिणाम सामने आते हैं :

सामवेद की ऋचाओं में पुरुष सूक्त सम्मिलित नहीं किया गया है और न उसमें वर्ण-व्यवस्था की कोई व्याख्या दी गयी है।

यजुर्वेद में इस संबंध में अत्यधिक मतातर है। अब हम श्वेत यजुर्वेद का प्रश्न लेते हैं और कृष्ण यजुर्वेद की अपेक्षा अलग से अध्ययन करते हैं तो दोनों की तुलना हम तीन संहिताओं के आधार पर करते हैं। इसकी तीन संहिताओं, कठ संहिता और मैत्रायणी संहिता में *ऋग्वेद* के पुरुष सूक्त का कोई उल्लेख नहीं है और न उसने वर्ण-व्यवस्था की कोई अन्य व्याख्या दी है। मात्र वाजसनेयी संहिता ही *यजुर्वेद* की ऐसी संहिता है, जिसके मंत्रों में बिना किसी अन्तर के पुरुष सूक्त यथावत् सम्मिलित किया गया है परन्तु वाजसनेयी संहिता में एक नई और मौलिक व्याख्या दी गई है, जो पुरुष सूक्त से नितांत भिन्न है। पुरुष सूक्त में निम्नांकित[1] है :

---

1. म्यूर, *संस्कृत टैक्स्ट,* खंड 1, पृ.18

"उसने एक के साथ स्तुति की। प्राणी बने। प्रजापति राजा थे। उन्होंने तीन के साथ स्तुति की। ब्राह्मण की रचना हुई। ब्राह्मणस्पति राजा थे। उन्होंने पांच के साथ स्तुति की, विद्यमान पदार्थ उत्पन्न हुए। भूतानामपति राजा थे। उन्होंने सात के साथ स्तुति की, सप्तऋषि उत्पन्न हुए। धात्री राजा थे। उन्होंने नौ के साथ स्तुति की, पितृगण उत्पन्न हुए। अदिति राजा थे। उन्होंने ग्यारह के साथ स्तुति की, ऋतुएं उत्पन्न हुईं। आर्तव राजा थे। उन्होंने तेरह के साथ स्तुति की, मास उत्पन्न हुए। वर्ष राजा था। उन्होंने पंद्रह के साथ स्तुति की, क्षत्रिय उत्पन्न हुआ। इन्द्र राजा थे। उन्होंने सत्रह के साथ स्तुति की, पशु उत्पन्न हुए। बृहस्पति राजा थे। उन्होंने उन्नीस के साथ स्तुति की, शूद्र और आर्य (वैश्य) उत्पन्न हुए। दिवस और रात्रि शासक थे। उन्होंने इक्कीस के साथ स्तुति की, अविभाजित सूंड धारी पशु उत्पन्न हुए। वरुण राजा थे। उन्होंने तेईस के साथ स्तुति की, लघु पशु उत्पन्न हुए। पूशान राजा थे। उन्होंने पच्चीस के साथ स्तुति की, वन्य जीव उत्पन्न हुए। वायु राजा थे (ऋ.वे. 10.90.8); उन्होंने सत्ताईस के साथ स्तुति की, धरती और स्वर्ग विलग हुए। वसु, रुद्र और आदित्य उनसे विलग हो गए वे राजा थे। उन्होंने उन्तीस के साथ स्तुति की, वृक्ष उत्पन्न हुए। सोम राजा थे। उन्होंने इक्तीस के साथ स्तुति की, प्राणी उत्पन्न हुए। मास के पक्ष राजा थे। उन्होंने इक्तीस के साथ स्तुति की, विद्यमान पदार्थ शांत हो गए, प्रजापति परमेष्ठी राजा थे।"

अब कृष्ण यजुर्वेद पर आते हैं। इसमें केवल एक संहिता उपलब्ध है। यह *तैत्तिरीय संहिता* कहलाती है। इसमें दो व्याख्याएं हैं। प्रथम व्याख्या[2] यह है जो वाजसनेयी संहिता में मूल रूप में दी गई है। दूसरी व्याख्या इसकी अपनी है और यह वाजसनेयी संहिता में उल्लिखित नहीं है। यह इस प्रकार है :

"वह वृात्य भावावेश से भर उठा तब राजन्य प्रकट हुआ।"

"जिसके घर यह जाने वाला वृात्य अतिथि रूप में आता है, उसे वह (राजा) स्वयं से श्रेष्ठ जानकर उसका सम्मान करे। ऐसा करके वह राजपद अथवा अपनी सत्ता पर आघात नहीं करता। उससे ब्राह्मण प्रकट हुआ और क्षत्रिय भी। उन्होंने कहा हम किसमें प्रवेश करें आदि।"

महत्वपूर्ण बात यह है कि वाजसनेयी संहिता में *ऋग्वेद* का पुरुष सूक्त सन्निहित है जबकि *तैत्तिरीय संहिता* में इसका उल्लेख हटा दिया गया है।

---

1. खंड 4 देखें, प्रपाठक 3, श्लोक 10
2. वही 1, पृ. 22

अथर्ववेद में पुरुष सूक्त है किन्तु मंत्रों का क्रम *ऋग्वेद* से भिन्न है। बल्कि *यजुर्वेद* की वाजसनेयी संहिता और *तैत्तिरीय संहिता* की भांति *अथर्ववेद* पुरुष सूक्त से समतुल्य नहीं है। इसकी दूसरी व्याख्या है। उतनी पूर्ण और सर्वमान्य नहीं, जैसा पुरुष सूक्त है, किन्तु इसकी अपनी विशेषता है[1]:

"सर्वप्रथम ब्राह्मण उत्पन्न हुआ। उसके दस सिर और दस मुख थे। उसने सर्वप्रथम सोम पान किया, उसने शिव को प्रभावहीन किया।

देवता राजन्य से भयभीत थे, जो गर्भ में था। जब वह गर्भ में था, उन्होंने उसे बंधन युक्त कर दिया। परिणामस्वरूप यह राजन्य बंधनयुक्त उत्पन्न हुआ। यदि वह अजन्मा निर्बंध होता तो वह अपने शत्रुओं का वध करता। राजन्य, कोई अन्य, जो चाहे कि वह बंधन मुक्त उत्पन्न हो और अपने शत्रुओं का हनन करता रहे तो वह ऐन्द्र-ब्राह्स्पत्य आहुतियां दे। राजन्य के लक्षण इन्द्र जैसे हैं और ब्राह्मण बृहस्पति है। ब्राह्मण के माध्यम से ही कोई राजन्य को बंधनमुक्त कर सकता है। स्वर्णबंध, एक उपहार, स्पष्ट रूप से उसे बेड़ियों से मुक्त करता है।"

मात्र पुरुष सूक्त ही चार वर्णों की उत्पत्ति की व्याख्या ही नहीं करता बल्कि वर्ण-व्यवस्था की उत्पत्ति की ओर इंगित करता है जो वेदों में पायी जाती है। एक अन्य व्याख्या उन व्यक्तियों का उल्लेख करती है जो मनु की संतति हैं[2]: उनका निम्नांकित उद्धरण में उल्लेख है:

"प्रार्थनाएं और मंत्र पहले इन्द्र की उपासना में उस उत्सव में संकलित हुए जिसे अर्थवन, पिता मनु और दधीचि ने सुशोभित किया।"

"हे रुद्र! यज्ञ से संकटमोचन पिता मनु ने जो सम्पदा ग्रहण की, तेरे निर्देश में हमें वही सब प्राप्त हो।"

"जो प्राचीन मित्र दैवी शक्ति से सम्पन्न था। पिता मनु ने उसके प्रत देवों की सफलता के प्रवेश द्वार की भांति मंत्र रचे थे।"

"यज्ञ मुन हैं हमारे पालक पिता।"

"हे देवताओ, तुमने हमें उत्पन्न किया, पोषित किया और हमारे प्रति अनुनय किया, हमें पिता मनु के मार्ग से विचलित न करें।"

"वह (अग्नि) जो मनु की संतति के बीच देवताओं के उद्‌बोधक स्वरूप निवास करता है, वह इनका भी स्वामी है।"

---

1. *म्यूर, संस्कृत टैक्स्ट,* खंड 1, पृ. 21-2
2. वही, पृ. 162-165

"अग्नि, देवताओं और मनु की संतान सहित मंत्रोच्चार से विविध यज्ञ कर रहे हैं।"

"तुम देव, बज और ऋभुगणों जैसे देवों को प्रसन्न करते हो, मानुष की संतति के बीच शुभ दिन देवताओं के मार्ग से हमारे यज्ञ में आओ।"

"मानव गण ने यज्ञ में अग्नि उद्‌बोधक की स्तुति की।"

"लोक स्वामी अग्नि ने जब भी कृतज्ञ मानव के आवास को प्रदीप्त कया, उसने राक्षस गण को मार भगाया।"

अब हम ब्राह्मण साहित्य पर आएं और देखें कि इस प्रश्न पर वे क्या कहते हैं?

शतपथ ब्राह्मण की व्याख्या इस प्रकार है[1]:

"प्रजापति ने "भू" जपते हुए यह पृथ्वी बनाई, "भुवः" के साथ वायु बनाई, "स्वाहा" के साथ आकाश बनाया। ब्रह्मांड का इस संसार से सह-अस्तित्व है। अग्नि सर्वत्र व्याप्त है। "भू" कहकर प्रजापति ने ब्राह्मण उत्पन्न कया "भुवः" से क्षत्रिय, "स्वाहा" से विष बनाया अग्नि सर्वत्र व्याप्त है। "भू" कहकर प्रजापति ने स्वयं को उत्पन्न किया, भुवः कहकर संतति रची "स्वाहा" से पशु उत्पन्न किए। यह शिव स्व, संतति और पशु है। अग्नि सर्वत्र व्याप्त है।"

इसी *शतपथ ब्राह्मण* की ही एक अन्य व्याख्या है। यह निम्नांकित है :

"ब्रह्मा (यहां व्याख्याकार के अनुसार वह अग्नि स्वरूप है और ब्राह्मण वर्ग का रूप है) पहले यह एक मात्र (ब्रह्मांड) थे। एक रहते उनकी वृद्धि नहीं हुई। उन्होंने शक्ति से एक श्रेष्ठ क्षेत्र उत्पन्न किया अर्थात् देवताओं में वे जिनमें शक्ति है (क्षत्राणी) इन्द्र, वरुण, सोम, रुद्र, पारजन्य, यम, मृत्यु, ईशान। इस प्रकार क्षात्र से श्रेष्ठ कोई नहीं। इसलिए ब्राह्मण राजसूय यज्ञ में क्षत्रिय से नीचे बैठते हैं। वह क्षत्रिय की गरिमा स्वीकार करता है। ब्रह्मा, क्षत्रिय का उद्‌गम है। इस प्रकार यद्यपि राजा की श्रेष्ठता है, अंत में वह उद्‌गम हेतु ब्राह्मण के आश्रय में जाता है। वह अति दयनीय बन जाता है। उसी के समान जिसकी श्रेष्ठता आहत होती है। 24. उसकी वृद्धि नहीं हुई। उसने विष उत्पन्न किया। देवताओं की इस श्रेणी में वसु, रुद्र, आदित्य, विश्वदेव, मरुत आते हैं। 25. उसकी वृद्धि नहीं हुई उसने शूद्र वर्ण उत्पन्न किया। यह पृथ्वी पूशान है। सो वह सभी का पोषण करती है। 26. उसकी वृद्धि नहीं हुई उसने शक्ति से एक वलक्षण रूप उत्पन्न किया न्याय (धर्म) यह शासक है (क्षात्र) अर्थात् न्याय। इस प्रकार न्याय से श्रेष्ठ कुछ नहीं। इसलिए निर्बल बलवान से त्राण को न्याय मांगता है जैसे एक राजा से। यह न्याय सत्य है।

---

1. *म्यूर, द्वारा उद्धृत, संस्कृत टैक्स्ट,* खंड 1, पृ. 17
2. *संस्कृत टैक्स्ट,* खंड 1, पृ. 20

परिणामस्वरूप ऐसे व्यक्ति के विषय में वे कहते हैं: "यह सत्य बोलता है, क्योंकि उसमें दोनों गुण हैं।" 27. यह ब्रह्म क्षात्र, विज और शूद्र हैं।

"अग्नि के माध्यम से देवताओं में वह ब्रह्मा बन जाता है, मनुष्यों में ब्राह्मण, (दैवी) क्षत्रिय के माध्यम से (मनुष्य) एक क्षत्रिय, दैवी वैश्य के माध्यम से एक (मनुष्य) वैश्य। दैवी शूद्र के माध्यम से एक (मनुष्य) शूद्र बनता है। अब वह देवों में अग्नि और मनुष्यों में ब्राह्मण है।"

तैत्तिरीय ब्राह्मण में निम्नांकित व्याख्याएं हैं। प्रथम इस प्रकार है[1]:

"यह समस्त (ब्रह्मांड) ब्रह्मा द्वारा रचित है। मनुष्य कहते हैं कि वैश्य ऋक् ऋचाओं से बना है। वे कहते हैं, *यजुर्वेद* के गर्भ से क्षत्रिय उत्पन्न हुआ है। *सामवेद* से ब्राह्मण प्रकट हुआ। यह शब्द प्राचीन है घोषित प्राचीन।"

द्वितीय संदर्भ में मात्र दो वर्ण हैं– केवल ब्राह्मण और शूद्र उसके अनुसार[2]:

"ब्राह्मण वर्ण देवों से प्रकट हुआ, शूद्र असुरों से।"

शूद्रों की उत्पत्ति के सम्बन्ध में तीसरी व्याख्या निम्न प्रकार है[3]:

"वह शुष्क भोजन से स्वेच्छा से दुग्ध की आहुति दे। शूद्र दुग्ध की आहुत न दे, क्योंकि शूद्र शून्य से जन्मा है। वे कहते हैं, जब शूद्र दूध चढ़ाता है, वह आहुति नहीं है। शूद्र अग्निहोत्र में दूध से आहुति न दे क्योंकि वे इसे शुद्ध नहीं करते। जब उसे छान लिया जाय, तब यह आहुति है।''

अगली बात यह देखनी है कि वर्ण-व्यवस्था के सम्बन्ध में स्मृतयों की क्या व्याख्या है, उसका ज्ञान आवश्यक है। मनु ने अपनी स्मृति[4] में इस संबंध में क्या कहा है:

"उसने (स्वयंभू) इच्छा करके और अपनी देह से विभिन्न जीवों की रचना के मनोरथ से पहले सागर की सृष्टि की और उसमें एक बीज छोड़ दिया।

9. बीज सहस्रों सूर्यो के समान प्रकाश वाला, सुवर्ण के समान शुद्ध अंडज हो गया। उसमें सम्पूर्ण लोकों की सृष्टि करने वाले बह्मा उत्पन्न हुए। 10. जल को "नारा:" कहते हैं क्योंकि वह नर की संतान हैं। वह "नार" परमात्मा का प्रथम निवासस्थान है, इस कारण परमात्मा "नारायण" कहे जाते हैं। 11. वह जो अत्यंत प्रसिद्ध सबका कारण है, नित्य है, सत् तथा असत् स्वरूप है, उससे उत्पन्न पुरुष लोक में ब्रह्मा कहा जाता है। 12. ब्रह्मा ने उस अण्डे में एक वर्ष निवास कर अपने ध्यान के द्वारा उस अंडे के दो टुकड़े कर दिए। 13. "कि विश्व में प्राण प्रतिष्ठा हो, उन्होंने ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्रों की रचना की जो उनके मुख, भुजाओं,

1. म्यूर, खंड 1, पृ. 17
2. और 3. म्यूर, *संस्कृत टैक्टस,* खंड 1, पृ. 21
4. वही, पृ. 36-37

जंघाओं और चरणों से उत्पन्न हुए। 32. वे ब्रह्मा अपने शरीर के दो भाग करके आधे भाग से पुरुष तथा आधे भाग से स्त्री हो गये और उसी स्त्री में "विराट" पुरुष की सृष्टि की। 33. हे श्रेष्ठ द्विजगणो! उस "विराज" पुरुष ने तपस्या करके स्वयं की सृष्टि की, इस लोक की सृष्टि की।" 34. प्रजापतियों की सृष्टि करने को इच्छुक मैंने अत्यंत कठिन तपस्या कर पहले इस प्रजापतियों की सृष्टि की। 35. मरीचि, अत्रि, अंगिरस, पुलस्त्य, पुलह, क्रतु, प्रचेता, वसिष्ठ, भृगु और नारद। 36. महातेजस्वी इन दस प्रजापतियों ने सात अन्य मनुओं, ब्रह्मा से पहले नहीं उत्पन्न किये गये देवों, उनके वास्रस्थानों तथा अपरिमित तेजस्वी महर्षियों की सृष्टि की। 37. यज्ञ, राक्षस, पिशाच, गंधर्व, असुर, नाग, सर्प, गरुड़, पितृगण। 38. तथा बिजली, वज्र, बादल, रोहित, इन्द्रधनुष, उल्का, निर्घात, धूमकेतु और अनेक प्रकार के ऊंची-नीची छोटी-बड़ी ताराओं, ध्रुव तथा अगस्त्य आदि। 39. किन्नर, वानर अनेक प्रकार की मछलियां, पक्षी, पशु, मृग, सिंह, व्याघ्र आदि और दोनों ओर दांत वाले पशुओं। 40. कृमि, बहुत छोटे कीड़े, कीट-पतंग, जूं, मक्खी, खटमल, सब प्रकार के दंश तथा मच्छर और अनेक प्रकार के जड़ पदार्थों की सृष्टि की। 41. इस प्रकार इन महात्माओं ने मेरे आदेश से तपोबल द्वारा इन स्थावर तथा जंगम प्राणियों की सृष्टि उनके कर्म के अनुसार की।"

मनु ने अपनी 'स्मृति' में उन आधारभूत कारणों के विषय में एक अन्य मत प्रकट किया है जिनके परिणामस्वरूप मनुष्यों को चार श्रेणियों में विभाजित किया गया[1]:

"अब मैं संक्षेप में बताता हूं कि किस क्रम से अपने गुणानुसार आत्माएं अपनी स्थिति को पहुंचती हैं। 40. सत्व-सम्पन्न आत्माएं देवता बन जाती हैं, रजोगुण युक्त मनुष्य बनती हैं, जबकि तमोगुण वाली वन्य-जंतु होती हैं-यह तीन गतियां हैं। 43. हाथी, अश्व, शूद्र और प्रताणनीय मलेच्छ, सिंह, बाघ और सूकर की मध्यम अधभार स्थिति... 46. राजा, क्षत्रिय, राज-पुरोहित और वे व्यक्ति, जिनका मुख्य व्यवसाय वाद-प्रतिवाद है, दुर्वासना की मध्य स्थिति... 48. भक्त, तापस, ब्राह्मण, देवतागण विमानारूढ़ होती हैं। तारामंडल दैत्यों में सद्गुण न्यूनतम होते हैं। 49. अग्निहोत्री, ऋषि, देवतागण, वेद, सृष्टा ब्रह्मा, सदाचारी, महंत, अव्यक्तों में सर्वाधिक सदगुण होते हैं। 50. सृष्टा, सदाचारी, महंत और अव्यक्त ब्रह्मा में सर्वोपरि श्रेष्ठता है। इन विचारों की *रामायण* और *महाभारत* में व्यक्त विचारों से तुलना की जाए।''

यह रुचिकर होगा कि हम *रामायण* और *महाभारत* से इस मत की तुलना करें। *रामायण* में कहा गया है कि चारों वर्ण मनु की संतान हैं। वे दक्ष की पुत्री और कश्यप की पत्नी से उत्पन्न हुए हैं:

---

1. म्यूर, *संस्कृत टैक्स्ट,* खंड 1, पृ. 41

"सुनो, मैं तुम्हें बताता हूँ कि आरम्भ में, सर्वप्रथम प्रजापति ने प्रारंभ किया। सर्वप्रथम कर्दम थे, फिर विकृत, शेष, समस्रेय, शक्तिमान, भूपुत्र, स्थनु, मारीचि, अत्रि, प्रबल, क्रतु, पुलस्त्य, अंगिरस, प्रचेता, पुलह, दक्ष, फिर वैवस्वत, आरिष्टनेमी और गौरवशाली कश्यप, जो अंतिम थे। दक्ष प्रजापति की साठ कन्याएं बताई जाती हैं। उनमें से अदिति, दिति, दनु, कालका, ताम्र, क्रोधनासा, मनु और अनाला, इन आठ सुन्दर कन्याओं का विवाह कश्यप से हुआ। प्रसन्न होकर कश्यप ने कहा– "तुम मेरे समान पुत्र उत्पन्न करो, तीनों लोक का पोषण करो।'' अदिति, दिति, दनु और कालका तत्पर हो गईं किन्तु अन्य तैयार न हुईं। अदिति से तैंतीस देवता उत्पन्न हुए, आदित्य, वसु और दो अश्विनी पुत्र। कश्यप भार्या मनु से मनुष्य जन्मे, ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र। ब्राह्मण का जन्म मुख से हुआ, क्षत्रिय का वक्ष से, वैश्य जंघाओं से और शूद्र चरणों से। ऐसा वेद कहते हैं। अनल से शुद्ध फलों वाले वृक्ष उत्पन्न हुए।"

महाभारत की व्याख्या निम्न प्रकार से है[1]:

"महान ऋषियों की भांति भव्यता से जन्मे प्रचेता के दस पुत्र गुणवान और पवित्र प्रतिष्ठित हुए और उनसे पूर्ण गौरवशाली प्राणी उनके मुख से प्रज्ज्वलित होने वाली अग्नि से स्वाहा हो गए। उनसे दक्ष प्रचेतस जन्मे और विश्व के जनक दक्ष से ये जगत। विरनी के सहवास से मुनि दक्ष को अपने समान एक सहस्र पुत्र प्राप्त हुए, जिन्हें नारद ने मोक्ष का मार्ग बताया और सांख्य का अनुपम ज्ञान दिया। संतति वृद्धि के मनोरथ से दक्ष प्रजापति ने पचास पुत्रियां उत्पनन कीं, उनमें से दस धर्म को दे दी, तेरह कश्यप को, सत्ताइस काल नियंता इन्दु (सोम) को.... अपनी तेरह में से सर्वश्रेष्ट पत्नी दक्षयानी से मारिचि पुत्र कश्यप को इन्द्र के पश्चात् अपनी शक्ति में अद्वितीय आदित्य तथा विवस्वत प्राप्त हुए। विवस्वत से शक्तिमान पुत्र यम वैवस्वत उत्पन्न हुआ। मार्तण्ड (विवस्वत, सूर्य) को बुद्धिमान और वीरपुत्र मनु उत्पन्न हुए और प्रसिद्ध यम उसका (मनु) अनुज प्राप्त हुआ। बुद्धिमान मनु धार्मिक था जिसने एक प्रजाति चलाई। इस प्रकार उसके (परिवार) मनुष्य, मानव जाति कहलाई। हे राजन्! उससे ब्राह्मण क्षत्रियों के साथ उत्पन्न हुए।"

महाभारत की दूसरी व्याख्या *ऋग्वेद* के पुरुष सूक्त के समान है। वह इस प्रकार है:

राजा किसी ऐसे व्यक्ति को राज पुरोहित नियुक्त करे। जो उत्तमता का संरक्षक और दुष्टता का प्रतिरोधी हो। इस विषय में वे इस प्राचीन कथा को सुनाते हैं। जिसमें इला पुत्र मातृस्वन (वायु) और पुरुरवा का संवाद सन्निहित है। पुरुरवा ने कहा: "तुम मुझे बताओ कि कब ब्राह्मण, कब अन्य तीन जातियां उत्पन्न हुई और कब श्रेष्ठता

---

1. म्यूर, *संस्कृत टैक्स्ट,* खंड 1, पृ. 125

(प्रथम की) स्थापित हुई। मातृस्वन ने उत्तर दिया– "ब्राह्मण का जन्म ब्रह्मा के मुख से हुआ, उसकी भुजाओं से क्षत्रिय, उसकी जंघाओं से वैश्य जबकि इन तीन वर्णों की सेवा हेतु उसके चरणों से चतुर्थ वर्ण शूद्र उत्पन्न हुआ। जन्मते ही ब्राह्मण धर्म तत्व की रक्षार्थ धरती पर भूतजात का स्वामी बन गया। फिर सृष्टा ने पृथ्वी का शासक क्षत्रिय उत्पन्न किया प्रजा की संतुष्टि को दण्डधारण हेतु द्वितीय यम उत्पन्न किया और ब्रह्मा का आदेश था इन तीन वर्णों को वैश्य धन-धान्य उपलब्ध कराएं और शूद्र सेवा करें।" तब इला पुत्र ने पूछा: "वायु मुझे बताओं अपनी धन-सम्पदा सहित यह पृथ्वी किस के अधिकार में है।, ब्राह्मण के अथवा क्षत्रिय के।" वायु ने उत्तर दिया, "अपनी श्रेष्ठता के आधार पर पृथ्वी पर विद्यमान समस्त सम्पदा का स्वामी ब्राह्मण है, जो कर्तव्य-विधान में पारंगत है। उन्हें यह ज्ञात है, ब्राह्मण जो खाता है, पहनता है, लुटाता है, वह उसी का है। वह सभी जातियों में श्रेष्ठ है, प्रथम जन्मा और सर्वश्रेष्ठ। जिस प्रकार कोई स्त्री अपना पति (पहला) छिन जाने पर अपने देवर जेठ को दूसरा पति बना लेती है, उसी प्रकार विपत्ति में ब्राह्मण पहला आश्रय है और इसके बाद कोई और।"

महाभारत[1] के शांति पर्व में तीसरी व्याख्या दी गई है:

भृगु ने उत्तर दिया "इस प्रकार ब्रह्मा ने पहले अपनी शक्ति से प्रजापतियों के समान भव्य सूर्य और अग्नि को रचा। तब स्वामी ने सत्य, धर्मनिष्ठा, कठोर भक्ति, शाश्वत वेद, गुणकर्म, और स्वर्ग (प्राप्ति हेतु) शुद्धता की पुष्टि की। उसने देवता, दानव, गंधर्व, दैत्य, असुर, महाराग, वक्ष, राक्षस, नाग, पिशाच और मानव ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र, साथ ही वर्ण के प्राणी रचे। ब्राह्मण का वर्ण गौर, क्षत्रिय का लाल, वैश्य का पीत और शूद्र का काला बनाया। तब भारद्वाज ने प्रतिवाद किया: "यदि हर जाति के चार वर्ण (रंग) उसका परिचायक हैं तो इससे पहचान में भ्रांति होती है। मनोकामना, क्रोध, भय, लोभ, संताप, कुंठा, भूख, क्लांति हम सब में समान है, तब जाति किससे निर्धारित होती हैं। स्वेद, मूत्र, मल, श्लेष, श्लेष्मा, पित्त और रक्त (सबमें समान हैं) सभी शारीरिक विकार हैं, तब जाति किस से निर्धारित होती हैं। अनगिणत चल और अचल पदार्थ हैं, इनका वर्ण कैसे निर्धारित होता है?

भृगु ने उत्तर दिया, "जातियों में कोई अंतर नहीं है।"

शांति पर्व में ही चौथी व्याख्या[2] दी गई है। वह कहती है-भारद्वाज ने फिर पूछा, "परमश्रेष्ठ ब्रह्मर्षि, मुझे बताएं वे क्या गुण हैं कि जिनसे कोई ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य अथवा शूद्र बन जाता है।" भृगु कहते हैं- "जो शुद्ध है। प्रसव तथा अन्य संस्कारों

1. म्यूर, *संस्कृत टैक्स्ट,* खंड 1, पृ. 139-40
2. वही, पृ. 141-142

से पवित्र है, जिसको वेदों का सम्पूर्ण अध्ययन है, छह संस्कारों को सम्पन्न करता है, शुद्धता के अनुष्ठान पूर्णता से सम्पन्न करता है, जो चढ़ावे से बचे पदार्थ ग्रहण करता है, अपने धर्म-गुरु से सम्बद्ध है, सदैव धर्मपरायण है और सत्य को समर्पित है, ब्राह्मण कहलाता है। उसमें सत्य के दर्शन होते हैं। स्वाधीनता, अनाक्रमकता, उपकारिता, सादगी, धैर्य और कठोर भक्ति परिलक्षित हो -- ब्राह्मण हैं। जो राजपद के कर्त्तव्य का पालन करता है, जिसे वेदाध्ययन का व्यसन है और जो लेने और देने से प्रसन्नता अनुभव करता है, वह क्षत्रिय कहलाता है। वह, जो तत्परता से पशुपालन करता है, जिसकी कृषि कार्यों की लगन है, जो शुद्ध है और वेदों के अध्ययन में पारंगत है, वह वैश्य है। वह, जो हर प्रकार के भोजन का व्यसनी है, सभी कार्य करता हैं, जो अस्वच्छ है, जिसने वेदों का परित्याग कर दिया है, जो पवित्र कर्म नहीं करता, परम्परा से शूद्र कहलाता है और यह (जो मैंने बताया) शूद्र के लक्षण हैं और यह एक ब्राह्मण में नहीं मिलते। (ऐसा) शूद्र शूद्र ही रहेगा। जो ब्राह्मण (जो ऐसा करता है) ब्राह्मण नहीं होगा।"

आइये, अब यह देखें कि वर्ण-व्यवस्था के संबंध में पुराण क्या कहते हैं?

हम *विष्णु पुराण* से आरम्भ करते हैं। चातुर्वर्ण्य उत्पत्ति पर *विष्णु पुराण* में तीन सिद्धांत हैं। एक में यह आरोप मनु के सिर जाता है।[1] *विष्णु पुराण* का मत:

"ऐहिक अण्डज से पूर्व देव ब्रह्मा हिरण्यगर्भ, विश्व के शाश्वत नियंता, जो ब्रह्मा के तत्व रूप थे, जिसमें दिव्य विष्णु सन्निहित थे, जो ऋक्, यजुस, साम और अथर्ववेद के रूप में जाने जाते हैं (ही) विद्यमान थे। ब्रह्मा के दाएं अंगुष्ठ से प्रजापति दक्ष उत्पन्न हुए, दक्ष की पुत्री अदिति थी, उससे विवस्वत उत्पन्न हुआ, उससे मनु प्रकट हुआ। मनु के पुत्र थे इक्ष्वाकु, नृग, धृष्ट, सावर्ती, नरिष्यंत, प्रमसु, नाभागनिदिष्ट, करुष और पृषध्र, करुष से करुषगण, महाशक्तिवान क्षत्रिय उत्पन्न हुए। निदिष्टा का पुत्र नाभाग वैश्य बना।"

विष्णु पुराण में एक और भिन्न कथन है। उसके अनुसार :

पुत्र कामना में मनु ने मित्र और वरुण की आहुति दी किन्तु होता के द्वारा मंत्र के गलत उच्चारण कर दिए जाने पर एक पुत्री उत्पन्न हुई। उसका नाम इला था। तब मित्र और वरुण की कृपा से मनु नाम के सुद्युम्न का जन्म हुआ, परन्तु महादेव के कोप के कारण वह भी नारी रूप में परिवर्तित हो गया। वह नारी सोम पुत्र बुध के आश्रम के निकट विचरती रही। बुध उस पर आसक्त हो गया और उन दोनों से एक पुत्र उत्पन्न हुआ, पुरुरवा। जन्म के उपरांत उस देवता की, जो

---

1. म्यूर, *संस्कृत टैक्स्ट* पृ. 220-21

ऋक, यजुस, साम और अर्थववेद मानस की आहुति से उत्पन्न हुआ जो यज्ञ पुरुष का रूप है, उसकी ऋषियों ने पूजा की जिन का मनोरथ था कि सुद्युम्न अपना पुरुषत्व पुनः प्राप्त कर ले।

"*विष्णु पुराण* के अनुसार अत्रि ब्रह्मा का पुत्र और सोम (चन्द्रमा) का पिता था, जिसे ब्रह्मा ने पौधों की सम्प्रभुता दी और तारों का स्वामी बनाया। राजसूर्य यज्ञ के पश्चात् सोम मदांध हो गया और देवताओं के गुरु बृहस्पति की पत्नी तारा को ले आया जिसके लिए यद्यपि उसकी भर्त्सना की गई और ब्रह्मा ने, देवताओं और ऋषियों ने बृहस्पत् की पत्नी लौटाने की अनुनय-विनय भी की किन्तु उसने उसे नहीं लौटाया। सोम का पक्ष ऊष्ण गण ने लिया जबकि आंगिरस के शिष्य रुद्र ने बृहस्पति की सहायता की। दोनों ओर से घमासान युद्ध हुआ, जिसमें देवता और दैत्यों ने क्रमशः दोनों पक्षों में युद्ध किया। ब्रह्मा बीच में पड़े और सोम को विवश किया कि वह बृहस्पति को उसकी पत्नी लौटा दें। इस बीच वह गर्भवती हो गई और एक पुत्र बुध को जन्म दिया। बहुत अनुरोध करने पर उसने स्वीकार कर लिया कि सोम ही बुध का पिता है। जैसा कि पहले बताया जा चुका है, पुरुरवा मनु की पुत्री इला और बुध का पुत्र था। पुरुरवा और अप्सरा उर्वशी का प्रेम *शतपथ ब्राह्मण* 11.15, 1, 1, *विष्णु पुराण* 4, 6, 19 *भागवत पुराण* 9, 14, और *हरिवंश पुराण* अंश 26, *महाभारत* आदि पर्व भाग 75 में वर्णित है। इसमें पुरुरवा का ब्राह्मणों से संघर्ष दिखाया गया है। उन प्रसंगों का आगे उल्लेख किया जाएगा। *विष्णु पुराण* 6, 7, 1, के अनुसार पुरुरवा के छह पुत्र थे। उनमें सबसे बड़ा अयुस था। अयुस के पांच पुत्र थेः नहुष, क्षेत्र-वृद्ध, रम्भा, राजी और अनेनस।

"क्षेत्रवृद्ध का पुत्र था सुनहोत्र जिसके तीन पुत्र कास, लेस और गृत्समद थे। अंतिम पुत्र से शौनक उत्पन्न हुआ जिसने चार वर्ण बनाए। कास एक पुत्र कासिराज था, उसका भी पुत्र था दीर्घतमस क्योंकि धन्वंतरि दीर्घतमस था।"

द्वितीय कथन के अनुसार वर्ण-व्यवस्था के जनक ब्रह्मा थे। जैसे कि निम्नांकित उद्धरण *विष्णु पुराण* में मिलते हैं :

"मैत्रेय कहते हैं : तुमने मुझे अर्वस्रोत अथवा मानवसृष्टि के संबंध में बताया। अब हे ब्राह्मण! मुझे विस्तार से बताओ। ब्रह्मा ने इसकी सृष्टि किस प्रकार की? मुझे बताओ, उसने कैसे और किस गुण से वर्ण बनाए और ब्राह्मण तथा अन्य कार्य कौन-कौन से हैं। पराशर ने उत्तर दिया : 3. अपने विचार के अनुसार ब्रह्मा की कामना जगत सृष्टि की हुई। जिनमें सत्व होता है, वे उनके मुख से उत्पन्न हुए। 4. जिनमें रजोगुण होता है, वे उसके वक्ष से जन्मे; जिनमें रजोगुण और तमोगुण होता है, वे उनकी जंघाओं से जन्मे। 5. अन्य उनके चरणों से उत्पन्न हुए जिनके

मुख्य लक्ष्ण हैं कलुष। इससे वर्ण-व्यवस्था की चार जातियाँ बनीं- ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र, जो क्रमशः मुख, वक्ष, जंथा और चरणों से बने हैं। 6. ब्रह्मा ने यह चातुर्वर्ण्य-व्यवस्था यज्ञ के लिए की थी। देवताओं ने वर्षा कर मानवता पर उपकार किया। यज्ञ से सम्पन्नता आती है। 8. इसे गुणी सदाचारी और दुष्कर्मो से दूर रहने वाले लोग सम्पन्न करते हैं। 9. मानव अपनी नम्रता से स्वर्ग और मोक्ष प्राप्त करता है और वे वांछित लोक को प्रस्थान करते हैं।

"गृत्समद का पुत्र शुनक था, उससे शौनक ब्राह्मण, क्षत्रिय और शूद्र उत्पन्न हुए।"

"विताठ पांच पुत्रों के पिता थे। वे थे सुहोत्र, सुहोत्री, गया, गर्ग और कपिल। सुहोत्र के दो पुत्र थे, कासक और राजा गृत्समति। उसके पुत्र ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य थे।"

दूसरे आख्यान के अनुसार उनकी उत्पत्ति विष्णु से हुई जो ब्रह्मा से प्रकट हुए थे और प्रजापति दक्ष बन गए। यह इस प्रकार है[1] -

जनमेजय[2] कहता है : हे ब्राह्मण! मैंने ब्रह्मयुग (वर्णन) सुना है जो आदि युग था। मेरी भी कामना है, क्षत्रिय युग के विषय में सार-गर्भित और विस्तार से अनेक प्रेक्षणों के आधार यज्ञ के सौदाहरण उल्लेख का सम्पूर्ण विवरण दें। वैशम्पायन ने उत्तर दिया : "मैं उस युग के विषय में बताता हूं, जिसका यज्ञों के कारण आदर है और जो मुक्ति में अनेक कर्मों की विशिष्टता से सम्पन्न है, जिसका आदर तब के मनुष्यों के कारण किया जाता है। मुक्ति के लिए अबाध कर्म किए जाते थे। ब्रह्मा के प्रति चित्त की एकाग्रता थी और संयम था। ब्राह्मणों के उद्देश्य महानतम थे। ब्राह्मण अपने व्यवहार से गौरवान्वित और मर्यादित थे, संयम का जीवन व्यतीत करते थे। ब्राह्मणों में अनुशासन था, वे अपने कर्त्तव्यपालन में त्रुटिहीन थे। उनका ज्ञान अथाह था। वे मननशील थे। तब सहस्रों युग व्यतीत होने पर ब्राह्मणों की सत्ता शिखर पर थी। तब ये मुनि इस विश्व के विलयन में सम्मिलित हुए। ब्रह्मा से विष्णु प्रकट हुए। वे इन्द्रियज्ञान से परे हो गए। और ध्यानावशिष्ट हो गए, प्रजापति दक्ष बन गए और अनेक प्राणियों की सृष्टि की। ब्राह्मण को रूपराशि (चन्द्रमा को प्रिय) और अक्षय बनाया गया। क्षत्रियों को नश्वर तत्वों से रचा, एकांतरण से वैश्य बने और धूम्र परिष्करण से शूद्रों को बनाया गया। जब विष्णु वर्णों पर विचार कर रहे थे तो ब्राह्मण को गौर, लाल, पीत तथा नीले रंग का बनाया गया। इस प्रकार विश्व में मानव वर्णों में विभाजित हो गये। उनकी चार पहचान हुई,

1. म्यूर, खंड 1, पृ. 152-153
2. हरिवंश में जनमेजय और वैशंपायन के मध्य वार्तालाप।

ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र। एक स्वरूप अनेक कार्य, दो पैरों पर चलने वाला अत्यंत आश्चर्यजनक, शक्तिमान और अपने व्यवसाय में पारंगत। तीन उच्च वर्णों के संस्कारों का वेदों में निर्धारण हुआ। प्राणियों की योगावस्था से ब्रह्मा प्रकट हुए। विष्णु जैसी उसे ध्यानावस्था से भगवान प्रचेतस (दक्ष) अर्थात् महान योगी विष्णु अपनी मेधा एवं ऊर्जा से ध्यानावस्था से कर्मक्षेत्र में उतरे। अपशिष्ट से शूद्र उपजे वे संस्कार रहित हैं। इस कारण वे शुद्धि संस्कारों में सम्मिलित नहीं हो सकते। न ही पवित्र विज्ञान से उनका संबंध है। वैसे ही जैसे ईंधन के घर्षण से अग्नि उत्पन्न होती है और लुप्त हो जाती है। उसकी यज्ञ में कोई आश्वयकता नहीं। इसी प्रकार धरती पर घूमने वाले शूद्र हैं। कुल मिलाकर (बलि देने के अतिरिक्त किसी उपयोग के नहीं) अपने जन्म के कारण, उनका जीवन शुद्धता से वंचित रखा गया है और उनकी अनावश्यकता वेदों में नियत है।"

अन्त में *भागवत पुराण*[1]:

"कई सहस्र वर्षों के उपरांत अपने कर्मों और प्राकृतिक गुणों से तत्कालीन प्राणियों ने जल पर उतराते अण्डज को जीव रूप प्रदान किया। फिर पुरुष ने उसका विखण डन कर उससे एक सहस्र जंघाएं, चरण, भुजाएं, चक्षु, मुख और शीर्ष प्रकट किए। विश्व–व्यवस्थापक ने अपने सहयोगी ऋषियों के साथ विश्व की रचना की। उन्होंने अपने कटि से सात अधोभुवन रचे और ऊर्ध्व मूल से और सात ऊर्ध्व भुवनों की रचना की। ब्राह्मण पुरुष का मुख था, क्षत्रिय उसकी भुजाएं, वैश्य उसकी जंघाओं से उपजे और शूद्र उस देव पुरुष के चरणों से जन्मे। पृथ्वी उनके पैरों से बनी। वायु उनकी नाभि से, उनके हृदय से स्वर्ग और उनके वक्ष से महालोक बने।"

अब अंत में *वायु पुराण* देखें। यह क्या कहता है? इसके अनुसार मनु ने वर्ण–व्यवस्था रची :

"गृत्समद का पुत्र शुनक था। उससे शौनक जन्मा। उसी के परिवार में ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र उत्पन्न हुए। द्विज मानव विभिन्न कर्मों के साथ जन्मे।'

यह सर्वेक्षण हमें क्या प्रदर्शित करता है? यदि परिणाम निकलता है तो वह है कि ब्राह्मणों ने वर्ण–व्यवस्था की व्याख्या करने के लिए कैसी अव्यवस्था की स्थिति उत्पन्न कर दी है। इन व्याख्याओं में एकरूपता नहीं है और ना ही कोई बात निश्चित रूप से कही गई है। एक ही स्रोत ने जो व्याख्याएं दी हैं, उनमें से कुछ पौराणिक हैं, कुछ रहस्यात्मक और बौद्धिक हैं। सभी का तात्पर्य इस व्यवस्था की व्याख्या करना है।

---

1. म्यूर, *संस्कृत टैक्स्ट,* खंड 1, पृ. 156

वेदों में यह बताने की चेष्टा की गई है कि वर्ण पुरुष से, मनु से, प्रजापति से, वृत्य से और सोम से उत्पन्न हुए हैं।

ब्राह्मण ग्रंथों में वेदों के साथ पर्याप्त मतभेद हैं। वे पुरुष, मनु, वृत्य अथवा सोम से इसकी उत्पत्ति नहीं मानते। वे प्रजापति और ब्रह्मा के बीच अटक जाते हैं। यह नई बात है। *तैत्तिरीय ब्राह्मण* का अनूठा ही सिद्धांत है। उसका कहना है कि ब्राह्मण देवताओं से उत्पन्न हुए और शूद्र असुरों से।

मनुस्मृति की दो व्याख्याएं हैं, पौराणिक और बौद्धिक। पौराणिक व्याख्या के अनुसार इसका उद्‌गम ब्रह्मा से है और बौद्धिक व्याख्या का निष्कर्ष है कि यह व्यक्तियों का संगठनात्मक परिणाम है। *रामायण, महाभारत* और पुराणों का मत यह लगता है कि वर्णों का उद्‌भव मनु से हुआ है। मनु संबंधी सिद्धांत के प्रसंग में उन्होंने इसे पूर्णतः भ्रामक बना डाला है। *रामायण* में 'मनु' एक स्त्री है जो दक्ष की पुत्री कश्यप की पत्नी हैं। *महाभारत* में 'मनु' पुरुष है, स्त्री नहीं। वह वैवस्वत का पुत्र है, जो कश्यप के पुत्र हैं। *महाभारत* के कश्यप की पत्नी मनु नहीं है, दक्षयानी है जो दक्ष की पुत्री बताई गई है। पुराण वर्ण-व्यवस्था के उदय पर मनु सम्बंधी सिद्धांत को तो स्वीकार करते हैं, किन्तु भिन्न-भिन्न मत प्रकट करते हैं। *विष्णु पुराण* इसका जन्मदाता उसके पुत्रों को मानता है। किन्तु उसमें इतनी जल्दबाजी है कि वह मात्र दो वर्णों की व्याख्या ही भूल जाता है। यही *विष्णु पुराण* एक अन्य स्थान पर भिन्न सिद्धांत प्रतिपादित करता है कि चारों वर्ण मनु की पुत्री इला की प्रणाली है। दूसरे सिद्धांत के अनुसार इला का विवाह पुरुरवा से हुआ जिसके छह पुत्र थे। ज्येष्ठतम था अयुष। अयुष के क्षेत्रवृद्ध उससे सुहोत्र, उससे गृत्समद। गृत्समद से चार वर्ण बने। *वायु पुराण* को यह स्वीकार नहीं। उसका कहना है कि वर्ण गृत्समद पौत्र शौनक से उत्पन्न हुए। 'हरिवंश' एक स्थान पर *विष्णु पुराण* का मत स्वीकार कर लेता है कि वर्णों का जनक गृत्समद था किन्तु उसमें अन्तरन यह है कि शूद्र उससे उत्पन्न नहीं हुए। यह पुराण नहीं बताता फिर शूद्र कहां से आ गए? एक अन्य स्थान पर वह कहता है कि वर्ण गृत्समद के पुत्र शुनक से निकले। इस प्रकार अपनी ही बात काटता है और *विष्णु पुराण* और *वायु पुराण* से भी भिन्न मत प्रकट करता है।

यह व्याख्या अल्पबुद्धि की सनक लगती है। इससे पता चलता है कि वर्ण-व्यवस्था का औचित्य ठहराने के लिए ब्राह्मणों ने किस प्रकार एड़ी-चोटी का जोर लगाया। प्रश्न यह है कि ब्राह्मण इस व्यवस्था के इतने दृढ़ प्रचारक थे तो वर्ण-व्यवस्था के उद्‌गम पर एक ही बात पर जम क्यों नहीं सके। एक समान और निर्विवाद ग्राह्य और बौद्धिक व्याख्या क्यों नहीं दे पाए?

इन अनेक व्याख्याओं में से वर्ण-व्यवस्था के औचित्य में ब्राह्मण केवल दो पर ही ठहरते हैं।

प्रथम यह है कि इसकी उत्पत्ति पुरुष से हुई है। सिद्धांत यह है कि इसका उल्लेख *ऋग्वेद* के पुरुष–सूक्त में हैं। यदि यह पौराणिक है तो भी पौराणिकता इतिहास ही है। चाहे उसमें अतिश्योक्ति ही क्यों न हो? परन्तु ऐसा नहीं है। व्याख्या पूर्णतः रहस्यात्मक है। यह किसी खब्ती दिमाग की उड़ान है। इसी कारण इसे कभी व्याख्या स्वीकार नहीं किया गया और यही कारण है कि कई अन्य भी परस्पर विरोधी व्याख्याएं दी जाती हैं। इसमें तनिक भी शिष्टाचार नहीं बरता गया है। यहां तक कि वैदिक लेखकों में यही प्रवृति विद्यमान है। यह दो परिस्थितियों से स्पष्ट है। इसका एक संदर्भ *ऋग्वेद* के विविध अंशों में है। दूसरे, श्वेत यजुर्वेद की कठ और मैत्रायणी संहिता तथा कृष्ण यजुर्वेद की तैत्तिरीय संहिता में इसका उल्लेख नहीं है। *सामवेद* में *ऋग्वेद* के पुरुष सूक्त के मात्र पांच मंत्र हैं। महत्वपूर्ण बात यह है कि इन पांच मंत्रों को समाहित करते समय उन मंत्रों को छोड़ दिया गया है, जिनमें यह कहा गया है कि वर्ण पुरुष के चार अंगों से उपजे। वास्तव में घालमेल हुआ। परन्तु इसी के साथ यह स्पष्ट संकेत है कि इसके रचयिता उस व्याख्या के संबंध में आश्वस्त नहीं थे जो आस्थाओं से लदी थी। सम्भवतः यह आरोपित और प्रतीकात्मक वर्णन था जिसके अनुसार ब्राह्मणों ने साहित्यिक कथन को तथ्यों में परिवर्तित करने की चेष्टा की। इससे पहेली का उत्तर नहीं मिलता। उल्टे एक उलझन उत्पन्न हो गई है। वह है कि ब्राह्मण क्यों चातुर्वर्ण्य को इतना प्रोत्साहन दे रहे थे?

इसके पीछे बौद्धिक व्याख्या *भगवद्गीता* की है। हिन्दुओं का देवता कृष्ण यह समझता है कि वह चातुर्वर्ण्य का रचयिता है और यह सिद्धांत प्रतिपादित करता है कि यह गुणों में अंतर पर आधारित है। गुणों में भिन्नता का सिद्धांत कपिल के सांख्य–दर्शन से लिया गया है। कृष्ण चातुर्वर्ण्य की व्याख्या प्रशंसात्मक शैली से करते हैं, जैसे यह अपरिवर्तनशील हो। सांख्य–दर्शन में, निःसंदेह यह कहा गया है कि इसका मूल आधार सतो, रजो, तमो गुण हैं। विषय जड़ता का नहीं है। यह परिवर्तनशील सम्यता है, जहां तीनों गुणों की शक्ति समान है। इसमें उस समय गतिशीलता आ जाती है जब साम्यता विभाजित होती है, जब एक गुण का दूसरे पर प्रभुत्व हो जाता है। कृष्ण ने वर्ण–व्यवस्था को वैज्ञानिक स्वरूप देने के लिए सांख्य की गुण–धर्म का मान्यता स्वीकार करके अत्यंत चतुराई दिखाई है। परन्तु ऐसा करके कृष्ण अपने जाल में स्वयं फंस जाते हैं। ये यह नहीं समझ पाते कि गुण तीन हैं और वर्ण चार हैं और इसका कोई कारण नहीं बता सके कि चार वर्णों के लिए तीन से अधिक गुणों की आवश्यकता वे क्यों अनुभव करते हैं। इस प्रकार जिस व्याख्या को बौद्धिक बताने की चेष्टा की गई, वह अनर्गल व्याख्या है। इससे गुत्थी सुलझती नहीं है बल्कि एक और गांठ पड़ जाती है। ब्राह्मण चातुर्वर्ण्य को सही बताने के लिए क्यों झख मार रहे हैं?

II

आश्रम-धर्म में जीवन को चार चरणों में विभाजित किया है- 1. ब्रह्मचर्य, 2. गृहस्थाश्रम, 3. वानप्रस्थ, और 4. संन्यास। ब्रह्मचर्य की औपचारिक दोनों अवस्थाओं का समान अर्थ है, अविवाहित जीवन। इसका औपचारिक अर्थ है गुरु से शिक्षा ग्रहण करना। गृहस्थाश्रम वह अवस्था है जब कोई व्यक्ति वैवाहिक जीवन बिताता है। संन्यास वह है जब कोई व्यक्ति वैराग्य ले लेता है। वानप्रस्थ, गृहस्थाश्रम और संन्यास के मध्य की स्थिति है। यह वह स्थिति है जब कोई व्यक्ति समाज का अंग होते हुए भी उससे पृथक रहता है। जैसा कि नाम से प्रकट है, इसका अर्थ है जंगलों में रहना।

हिंदुओं का विश्वास है कि आश्रम-धर्म ऐसी संस्था है जो वर्ण-धर्म के समान प्राचीन है। वे इन दोनों को एक साथ मिलाकर वर्णाश्रम-धर्म कहते हैं क्योंकि ये दोनों ही संश्लिष्ट हैं, और दोनों ही मिलकर हिन्दूधर्म का लौहस्वरूप निर्माण करती हैं।

यह उचित रहेगा कि हम आश्रम-धर्म का प्रादुर्भाव, प्रयोजन और विशिष्टता पर विचार करने से पूर्व हम इसका पूर्ण ज्ञान प्राप्त कर लें। आश्रम-प्रथा के दिग्दर्शन का सर्वोत्तम स्रोत *मनुस्मृति* है, जिसमें से निम्नांकित अंशों को उद्धृत किया जा रहा है :

अध्याय 2.36. "ब्राह्मण के पुत्र का गर्भधारण के आठ वर्ष पश्चात् उपनयन संस्कार कराया जाए। क्षत्रिय गर्भधारण के ग्यारह वर्ष पश्चात्, किन्तु वैश्य का बारह वर्ष उपरांत।"

अध्याय 2.168. "कोई द्विज यदि वेदाभ्यास नहीं करता है और अन्य का (सांसारिक ज्ञान) अध्ययन करता है, वह शीघ्र ही, अपितु अपने जीवनकाल में ही शूद्र और उसकी संतत की स्थिति प्राप्त करता है।"

अध्याय 3.1. "गुरु के अधीन तीन वेदों का व्रत छत्तीस वर्ष तक धारण किया जाए अथवा इसके अर्द्धांश अथवा चतुर्थांश अथवा जब तक उनका पूरा ज्ञान न हो जाए, यह व्रत रखा जाए।"

अध्याय 3.2. "जो उचित क्रम से तीन वेदों अथवा दो अन्यथा एक का भी अध्ययन बिना नियमोल्लंघन कर लेता है, वह गृहस्थाश्रम में प्रवेश करे।"

अध्याय 6.8. "विद्यार्थी, गृहस्थ, बैरवानस और तापस इनकी चार स्थितियां हैं, जिन सबका उद्गम गृहस्थ है।"

अध्याय 6.88. "किन्तु सभी (अथवा) कोई एक अवस्था भी विधानानुकूल एकोपरांत हो ब्राह्मण को उच्च स्थिति प्रदान करती है जो इनका नियमानुसार पालन करता हो।"

अध्याय 6.89. "और वैदिक नियमानुसार और स्मृति के अनुरूप गृहस्थ को श्रेष्ठतम बताया गया है क्योंकि वह अन्य तीनों का सहायक है।"

अध्याय 6.1. "कोई द्विज स्नातक, जो नियमानुसार गृहस्थ–धर्म निभा चुका हो, वह दृढ़ संकल्प करे कि वह अपनी इन्द्रियों का दमन करेगा, वनों में रहेगा (निम्नांकित नियमानुसार)।"

अध्याय 6.2. "जब कोई गृहस्थ यह देखे कि उसकी त्वचा में झुर्रियां पड़ने लगी हैं और उसके बाल पकने लगे हैं और उसके पुत्रों को पुत्र हो गए हैं तब वह वन को प्रस्थान करे।"

अध्याय 6.33. "परन्तु इस भांति अपने जीवन का तीसरा भाग वनों में व्यतीत करने के उपरांत चौथेपन में वह सभी सांसारिकताओं का परित्याग कर तापस का जीवन बिताए।"

अध्याय 6.34. "जो चरण तापस के रूप में प्रति चरण यज्ञ करके और इन्द्रियों का दमन करके क्लांत हो जाता है। (भिक्षादान और भोजन कराकर), वह मृत्यु उपरांत सुख भोगता है।"

अध्याय 6.35. "जब वह तीनों ऋणों से उऋण हो जाता है तो मोक्ष के लिए सुरति लगाए, जो उऋण हुए बिना मुक्ति चाहता है, उसका पतन होता है।"

अध्याय 6.36. "नियमानुसार वेदाध्ययन, पवित्र विधानानुसार पुत्रवान होकर, योग्यतानुसार यज्ञ करके वह अपना ध्यान मोक्ष पर लगाए।"

अध्याय 6.37. "कोई द्विज, जो वेदाध्ययन बिना, पुत्रवान हुए बिना, यज्ञ के बिना मोक्ष चाहता है, वह नरक में जाता है।"

इन नियमों से यह स्पष्ट है कि मनु के अनुसार आश्रम–धर्म के तीन रूप हैं। प्रथम यह कि यह शूद्रों और महिलाओं के लिए नहीं है। द्वितीय यह कि ब्रह्मचर्य अनिवार्य है। ऐसे ही गृहस्थ भी। वानप्रस्थ और संन्यास अनिवार्य नहीं है। तृतीय यह कि इनका निर्धारित क्रम से पालन किया जाए। प्रथम ब्रह्मचर्य, द्वितीय गृहस्थ, तृतीय वानप्रस्थ और चतुर्थ संन्यास। कोई एक को लांघकर दूसरे आश्रम में नहीं जा सकता।

व्यक्तिगत जीवन में मनु द्वारा नियोजित अर्थ–व्यवस्था के लिए बताई जाने वाली इस आश्रम–प्रणाली पर विहंगम दृष्टि डालने पर कुछ प्रश्न उत्पन्न होते हैं। वेदों के संदर्भ में आश्रमों का यह सिद्धांत अज्ञात है। वेदों में ब्रह्मचारी का उल्लेख है परन्तु ब्रह्मचर्य को जीवन का प्रथम और अनिवार्य सोपान बनाए जाने का कोई प्रसंग नहीं है। ब्राह्मणों ने व्यक्तिगत जीवन में ब्रह्मचर्य को अनिवार्य क्यों बनाया। आश्रम धर्म के संबंध में यह प्रथम गोरखधंधा है।

दूसरा प्रश्न यह है कि मनु ने व्यक्ति के लिए एक ही क्रम में आश्रम-प्रणाली क्यों रखी? इसमें कोई संदेह नहीं रहा है कि एक समय ऐसा था, जब कोई ब्रह्मचारी तीनों में से कोई-सा भी आश्रम अपना सकता था। वह गृहस्थ बन सकता था अथवा गृहस्थ बने बिना संन्यासी भी बन सकता था। यह तुलना करें कि धर्म-सूत्र इस विषय में क्या कहते हैं? वशिष्ठ धर्म सूत्र का मत है[1]:

"चार सोपान हैं: विद्यार्थी, गृहस्थ, वैखानस और तापस।"

"जिस व्यक्ति ने एक, दो अथवा तीन वेदों का अध्ययन विद्यार्थी धर्म का उल्लंघन किए बिना किया है, वह जिस आश्रम में जीवन बिताना चाहे, बिता सकता है।"

गौतम धर्म सूत्र[2] का मत है:

"कोई (बताए कि) वह (जिसने वेदाध्ययन किया है) किसी भी आश्रम का चयन कर सकता है" इसमें चार आश्रम हैं : विद्यार्थी, गृहस्थ, भक्षु, वैखानस।

मनु ने विकल्प को तिरोहित करके गृहस्थ को अनिवार्य क्यों बनाया? उसे गृहस्थ को बैखानस से पूर्व की शर्त क्यों बनाया और बैखानस को संन्यास से पूर्व की शर्त क्यों रखा?

महत्वपूर्ण लक्ष्य के लिए जीवन के चार चरणों की आवश्यकता कर दी गई है। यह समझना कठिन है कि शूद्रों और नारियों को क्यों बाहर रखा गया है? मनु के कार्यक्रम के अनुसार शूद्र और स्त्रियां केवल गृहस्थ ही रह सकते हैं। वे ब्रह्मचारी, वानप्रस्थी और संन्यासी क्यों नहीं हो सकते? यदि आश्रम-धर्म उन पर भी लागू कर दिया जाए तो उससे उन्हें अथवा समाज को क्या हानि हो सकती है?

आश्रम धर्म के संबंध में और भी पहेलियां हैं। पहली यह कि उन्होंने ब्रह्मचारियों[3] के संबंध में भेदभाव क्यों रखा?

अध्याय 2.41. कटि से ऊपर अपनी वर्ण व्यवस्थानुसार छात्र काले और चितकबरे मृग की छाल और बकरे की खाल वस्त्र के रूप में धारण करें और कटि के नीचे सन और भेड़ की ऊन के वस्त्र पहनें।

अध्याय 2.42. ब्राह्मण की मेखला में तीन गांठें हों जो मूंगा घास की मुलायम और चिकनी, क्षत्रिय की धनुष की तरह अर्धवृत्त में मुखाघास और वैश्य सन की बनी हो उसे धारण करें।

---

1. सै.बु.ई. खंड 14, पृ. 40, अध्याय 7, श्लोक 1, 2, 3
2. वही, खंड 2, पृ. 192, अध्याय 3, श्लोक 1, 2
3. वही, खंड 2, मनु पृ. 37-9

अध्याय 2.43. मूंज आदि के नहीं मिलने पर कुश, अश्मन्तक और बल्वज की बनी हुई मेखला पारिवारिक रीति के अनुसार गांठें बांधकर धारण करें।

अध्याय 2.44. ब्राह्मण का यज्ञोपवीत कपास का, क्षत्रिय का यज्ञोपवीत सन के बने सूत का और वैश्य का यज्ञोपवीत भेड़ के बाल के बने सूत का ऊपर की ओर से बंटा हुआ तीन लड़ी का होना चाहिए।

अध्याय 2.45. धर्मानुसार ब्राह्मण ब्रह्मचारी को बेल या पलाश का, क्षत्रिय ब्रह्मचारी को बट या खैर का और वैश्य ब्रह्मचारी को पीलू या गूलर का दण्ड धारण करना चाहिए।

अध्याय 2.46. प्रमाणानुसार ब्राह्मण ब्रह्मचारी का दण्ड केश तक, क्षत्रिय ब्रह्मचारी का दण्ड ललाट तक और वैश्य ब्रह्मचारी का दण्ड नाक तक लम्बा होना चाहिए।

अध्याय 2.47. दण्ड सीधे, बिना कटे हुए, देखने में सुन्दर, लोगों में सीधे भय नहीं करने वाले छिलकों के सहित और बिना जले हुए होने चाहिए।

अध्याय 2.48. ईप्सित दण्ड धारण कर, सूर्य उपासना तथा अग्नि की प्रदक्षिणा कर विधिपूर्वक भिक्षा मांगनी चाहिए।

अध्याय 2.49. उपवीत ब्राह्मण ब्रह्मचारी को "भक्त" शब्द का वाक्य के पहले उच्चारण कर, क्षत्रिय ब्रह्मचारी को "भक्त" शब्द का वाक्य के मध्य में उच्चारण कर और वैश्य ब्रह्मचारी को "भक्त" शब्द का वाक्य के अंत में उच्चारण कर भिक्षायाचना करनी चाहिए।

ब्रह्मचारी सभी द्विज होते हैं। उन्हें अपने ऊर्ध्व परिधान में अंतर रखना चाहिए। जनेऊ में अंतर क्यों रखा गया है? वे दंड में अंतर क्यों रखे? भिक्षा मांगने के तरीके में अंतर क्यों रखा गया है? ब्राह्मण ब्रह्मचारी ही यह क्यों कहे- "भगवती भिक्षाम देहि" क्षत्रिय ब्रह्मचारी इतना ही क्यों कहें- "भिक्षाम भवती देहि"? वैश्य क्यों कहे- "भिक्षाम् देहि भवती।"

आश्रम धर्म हिन्दुओं की विशिष्टता है और उन्हें इस पर गर्व है। यह सत्य है कि इसकी तुलना नहीं है। परन्तु यह भी सत्य है कि इसमें कोई गुण नहीं है। अनिवार्य ब्रह्मचर्य बहुत आकर्षक लगता है क्योंकि इसके अनुसार बच्चों के लिए अनिवार्य शिक्षा की व्यवस्था की गई बतायी जाती है। परन्तु वह सबके लिए नहीं थी। शूद्र और स्त्रियों को इससे वंचित रखा गया है। शूद्र और स्त्रियां हिन्दूसमाज का 9/10वां भाग हैं। इस बात को ध्यान में रखते हुए यह स्पष्ट है कि यह योजना बुद्धिमत्ता के स्थान पर धूर्ततापूर्ण है। इसमें बहुसंख्यक समाज के साथ भेदभाव रखा गया है और शिक्षा का प्रावधान कुलीन वर्ग के लिए ही है। अनिवार्य विवाह भी एक मूर्खतापूर्ण

व्यवस्था है। किसी व्यक्ति की आर्थिक और शारीरिक क्षमताओं को ध्यान में रखे बिना विवाह के लिए विवश करना दो व्यक्तियों का जीवन और राष्ट्र को नष्ट करने का मार्ग खोलता है। बशर्ते कि सरकार प्रत्येक व्यक्ति के निर्वाह का भरोसा दे। सर्वाधिक मूर्खतापूर्ण है वानप्रस्थ और संन्यास। उनके संबंध में नियम इस प्रकार हैं। वानप्रस्थ[1] के लिए, निम्नांकित मनु व्यवस्था है :

अध्याय 6.3. ग्राम्य आहार तथा वस्तुओं को छोड़कर, वन में जाने की इच्छा नहीं करने वाली अपनी पत्नी को पुत्रों के उत्तरदायित्व में सौंपकर अथवा वन में साथ जाने की इच्छा करने वाली अपनी पत्नी को साथ लेकर वन को जावे।

अध्याय 6.4. पवित्र अग्नि और घरेलू यज्ञ के उपकरण लेकर ग्राम से बाहर वन में जाकर जितेन्द्रिय होकर रहे।

अध्याय 6.5. पवित्र अनेकविध मुन्यन्न अथवा शाक, मूल और फल आदि से पूर्वोक्त पंचमहायज्ञों को विधिपूर्वक करता रहे।

अध्याय 6.6. मृग आदि का चर्म या पेड़ों का वल्कल धारण करे, सायंकाल तथा प्रातःकाल स्नान करे और सर्वदा जटा, दाढ़ी, मूंछ एवं नख को धारण करे।

अध्याय 6.7. जो भोज्य पदार्थ हो, उसी से बलि करे, भिक्षा दे और जलकन्द तथा फलों की भिक्षा देकर आये हुए अतिथियों का सत्कार करे।

अध्याय 6.8. सर्वदा वेदाभ्यास में लगा रहे, द्वंद्वों को सहन करे, सबसे मित्रभाव रखे, मन को वश मे रखे, दानशील बने, दान न ले और सब जीवों पर दया करे।

अध्याय 6.9. दर्श, पौर्णमास पर्वों को यथासमय त्याग नहीं करता हुआ विधिपूर्वक वैतानिक अग्निहोत्र करता रहे।

अध्याय 6.10. नक्षत्रेष्टि, आग्रहायण याग, चातुर्मास्य याग, उत्तरायण याग और दक्षिणायन याग को श्रोतस्मार्त विधि से क्रमशः करे।

अध्याय 6.11. वसन्त तथा शरद ऋतु में पैदा हुए एवं स्वयं लाये गये पवित्र मुन्यन्नों, पुरोडश तथा चरूको शास्त्रानुसार अलग-अलग तैयार करे।

अध्याय 6.12. वन में उत्पन्न अत्यंत पवित्र उस हविष्यान्न से देवों के उद्देश्य हवन कर बचे हुए अन्न का भोजन करे तथा स्वयं बनाये हुए लवण को काम में लाए।

अध्याय 6.13. भूमि तथा जल में उत्पन्न शाक को, वृक्षों के पवित्र पुष्प, मूल तथा फल को और फलों से बने स्नेह को भोजन करे।

---

1. सै.बु.ई. खंड 30, पृ, 199-203

अध्याय 6.14. मधु, मांस, पृथ्वी में उत्पन्न छत्राक, भूस्तृण, शिग्रक और लसौडे का फूल का त्याग करे।

अध्याय 6.15. पूर्वसंचित मुन्यन्न, पुराने वस्त्र और शाक, कन्द एवं फल का आश्विन मास में त्याग कर दे।

अध्याय 6.16. वन में भी हल से जुती हुई भूमि में उत्पन्न खाद्य पदार्थ, चाहे किसी ने फेंक दिए हों, और कंद–मूल और फल को क्षुधा पीड़ित होकर भी न खाए।

अध्याय 6.17. अग्नि में पकाये हुए अन्नादि को खाने वाला बने, अथवा नियत समय पर पकने वाले पदार्थों को खाने वाला बने, अथवा वे पदार्थ जो पत्थर से पीस कर अथवा दांतों से चबाकर खाने वाले हों।

अध्याय 6.18. वह भोजन पात्रों को नित्य तुरंत साफ करने वाला बने, या एक मास का पर्याप्त प्रबंध करे अथवा इतना संग्रह करले जो छः माह या वर्ष पर्यन्त के लिए पर्याप्त हो।

अध्याय 6.19. यथाशक्ति खाद्य को लाकर सायंकाल या दिन में या एक दिन, पूरा उपवास कर दूसरे दिन, सायंकाल या तीन रात उपवास कर चौथे दिन सायंकाल भोजन करे।

अध्याय 6.20. अथवा शुक्ल तथा कृष्ण पक्ष में चन्द्रायण के नियम से भोजन करे, अथवा अमावस्या तथा पूर्णिमा को दिन या रात्रि में केवल एक बार पकाई हुई ययागू का भोजन करे।

अध्याय 6.21. अथवा वैखानस आश्रम में रहने वाला सर्वदा केवल समय पर पके और स्वयं गिरे हुए फूल मूल और फलों से ही जीवन निर्वाह करे।

अध्याय 6.22. भूमि पर लेटै तथा टहले या पैर के अगले भाग पर दिन में कुछ समय तक खड़ा रहे या बैठा रहे, प्रातःकाल, मध्याह्न और सायंकाल में स्नान करे।

अध्याय 6.23. अपनी तपस्या को बढ़ाता हुआ ग्रीष्म ऋतु में पंचाग्नि ले, वर्षा ऋतु में खुले मैदान में रहे और शीत ऋतु में गीला कपड़ा धारण करे।

अध्याय 6.24. तीनों समय स्नान करता हुआ देवताओं, ऋषियों तथा पितरों का तर्पण करे और कठोर तपस्या करता हुआ अपने शरीर को सुखा दे।

अध्याय 6.25. वानप्रस्थ के नियमानुसार वैतानिक अग्नि को आत्मा में रखकर वन में भी अग्नि और गृह का त्याग कर केवल मूल तथा फल का खावे।

अध्याय 6.26. सुख–साधक साधनों में उद्योग छोड़कर ब्रह्मचारी, भूमि पर सोने वाला, निवास स्थान में ममस्वरहित हो पेड़ों के मूल को घर समझ कर निवास

करे।

अध्याय 6.27. जीवन निर्वाह के लिए केवल तपस्वी वानप्रस्थाश्रमियों के यहां भिक्षा ग्रहण करे और उनका भी अभाव होने पर वन में निवास करने वाले अन्य गृहस्थ द्विजों से भिक्षा ग्रहण करे।

अध्याय 6.28. उन वनवासी गृहस्थों का भी अभाव होने पर वन में ही निवास करता हुआ ग्राम से वृक्ष-पत्रों में या सकोरों के खण्डों में अथवा हाथ में ही भिक्षा ला कर केवल आठ ग्रास भोजन करे।

अध्याय 6.29. वन में निवास करता हुआ ब्राह्मण इन नियमों को तथा स्वशास्त्रोक्त नियमों का पालन करे और आत्मसिद्धि के लिये उपनिषदों तथा वेदों में कथित वचनों का अभ्यास करे।

मनुस्मृति में संन्यासी के लिए निम्न विधान हैं:[1]

अध्याय 6.38. जिसमें समस्त सम्पत्ति को दक्षिणा रूप में देते हैं ऐसे प्राजापत्य यज्ञ का अनुष्ठान कर और उसमें कथित विधि से अपने में अग्नि का आरोप कर ब्राह्मण घर से संन्यास आश्रम को ग्रहण करें।

अध्याय 6.39. जो सब प्राणियों के लिए अभय देकर गृह से संन्यास ले लेता है, उस ब्राह्मण के तेजोमय लोक होते हैं अर्थात् वह उन लोकों को प्राप्त करता है।

अध्याय 6.40. जिस द्विज से जीवों को लेशमात्र भी भय नहीं होता, शरीर से विमुक्त हुए उस द्विज को कहीं से भी भय नहीं होता।

अध्याय 6.41. पवित्र कमण्डल, दण्ड आदि से युक्त मौन धारण किया हुआ घर से निकला हुआ और उपस्थित इच्छा प्रवर्त्तक वस्तु में निःस्पृह होकर संन्यास ग्रहण करे।

अध्याय 6.42. अकेले सिद्धि को देखता हुआ द्विज दूसरे किसी का साथ न करके अकेला ही मोक्ष के लिए चले, इस प्रकार वह किसी को नहीं छोड़ता है और न उसे कोई छोड़ता है।

अध्याय 6.43. लौकिक अग्नि से रहित, गृह से रहित, शरीर में रोगादि होने पर भी चिकित्सा आदि का प्रबंध न करने वाला, स्थिर बुद्धिवाला, ब्रह्म का मनन करने वाला और ब्रह्म में ही भाव रखने वाला संन्यासी भिक्षा के लिए ग्राम में प्रवेश करे।

1. सै.बु.ई. खंड 25, अध्याय 6, श्लोक 38-45, पृ, 205-206

अध्याय 6.44. एक खपरा, पेड़ों की जड़ (रहने के लिए कंदरा), पुराना व मोटा या वृक्ष का वल्कल कपड़ा अकेलापन, ममता और सब में समान भाव से, ये मुक्त के लक्षण हैं।

अध्याय 6.45. मरने या जीने, इन दोनों में से किसी की चाह न करे किन्तु नौकर जिस प्रकार वेतन की प्रतीक्षा करता है, उसी प्रकार काल की प्रतीक्षा करते रहे।

अध्याय 6.49. ब्रह्म ध्यान में लीन योगासनों में बैठा हुआ, अपेक्षा से रहित, मांस की अभिलाषा से रहित और शरीर मात्र सहायक से युक्त मोक्ष सुख को चाहने वाला इस संसार का विचरण करे।

अध्याय 6.50. चमत्कार और अपशकुन, ज्योतिष और हस्तरेखा विज्ञान, व शास्त्र शिक्षा आदि के द्वारा कभी भी भिक्षा लेने की इच्छा न करे।

अध्याय 6.51. बहुत से वानप्रस्थों या अन्य साधुओं, ब्राह्मणों, पक्षियों, कुत्तों या दूसरे भिक्षुकों से युक्त घर में न जावे।

अध्याय 6.52. बाल, नाखून और दाढ़ी–मूंछ कटवा कर, भिक्षापात्र, दण्ड तथा कमण्डल को लिये हुए किसी प्राणी को पीड़ित न करता आत्मसंयमी रहते हुए सर्वदा विचरण करे।

अध्याय 6.53. उसके भिक्षापात्र धातु के न हों, छिद्र रहित हों, उनकी शुद्धि यज्ञ में चमस के समान केवल पानी से होती है।

अध्याय 6.54. तुम्बा, लकड़ी, मिट्टी, बांस के पाच्यतियों के हों ऐसा स्वायंभूव पुत्र ने कहा है।

अध्याय 6.55. संन्यासी जीवन–निर्वाह के लिए दिन में एक बार ही भिक्षा ग्रहण करे, तथा उसको भी अधिक प्रमाण में लेने में आसक्ति न करे, क्योंकि भिक्षा में आसक्ति रखने वाला संन्यासी विषयों में भी आसक्त हो जाता है।

अध्याय 6.56. घरों में जब धुंआ दिखाई न पड़ता हो, मूसल का शब्द न होता हो, आग बुझ गयी हो, सब ने भोजन कर लिये हों, और खाने के पत्तल बाहर फेंक दिये गये हों, तब भिक्षा के लिए संन्यासी सर्वदा निकले।

अध्याय 6.57. भिक्षा न मिलने पर विषाद और मिलने पर हर्ष न करे। जितनी भिक्षा से जीवन निर्वाह हो सके, उतने ही प्रमाण में भिक्षा मांगे। दण्ड, कमण्डल आदि की मात्रा में भी आसक्ति न करे।

---

1. सै.बु.ई. अध्याय 6, पृ, 207–209

अध्याय 6.58. विशेष रूप से आदर-सत्कार के साथ मिलने वाली भिक्षा की सर्वदा निंदा करे, क्योंकि पूजापूर्वक होने वाली भिक्षा प्राप्ति से मुक्त भी संन्यासी बंध जाता है।

अध्याय 6.59. विषयों की ओर आकृष्ट होती हुई इन्द्रियों को थोड़ा भोजन और एकांतवास के द्वारा रोके।

अध्याय 6.60. इन्द्रियों को अपने-अपने विषयों से रोकने से राग और द्वेष के त्याग से और प्राणियों की अहिंसा से मुक्ति के योग्य होता है।

अध्याय 6.80. जब विषयों में दोष की भावना से सब विषयों से निःस्पृह हो जाता है, तब इस लोक में तथा परलोक में नित्य सुख को प्राप्त करता है।

अध्याय 6.81. इस प्रकार सब संगों को धीरे-धीरे छोड़कर तथा सब द्वंद्वों से छुटकारा पाकर ब्रह्म में ही लीन हो जाता है।

अध्याय 6.82. यह सब परमात्मा में ध्यान से होता है। अध्यात्मज्ञान से शून्य ध्यान का फल कोई भी नहीं प्राप्त करता है।

अध्याय 6.83. यज्ञ तथा देव के प्रतिपादक वेदमंत्र को, जीव के स्वरूप का प्रतिपादक वेदमंत्र को और ब्रह्मप्रतिपादक वेदान्त में वर्णित मंत्र को जपे।

अध्याय 6.84. वेदार्थ को नहीं जानने वाले के लिए यही वेद शरण है, और वेदार्थ जानने वालों के लिए स्वर्ग चाहने वालों के लिये भी यही वेद शरण है।

अध्याय 6.85. इस क्रम से जो द्विज संन्यास लेता है वह इस संसार में पाप को नष्ट कर उत्कृष्ट ब्रह्म को प्राप्त करता है।

वानप्रस्थ और संन्यासी की तुलना से ज्ञात होता है कि इनके पालन में इतना साम्य है कि हमें यह जिज्ञासा होती है कि इन दोनों अवस्थाओं को भिन्न क्यों रखा गया है? दोनों के बीच बहुत कम अंतर है। पहली बात तो यह है कि वानप्रस्थ अपनी पत्नी को साथ रख सकता है, संन्यासी नहीं। दूसरे यह कि वानप्रस्थ अपनी सम्पत्ति रख सकता है और संन्यासी को उसका परित्याग करना होता है। तीसरे यह कि वानप्रस्थ वनों में निवास बना सकता है किन्तु संन्यासी एक ही स्थान पर नहीं टिक सकता है, उसे एक से दूसरे स्थान तक रमण करना होता है। शेष बातों में दोनों का जीवन समान है। ब्राह्मणों ने वानप्रस्थ की अतिरिक्त मान्यता क्यों रखी जबकि संन्यास पर्याप्त था? परन्तु यह प्रश्न तो फिर भी बरकरार रहता है कि इन दोनों की ही क्या आवश्यकता थी? ये आत्म-बलिदान का उदाहरण नहीं कही जा सकती। वानप्रस्थ और संन्यासी

1. सै.बु.ई., खंड 25, श्लोक 80-85, पृ, 213-214

केवल वृद्ध ही हो सकते हैं। मनु इस संबंध में आश्वस्थ हैं कि एक अवस्था में मनुष्य वानप्रस्थी हो जाए। इसका समय तभी आता है जब झुर्रियां पड़ने लगें। यह काफी आयु में होता है। संन्यासी की आयु तो और भी अधिक होनी चाहिए। ऐसे व्यक्तयों को आत्मत्यागी कहना गलती है, जिन्होंने जीवन के सभी सुख भोगे हों और जब वे सुख भोगने योग्य ही न रहें तो उनका परित्याग कर दें। यह निर्विवाद है कि परिवार और गृह–त्याग, समाज–सेवा अथवा दीन–दुखियों की सेवा के उद्देश्य से नहीं किया जाता। इसका आशय है, तपस्या करना और शांतिपूर्वक मृत्यु की प्रतीक्षा करना! यह एक मजाक ही है कि वृद्ध व्यक्तियों को घर–परिवार से दूर जंगलों में मरने के लिए छोड़ दिया जाए, जहां उनके लिए कोई दो आंसू बहाने वाला भी न हो।

ब्राह्मणों ने नियोजित अर्थ–व्यवस्था के उद्देश्य से आश्रम–प्रणाली बनाई। यह इतनी बड़ी मूर्खता है कि उसका कारण और उद्देश्य समझ पाना एक बहुत बड़ी पहेली है।

परिशिष्ट–II

अनिवार्य वैवाहिक व्यवस्था

मनु की व्यवस्था है कि संसार में लोगों का जीवन चार भागों में विभाजित हो। ये चार अवस्थाएं हैं: 1. ब्रह्मचर्य, 2. गृहस्थ, 3. वानप्रस्थ और संन्यास। ब्रह्मचर्य विद्यार्थी जीवन है। एक ऐसी अवस्था, जब मनुष्य का जीवन वेदों के अध्ययन को समर्पित होता है। गृहस्थाश्रम का अर्थ है, वैवाहिक जीवन। जैसा कि मनु ने कहा है, गृहस्थ रहकर सुख भोगना और परिवार–वृद्धि करना। वानप्रस्थ की स्थिति में गृहस्थी से दूर रहना होता है; वह गृह–त्याग कर देता है फिर भी वह अपनी पत्नी का त्याग नहीं करता। वह जंगलों में रहता है किन्तु अपनी सम्पत्ति का अधिकार नहीं त्यागता। जहां तक गृहस्थ जीवन और धार्मिक कृत्यों का संबंध हैं, वह मरे के समान है किन्तु सामाजिक रूप से वह मरता नहीं है। संन्यास वह अवस्था है, जब मनुष्य अपने वैवाहिक बंधन तोड़ देता है। वह गृहस्थी त्याग देता है और गृहस्थों के लिए आवश्यक धर्म–कर्म से नाता तोड़ लेता है और ब्रह्म की उपासना हेतु जंगलों में चला जाता है। ऐसा समझा जाता है कि उसका सामाजिक अंत हो गया है।

मनुष्य–जीवन की विभाजन–प्रथा उससे भी पुरानी है जितनी मनु की। महत्वूपर्ण बात यह है कि मनु ने इसमें संशोधन कर दिया।

प्रथम परिवर्तन यह है कि मनु ने विवाह को अनिवार्य बना दिया। किसी ब्रह्मचारी को अध्ययन समाप्त करने पर विवाह करना चाहिए। यह नियम मनु ने बनाया, जो निम्न व्यवस्थाओं से प्रकट है:

3.2. (एक विद्यार्थी) जसने विद्यार्थिपन बिना (नियमोल्लंघन), उचित क्रम में तीन वेदों का अध्ययन किया है अथवा केवल एक का, वह गृहस्थ में प्रवेश करे।

3.4. "गुरु की आज्ञा से स्नान करने के पश्चात् और नियमानुसार समावर्तन कर

इस अध्याय को 'चार आश्रम' पहेली के साथ पढ़ा जाए। – संपादक

लिया है, उस द्विज को समान वर्ग की पत्नी से विवाह करना चाहिए जो शुभ चिह्नों से उसे दी जाए।"

मनु ने जो दूसरा संशोधन किया वह है एक ब्रह्मचारी के संन्यास आश्रम में प्रवेश पर प्रतिबंध लगाना। मनु ने संन्यास से पूर्व विवाह की शर्त लगा दी है। उन्होंने घोषित किया है कि गृहस्थ में प्रवेश किए बिना संन्यास ग्रहण करना एक पाप है।

6.35. "जब वह तीनों ऋणों से उऋण हो जाता है तो मोक्ष के लिए सुरति लगाए जो उऋण हुए बिना मुक्ति चाहता है उसका पतन होता।"

6.36. "नियमानुसार वेदाध्ययन, पवित्र विधानानुसार पुत्रवान होकर, योग्यतानुसार यज्ञ करके, वह अपना ध्यान मोक्ष पर लगाए।"

6.37. कोई द्विज जो वेदाध्ययन बिना, पुत्रवान हुए बिना यज्ञ के बिना मोक्ष चाहता है वह नरक को जाता है।"

6.38. "जिसमें समस्त सम्पत्ति को दक्षिणा रूप में देते हैं ऐसे प्राजापत्य यज्ञ को अनुष्ठान कर और उसमें कथित विधि से अपने में अग्नि का आरोप कर ब्राह्मण घर से संन्यास आश्रम को ग्रहण करे।"

मनु ने तीसरा संशोधन जो किया, वह यह है कि एक गृहस्थ बिना वानप्रस्थ में प्रवेश किये बिना संन्यासी नहीं हो सकता।

6.1. "ब्रह्मचर्याश्रम के बाद समावर्तन संस्कार को प्राप्त स्नातक द्विज इस प्रकार विधिपूर्वक गृहस्थाश्रम में रहकर आगे कथित नियम से जितेन्द्रिय होकर वन में निवास करे।"

6.2. "जब गृहस्थाश्रमी झुर्रियोंदार त्वचा, पके हुए बाल तथा अपने पुत्रों के पुत्र को देख ले तब वन का आश्रय करे।"

6.3. "ग्राम्य आहार तथा परिच्छद को छोड़कर, अपनी पत्नी को पुत्रों के उत्तरदायित्व में सौंप कर अथवा साथ जाने की इच्छा करने वाली अपनी पत्नी को साथ लेकर वन को जावे।"

मनु ने जो संशोधन किए, वे वास्तव में अत्यंत क्रांतिकारी थे, उन नियमों में जो उनसे पूर्व प्रचलित थे। इस संबंध में हम केवल दो प्रासंगिक नियमों का उल्लेख करेंगे, जो दो धर्म सूत्रों वशिष्ठ धर्मसूत्र और गौतम धर्मसूत्र में हैं।

वशिष्ठ धर्मसूत्र का[1] कथन है:

---

1. अध्याय 7, श्लोक 1, 2, 3

"चार सोपान हैं: विद्यार्थी, गृहस्थ, वैखानस और तापस।"

"जिस व्यक्ति ने एक दो अथवा तीन वेदों का अध्ययन विद्यार्थी धर्म का उल्लंघन किए बिना किया है, वह जिस आश्रम में जीवन बिताना चाहे, बिता सकता है।"

गौतम धर्मसूत्र[1] के अनुसार:

"कुछ (कहते हैं कि) वह (जिसने वेदों का अध्ययन किया है) अपनी इच्छानुसार (किस) अवस्था में रहना चाहता है (इसका वरण कर सकता है)। (चार अवस्थाएं है।) विद्याध्ययन, गृहस्थ, भिक्षु या वैखानस।"

जैसा कि दो धर्म सूत्रों से स्पष्ट है, यह चयन करना किसी व्यक्ति की इच्छा पर निर्भर है कि वह ब्रह्मचर्य धर्म निभाने के पश्चात् किस आश्रम में जाना चाहता है। यदि वह चाहे तो विवाह कर सकता है और गृहस्थ बन सकता है अथवा बिना विवाह किए वह सीधे संन्यास आश्रम में प्रवेश कर सकता है। मनु ने वानप्रस्थ और संन्यास आश्रम से पूर्व अनिवार्य गृहस्थ का निर्देश देकर सचमुच क्रांतिकारी परिवर्तन किया है, यह स्पष्ट है।

ऐसा प्रतीत होता है कि मनु ने एक अन्य परिवर्तन भी किया है। यह समझ नहीं आता कि गृहस्थ के पश्चात् संन्यास ग्रहण करने से पूर्व वानप्रस्थ की क्या आवश्यकता है? कोई व्यक्ति सीधे ही संन्यासी क्यों नहीं बन सकता? क्या वानप्रस्थ और संन्यास के बीच कोई ऐसा अंतर है जिसे मूलभूत कहा जा सके? इस अध्ययन के प्रकरण में हमने मनु के द्वारा वानप्रस्थ और संन्यासी के लिए बनाई गई संहिता का संग्रह किया है। इन नियमों पर दृष्टिगत करने से पता चलता है कि उनमें कठिनता से ही कोई भिन्नता है। इसको छोड़कर, कि वानप्रस्थ को कुछ धर्म-कर्म करने पड़ते हैं जिनकी व्यवस्था गृहस्थी के लिए है, दोनों आश्रमों के बीच कोई ठोस अंतर नहीं है। साथ ही यह भी सत्य है कि वानप्रस्थ और संन्यासी के समान प्रयोजन हैं। मनु के निम्नांकित उल्लेख से पता चल जाएगा, उनमें कैसा साम्य है।

परम प्राप्ति लक्ष्य

वानप्रस्थ	**संन्यासी**
6.29. जो ब्राह्मण वन में रहता है इन तथा अन्य धार्मिक कार्यों का परमात्मा से पूर्ण एकाकार हेतु पालन करे, विभिन्न धार्मिक विषयों का अध्ययन करे जो उपनिषदों में समाहित हैं।	6.85. "उपरोक्त नियमों का पालन कर कोई द्विज पाप से मुक्त हो जाता है और परमब्रह्म को प्राप्त होता है।

1. अध्याय 3, श्लोक 1 और 2

फिर मनु ने गृहस्थ और संन्यास के मध्य वानप्रस्थ की रचना क्यों कर डाली? वानप्रस्थ के विषय में यह कहा जा सकता है कि यह स्थिति मनु से पूर्व विद्यमान थी। वे अरण कहलाते थे। प्रोफेसर राधा कुमुद मुकर्जी[1] के अनुसार:

उन ब्रह्मचारियों को अरण अथवा अरण्यन कहा जाता था, जो ज्ञान प्राप्ति की अभिलाषा में अविवाहित रहना चाहते थे। ये अरण गांव के बाहर आबादी से दूर वैखानस के रूप में वनों में रहते थे। वह जंगल जहां अरण तापस रहते थे, अरण्य कहलाते थे। इन तापसों की दार्शनिक जिज्ञासा परम समस्याओं पर थी जैसे ब्रह्म, सृष्टि, आत्मा अथवा अमरता।

प्राचीन अरण को मनु ने वानप्रस्थ का नाम दे दिया जिसका अर्थ अरण ही है। मनु ने न केवल नाम ही बदला, उन्होंने एक महत्वपूर्ण परिवर्तन और कर दिया। उन्होंने ब्रह्मचर्य और वानप्रस्थ के मध्य में वैवाहिक अवस्था डाल दी जबकि मूल वानप्रस्थ अथवा अरण भी अविवाहितों के लिए थी, मनु का वानप्रस्थ अनिवार्यत: विवाहित के लिए है। प्राचीन अवस्था में ब्रह्मचारी स्वेच्छा से वानप्रस्थ अथवा गृहस्थ बन सकता था। मनु ने क्रम बदल दिया, जिससे कि कोई बिना विवाह किए वानप्रस्थ न बन जाए।

प्राचीन व्यवस्था के अनुसार वानप्रस्थ अथवा संन्यासी अपनी पत्नी अथवा संतान के साथ कोई कठोरता नहीं बरतते थे। मनु की नई व्यवस्था से यह आरम्भ हो गया क्योंकि पहले तो किसी को विवाह के लिए विवश किया जाए और फिर उसे अपनी पत्नी को त्यागने की अनुमति दे दी जाए। यदि यह अपराध नहीं है तो अत्याचार तो है ही। परन्तु मनु ने इसकी कोई परवाह नहीं की। वह तो सभी के लिए वैवाहिक अवस्था निर्धारण पर तुले थे।

मनु ने ऐसा क्यों किया? उन्होंने वानप्रस्थ और संन्यासियों के लिए गृहस्थाश्रम की अनिवार्यता क्यों रखी? मनु ने सभी आश्रमों में गृहस्थ को श्रेष्ठ बताया है। वे कहते हैं:

6.87. "विद्यार्थी, गृहस्थ, वैखानस और तापस-इनकी चार स्थितियां हैं इन सबका उद्‌गम गृहस्थ है।"

6.88. "किन्तु सभी (अथवा) इनमें से कोई (एक), अवस्था भी जिसका उत्तरोत्तर एवं पवित्र विधानानुकूल पालन किया गया है ब्राह्मण को उच्च स्थिति प्रदान करती है।''

---

1. *एजूकेशन इन एंशिएंट इंडिया, पृ. 6*

6.89. "और वैदिक नियमानुसार और स्मृति के अनुरूप गृहस्थ को श्रेष्ठतम बताया गया है क्योंकि वह अन्य तीनों का सहायक है।"

6.90. "जैसे सभी नदियां वशाल और लघु समुद्र में समा जाती हैं, इसी प्रकार सभी श्रेणियों के व्यक्ति गृहस्थ से संरक्षण पाते हैं।"

इस कथन को सत्य भी मान लेते हैं तो प्रश्न फिर भी बचता है कि मनु ने वानप्रस्थ और संन्यास के पूर्व विवाह की शर्त क्यों रखी? इसका एक ही उत्तर है कि वे लोगों को संन्यासी बनने से रोकना चाहते थे। मनु को संन्यास और वानप्रस्थ क्यों पसंद थे? इसका उत्तर यह है कि बौद्धधर्म का समर्थन और प्रचार सामान्यतः भिक्षु कहलाने वाले संन्यासियों ने किया था। अविवाहित लोगों के लिए भिक्षु बनना सरल था। मनु इसे रोकना चाहते थे। इसी कारण विवाह अनिवार्य बनाया।

प्रकरण

वानप्रस्थ और संन्यास की तुलनात्मक संहिता

I. आश्रम में प्रवेश करते समय परिवार से संबंध

वानप्रस्थ	**संन्यासी**
6.3. "सभी कृषि जन्य भोजन और वस्तुओं का परित्याग कर, पत्नी को पुत्रों के दायित्व में छोड़कर अथवा साथ ले जाकर वन में प्रयाण करे।"	6.38. "जगत स्रष्टा प्रजापति को पावन इष्टि संपन्न करने के पश्चात् जहां सारी सम्पत्ति यज्ञ शुल्क में देगा, पवित्र अग्नि को आत्मसात कर गृह से प्रयाण करेगा। (तापस रूप में)।"

II. आवास संबंधी नियम

वानप्रस्थ	**संन्यासी**
6.4. "पवित्र अग्नि और घरेलू (यज्ञ कार्यों के लिए आवश्यक सामग्री लेकर ग्राम से वन को प्रयाण करे और वहां इंद्रिय नियंत्रण से रहे।"	6.41. "पवित्र कमण्डल, दण्ड आदि से युक्त मौन धारण किया हुआ घर से निकला हुआ और उपस्थित इच्छा प्रवर्तक वस्तु में निःस्पृह होकर संन्यास ग्रहण करे।"
6.42. "वह बिना साथी के मोक्ष प्राप्ति हेतु अकेले ही विचरण करे, पूर्णतः समझते हुए कि एकाकी	6.43. "लौकिक अग्नि से रहित, गृह से रहित, शरीर में रोगादि होने पर भी चिकित्सा आदि का प्रबंध न

अपने अंतिम लक्ष्य का न परित्याग करता है और न परित्यक्त होता है।"

करने वाला, स्थिर बुद्धि वाला, ब्रह्म का मनन करने वाला, ब्रह्म में ही भाव रखने वाला संन्यासी भिक्षा के लिए ग्राम में प्रवेश करे।"

III. जीवन-चर्या के नियम

वानप्रस्थ

6.6. "वह चर्म अथवा गूदड़ पहने। वह प्रातः अथवा संध्या को स्नान करे। वह सदा शिखा रखे। उसकी दाढ़ी, उसके देह के बाल और नख न काटे जाएं।"

संन्यासी

6.44. "एक खपरा, पेड़ों की जड़ या वृक्ष का वक्कल, फटा-पुराना कपड़ा, अकेलापन, ममता और सब में समान भाव ये मुक्ति के लक्षण हैं।"

6.52. "उसके बाल, नाखून और दाढ़ी-मूंछ कटे हों, भिक्षापात्र, दण्ड-कमण्डल को लिए हुए सभी प्राणियों को पीड़ित न करता हुआ वह आत्मसंयमी सर्वदा विचरण करे।"

6.53. "उसके भिक्षापात्र धातु के न हों, वे छिद्र रहित हों, उनकी शुद्धि यज्ञ में यमस के समान केवल पानी से होती है।"

6.54. "तुम्बा, काष्ठ पात्र, मिट्टी के सकोरे या बांस की खप्पचियों से निर्मित पात्र संन्यासी के योग्य होते हैं। ऐसा स्वायंभुव पुत्र मनु ने कहा है।"

IV. जीवन-यापन संबंधी नियम

वानप्रस्थ

6.11. "वह यज्ञ के लिए पुरोदस और उबले आहार (कारु) नियमानुसार तैयार करे, तापसों के अनुकूल शुद्ध अन्न एकत्र करे जो वसंत और शरद ऋतु में उगता है।"

संन्यासी

6.49. "आत्मा संबंधी प्रसंगों से आनन्दित हो योगमुद्रा में बैठे, बाह्य सहायता से मुक्त, इन्द्रिय सुख से अनिच्छुक, स्वयं संगी जीवन मोक्ष के परमानंद का इच्छुक रहे।"

6.12. "प्रस्तुत किए जाने पर अत्यंत शुद्ध यज्ञ खाद्य प्राप्त करे जो वन्य पदार्थों से बना हो, बचे हुए पदार्थ वह नमक मिलाकर स्वयं खाए।"

6.26. "पदार्थों की प्राप्ति हेतु प्रयास न करे जो सुखद है। धरती पर बिन बिछौने सोए, कोई छाया न भोगे, वृक्ष की जड़ में रहें।"

6.27. "तापस रूप में रह रहे ब्राह्मणों से इतनी ही भिक्षा ले जो जीवन-यापन हेतु पर्याप्त है अथवा वनवासी द्विज गृहस्थों से भिक्षा ले।"

6.28. "अथवा (वनवासी वैखानस) गांव से भोजन लाए, उसे या तो दोने में अथवा अंजलि में या मिट्टी के बर्तन में मात्र आठ ग्रास खाए।"

6.50. "चमत्कार प्रदर्शन, शकुन ज्ञान, ज्योतिष अथवा हस्त-रेखा ज्ञान से परामर्श देकर और शास्त्रों की व्याख्या करके कभी भिक्षा न ले।"

6.51. "(भिक्षा के अभिप्रास से) वह उस घर के निकट न जाए जहां साधू, ब्राह्मण, पक्षी, श्वान अथवा अन्य भिक्षुक हो।"

V. भोजन संबंधी नियम

वानप्रस्थ

6.13. "उसका आहार हो शुष्क भूमि अथवा जल में उगे पदार्थ फल फूल, कंद मूल, शुद्ध वृक्षों के उत्पाद और अन्य फलों से निकला तेल।''

6.14. "वह शहद, मांस और कुकुरमुत्ता न खाए चाहे वह भूमि पर उपजा हो (या अन्यत्र) भूस्तृण, सिगरुक और श्लेशमंतक नामक फल न खाए।"

6.15. "आश्विन मास में वह तापसों का भोजन फेंक दे जो वह संग्रह

संन्यासी

6.55. "वह दिन में एक बार ही भिक्षाटन करे, भिक्षा में अधिक मात्रा में पदार्थ की कामना न करे क्योंकि यदि तापस भिक्षा के लिए आतुर है तो वह इंद्रिय सुख का इच्छुक माना जाता है।"

6.56. "जब रसोई से धुआं उठना बंद हो जाए, जब चूल्हा बुझ जाए, जब लोग भोजन से निवृत्त हो जाएं, जब जूठन फैंक दी जाए, तो तापस भिक्षा को जाए।"

6.57. "खाली हाथ लौट आने पर वह दुखी न हो, न ही प्राप्ति पर

करता है, उसी प्रकार अपने पुराने वस्त्र, शाक-मूल और फल फेंक दे।"

6.16. " वह हल चलाई गई धरती से अपने पदार्थ न खाए चाहे वे किसी ने फेंक दिए हों। ना ही गांव में उगने वाले मूल और फल चाहे (भूख से) व्याकुल भी हो।"

6.17. "वह अग्नि से पका भोजन अथवा समय पर पके फल ही खाए या वह पत्थर पर रगड़कर या दांत से काटकर ही खाए।"

6.18. "वह अपने दैनिक भोजन के उपरांत अपना भिक्षापात्र स्वच्छ करे अथवा एक मास के लिए पर्याप्त अथवा छह मास अथवा एक वर्ष के लिए संग्रह करे।"

6.19. "अपनी क्षमतानुसार भोजन एकत्र करके या तो रात्रि में (केवल) अथवा (दिन में) (केवल) अथवा चौथे समय अथवा आठवें समय भोजन करे।"

6.20. "अथवा वह चंद्रायण के अनुसार शुक्ल पक्ष अथवा कृष्ण पक्ष में अपने भोजन की मात्रा प्रतिदिन घटाए अथवा प्रत्येक पक्ष के अंतिम दिन एक बार ही जौ का दलिया खाए।"

6.21. "अथवा वह वैखानस के लिए निर्धारित नियमानुसार सतत फूलों,

प्रसन्न। वह इतना ही प्राप्त करे जो जीने के लिए आवश्यक है। वह अपने बर्तनों (की गुणवत्ता) का ध्यान न रखे।"

6.58. "वह सभी भोजन को तिरस्कार कर दे जो विनम्र अभिवादन के साथ प्राप्त हो (क्योंकि) जो तापस पूर्ण बंधनमुक्त है, वह बाध्य है कि विनम्र अभिवादन से भोजन न ले।''

कंद मूलों और उन फलों का आहार करे जो समय पर पके हों और स्वयं वृक्षों से टपके हों।"

6.22. "वह या तो भूमि पर लेटे अथवा दिन में पंजों पर खड़ा रहे अथवा वह एक बार खड़ा रहे एक बार बैठे। संन्यास प्रमाण (सूर्योदय, दोपहर, गोधूलि) पर (नहाने को) वन से जल लाए।"

VI. पालनार्थ कर्त्तव्य

वानप्रस्थ

6.5. "तापसों के अनुकूल विभिन्न प्रकार के पवित्र भोजन अथवा जड़ी-बूटियां, कंदमूल और फल देकर वह नियमानुसार पंच आहुतियां दे।"

6.7. "वह ऐसे आहार की आहुति दे जो वह लेता हो और क्षमतानुसार भिक्षा दे, जो उसके आश्रम में आएं, उसे जल, कंदमूल और फल देकर समादर प्रदान करे।"

6.8. "वह अकेला वेद पाठ करे, वह अभावों के प्रति धैर्यवान रहे, (सबसे) मैत्री बरते, सदैव उदार रहे, कदापि उपहार ग्रहण न करे, सभी जीवों के प्रति कृपालु रहे।"

6.9. " वह पवित्र त्रि-अग्नियों से नियमानुसार अग्निहोत्र करे, पूर्णिमा और अमावस्या को उचित समय यज्ञ करना न भूले।"

6.10. "वह नक्षत्रेष्टि, आग्रहायण, चातुर्मास्य यज्ञ और साथ ही उत्तरायण और दक्षिणायन यज्ञ नियम से करे।"

संन्यासी

6.65. "गहन ध्यानावस्था से वह परमात्मा की सूक्ष्मता को और प्राणी मात्र में उसकी उपस्थिति को जाने, उच्चतम भी निम्नतम भी।"

6.83. "वह निरंतर वेदपाठ करे जो यज्ञ-प्रसंग में हैं, देवों से सम्बद्ध हैं, जो आत्मा से सम्बद्ध हैं और वेदों के उपसंहार (वेदांत) में सन्निहित हैं।''

6.23. "ग्रीष्म में वह पंचाग्नि ताप सहे, पावस में मुक्ताकाश में रहे, शीतकाल में भीगे वस्त्र पहने, ऐसे वह अपने तप की शक्ति बढ़ाए।"

6.24. "जब वह दिन में तीन बार (प्रातः, दोपहर, संध्या) को स्नान करता है तो वह देवताओं को अर्घ्य चढ़ाए और कठोर से कठोर संयम बरते, वह अपनी देह सुखा डाले।"

6.25. "निर्धारित नियमानुसार पवित्र त्रियाग्नि को आत्मसात करे, वह बिना अग्नि के रहे, बिना घर रहे, मौन रहे, कंदमूल और फलों के आहार पर रहे।"

"सबसे पहली बात तो यह स्वीकार कर लेनी चाहिए कि एक समान भारतीय संस्कृति जैसी कोई चीज कभी नहीं रही और यह कि भारत तीन प्रकार का रहा – ब्राह्मण भारत, बौद्ध भारत और हिंदू भारत। इनकी अपनी–अपनी संस्कृतियां रहीं। ... भारत का इतिहास ब्राह्मणवाद और बौद्ध धर्म के अनुयायियों के बीच परस्पर संघर्ष का इतिहास रहा है।"

– भीमराव अम्बेडकर

भाग III

राजनैतिक

इक्कीसवीं पहेली

मन्वंतर का सिद्धान्त

ब्राह्मणों का एक सिद्धान्त था कि उनके देश का शासन स्वर्ग से चलता है। मन्वंतर का यही अर्थ प्रतीत होता है।

मन्वंतर का आशय देश की राजनीतिक सत्ता से है। इसके पीछे यह विश्वास है कि निश्चित अवधि के लिए सत्ता एक निगम को सौंप दी जाती है। इस समूह में एक मनु होता है, सप्तऋषि ओर एक इन्द्र होता है जो स्वर्ग में अपने आसनों से प्रजा से पूछे बिना अथवा इच्छा जाने बिना शासन-सूत्र चलाता है। एक समूह के शासन-काल को, जिसमें मनु की सत्ता सर्वोपरि है, मन्वंतर कहते हैं। एक मनु का शासनकाल समाप्त हो जाता है तो दूसरा आ जाता है। यह क्रम चलता रहता है। युगों की भांति मन्वंतर का भी समय-चक्र है। चौदह मन्वंतरों का एक चक्र होता है। *विष्णु पुराण* से मन्वंतरों का आभास मिलता है जो इस प्रकार है :

"तब ब्रह्मा ने सृष्टि-पालन हेतु स्वयं को मनु स्वायंभुव बना लिया। जो स्वयंमेव मौलिक रूप में एक रूप जन्मे, और अपने नारीभाग से उन्होंने शतरूपा को रचा जिसे सृजित प्राणियों की रक्षा हेतु तपस्या द्वारा वर्जित वैवाहिकता के पाप से शुद्ध किया जिसे मनु स्वयंभुव ने अपनी पत्नी बनाया।"

एक क्षण को हम यहां ठहरकर विचार करते हैं, इसके क्या अर्थ हैं? क्या इसका अर्थ यह है कि ब्रह्मा उभयलिंगी थे? क्या इसका अर्थ यह है स्वायंभुव मनु ने अपनी बहन शतरूपा को पत्नी बना लिया? *विषणु पुराण* के अनुसार यदि यह सही है तो कितना विचित्र है? *विष्णु पुराण* का आगे कथन है :

"इस युगल से दो पुत्र जन्मे, प्रियव्रत और उत्तानपाद, और दो पुत्रियां जन्मीं, प्रसूति और आकूति जो अत्यन्त लावण्यमयी और गुणवान थीं। प्रसूति का विवाह दक्ष से और आकूति का रुचि प्रजापति से। आकूति से जुड़वा बच्चे उत्पन्न हुए यज्ञ और दक्षिणा

यह 11 पृष्ठों की पाण्डुलिपि है: अंतिम चार पृष्ठ लेखक के हस्तलिखित हैं। – संपादक

जिन्होंने परस्पर विवाह कर लिया (भाई-बहन के विवाह का एक और उदाहरण)। उनके बारह पुत्र उत्पन्न हुए। वे देवता स्वायंभुव मन्वंतर में यम कहलाए।"

"प्रथम मनु स्वायंभुव था फिर स्वारोचिष। उसके उपरांत क्रमशः औतमी, तामस, रैवत, चाक्षुष, जो तिरोहित हो गए। सातवें वर्तमान मन्वंतर के मनु, सूर्य-पुत्र वैवस्वत हैं।"

विष्णु पुराण कहता है अब मैं स्वारोचिष मनु के पुत्रों, देवताओं और ऋषियों के विषय में बताता हूं। इस काल (द्वितीय मन्वंतर) के देवता थे पारावत और तुषित। उनका इन्द्र था "विपश्चित" उनके सप्तर्षि थे। ऊर्ज, स्तंभ, प्राण, दत्तोली, ऋषभ, निश्चर, और अर्वरीवट। चैत्र और किंपुरुष तथा अन्य मनु के पुत्र थे।

"तीसरे मन्वंतर के मनु थे औतमी। उसके समय के इन्द्र थे सुशांति। देवताओं के नाम हैं : स्वधामा, सत्य, शिव, प्रतर्दन और वसुवृति और प्रत्येक पांच वर्ग के बारह देवता थे। उस समय के सप्तर्षि वशिष्ठ के सात पुत्र, सात ऋषिगण थे और अज, परसु, दिव्य तथा अन्य मनु के पुत्र थे।

चौथे मनु तापस के काल में पूजनीय देवता थे सुरूप, हरि, सत्य और सुधि। प्रत्येक वर्ग में सत्ताईस देवता थे। शिवी उस काल का इन्द्र था। सौ यज्ञ संपन्न करने के कारण उसे शतक्रतु भी कहा जाता है। सप्तऋषि थे ज्योजिर्धाम, पृथु, कव्य, चैत्र, अग्नि, वानक, और पिवर। तामस के बलशाली पुत्र थे। राजा नर, ख्याति, सांथ्य, जनुजंघा आदि।

पांचवें मन्वंतर के मनु रैवत थे। उनका इन्द्र विभु था। देवतागण, जिनमें प्रत्येक के चौदह देवता होते थे, इस प्रकार थे-अमितभास, अभूतरास, वैकुंठगण, सुमेधगण। तत्कालीन सप्तऋषि थे : हिरण्यरोम, वेदश्री, उर्ध्वबाहु, वेदबाहु, सुद्युम्न, पर्जन्य और महामुनि। रैवत के पुत्र इस प्रकार थे- बाल बंधु, सुसंभाव्य, सत्यक तथा अन्य वीर राजा।

ये चार मनु-स्वारोचिष, औतमी, तामस और रैवत प्रियव्रत की संतान थे जिसने विष्णु को अपनी उपासना से प्रसन्न करके अपनी संतति के लिए मन्वंतरों का मनु बनाए जाने का वर प्राप्त कर लिया था।

छठे मन्वंतर का मनु चाक्षुष था। उसका इन्द्र मनोज्व था। उस काल के पांच वर्ग के देवता थे आद्य, प्रस्तुत, भव्य, पृथुग और उदारता की प्रतिमूर्ति लेखगण। उस काल के सप्तर्षि थे- सुमेध, विराज, हाविष्मत, उत्तम, मधु, अभिनमान और सहिष्णु। पृथ्वी के स्वामी चाक्षुष के शक्तिशाली पुत्र थे उरू, पुरु, शतद्युम्न आदि।

वर्तमान सातवें मन्वंतर के मनु अन्त्येष्टि देव, सूर्य की अनुपम संतान वैवस्वत हैं और उनके देवता हैं आदित्य, वसु और रुद्र। उनका इन्द्र पुरन्दर सप्तर्षि है।

वशिष्ठ, कश्यप, अत्रि, जमदग्नि, गौतम, विश्वामित्र, और भारद्वाज। वैवस्वत मनु के नौ धर्मनिष्ठ पुत्र हैं राजा इक्ष्वाकु, नाभानिदिष्ट, करुष, पृषध्र और वसुमत।"

अभी सात मन्वंतरों का विवरण दिया गया है जो *विष्णु पुराण* में उल्लिखित हैं। ये *विष्णु पुराण* लिखे जाने तक की स्थिति थी। क्या मन्वंतर शासन बाह्य था? इस विषय में ब्राह्मण मौन हैं। परन्तु *विष्णु पुराण* के लेखक को पता है कि सात मन्वंतर अभी और आने हैं। इनका विवरण इस प्रकार है:

"विश्वकर्मा की पुत्री संज्ञा सूर्य की पत्नी थी, उसकी तीन संतानें हुई– मनु (वैवस्वत) यम और यमी (अथवा यमुना); अपने पति का तेज झेलने में असमर्थ संज्ञा ने उसे छाया दे दी और स्वयं उपासना के लिए वनों में चली गई। सूर्य ने छाया को अपनी पत्नी संज्ञा जान कर उससे तीन संतान और उत्पन्न कीं। शनिश्चर (शनि), मनु (सावर्णी) और पुत्री ताप्ती (ताप्ती नदी)। छाया को एक बार यम पर क्रोध आ गया। उसने उसे शाप दिया साथ ही उसने यम को और सूर्य को यह भी बता दिया कि वह वास्तविक संज्ञा नहीं है। छाया के यह बताने पर कि उसकी पत्नी जंगलों में चली गई है सूर्य ने अपनी दिव्यदृष्टि से देखा कि वह घोड़ी रूप में तपस्यारत है (अश्वी), सूर्य ने घोड़े के रूप में पुनर्जन्म ले लिया था और अश्वरूपिणी अपनी पत्नी के पास पहुंच गया। और उससे तीन अन्य संतानें उत्पन्न कीं। दो आश्विन और रैवत थीं। फिर संज्ञा को घर ले गया। विश्वकर्मा ने सूर्य (नक्षत्र) की गहनता कम करने और उसकी दीप्ति घटाने के उद्देश्य से अपनी चक्री पर चढ़ाया और उसे घिस कर आठवां भाग कर दिया क्योंकि इससे अधिक अविभाज्य था। जो दैवी वैष्णव भव्यता सूर्य में थी, वह विश्वकर्मा के घिसने से धरती पर गिरी। शिल्पकार (विश्वकर्मा) ने विष्णु का चक्र, शिव का त्रिशूल, कुबेर का शस्त्र और कार्त्तिकेय का वेलु बनाया और अन्य देवों अन्य देवों के शस्त्रों का निर्माण किया। विश्वकर्मा ने इन सबका निर्माण सूर्य की तेजोपम किरणों से किया।"

"छाया का पुत्र, जो मनु कहलाता था, उसी वर्ण का होने के कारण उसका दूसरा नाम सावर्णी पड़ा। जैसा कि उसके बड़े भाई मनु वैवस्वत का था। वह आठवें मन्वंतर का मनु है। अब मैं उसका विवरण निम्न बातों के साथ देता हूं। जिस काल में सावर्णी मनु बनेंगे, उनके देवगण होंगे सुतप, अभिताभास और मुख्य तथा प्रत्येक के 21 देवगण होंगे तथा सप्तऋषि इस प्रकार होंगे: दीप्तिमत, गालव, राम, कृप और द्रोणि। मेरा पुत्र व्यास छठा और ऋष्यऋंग सातवां ऋषि होगा। इस युग का इन्द्र बलि

होगा। विरोचन का निष्पाप पुत्र विष्णु की कृपा से पाताल का राजा बनेगा। सावर्णी की संतानें होंगी–विराज, अरवरिवास, निर्मोह आदि।

"नौवें मनु दक्ष सावर्णी होंगे। उस समय के तीन प्रकार के देव होंगे–घारस, मारीचिगर्भ और सुधर्मा। प्रत्येक वर्ग में बारह देव होंगे और उनका प्रमुख इन्द्र होगा। अद्‌भुत सवन, द्युतिमत्, भव्य, वसु, मेधातिथी, ज्योतिषान और सत्य, ये सप्तऋषि होंगे, धृतिकेतु, दृप्तिकेतु, पंचहस्त, निर्मय, पृथुसर्व आदि मनु के पुत्र होंगे।

"दसवें मन्वंतर में मनु ब्रह्म सावर्णी होंगे; उनके देवगण होंगे सुधामा, विरुद, शंतसांख्य उनका इन्द्र बलशाली शांति होगा; सप्तऋषि होंगे–हविष्मान, सुकृति, सत्य; अप्पममूर्ति, नाभाग, अप्रतिमौज और सत्यकेतु। मनु के दस पुत्र होंगे– सुक्षेत्र, उत्तौज, हरिषेण आदि।"

"ग्यारहवें मन्वतर का मनु धर्मसावर्णी होंगे। उसके समय देव होंगे विहंगम, कामागम और निर्माणरति और प्रत्येक की संख्या तीस होगी। इस मन्वंतर का इन्द्र वृष होगा। सप्तर्षि होंगे निश्चर, अग्नितेज, वपुस्मान, विष्णु, आरुणी, हविष्मान और अनघ। पृथ्वीपालक मनु के पुत्र होंगे सावर्ग, सर्वधर्म, देवानिक और अन्य।"

"बारहवें मन्वंतर में रुद्र–सावर्णी का पुत्र मनु होगा; उस काल का इन्द्र होगा ऋतुधामा, देवों के नाम होंगे हरित, लोहित, सुमानस और सुकर्मा। प्रत्येक की संख्या पन्द्रह होगी। सप्तर्षि इस प्रकार होंगे : तपस्वी सुतप, तपोमूर्ति, तपोर्ति, तपोधृति, तपोद्युति और तपोधन; और मनु के मेधावी और बलशाली पुत्र होंगे–देव, उपदेव तथा देवश्रेष्ठ आदि।"

तेरहवें मन्वंतर का मनु रौच्य होगा। देववर्ग होगा– सुधामन, सुधर्मन, और सुकर्मण, उनका इन्द्र दिवसपति होगा। सप्तर्षि होंगे निर्मोह, तत्वदर्शन, निष्प्रकंप, निरुत्सुक धृतिमत, अव्यय और सुतापस तथा त्रिसेन, विचित्र तथा अन्य नृप होंगे।"

"चौदहवें मन्वतर का मनु भौत्य होगा। शुचि उसका इन्द्र होगा। देवताओं के पांच वर्ग होंगे चाक्षुष, पवित्र, कनिष्ठ, भ्रजीराज, और वैवृद्ध। सप्तर्षि इस प्रकार होंगे। अग्निबाहु, शुचि, शिक्रमागध, ग्रिधृ, युक्त और अजित। मनु के पुत्रों के नाम होंगे उरु, गभीर, गभीरा, बृधन, आदि राजा होंगे और इस धरा के शासक होंगे।"

इस प्रकार की है मन्वंतरों की कहानी। आजकल हम सर्वहारा वर्ग के अधिनायकवाद की बातें सुनते हैं। ब्राह्मणों का सिद्धान्त इसके ठीक विपरीत है। उनका सिद्धान्त है सर्वहारा पर स्वर्ग में बैठे पिताओं का अधिनायकवाद।

इस प्रकार एक प्रमुख प्रश्न उठता है। एक के पश्चात् एक मनुओं ने किस प्रकार प्रजा पर शासन किया? "प्रजा के लिए उन्होंने कौन से विधान बनाए?" इसका उत्तर

केवल *मनुस्मृति* से ही प्राप्त होता है।

मनुस्मृति के प्रथम अध्याय से यह उत्तर मिलता है :

1. ऋषिगण मनु के पास गए जो एकाग्रचित्त बैठे थे; उनकी समुचित उपासना करके उन्होंने ऐसा कहा:

2. देव हमें साररूप में उचित क्रम में चारों (मुख्य) वर्णों और मध्यवर्तियों के लिए पवित्र विधान बताएं।

3. क्योंकि, हे देव! केवल आपको ज्ञात है कि स्वायंभुव (मनु) ने क्या अनुष्ठान और आत्मा के ज्ञान का उपदेश किया है जो ज्ञान और अनुभव के परे हैं।

मनु उन्हें उत्तर देते हैं:

5. यह ब्रह्मांड अंधकारमय अदृश्य था। इसका कोई आकार नहीं था। पहचान नहीं थी। न इसे समझा जा सकता था, न इसे जाना जा सकता था क्योंकि यह गहरी निद्रा में सुप्त था।

8. स्वायंभुव मनु ने सोचा मैं एक से अनेक होऊं। उन्होंने सर्वप्रथम जल की रचना की और उसमें बीज डाल दिया।

9. वह (बीज) एक स्वर्णिम अण्डज बन गया। दीप्ति में सूर्य के समान इसी अण्डे से वह स्वयं ब्रह्मा जन्मे, समस्त सृष्टि के रचयिता।

34. तब मैंने सृष्टि रचना के लिए कठोर तप किया। इसके पश्चात् दस महान ऋषियों को बनाया जो सृष्टि के स्वामी थे।

35. मारीचि, अत्रि, आंगिरस, पुलस्त्य, पुलह, क्रतु, प्रचेतस, वशिष्ठ भृगु और नारद को रचा।

58. परन्तु उसने पवित्र विधान का सम्पादन कर उन्हें दीक्षित किया। स्वयं उन्हें सिखाया, शास्त्रानुसार आरंभ में मात्र मुझे ही, फिर मैंने वे (विधान) मारीचि और अन्य ऋषियों को बताए।

59. भृगु ये विधान तुम्हें बताएंगे क्योंकि उस ऋषि ने सम्पूर्ण रूप में पूर्णता से मुझसे सीखा है।"

इससे यह प्रकट होता है कि केवल मनु ने विधान बनाया। जो स्वायंभुव मनु था। *विष्णु पुराण* के अनुसार प्रत्येक मन्वंतर का एक मनु है। उन्होंने अपने मन्वंतरों के लिए विधान क्यों नहीं चाहिए? अथवा स्वायंभुव मनु का बनाया विधान शाश्वत है। यदि ऐसा है तो ब्राह्मणों ने अलग मन्वंतर क्यों बनाए?

बाईसवीं पहेली

ब्रह्म धर्म नहीं है, ब्रह्मा किस काम का?

इतिहास में कई प्रकार की सरकारों का वर्णन है, वे हैं- राजतंत्र, कुलीनतंत्र, और प्रजातंत्र। इसमें अधिनायकवाद भी जोड़ा जा सकता है।

इस समय सर्वाधिक सरकारें प्रजातांत्रिक हैं। बहरहाल इस बात पर कोई सहमति नहीं है कि प्रजातंत्र क्या है? इस विषय का निरूपण करने पर हमें इस संबंध में दो विचार मिलते हैं। एक विचार है कि प्रजातंत्र एक प्रकार की सरकार है। इस विचार के अनुसार जब सरकार प्रजा द्वारा चुनी जाती है और जहां प्रतिनिधि सरकार है, वही प्रजातंत्र है। इसके अधीन प्रजातंत्र और प्रतिनिधि सरकार पर्यायवाची है जिसका अर्थ है वयस्क मताधिकार और समय-समय पर चुनाव।

दूसरे मत के अनुसार प्रजातंत्र सरकार की प्रणाली से भी बढ़कर है। यह समाज के संगठन का स्वरूप है। इसके लिए दो आवश्यक स्थितियां हैं जो इस बात का लक्षण है कि समाज प्रजातांत्रिक ढंग से गठित है। पहला यह कि समाज को वर्गों में विभक्त न किया जाए। दूसरा, लोगों और वर्गों की सामाजिक प्रवृति, जो निरन्तर समायोजन और हित सहयोजन को तत्पर हो। जहां तक प्रथम का संबंध है, इसमें कोई संदेह नहीं कि यह प्रजातंत्र का अति आवश्यक अंग है। जैसा कि प्रो. डेवी का मत है :[1]

(लेखक द्वारा निर्दिष्ट उद्धरण मूल पाण्डुलिपि 'डेमोक्रेसी एंड एजूकेशन', पृष्ठ 98 में उपलब्ध नहीं है।)

प्रजातांत्रिक ढंग से गठित समाज के लिए दूसरी शर्त भी उतनी ही आवश्यक है। वर्गों और व्यक्तियों के हितों में परस्पर सहयोजन न होने के प्रजातंत्र विरोधी परिणाम होते हैं जिनका प्रो. डेवी ने[2] भलीभांति वर्णन किया है :

---

1. *डेमोक्रेसी एंड एजूकेशन,* पृ. 98
2. वही, पृ. 99

इस अध्याय के मूल 20 पृष्ठ हैं। प्रथम दो और अंतिम छह लेखक के हस्तलिखित हैं। शेष टंकित पृष्ठों पर लेखक के संशोधन हैं। – संपादक

प्रजातंत्र के इन दो विचारों में निःसंदेह प्रथम यदि गलत भी नहीं तो अनावश्यक है। उस समय तक प्रजातांत्रिक सरकार नहीं कहला सकती जब तक कि उस समाज जिनके लिए वह कार्यरत है, उसकी रचना पद्धति प्रजातांत्रिक न हो। जो यह सोचते हैं कि प्रजातंत्र का अर्थ मात्र चुनाव कराना है, वे तीन गलतियां करते हैं।

पहली गलती तो यह विचार है कि सरकार और समाज बिलकुल अलग-अलग हैं। दरअसल सरकार समाज से अलग नहीं है। सरकार अनेक ऐसी संस्थाओं में से है जो समाज में जन्म लेती है और सामूहिक सामाजिक जीवन के लिए उसे कुछ आवश्यक काम सौंपे जाते हैं।

दूसरी गलती वे यह करते हैं कि वह यह नहीं समझते कि सरकार किसी समाज के अंतिम लक्ष्य, उद्देश्यों और आकांक्षाओं की प्रतिबिम्ब है और यह तभी संभव है जब समाज, जिसमें कि वह सरकार है, उसकी बुनियाद प्रजातांत्रिक है। अगर समाज की संरचना प्रजातांत्रिक नहीं तो सरकार भी वैसी नहीं हो सकती। जहां समाज शासक और शक्ति वर्ग में बंटा होगा, वहां सरकार, निश्चित रूप से शासक वर्ग की होगी।

उनकी तीसरी गलती यह है कि वे यह भूल जाते हैं कि किसी सरकार का अच्छा या बुरा होना, प्रजातांत्रिक या अप्रजातांत्रिक होना, आमतौर से उसके प्रशासनतंत्र पर निर्भर करता है, विशेष रूप से उसकी प्रशासनिक सेवाओं पर, जिसके ऊपर सर्वत्र सरकार को कानून-व्यवस्था के पालन हेतु निर्भर रहना पड़ता है। यह सब उस सामाजिक वातावरण पर निर्भर है जिसमें प्रशासक पलता है। यदि सामाजिक परिवेश ही अप्रजातांत्रिक है तो सरकार भी अप्रजातांत्रिक ही होगी।

लोग एक और गलती करते हैं जब वे यह समझ बैठते हैं कि प्रजातांत्रिक सरकार चलाने के लिए प्रजातांत्रिक प्रणाली अपना लेना ही काफी है। इस गलती को समझने के लिए यह जानना जरूरी है कि अच्छी सरकार कौन-सी होती है।

अच्छी सरकार का अर्थ है अच्छे कानून और अच्छा प्रशासन। यही अच्छी सरकार का मूलमंत्र है, इसके अतिरिक्त कुछ नहीं। यदि जिनके पास सत्ता है, वे उसका उपयोग समस्त समाज अथवा दलित वर्ग के स्थान पर अपने स्वयं के समाज के हित में करते हैं तो वह अच्छी सरकार नहीं हो सकती।

कोई प्रजातांत्रिक सरकार भली प्रकार चल सकती है या नहीं, यह समाज में सदस्यों पर निर्भर करता है। यदि समाज के लोगों की मानसिकता प्रजातांत्रिक है तो प्रजातांत्रिक सरकार से अच्छे परिणामों की अपेक्षा की जा सकती है। अगर ऐसा नहीं है तो प्रजातांत्रिक सरकार आसानी से एक खतरनाक तरीके की सरकार

हो सकती है। यदि किसी समाज के सदस्य जातियों अथवा वर्गों में बंटे होंगे और एक–दूसरे से कोई मतलब नहीं रखेंगे और जहां प्रत्येक व्यक्ति की आस्था पहले उसके अपने वर्ग के प्रति है तो यह जातिवाद अथवा वर्गवादी बन जाता है और अपने वर्ग के हितों को सबसे ऊपर रखकर चलेगा और अपने अधिकारों का प्रयोग कानून और न्याय को विकृत करके अपने वर्ग के हित–संवर्धन में लगायेगा और इस उद्देश्य से उन लोगों के प्रति जीवन के हर क्षेत्र में नियोजित रूप से भेदभाव बरतेगा जो उसके वर्ग से सम्बद्ध नहीं हैं तो प्रजातांत्रिक सरकार क्या कर लेगी? उस समाज में जहां विभिन्न वर्गों के बीच संघर्ष होता है और समाज विरोधी गतिविधियां और आक्रामक भावना पनपती हैं वहां की सरकार न्याय और निष्पक्षता से अपना कार्य नहीं कर सकती। ऐसे समाज में यदि सरकार लोगों की है और लोगों द्वारा बनाई भी गयी है किन्तु वह लोगों के लिए नहीं हो सकती। यह एक वर्ग की और एक वर्ग के लिए है। लोगों के लिए सरकार वही हो सकती है जहां प्रत्येक नागरिक का व्यवहार प्रजातांत्रिक है। इसका अर्थ है जहां प्रत्येक नागरिक अन्य सभी नागरिकों को समान समझने के लिए तैयार है; उतनी ही स्वतंत्रता देने के लिए तैयार है जितनी स्वयं चाहता है। प्रजातांत्रिक मानसिकता से एक प्रजातांत्रिक समाज में व्यक्ति का समाजीकरण हो जाता है। प्रजातांत्रिक सरकारों का पतन आमतौर से इस कारण हुआ है कि जिस समाज के लिए वे बनीं, वह समाज ही प्रजातांत्रिक नहीं था।

दुर्भाग्य से इस बात का अहसास ही नहीं किया जाता कि अच्छी सरकार अपने समाज की मानसिक और नैतिक प्रवृत्ति पर निर्भर करती है। प्रजातंत्र एक राजनीतिक तंत्र से आगे भी कुछ है। यह एक सामाजिक प्रणाली से भी आगे है। यह मस्तिष्क की प्रवृत्ति और जीवन–दर्शन है।

कुछ लोग प्रजातंत्र की बराबरी समानता और स्वतंत्रता से करते हैं। इसमें तो कोई सन्देह नहीं कि गहनता से प्रजातंत्र की अन्तरात्मा ही समानता और स्वतंत्रता है। परन्तु इससे भी महत्वपूर्ण प्रश्न यह है कि समानता और स्वतंत्रता कैसे सुरक्षित रह सकती है। कुछ व्यक्ति कह सकते हैं कि सरकार कानून, समानता और स्वतंत्रता की रक्षक होती है। यह सही जवाब नहीं है। समानता और स्वतंत्रता सहभावना से आती है जैसा कि फ्रांस की राज्यक्रांति के कर्णधारों ने उसे भ्रातृत्व कहा। भ्रातृत्व अपने में सम्यक अभिव्यक्ति नहीं है। बुद्ध ने सम्यक के लिए सही शब्द 'मैत्री' कहा है। इससे पता चलेगा कि हिन्दू धर्म में और दर्शन में भ्रातृत्व का सिद्धांत ही अज्ञात है। पर निष्कर्ष ऐतिहासिक तथ्यों से मेल नहीं खाता। हिन्दुओं के धार्मिक और दार्शनिक विचारों की

एक विचारधारा में भ्रातृत्व-भाव से भी बढ़कर सामाजिक प्रजातंत्र था, यह विचारधारा थी ब्रह्म-दर्शन[1]।

यदि कोई पूछे कि यह ब्रह्म-दर्शन क्या है, तो इसमें कोई आश्चर्य नहीं होना चाहिए। हिन्दुओं तक के लिए यह एक नई बात है। हिंदुओं को वेदांत का ज्ञान है। वे ब्राह्मणवाद से परिचित हैं, किन्तु ब्रह्मवाद को नहीं जानते। आगे बढ़ने से पूर्व कुछ विवरण आवश्यक है।

हिंदुओं के दर्शन और धर्म के तीन अंग हैं : वे इस प्रकार हैं -1. ब्रह्मवाद, 2. वेदांत, और 3. ब्राह्मणवाद। यद्यपि उनका परस्पर सम्बन्ध है परन्तु इनकी तीन भिन्न विचारधाराएं और मत हैं। वे हैं-

1. सर्वम खलविदम् ब्रह्म - सभी कुछ ब्रह्म है।
2. अहं ब्रह्मास्मि - आत्मा ही ब्रह्म है इसलिए मैं ही ब्रह्म हूं।
3. तत्वामसि - आत्मा और परमात्मा एक हैं। इसलिए तू भी ब्रह्म है।

ये महावाक्य कहलाते हैं और इन्हीं में ब्रह्मवाद का सार है। निम्नलिखित मतों में वेदांत की शिक्षा का सार है-

1. ब्रह्म ही सत्य है।
2. जगत माया अथवा मिथ्या है।
3. जीव और ब्रह्म का संबंध-

(i) एक है, (ii) एक नहीं है परन्तु आत्मा परमात्मा का अंश है। उससे भिन्न नहीं है, (iii) वे भिन्न और भाज्य हैं।

ब्राह्मणवाद का सार इस प्रकार प्रकट किया जा सकता है :

1. चातुर्वर्ण्य में विश्वास।
2. वेदों की पवित्रता और असंदिग्धता।
3. मुक्ति का मार्ग मात्र यज्ञ।

अधिकांश लोग वेदांत और ब्राह्मणवाद के बीच भेद से परिचित हैं और यह जानते हैं कि उनके बीच मतभेद हैं? किन्तु ब्राह्मणवाद और वेदांत के बीच के भेद को बहुत कम लोग जानते हैं। यहाँ तक कि हिंदू भी ब्राह्मणवाद के सिद्धांत से अवगत

---

1. मैंने यह शब्द प्रोफेसर हॉपकिंस की पुस्तक *एपिक्स ऑफ इंडिया* से लिया है।

नहीं हैं और न ही इसमें और वेदांत के बीच भेद से परिचित हैं। किन्तु इनके बीच स्पष्ट अंतर है। ब्रह्मवाद और वेदांत के बीच इस बात में सहमति है कि आत्मा और ब्रह्म एक ही हैं। परन्तु ब्राह्मणवाद जगत को मिथ्या नहीं मानता, वेदांत का विश्वास मिथ्यावाद है। दोनों के बीच यही मौलिक भेदहै।

ब्राह्मणवाद का सार है–विश्व सत्य है और विश्व के सत्य के पीछे ब्रह्म है। इसलिए प्रत्येक तत्व का सार ब्रह्म है।

ब्रह्मवाद के विरुद्ध दो प्रकार की आलोचनाएं की जाती हैं। यह कहा जाता है कि ब्रह्मवाद ढिठाई है। क्योंकि यह कहना "अहं ब्रह्मस्मि" एक प्रकार का अभिमान है। इसकी दूसरी आलोचना यह कहकर की जाती है कि कोई व्यक्ति ब्रह्म को नहीं जान सकता। "अहं ब्रह्मस्मि" इसलिए कहना एक गर्वोक्ति है। परन्तु किसी का अपना विश्वास हो सकता है। जिस संसार में मानवता इतने हीन भाव से ग्रस्त है, वहां एक व्यक्ति द्वारा ऐसी घोषणा करना स्वागत योग्य है। प्रजातंत्र का तकाजा है कि प्रत्येक व्यक्ति को अपनी क्षमता का अहसास होना चाहिए। यह भी आवश्यकता है कि प्रत्येक व्यक्ति यह समझे कि वह भी अन्य के समान है। जो "अहं ब्रह्मस्मि" का उपहास करते हैं, वे महावाक्य का दूसरा अंश भूल जाते हैं। वह है "तत्वामसि" यदि तत्वामसि को छोड़कर केवल अहं ब्रह्मास्मि कहा जाएगा तो यह हास्यापद होगा। किन्तु तत्वामसि कहने से ब्रह्मवाद पर गर्वोक्ति का आरोप नहीं लग सकता।

यह ठीक है कि ब्रह्म अजेय है। परन्तु इसके बावजूद ब्रह्म के सिद्धांत के कुछ सामाजिक प्रभाव हैं। आश्चर्यजनक रूप से प्रजातंत्र का बीज मंत्र यदि सभी व्यक्ति ब्रह्म का अंश हैं तो सभी समान भी हुए इसलिए उनमें लोकतंत्र के बीज विद्यमान हैं। इस दृष्टिकोण से ब्रह्म अज्ञेय हो सकता है। परन्तु इसमें कोई संदेह नहीं कि प्रजातंत्र का जितना बीज रूप ब्रह्म के सिद्धांत में है, उतना अन्यत्र नहीं।

केवल इस बात पर प्रजातंत्र का समर्थन करना एक बहुत कमजोर आधार है कि हम सभी ईश्वर की संतान हैं। इसलिए जब प्रजातंत्र इस आधार को अपनाता है तो उसमें दृढ़ता नहीं आती। परन्तु यह पहचानने और समझने के लिए कि हम सब एक ही तत्व से बने हैं तो इससे प्रजातंत्र में विश्वास के सिवाय अन्य कोई सिद्धांत नहीं बचता। यह मात्र लोकतंत्र का मार्ग नहीं दिखाता वह सबके लिए प्रजातंत्र को अनिवार्य बना देता है।

प्रजातंत्र के संबंध में पश्चिमी विद्वानों ने यह प्रचारित किया है कि प्रजातंत्र का उद्गम या तो ईसाई मत से हुआ है अथवा अफलातून (अरिस्टोटल) से और इसे

छोड़कर कोई अन्य स्रोत नहीं है। यदि उन्हें यह पता होता कि भारत में ब्रह्मवाद का सिद्धांत प्रतिपादित हुआ है, जो प्रजातंत्र का बेहतर आधार प्रदान करता है तो वे इतने हठधर्मी न होते। भारत के योगदान को भी प्रजातंत्र का सैद्धांतिक आधार तैयार करने में स्वीकार किया जाना चाहिए।

प्रश्न यह है कि ब्रह्मवाद का यह सिद्धांत क्या है? यह स्पष्ट है कि ब्रह्मवाद का कोई सामाजिक प्रभाव नहीं है। इसे धर्म का आधार नहीं बनाया गया। जब यह पूछा गया कि ऐसा क्यों हुआ? तो उत्तर यही मिला। ब्रह्मवाद तो केवल दर्शन हैं, जैसे कि दर्शन सामाजिक जीवन का प्रतिबिम्ब न होता हो। शून्य में ही रम गया हो। दर्शन केवल सैद्धांतिक ही नहीं होता। यह एक व्यावहारिक सम्भावना है। दर्शनशास्त्र का मूल जीवन की समस्याओं में है और दर्शनशास्त्र से जो सिद्धांत निकलते हैं, वहीं समाज के पुनर्निर्माण के कारक बनकर समाज में आ जाते हैं। केवल जानना ही आवश्यक नहीं है। जो जानते हैं वे इसे पूरा करें।

ब्रह्मवाद नया समाज क्यों नहीं दे पाया? यह एक बड़ी पहेली है। बात यह नहीं है कि ब्राह्मणों ने ब्रह्मवाद को मान्यता नहीं दी। वह तो दी। परन्तु उन्होंने कभी यह भी पूछा कि ब्राह्मण और शूद्र, पुरुष और नारी, छूत-अछूत के बीच विषमता का समर्थन कैसे कर सकते हैं? परन्तु उन्होंने नहीं पूछा। इसका परिणाम यह निकला कि एक ओर तो हमारे सामने शुद्धतम प्रजातांत्रिक ब्रह्मवाद का सिद्धांत है दूसरी और जातियों, उपजातियों, अछूतों, आदिम जातियों, जरायम पेशा जातियों के खानों में बंटा समाज है। क्या इससे बड़ा भी कोई अजूबा हो सकता है? और भी हास्यास्पद बात है महान शंकराचार्य के उपदेश। क्योंकि यह शंकराचार्य ही थे जिन्होंने कहा- एक ब्रह्म हैं, यही सत्य है, वही निरंतर है और उसी शंकराचार्य ने ब्राह्मणवादी समाज की सभी असमानताओं को शिरोधार्य किया। कोई पागल ही ऐसे दो परस्पर विरोधी सिद्धान्तों का प्रतिपादक हो सकता है। सचमुच ब्राह्मण एक गाय के समान है, वह कुछ भी और सब कुछ खा सकता है। जैसा कि एक गाय करती है, और फिर भी ब्राह्मण बनी रहती है।

तेइसवीं पहेली

कलियुग-ब्राह्मणों ने इसे अनन्त क्यों बनाया?

यदि हिन्दुओं में कोई धारणा सर्वाधिक व्याप्त है और जिसके विषय में सभी स्त्री-पुरुष, बूढ़े और जवान, समझदार और गैर-समझदार परिचित हैं, वह है-कलियुग। यह सभी जानते हैं कि आज का युग कलियुग है और वे कलियुग में रह रहे हैं। कलियुग का मनोवैज्ञानिक प्रभाव लोगों के दिमाग में घुसा हुआ है। इसका अर्थर है कि यह अमांगलिक युग है। यह अनैतिक युग है। इसलिए यह जानना आवश्यक है कि ऐसी भावना क्यों पनपी? हमें चार बातों का पता होना चाहिए, वे हैं- 1. कलियुग क्या है?, 2. कलियुग का आरंभ कब हुआ?, 3. कलियुग कब समाप्त होगा?, 4. लोगों में ऐसी धारणा क्यो पनपी?

I

प्रथम प्रश्न से आरंभ करते हैं। इसकी विवेचना के उद्देश्य से यह उचित होगा कि सर्वप्रथम हम इसका समास विग्रह करें और अलग से विचार करें। युग का अर्थ क्या है? *ऋग्वेद* में "युग" का प्रयोग काल, पीढ़ी और जनजाति के अर्थ में किया गया है जैसे कि युगे-युगे (हर युग में), उत्तरयुगानि (भविष्य काल में), उत्तर युगे (बाद के काल में) और पूर्वानि युगानि (पूर्व काल में) आदि अभिव्यक्तियां हैं। यह मानुषी, मानुष, मनुष्य के संबंधय में प्रयुक्त हुआ है जिसका शाब्दिक अर्थ मानव की पीढ़ियों से है। इसका एक ही अर्थ है-काल। यह स्थापित करने के अनेक प्रयत्न किए गए हैं कि वैदिक जन "युग" को कितने समय का मानते हैं। युग की व्युत्पत्ति संस्कृत की युज् धातु से है, जिसका अर्थ है, योजित करना और वह अर्थ ज्योतिष में योग के अर्थ में लिया जाता है। प्रो. वेबर का मत है कि युग का समय चन्द्रमा की चार गतियों के बराबर है।

इस अध्याय में 45 टाइप किए हुए पृष्ठ हैं। केवल पहले 9 पृष्ठों पर लेखक की हस्तलिपि में संख्याएं पड़ी हैं। बहरहाल इस अध्याय की सामग्री संपूर्ण है। – संपादक

इस बात पर प्रो. रंगाचार्य[1] ने एक सिद्धांत प्रतिपादित किया है कि "सम्भवत: युग का अर्थ नव चन्द्रमा से एक माह की अवधि है जब सूर्य और चन्द्रमा आमने-सामने होते हैं अर्थात् जब उनका योग होता है।" अन्य विद्वान इससे सहमत नहीं। उदाहरणार्थ श्याम शास्त्री[2] के अनुसार युग एक साधारण वर्ष है जैसा कि *स्कन्द पुराण* का भाग कहे जाने वाले सेतुमहात्म्य में कहा गया है। इसी सिद्धांत के मत में इसे शुक्ल पक्ष और कृष्ण पक्ष के लिए भी प्रयुक्त किया गया है।

इन सब प्रयत्नों से यह जानने में सहायता नहीं मिलती कि वैदिक जन युग का समय कितना समझते थे?

वैदिकों के अथवा धर्म मीमांसकों के साहित्य में युग के संबंध में कोई यथार्थता नहीं है। ज्योतिषशास्त्रियों (वेदांग ज्योतिष के रचनाकारों) ने इसका अर्थ वैदिकजन से भिन्न एक निश्चित काल के लिए किया है। उनके अनुसार युग का अर्थ है पांच वर्ष का समय चक्र, जिसके अंग इस प्रकार हैं- 1. संवत्सर, 2. परिवत्सर, 3. इद्वत्सर, 4. अनुवत्सर और 5. वत्सर।

अब हम कलि पर आते हैं जो कृत, त्रेता, द्वापर और कलि, चार युगों के चक्र का एक भाग है। 'कलि' शब्द का आरम्भ कहां से हुआ। कृत, त्रेता, द्वापर और कलि का उपयोग विभिनन तीन प्रसंगों में किया गया है। कलि शब्द तथा अन्य शब्दों का सर्वप्रथम प्रयोग जुए के पासों में हुआ करता था।

ऋग्वेद से पता चलता है कि पासों की गोटियां विभीतक वृक्ष के फलों की हुआ करती थीं। यह वृक्ष जायफल के आकार का होता है उसके पांच सपाट रुख होते हैं। बाद में पासे चौकोर बनाए जाने लगे। चारों कोनों पर चार अंक होते थे 4, 3, 2, 1। जिस ओर '4' लिखा होता, वह 'कृत' था, 3 वाला त्रेता, 2 वाला द्वापर और 1 की गिनती वाला भाग कलि कहलाता था। श्याम शास्त्री बताते हैं कि किस प्रकार जुआ यज्ञ का अंग बन गया, किस प्रकार यह खेला जाता था? उसका वर्णन[2] इस प्रकार है:

"यजमान की गाय ले जाते समय अनेक खिलाड़ी मार्ग में उसके साथ चला करते थे और गाय पर दाव लगाते थे। वे कई दलों में बंटकर जुआ खेला करते थे। दाव के रूप में अनाज जमा कराया करते थे। प्रत्येक खिलाड़ी एक सौ अथवा उससे अधिक कौड़ियां जमीन पर फेंका करता था और इस प्रकार फेंकी गई कौड़ियों में से जब अधिक चित हुआ करती थीं या पट्ट हुआ करती थीं तो दाव के अनुसार उनकी संख्या चार से

---

1. *युगाज : ए क्वश्चन आफ हिंदू क्रोनोलाजी एण्ड हिस्ट्री*, पृ. 19
2. *द्रप्स : दि वैदिक साइकिल आफ एंक्लीप्स्ज*, (1938) पृ. 88

विभाजित हो जाती थी तो यजमान जीत जाता था। यदि नहीं तो वह हार जाता था। इस प्रकार जीते गये अनाज से बलि के दिन चार ब्राह्मण जिमाए जाते थे।"

वैदिक साहित्य के विषय में प्रो. इगलिंग के कथन से इस संबंध में कोई संदेह नहीं रह जाता है कि आदिकाल से ही जुए का प्रचलन था। यह भी स्पष्ट है कि यह खेल पांच पासों से खेला जाता था[1]। जिनमें से चार कृत और पांचवां कलि कहलाता था। वह ये भी बताते हैं कि खेल कई प्रकार का होता था और सबसे पहला खेल इस प्रकार का होता था कि यदि सारे पासे एक जैसे पड़ते थे तो खिलाड़ी जीत जाता था। जुआ राजसूय के समय और पवित्र अग्नि की स्थापना पर किए जाने वाले यज्ञ के समय भी खेला जाता था।

कृत, त्रेता, द्वापर और कलि शब्दों का गणित में भी प्रयोग किया जाता था। यह *भगवती सूत्र* पर अभयदेव सूरी की निम्न टीका से स्पष्ट है जो कि जैनधर्म का विशाल ग्रंथ है।

"गणित की शब्दावली में सम संख्या युग्म कहलाती थी और विषम संख्या को ओझ कहते हैं। दो संख्याओं को ही युग्म कहा जाना चाहिए और दो को ही ओझ। फिर भी, युग्म शब्द से अर्थ है– चार युग्म अर्थात् चार संख्याएं। उनमें कृत युग्म बनता है। कृत का आशय है सम्पूर्ण। क्योंकि चार के आगे कोई संख्या नहीं है, जिसे अलग नाम दिया जाता हो। (अर्थात् वह नाम कृत आदि) चार नामों से भिन्न है। जो संख्या अपूर्ण है, जैसे त्रियोज और दूसरी संख्याएं और जो विशेष सम संख्या है वह है कृत युग्म। जहां तक त्रियोज का प्रश्न है, ऐसी विषम संख्या है, जो कृतयुग के ऊपर विषम है वह त्रियोज है। जहां तक द्वापरयुग्म का प्रश्न है, वह भी कृतयुग्म की भांति सम संख्या है किंतु उससे भिन्न है जो आरंभ के दो से अथवा कृतयुग्म के ऊपर से आरम्भ होती है। वह द्वापरयुग्म है। द्वापर एक विशेष व्याकरणिक शब्द है। कालयोज वह विषम संख्या है, जो कलि से अविभाज्य है। अर्थात् एक कृतयुग्म के लिए एक कालयोज है। वे संख्याएं, जिन्हें चार से विभाजित किया जा सकता है। और संख्या पूरी तरह विभाजित हो जाती है, तो वह कृतयुग्म है। संख्याओं के क्रम में, यद्यपि चार को चार से विभक्त करने की आवश्यकता नहीं थी। वह स्वयं चार है, फिर भी वह कृतयुग्म कहलाती है।"

श्याम शास्त्री[2] इस शब्दावली को दूसरे आशय से प्रयोग करते हैं। उनके अनुसार, इनका उपयोग पर्व नाम से किया गया है जैसे, कृतपर्व, त्रेतापर्व, द्वापरपर्व और कलिपर्व। एक पर्व 15 तिथियों की अवधि का होता है या यह दिन पक्ष के नाम से पुकारे जाते

1. *शतपथ ब्राह्मण* में तत्संबंधी उनकी टिप्पणी देखें, खण्ड 4, पृ. 107
2. श्याम शास्त्री, द्रप्स, पृ. 92–3

हैं क्योंकि तिथियां धार्मिक अनुष्ठानों से जुड़ी होती हैं। इसलिए पर्व–समापन का सही समय महत्वपूर्ण है। यह कहा जाता था कि पर्व अपने समाप्ति काल के कारण चार भागों में विभाजित हैं, 1. वे या तो सूर्योदय पर समाप्त होते है।, या 2. पहले प्रहर में, 3. अथवा दोपहर बाद, 4. अथवा तीन पहर बाद। पहले को कृत पर्व कहते थे, दूसरे को त्रेता पर्व, तीसरे को द्वापर पर्व और चौथे को कलि पर्व।

उस समय 'कलि' और 'युग' शब्दों के कुछ भी अर्थ क्यों न रहे हों, परन्तु कलियुग दीर्घकाल से प्रयुक्त शब्द होने के कारण हिन्दुओं की कालगणना मे इकाई का द्योतक रहा है। हिन्दुओं के अनुसार चार युगों का एक चक्र है, उन्हीं में से कलियुग भी एक है। अन्य युग हैं कृत, त्रेता और द्वापर।

II

वर्तान कलियुग कब आरंभ हुआ? इस प्रश्न के दो विभिन्न उत्तर हैं।

ऐतरेय ब्राह्मण के अनुसार, इसका आरंभ वैवस्वत मनु के पुत्र नाभनिदिष्ट से होता है। पुराणों के अनुसार यह महाभारत युद्ध के पश्चात् कृष्ण के देहांत पर आरंभ हुआ।

समय निर्धारण में पहले डा. श्याम शास्त्री का कथन[1] है, कलियुग ईसा से 3,101 वर्ष पूर्व आरम्भ हुआ। दूसरा अनुमान गोपाल अय्यर ने गणना करके बताया है। उनके अनुसार महाभारत युद्ध 14 अक्तूबर, 1194 ई.पू. को आरंभ होकर 31 अक्तूबर को समाप्त हुआ था। उनका कहना है कि कृष्ण का देहांत युद्ध–समाप्ति के 16 वर्ष पश्चात् हुआ। उनका अनुमान इस बात पर आधारित है कि जब परीक्षित का राजतिलक हुआ, तो उसकी आयु सोलह वर्ष की थी और पाण्डवों ने परीक्षित का राजतिलक करते ही महाप्रस्थान किया था। राजतिलक उसी दिन हुआ था जिस दिन कृष्ण का देहांत हुआ था। इससे वह समय 1177 ई.पू. बैठता है, जब से कलियुग आरंभ हुआ।

इस प्रकार कलिनयुग के आरंभ के विषय में हमारे समक्ष दो तिथियां हैं। 3,101 ई.पू. और 1,117 ई.पू.। कलियुग के संबंध में यह प्रथम पहेली है। कलियुग के आरंभ के संबंध में दो भिन्न तिथियां दी गई हैं, जिनमें बहुत बड़ा कालांतर है। एक व्याख्या कहती है कि 3101 ई.पू. कल्प परिवर्तन की तिथि है न कि कलि के आरंभ की और यह नकल करने वाले की गलती है जिसने कल्प को कलि पढ़ लिया और भ्रांति पैदा कर दी। दूसरी व्याख्या डॉ. श्याम शास्त्री ने दी है। उनके अनुसार कलियुग दो हैं। एक, वह जो 3101 ई.पू. में आरंभ हुआ और दूसरा 1260 अथवा 1240 में आरम्भ हुआ। पहला कलियुग 1840 अथवा 1860 वर्ष रहा और समाप्त हो गया।

---

1. *गवम् अयन।*

III

कलियुग समाप्त कब होगा? इस प्रश्न पर महान भारतीय ज्योतिषाचार्य गर्गाचार्य ने अपने 'सिद्धांत' में प्रकाश डाला है जहां वे कहते हैं कि अशोक के चौथे उत्तराधिकारी मौर्य शासक ने निम्न प्रकार से अपने महत्वूपर्ण विचार प्रकट किये[1]:

तब दुष्ट यूनानी योद्धा साकेत, पांचाल और मथुरा को रौंदतें हुए कुसुमध्वज (पटना) पहुंचेंगे। तब पुष्पपुर विजयोपरांत नि:संदेह सभी प्रांतों में अव्यवस्था होगी। अपराजेय यवन मध्यदेश में नहीं रहेंगे। उनके मध्य परस्पर दहशतपूर्ण और भयानक युद्ध होगा। तब यूनानियों के विनाश के पश्चात् युग की समाप्ति पर सात शक्तिशाली राजा अवध पर शासन करेंगे।

महत्वूपर्ण शब्द हैं-"यूनानियों के विनाश के पश्चात् युग की समाप्ति पर" इन शब्दों से दो प्रश्न उत्पन्न होते हैं- 1. गर्ग के दिमाग में कौन सा युग था? और 2. भारत में यूनानियों की पराजय कब हुई? इन प्रश्नों के उत्तर में कोई संदेह नहीं है। युग से उनका आशय है कलियुग और यूनानी भारत में 165 ई.पू. में पराजित हुए। यह कोई अटकल बाजी नहीं है। *महाभारत* के वन पर्व में अध्याय 188 और 190 में स्पष्ट लिखा है 'कलियुग के अंत में' बर्बर शक, यवन, बाह्लीक और अन्य जातियां भारतवर्ष को रौंद डालेंगी।

इन दोनों कथनों का यह परिणाम निकलता है कि कलियुग 165 ई.पू. में समाप्त हो गया है। इस निष्कर्ष का बल प्रदन करने के लिए एक तर्क और है। *महाभारत* के अनुसार कलियुग का समय एक हजार वर्ष था[2] यदि हम यह स्वीकार करें कि कलियुग 1171 ई.पू. में आरंभ हो गया था। इसमें से यदि एक हजार वर्ष घटा दें तो कलियुग 171 ई.पू. में होना चाहिए। जो गर्ग द्वारा दिए गए ऐतिहासिक तथ्य से बहुत दूर भी नहीं है। इस बात में कोई संदेह नहीं रहना चाहिए कि प्रमुख ज्योतिषाचार्य[3] के विचार से कलियुग 165 ई.पू. में समाप्त नहीं हुआ है। हो जाना चाहिए था। परन्तु स्थिति क्या? वैदिक ब्राह्मणों के अनुसार कलियुग समाप्त नहीं हुआ यह जारी है। यह उस "संकल्प" शब्द से स्पष्ट है, जो किसी भी धार्मिक अनुष्ठान में प्रत्येक हिन्दू आज भी दुहराते हैं। यह संकल्प इस प्रकार है[4]:

"इस शुभ दिन और शुभ मुहुर्त में प्रथम ब्रह्मा के द्वितीय परार्ध में जो श्वेत वाराह कल्प कहलाता है, कलियुग में वैवस्वत मनु के काल में भारत देश के जम्बूद्वीप भरत

1. *सिवीलाइजेशन आफ एंशिएंट इण्डिया नामक अपनी पुस्तक में आर.सी. दास द्वारा उद्धृत।*
2. *क्रोनोलाजी ऑफ एंशिएंट इण्डिया*, पृ. 117
3. गर्ग का वक्तव्य *महाभारत* से लिया गया है जिसमें कलियुग 1000 वर्ष का बताया गया है। इसमें 171 और जोड़ देने पर 1171 बनता है जिसे कलि का आरंभ कहा गया है।
4. श्याम शास्त्री, *द्रप्स*, पृ. 84

खंड, में साठ वर्ष के वर्ष चक्र में जो प्राध्व से आरंभ होकर क्षय और अक्षय पर समाप्त होता है और जिसे विष्णु की आज्ञा से अमुक वर्ष दक्षिणी और उत्तरी अयन में अमुक शुक्ल या कृष्ण पक्ष, अमुक तिथि को मैं अमुक (नाम) अनुष्ठान के उद्देश्य से परमपिता के नाम पर संकल्प करता हूं।"

हमारे समक्ष प्रश्न यह है कि वैदिक ब्राह्मण कलि को क्यों जारी रखना चाहते हैं जबकि ज्योतिषाचार्य के अनुसार वह बीत चुका है? पहली बात यह देखनी है कि कलि युग का मूल समय क्या है? *विष्णु पुराण* के अनुसार :

कृत युग चार हजार वर्ष का है, त्रेता तीन हजार वर्ष का, द्वापर दो हजार वर्ष का और कलियुग एक हजार वर्ष का। ऐसा उनका कथन है कि जो भूतकाल को जानते हैं।

इस प्रकार वास्तविकता यह है कि कलियुग केवल एक हजार वर्ष का होता है। यह स्पष्ट है कि वे वैदिक ब्राह्मणों तक की गणना के अनुसार कलियुग कब का बीत चुका होता। परन्तु अभी नही बीता है। कारण क्या है? यह स्पष्ट है कि कलियुग जितने समय का होना चाहिए उसकी अवधि को बढ़ा दिया गया है। यह दो प्रकार से हुआ है।

पहली बात यह कि इसके आदि और अंत में दो समय और जोड़ दिए गए हैं– संध्या और संध्यांश। यह बात *विष्णु पुराण* में उपरोक्त प्रसंग में कही गई है जो इस प्रकार है:

"युग आरम्भ होने से पूर्व का काल संध्या कहलाता है........ जो युग समाप्ति से पूर्व आता है वह संध्यांश कहलाता है, उसकी अवधि भी उतनी ही होती है। संध्या और संध्यांश के मध्य के काल युग कहलाते हैं, कृत, त्रेता आदि।''

संध्या और संध्यांश की अवधि कितनी होती है? क्या यह प्रत्येक युग के साथ अलग–अलग थी? संध्या और संध्यांश की अवधि समान नहीं थी। प्रत्येक युग के साथ उनकी अवधि भिन्न है। निम्नांकित तालिका में चार युगों और संध्या तथा संध्यांश की अवधि दी गई है:

महायुग का नाम	काल	संध्या	संध्यांश	योग
कृतयुग	4000	400	400	4800
त्रेता	3000	300	300	3600
द्वापर	2000	200	200	2400
कलि	1000	100	100	1200
महायुग	–	–	–	12000

कलियुग की आयु 1000 वर्ष बताई जाने के बावजूद आज तक विद्यमान है। संध्या और संध्यांश को जोड़कर इसका काल 1200 वर्ष और बढ़ा दिया गया।

दूसरी बात यह है कि इसमें एक नया अनुसंधान कर लिया गया है। उनका कहना है कि युगों की जो अवधि नियत की गई थी, वह देवताओं के वर्ष के अनुसार है, मानव-वर्षों की तरह नहीं। वैदिक ब्राह्मणों के अनुसार, देवताओं का एक दिन धरती के एक वर्ष के बराबर है। इस प्रकार कलियुग का समय जो 1000 वर्ष और 200 (दो सौ) वर्ष था, संध्या और संध्यांश मिलाकर 1200 वर्ष बैठता है, वह अब हो गया (1200×360) अर्थात् 4,32,000 वर्ष। जिस कलियुग की समाप्ति की घोषण ाा 165 ईसा पूर्व कर देनी चाहिए थी और जैसा कि ज्योतिषाचार्य ने ही गणना की थी, इस प्रकार वैदिक ब्राह्मणों ने दो प्रकार से उसकी अवधि 4,32,000 वर्ष की कर दी है। इसमें कोई आश्चर्य नहीं कि कलियुग अब भी चालू है और लाखों वर्ष तक चलता रहेगा। कलियुग का अंत ही नहीं होगा।

IV

कलियुग का अर्थ क्या है? कलियुग का अर्थ है, अधर्म का युग, ऐस युग जो अनैतिक है, ऐसा युग जिसमें राजा द्वारा बनाए गए विधान का पालन नहीं किया जाता। सहसा एक प्रश्न उठता है। कलियुग पूर्व युगों की अपेक्षा अधिक अनैतिक क्यों हैं? कलियुग से पूर्व युगों में आर्यों के नैतिक मूल्य क्या थे? यदि कोई व्यक्ति बाद के आर्यों की प्रवृत्तियों और उनके सामाजिक व्यवहार की तुलना प्राचीन आर्यों से करेगा तो उसमें आश्चर्यजनक सुधार पाएगा और उनके व्यवहार और नैतिकता में सामाजिक क्रांति का पता चलेगा।

वैदिक आर्यों का धर्म बर्बर और अश्लील था। उस समय नरमेध यज्ञ हुआ करते थे। इसका यजुर्वेद संहिता, यजुर्वेद ब्राह्मण, सांख्यायन और वैतानसूत्र में सविस्तार वर्णन है।

प्राचीन आर्य लिंग पूजा करते थे। लिंग पूजा को स्कंभ कहते थे, जो आर्य धर्म का अंग थी जैसा कि *अथर्ववेद* के मंत्र 10.7 में है। एक और अश्लीलता थी, जिसने प्राचीन आर्य धर्म को विकृत किया हुआ था। वह था अश्वमेध यज्ञ अथवा घोड़े की बलि। अश्वमेध यज्ञ का एक आवश्यक हिस्सा यह था कि मेधित (मृत अश्व) का लिंग यजमान की मुख्य पत्नी की योनि में ब्राह्मणों द्वारा पर्याप्त मंत्रोच्चार करते हुए डाला जाता था। वाजसनेयी संहिता का एक मंत्र 23.18 प्रकट करता है कि रानियों के बीच इस बात के लिए प्रतिस्पर्धा रहा करती थी कि घोड़े से योजित होने का श्रेय किसे प्राप्त होता है? जो इस विषय में और अधिक जानना चाहते हैं, वे *यजुर्वेद* की महीधर की टीका में और विस्तार से पढ़ सकते हैं, जहां वह इस वीभत्स अनुष्ठान का पूरा विवरण देते हैं जो आर्य धर्म का अंग थी।

प्राचीन आर्यों का जैसा धर्म था वैसा ही चरित्र भी था। आर्य एक जुआरी जाति थी। आर्य सभ्यता के प्रारंभ से ही उन्होंने द्यूत–क्रीड़ा विज्ञान की रचना कर ली थी। यहां तक कि उन्होंने अपने पासों की तकनीकी शब्दावली भी बना डाली थी। सबसे सौभाग्यशाली दाव 'कृत' होता था और सबवे अभागा 'कलि'। त्रेता और द्वापर का मध्यम दर्जा था। प्राचीन आर्यों में न केवल बाजियां खेली जाती थीं, बल्कि उन पर दाव भी अवश्य लगा करते थे। वे इतने ताव में आकर खेलते थे कि जुए में उनका कोई सानी नहीं होता था। राजा नल ने अपना राजपाट ही जुए में खो दिया। पांडव तो और आगे बढ़ गए। उन्होंने न केवल अपने राजपाट से हाथ धोया बल्कि अपनी पत्नी तक को हार बैठे। केवल धनी आर्य ही जुआरी नहीं होते थे। अन्य कंगालों को भी इसकी लत थी।

प्राचीन आर्य एक पियक्कड़ जाति थी। मदिरा–पान उनके धर्म का अंग था। वैदिक देवता भी शराब पीते थे। देवताओं की शराब सोम कहलाती थी। क्योंकि आर्यों के देवता ही शराब पीते थे, इसलिए उन्हें भी पीने में कोई संकोच नहीं था बल्कि शराब पीना आर्य धर्म में कर्त्तव्य माना जाता था। आर्यों में इतने सोम यज्ञ हुआ करते थे कि मुश्किल से ही कोई दिन ऐसा बीतता होगा, जब सोमपान न किया जाता हो। सोम केवल तीन उच्च वर्णों, ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य तक सीमित था। किन्तु इसका अर्थ यह नहीं कि शूद्र नशाखोरी से मुक्त थे। जिन्हें सोम पीने की आज्ञा नहीं थी, वे सुरा पीते थे, कच्ची शराब जो बाजार में बिका करती थी। न केवल आर्य पुरुष शराब पीते थे बल्कि उनकी स्त्रियां भी नशे में धुत रहा करती थीं। कौशीतकी गृह्यसूत्र 1.11.12 में सलाह दी गई है कि चार अथवा आठ स्त्रियाँ, जो विधवा न हों, शराब और भोजन से तृप्त होकर विवाह से पूर्व रात्रि को चार बार नृत्य करने के लिए बुलाई जाएं। मद्यपान केवल गैर ब्राह्मण स्त्रियों में ही प्रचलित नहीं था, बल्कि ब्राह्मण स्त्रियों में भी इसकी आदत थी। मदिरापान पाप नहीं था। यह शर्म की बात नहीं थी बल्कि इसे सम्मानजनक माना जाता था। *ऋग्वेद* में कहा गया है:

"मदिरापान से पूर्व सूर्योपासना करें।"

यजुर्वेद कहता है:

"हे सोम देव! सुरा से शक्तिमान और प्रबल होकर देवों को शुद्ध मन से प्रसन्न कर, यजमान को सरस भोजन और ब्राह्मण और क्षत्रियों को बल दे।"

मंत्र ब्राह्मण का कथन है:

"जिससे स्त्रियों को पुरुषों के भोगने के योग्य बनाया गया है, जिससे पानी मदिरा में बदल जाता है (पुरुषों के आनंद हेतु) आदि......."

रामायण के उत्तरकांड में स्वीकार किया गया है कि राम और सीता दोनों ने मदिरा पी थी:

"जैसे इन्द्र ने शचि (अपनी पत्नी को), वैसे ही रामचन्द्र ने सीता को शुद्ध मधु

की शुद्ध मदिरा पिलाई। राम के कर्मचारीगण, मांस और मधुर फल लाए।"

वैसा ही कृष्ण और अर्जुन ने भी किया। *महाभारत* के उद्योग पर्व में संजय कहता है:

"अर्जुन और कृष्ण, मधु से बनी मीठी और सुगंधयुक्त मदिरा पिए, पुष्पहार धारण किए, भव्य वस्त्राभूषण धारण किए, रत्नमंडित स्वर्ण सिंहासन पर आसीन थे। मैंने श्रीकृष्ण के पैर अर्जुन की गोद में रखे देखे हैं और अर्जुन के पांच द्रौपदी और सत्यभामा की गोद में हैं।"

अब हम स्त्री-पुरुष के वैवाहिक संबंधों पर आते हैं। इतिहास क्या कहता है? आरंभ में आर्यों में विवाह के कोई नियम ही नहीं थे। समाज के उच्च और निम्न, दोनों वर्गों में स्वच्छंद संभोग प्रथा थी। इस संबंध में कोई प्रतिबंध नहीं थे। निम्नांकित उदाहरणों से यह स्पष्ट है।

ब्रह्मा ने अपनी स्वयं की पुत्री शतरूपा से विवाह किया। उनका पुत्र पृथुवंश का संस्थापक मनु था। उसी से इक्ष्वाकु और इला का उदय हुआ।

हिरण्यकश्यपु ने अपनी पुत्री रोहिणी से विवाह किया। पिता-पुत्री के विवाह के आम उदाहरण हैं जैसे वशिष्ठ और शतरूपा, जह्नु और जाह्नवी, सूर्य और उषा। पिता-पुत्री के बीच विवाह एक सामान्य बात थी। वह कानीन पुत्रों की मान्यता से प्रकट हैं। कानीन पुत्र का अर्थ है कुंवारी कन्या से पुत्रोत्पत्ति। विधानानुसार वे पुत्री के पिता से उत्पन्न पुत्र होते थे। स्पष्ट है कि वे उनके पिताओं द्वारा उत्पन्न पुत्र ही होने चाहिए।

ऐसे भी उदाहरण हैं कि पिता और पुत्र एक ही स्त्री के साथ सहवास करते थे। ब्रह्मा मनु के पिता थे और शतरूपा मनु की मां। यही शतरूपा मनु की पत्नी भी थी। दूसरा उदाहरण श्रद्धा का है। वह वैवस्वत की पत्नी है। मनु उनका पुत्र है परन्तु श्रद्धा मनु की पत्नी भी है। इससे संकेत मिलता है कि पिता और पुत्र एक ही स्त्री से सहवास करते थे। अपने भाई की पुत्री से विवाह करने की स्वतंत्रता थी। धर्म ने दक्ष की दस कन्याओं से विवाह किया जबकि दक्ष और धर्म भाई-भाई थे। चचेरी बहन से विवाह का भी प्रचलन था। कश्यप की तेरह पत्नियां थीं और वे सभी दक्ष की पुत्रियां थीं। दक्ष कश्यप के पिता मारीचि का भाई था।

ऋग्वेद में यम और यमी का प्रसंग आया है। यह प्रसंग भी बहुत कुख्यात है जिसमें भाई-बहन के विवाह संबंधों पर प्रकाश पड़ता है क्योंकि यम ने यमी के साथ संभोग करने से इंकार कर दिया। इससे यह नहीं कहा जा सकता कि उस युग में ऐसा होता नहीं था।

महाभारत के आदिपर्व में एक वंशावली दी गई है, जो ब्रह्मदेव से आरम्भ होती है। इस वंशावली के अनुसार ब्रह्मा के तीन पुत्र थे, मारीचि, दक्ष और ब्रह्मा तथा एक पुत्री, जिसका नाम दुर्भाग्य से वंशावली में नहीं है। इसी वंशावली में कहा गया है कि दक्ष की बहन ही हुई। उन दोनों से 50-60 पुत्रियाँ उत्पन्न हुईं। भाई-बहन के विवाह के

अन्य उदाहरण भी उपलब्ध हैं। वे हैं–पूशान और उसकी बहन अच्छोद और अनावसु, पुरुकुत्स और नर्मदा, विप्राचिती और सिंहिका, नहुष और विराज, शुक्र–उशनस और गो, अंशुमान और यशोदा, दशरथ और कौशल्या, राम और सीता, शुक और पीवरी, द्रौपदी और प्रश्नी। ये भाई–बहन के विवाह थे।

निम्नांकित उदाहरण प्रकट करते हैं कि माता और पुत्र के बीच भी सहवास होता था। पूशान और उसकी मां, मनु और शतरूपा और मनु और श्रद्धा का उदाहरण है। दो अन्य बातों की ओर भी ध्यान दिया जाना चाहिए। अर्जुन और उर्वशी और अर्जुन और उत्तरा। उत्तरा का अभिमन्यु से विवाह हुआ था, जो अर्जुन का पुत्र था। उस समय उसकी आयु केवल 16 वर्ष की थी। उत्तरा का अर्जुन के साथ सम्पर्क था। वह उसे नृत्य–संगीत सिखाता था। यह बताया गया है कि उत्तरा के मन में अर्जुन के प्रति प्रेमांकुर थे और *महाभारत* कहता है इन प्रेम–संबंधों के कारण ही उनका प्राकृतिक विवाह हुआ। *महाभारत* यह नहीं कहता कि उनका विधिवत विवाह हुआ। यदि प्राकृतिक विवाह हुआ तो कहा जा सकता है कि अभिमन्यु ने अपनी माता से विवाह किया। इस संबंध में अर्जुन–उर्वशी प्रकरण और भी ठोस उदाहरण है।

इन्द्र, अर्जुन का वास्तविक पिता था। उर्वशी, इन्द्र की रखैल थी। इस प्रकार वह अर्जुन की मां के रिश्ते में थी। यह अर्जुन की शिक्षिका थी और उसे नृत्य और संगीत सिखाती थी। उर्वशी अर्जुन पर मोहित हो गई। उसके पिता इन्द्र की सहमति से उसने अर्जुन से सम्भोग करने के लिए निवेदन किया। अर्जुन ने सहवास से यह कहकर इंकार कर दिया कि वह उसकी माता के समान है। ऐतिहासिक रूप से अर्जुन की अस्वीकृति के स्थान पर उर्वशी का व्यवहार अधिक महत्वूर्ण है। उसके दो कारण हैं। उर्वशी द्वारा इन्द्र की सहमति से, अर्जुन से प्रणय निवेदन करना इस बात का परिचायक है कि उस समय ऐसा हुआ करता था। दूसरी बात यह है कि उर्वशी अर्जुन से कहती है कि यह तो एक पुराना रिवाज है और अर्जुन के पूर्वजों ने ऐसे आमंत्रण को निःसंकोच स्वीकार किया है।

सहवास के लिए सगोत्र का ध्यान न रखने की निम्नांकित कहानी से बड़ा उदाहरण मिल ही नहीं सकता, जो *हरिवंश पुराण* के दूसरे अध्याय में समाविष्ट है। इसके अनुसार सोम दस पिताओं का पुत्र था, जो बहुपतित्व–प्रथा का संकेत है। उनमें से एक का नाम था–प्रल्हेत। सोम की एक पुत्री थी–मरीशा। सोम के दस पिता और स्वयं सोम उसके साथ सहवास करते थे। यह एक ऐसा उदाहरण है, जब किसी स्त्री के पितामह और पिता उसके पति भी थे, जो अपने पितामहों और पिता की पत्नी थी। दक्ष प्रजापति सोम का पुत्र था और उसने अपनी 27 पुत्रियाँ, अपने पिता को संतति–वृद्धि के लिए ब्याह दीं। 'हरिवंश' के तीसरे अध्याय में लेखक कहता है कि दक्ष ने अपनी एक बेटी का विवाह अपने ही पिता ब्रह्मा से कर दिया। उससे एक पुत्र नारद उत्पन्न हुआ। यह सपिण्ड स्त्री–पुरुषों के सहवास के प्रसंग हैं।

प्राचीन आर्य स्त्रियां बेची जाती थीं। आर्य विवाह-पद्धति के रूप में पुत्रियों के विक्रय के साक्ष्य उपलब्ध हैं। किसी पिता का पुत्र, किसी स्त्री का जो मूल्य चुकाता था, उसके लिए पारिभाषिक शब्द 'गो-मिथुन' प्रचलित था। दूसरे शब्दों में कहा जा सकता है कि गो-मिथुन के बदले लड़कियाँ बेच दी जाती थीं। 'गो-मिथुन' का अर्थ है एक गाय और एक वृषभ जो किसी कन्या का समुचित मूल्य समझा जाता था। न केवल पिता अपनी पुत्रियों को बेचा करते थे बल्कि पति अपनी पत्नियां भी बेच दिया करते थे। *हरिवंश पुराण* के 79वें अध्याय में इस बात का जिक्र है कि एक अनुष्ठान पुण्यक व्रत में यज्ञ करने वाले पुरोहित को शुल्क क्यों दिया जाए। इसमें कहा गया है कि ब्राह्मणों की पत्नियां उनके पतियों से खरीद ली जाएं और पुरोहित को उसके दक्षिणा के रूप में दे दिया जाए। इससे यह स्पष्ट है कि ब्राह्मण बेझिझक अपनी पत्नियां बेचते थे।

यह भी सत्य है कि प्राचीन आर्य अपनी स्त्रियों को दूसरों को सहवास के लिए किराये पर दे दिया करते थे। *महाभारत* के अध्याय 103 से 123 में माधवी के जीवन का उल्लेख है। इस आख्यान के अनुसार माधवी राजा ययाति की पुत्री थी। ययाति ने उसे गालव को उपहार में दे दिया था जो एक ऋषि था। गालव ने उसे एक के बाद एक तीन राजाओं को क्रमशः सहवास और पुत्र प्राप्ति हेतु दे दिया। जब तीसरे राजा की भोग की अवधि समाप्त हो गई तो गालव ने माधवी को अपने गुरु विश्वामित्र को सहवास के लिए दे दिया जिसको उन्होंने अपनी पत्नी बना लिया और तब तक उसे अपने पास रखा, जब तक उन्हें एक पुत्र प्राप्त नहीं हुआ। इसके उपरांत विश्वामित्र ने उसे गालव को लौटा दिया। अंत में गालव ने उसे उसके पिता ययाति को वापस दे दिया।

प्राचीन आर्य समुदाय में बहुपतित्व और बहुपत्नीत्व दोनों प्रथाएँ प्रचलित थीं। उदाहरण इतने अधिक हैं कि उनको प्रस्तुत करना आवश्यक नहीं है। परन्तु शायद जिसका लोगों को पूरी तरह पता नहीं है, वह तथ्य था- स्वच्छंद संभोग। स्वच्छंद संभोग उस स्थिति में स्पष्ट दृष्टिगोचर होता है जब हम नियोग-प्रथा पर विचार करते हैं। नियोग-प्रणाली जिसे आर्यों ने प्रथा का रूप दे दिया, जिसमें कोई स्त्री विवाहित पति के अतिरिक्त, किसी अन्य व्यक्ति से नियोग (सहवास) से संतान प्राप्त (उत्पन्न) कर सकती थी। इस प्रणाली के कारण समाज में संभोग की पूरी स्वच्छंदता थी, क्योंकि उस पर कोई नियंत्रण नहीं था। पहले तो इस पर कोई सीमा नहीं थी कि किसी स्त्री से कितने नियोग कराए जाएं। माधुरी को नियोग की अनुमति थी। अम्बिका ने एक वास्तविक नियोग कराया और दूसरे की इच्छा प्रकट की। सरदनंदिनी के साथ तीन बार नियोग हुआ। पाण्डु ने अपनी पत्नी कुंती को चार नियोगों की आज्ञा दी। व्युसिसताश्व को सात की आज्ञा थी और बलि के विषय में लिखा है कि उसने 17 बार नियोग की आज्ञा प्रदान की। इनमें से 11 एक पत्नी वु साथ और 6 दूसरी के साथ। जैसे नियोगों की संख्या पर कोई सीमा नहीं थी, वैसे ही इसकी भी कोई परिभाषा नहीं थी कि

किस स्थिति में नियोग कराया जा सकता है। नियोग किसी व्यक्ति के जीवन-काल में होता था और उन स्थितियों में भी जहां पति संतानोत्पत्ति की अक्षमता से नहीं उभर पाता हो। सम्भवतः पहल पत्नी की ओर से की जाती थी। हां, पुरुष का चुनाव भी उसी का होता था। उसे यह स्वतंत्रता थी कि यह निर्णय कर सके क उसे किस पुरुष से नियोग कराना है और कितने बार। नियोग अवैध संभोग का दूसरा नाम है, जो एक रात के लिए भी हो सकता था, बारह वर्ष तक भी या तब तक, जब तक कि इस व्यभिचार के प्रश्रयदाता पति की सहमति होती थी।

आर्यों के प्राचीन समाज में जन-सामान्य का यह आचरण और नैतिकता थी। ब्राह्मणों का चरित्र कैसा था? सच यह है कि वे जन-सामान्य से बेहतर नहीं थे। ब्राह्मणों की दुश्चरित्रता के अनेक उदाहरण हैं। परन्तु कुछ का उदाहरण पर्याप्त होगा। यह तो पहले ही बताया जा चुका था कि ब्राह्मण अपनी पत्नियां बेच दिया करते थे। हम उनकी दुश्चरित्रता की और मिसालें देंगे। उत्तंक वेद का शिष्य था जो जनमेजय तृतीय का पुरोहित था। वेद की पत्नी उत्तंक से अनुनय करती है कि वह उसे पत्नी के रूप में भोगे और संभोग-सुख के लिए उसके पास आए। दूसरा प्रसंग उद्दालक की पत्नी का है। वह स्वेच्छा से अथवा बुलाने पर किसी भी ब्राह्मण के पास जा सकती थी। श्वेतकेतु उसका पुत्र है, जो उसके पति के एक शिष्य से उत्पन्न हुआ था। व्यभिचार की यह मात्र मिसालें नहीं हैं। ये तो वे बातें हैं जिन्हें सब जानते हैं कि ब्राह्मण स्त्रियों को कितनी छूट थी। जटिल गौतमी एक ब्राह्मण स्त्री थी, जिसके सात पति थे, जो ऋषि थे। *महाभारत* में कहा गया है कि जब द्रौपदी को नगरवासियों ने अपने पांच पतियों के साथ देखा तो उसकी प्रशंसा की और उसकी उपमा जटिल गौतमी से दी जिसके सात पति थे। ममता उतथ्य की पत्नी है परन्तु उतथ्य के भाई बृहस्पति के उसके पास उतथ्य के जीवन-काल में ही खुला आना-जाना है। उसे केवल एक बार ममता की आपत्ति का सामना करना पड़ा, जब उसने कहा कि वह गर्भवती है, इसलिए अभी प्रतीक्षा करें परन्तु उसने यह नहीं कहा कि उनके ये संबंध अनुचित या अवैध हैं।

ब्राह्मणों के बीच ऐसी अनैतिकता व्याप्त थी कि जब बहुपतित्व के कारण दुर्योधन ने द्रौपदी पर कटाक्ष किया और उसकी गाय से उपमा दी तो उसने कहा कि तेरे पतियों को तो ब्राह्मण के घर पैदा होना चाहिए था।

अब जरा ऋषियों की नैतिकता का विवेचन करें। हम वहां क्या देखते हैं? पहली चीज जो हम ऋषियों में पाते हैं, वह भी पशुगमन। विभाण्डक ऋषि का उदाहरण लें। *महाभारत* के वन पर्व के 100वें अध्याय में कहा गया है कि वह एक हिरनी के साथ व्यभिचार करता था। उससे एक पुत्र भी उत्पन्न हुआ जिसेश्रृंग ऋषि कहा जाता है। *महाभारत* के आदि पर्व के अध्याय एक और 118 में एक कथानक है कि किस प्रकार पाण्डवों के पिता पाण्डु को दम (महाभारत में किंदम नाम है) ऋषि ने शाप दिया। व्यास कहते हैं कि किंदम ऋषि एक हिरणी के साथ जंगल में मैथुन में संलग्न था। जब वह इसमें लिप्त था तो पाण्डु ने उस पर एक तीर छोड़ा और

किंदम ऋषि ने प्राण त्याग दिए। परन्तु मरने से पूर्व उसने पाण्डु को यह शाप दिया कि जब भी वह अपनी पत्नी से सहवास के लिए उद्यत होगा, उसका तभी प्राणांत हो जाएगा। ऋषि के पशु-मैथुन पर पर्दा डालने के लिए व्यास कहते हैं कि ऋषि और उसकी पत्नी ने संभोग के लिए हिरण और हिरणी का रूप धारण कर रखा था। भारत के प्राचीन धार्मिक साहित्य में मैथुन के अन्य उदाहरण ढूंढने में कोई कठिनाई नहीं होगी, बशर्ते कोई थोड़ी मेहतन करे।

ऋषियों की एक अन्य घृणास्पद प्रवृति थी-स्त्रियों के साथ खुले में और आम जनता के सम्मुख संभोग करना। *महाभारत* के आदि पर्व के अध्याय 63 में भी ऐसी ही एक अन्य घटना का प्रसंग है कि ऋषि पराशर ने सत्यवती अर्थात् मत्स्यगंधा के साथ कैसे सहवास किया जो एक मछुआरे की पुत्री थी। व्यास कहते हैं कि उन्होंने खुले में सबके सामने मैथुन किया। आदि पर्व के अध्याय 104 में भी ऐसी ही एक अन्य घटना का प्रसंग है। जहां कहा गया है कि ऋषि दीर्घतमस ने लोगों के समक्ष संभाग किया। *महाभारत* में ऐसी अनेक घटनाएं हैं। उन्हें खोदने की आवश्यकता नहीं। 'अयोनिजा' शब्द यह प्रमाणित करने के लिए पर्याप्त है। आम बात क्या थी? अधिकांश हिन्दू जानते हैं कि सीता, द्रौपदी और अन्य प्रमुख नारियों को अयोनिजा कहा जाता है। अयोनिजा का अर्थ है, ऐसा शिशु जिसका गर्भधारण निष्कलंक हो। 'अयोनि' का अर्थ व्युत्पत्ति के माध्यम से बताने की कोई आवश्यतकता नहीं। 'योनि' का मूल अर्थ गृह है। योनिज का अर्थ है ऐसा शिशु जिसका घर में जन्म हुआ हो। अयोनिजा का अर्थ है ऐसा शिशु जो घर में उत्पन्न न हुआ हो। यद अयोनिजा, यह सही व्युत्पत्ति है तो इससे प्रमाणित होता है कि ऐसा चलन मौजूद था कि सरेआम लोगों के समक्ष संभोग किया जाता था।

छांदोग्य उपनिषद् में ऋषियों की अनैतिकता का एक और साक्ष्य मिलता है। इस उपनिषद के अनुसार लगता है, ऋषियों ने यह नियम बनाया कि यदि कोई यज्ञ कर रहा है और उस समय कोई स्त्री ऋषि से संभोग करना चाहे तो ऋषि यज्ञ अधूरा छोड़कर और किसी एकांत स्थान पर जाने के बजाए यज्ञ-मण्डप में ही सार्वजनिक रूप से उस स्त्री के साथ मैथुन करे। इस अनैतिकता को भी धार्मिक रूप दे दिया गया था जिसे वामदेव व्रत कहते थे। कालांतार में यही वाममार्ग कहलाया।

आर्यों का परमपवित्र साहित्य ऋषियों की नैतिकता दर्शाने में और बढ़कर है, अभी उसका एक पक्ष और बताना है।

लगता है, प्राचीन आर्यों की लालसा होती थी कि उनकी संतति अच्छी उत्पन्न हो और इस इच्छा की पूर्ति के लिए वे अपनी पत्नियों को दूसरों के पास भेजा करते थे, विशेष रूप से ऋषियों के पास, जो आर्यों की दृष्टि में कुलीन सांड थे। ऐसे ऋषियों की

संख्या बहुत अधिक थी। असल में कुछ ऋषियों ने तो इसे बाकायदा धंधा बना लिया था और वे इतने भाग्यशाली थे कि राजा तक अपनी रानियों को गर्भवती कराने के लिए उनकी शरण में जाया करते थे। अब जरा देवों[1] पर भी एक दृष्टिपात डालें।

देवगण शक्तिशाली और अत्यन्त कामुक प्राणी हुआ करते थे। यह एक सुविदित आख्यान है कि इन्द्र ने गौतम ऋषि की पत्नी अहिल्या के साथ बलात्कार किया। किन्तु आर्य स्त्रियों के साथ उन्होंने कितनी बदकारी की, उसका वर्णन नहीं किया जा सकता। आरम्भ्स से ही देव जाति ने आर्य सम्प्रदाय में अपनी बादशाहत जमा ली थी। इसी कारण इन देवों की हवस मिटाने के लिए आर्य स्त्रियों को वेश्या के स्तर तक गिरा दिया गया था। आर्य इस बात पर गर्व करते थे कि उनकी पत्नी के किसी देव से शारीरिक संबंध हैं और किसी देव ने उसकी पत्नी को गर्भवती बना दिया है। इसका उल्लेख *महाभारत* और *हरिवंश पुराण* में है, जब आर्य स्त्रियों को इन्द्र, यम, अग्नि, वायु और अन्य देवों से पुत्र पैदा हुए। इसका उल्लेख इतनी बार है कि इस बात पर अचरज होता है कि कितने बड़े पैमाने पर देवों के आर्यों की स्त्रियों के साथ अवैध संबंध थे।

समय बीतने पर देवों और आर्यों के बीच संबंध स्थायी रूप लेने लगे और लगता है, यह प्रवृत्ति सामंतवाद के रूप में पनपी। देवताओं ने आर्यों से दो अधिकार (लाभ)[2] प्राप्त किए।

पहला अधिकार यज्ञ था जो आर्यों द्वारा देवों को समय-समय पर दिये जाने वाले भोज का आयोजन होता था जिसके बदले में देवजाति के लोग राक्षसों से आर्यों की रक्षा करते थे। यज्ञ कुछ नहीं था बल्कि देवों की सामंती बलपूर्वक वसूली होती थी। इसको समझने में यदि भूल हुई है तो इसका कारण यही है कि देवों को एक जाति के स्थान पर भ्रांति से ईश्वर (देवता) समझ लिया गया। आर्यों ने आरम्भ से ही समझने में यह गलती की थी।

देवों की, जो दूसरा अधिकार आर्यों से प्राप्त था, वह यह था कि उन्हें आर्यों की स्त्रियों को भोगने का पूर्व अधिकार था। यह बहुत पहले से आरम्भ हो गया था। *ऋग्वेद*

---

1. पता नहीं, जिन्होंने प्रथम बार संस्कृत से अंग्रेजी में अनुवाद किया, उन्होंने देवों को देवता क्यों समझ लिया? यह एक भयानक गलती थी, जिससे यह भ्रांति पैदा हुई कि वैदिक साहित्य के परिप्रेक्ष्य में आर्यों के सामाजिक जीवन को ठीक से नहीं समझा जा सका। देव एक जाति का नाम था, यह निर्विवाद है। राक्षस, दैत्य, देव विभिन्न समुदायों के नाम हैं, जैसे कि आर्य और दस्यु, यह भी असंदिग्ध हैं।
2. क्या देवों और आर्यों के बीच ऐसे संबंध थे जैसे किसी स्वामी के अपनी प्रजा के साथ सामंती स्वभाव के होते हैं, इस बात की अभी छानबीन नहीं की गई है। क्योंकि देवों को मानव समुदाय का नहीं समझा गया। देवगण आर्यों से जो उपहार प्राप्त करते थे, वे वैसे ही थे जैसे स्वामी प्रजा से लेता है।

में एक उल्लेख है 10.85.40 जिसके अनुसार आर्यों की स्त्रियों पर पहले सोम, फिर गंधर्व, फिर अग्नि और सबके बाद आर्यों से सहवास करना होता था। प्रत्येक आर्य स्त्री किसी देव की होती थी। किसी आर्य कन्या के किशोरावसा में आने पर उसे किसी देव से सहवास करना होता था। इससे पूर्व कि किसी आर्य कन्या का विवाह हो, उसे देव को भेंट चढ़ाकर शांत करना होता था। आश्वलायन गृह्य सूत्र के खंड सात के प्रथम अध्याय में विवाह-संस्कार का जो वर्णन है, वह इस बात का ज्वलंत प्रमाण है। इस सूत्र का सावधानी और विश्लेषणात्मक दृष्टि से अनुशीलन किया जाए तो पता चलेगा कि विवाह के समय तीन देव होते थे। आर्यमान, वरुण और पूशान। स्पष्ट है कि उनका कन्या पर पहले से ही अधिकार था। पर प्रथम वह यह कार्य करता है कि वह कन्या को एक पत्थर के टुकड़े के पास ले जाता है और उससे कहता है कि ''उस पर'' पैर रख और पत्थर के समान कठोर बन। शत्रु से मुक्ति पा, शत्रु को पैर के नीचे दबा। इसका अर्थ है वर कन्या को उन तीन देवों के नियंत्रण से मुक्ति के लिए कहता है, जिन्हें वह अपना शत्रु मानता है। देवों को क्रोध आता है और वे वर की ओर बढ़ते हैं। कन्या का भाई बीच में आता है और विवाद सुलझाने का प्रयास करता है। वह क्रुद्ध देवों को भुना अन्न भेंट करता है जिससे कन्या पर से उनके अधिकार का मूल्य चुकाया जा सके। तब भाई-बहन से अंजलि बनाने के लिए कहता है, फिर वह उसकी अंजलि में भुना अन्न भर देता है और उसमें घी डालता है और कन्या से वह तीनों देवों को तीन बार अर्पित करने के लिए कहता है। यह अवदान कहलाता है। जब बहन देवों को अवदान अर्पित करती है तो एक विशेष वचन दोहराता है जिसे जानना महत्वपूर्ण है। वह कहता है, "यह कन्या अग्नि के माध्यम से आर्यमान का अवदान अर्पित करती है। आर्यमान इस पर से अपना अधिकार छोड़ दें और वर के अधिकार को बाधित न करें।" कन्या दो अन्य देवों को भी अलग से अवदान देती है और प्रत्येक बार उसका भाई यह दोहराता है। अवदान के पश्चात् अग्नि की प्रदक्षिणा होती है जो सप्तपदी कहलाती है। इसी के पश्चात् विवाह संबंध वैध और उत्तम माना जाता है। यह सब इतना ज्वलंत है कि आर्यों पर देवों की दासता पर प्रकाश डालता है। साथ ही देवों और आर्यों के चरित्र पतन का भी परिचायक है।

विधि विशेषज्ञ जानते हैं कि हिन्दू विवाह में सप्तपदी नितांत अनिवार्य है और इसके बिना हिन्दू विवाह वैध नहीं होता। परन्तु बहुत कम लोग जानते हैं कि हिन्दू विवाह में सप्तपदी का इतना महत्व क्यों है, कारण स्पष्ट है। यह इस बात का प्रतीक है कि देवों ने कन्या पर से अपना पूर्वाधिकार त्याग दिया है, वे अवदान से संतुष्ट हैं और कन्या को मुक्त करने पर सहमत हैं। यदि देव वर को और कन्या को सात पग चलने देते हैं तो यह समझा जाता था कि देवों को मुआवजा स्वीकार है और उनका

अधिकार समाप्त हो गया है और कन्या दूसरे की पत्नी बन सकती है। सप्तपदी के कोई अन्य अर्थ नहीं हो सकते। सप्तपदी प्रत्येक विवाह में आवश्यक थी, इस बात का द्योतक है कि ऐसी अनैतिकता देवों और आर्यों में किस हद तक मौजूद थी?

कृष्ण के चरित्र पर अलग से प्रकाश डाले बिना अवलोकन सम्पन्न नहीं हो सकता क्योंकि कलियुग का आरम्भ और कृष्ण का देहांत एक-दूसरे से जुड़े हैं। इसलिए उनके चरित्र पर विचार करने का महत्व है। कृष्ण का चरित्र अन्यों की तुलना में कैसा है? विस्तृत विवरण अन्य स्थान पर दिए गए हैं। हम यहां कुछेक के बारे में ही चर्चा करेंगे। यादव बहुपत्नीवादी थे। कृष्ण, वृष्णि (यादव परिवार) से संबंधित थे। यादव राजाओं के विषय में बताया गया है कि उनकी बहुपत्नयां और बहुपुत्र थे। यह कलंक कृष्ण पर भी लगा हुआ है। परन्तु यह यादव परिवार और स्वयं कृष्ण के घर में मातृ मैथुन का धब्बा लगा है। यहां यादव परिवार में पिता द्वारा पुत्री से विवाह का वर्णन *मत्स्य पुराण* में आता है। *मत्स्य पुराण* के अनुसार कृष्ण के एक पूर्वज राजा तैत्री ने अपनी पुत्री को ही घर में रख लिया था और उससे नल नाम का पुत्र उत्पन्न किया था। कृष्ण का पुत्र साम्ब अपनी मां से सहवास करता था। *मत्स्य पुराण* बताता है कि किस प्रकार साम्ब अवैध रूप से कृष्ण की पत्नी के साथ रहता था। कृष्ण ने अपने पुत्र साम्ब और पत्नी को क्रोधित होकर शाप दिया था। *महाभारत* में भी यह प्रकरण है। सत्यभामा ने द्रौपदी से यह भेद जानना चाहा कि पांच पतियों को किस प्रकार नियंत्रण में रखती है। *महाभारत* के अनुसार द्रौपदी ने सत्यभामा को चेताया कि वह अपने सौतेले पुत्रों के साथ अकेले में न तो बात करे और न उन्हें अकेले में ठहरने दे। यही *मत्स्य पुराण* में भी साम्ब के प्रसंग में कहा गया है। साम्ब का ही अकेला उदाहरण नहीं है। उसके भाई प्रद्युम्न ने भी अपनी पालक माता और सम्बर की पत्नी मायावती से विवाह कर लिया था।

कृष्ण की मृत्यु के पूर्व आर्यों के समाज की नैतिकता इस प्रकार की थी। इतिहास को निश्चित युगों में विभक्त नहीं किया जा सकता और यह नहीं कहा जा सकता कि कृत युग में जैसी नैतिकता थी, वैसी त्रेता और द्वापर में थी। वह कृष्ण की मृत्यु पर सहसा समाप्त हो गई। यदि हम आर्यों के सुधारों की प्रगति का ध्यान रखें तो पाएंगे कि प्रथम युग कृत में वह निम्नतम थी, उससे कुछ बेहतर त्रेता में और सबसे कम अनैतिकता द्वापर में थी। कलियुग में स्थिति सर्वोत्तम है।

कोई विचारधारा मानव-समाज के मात्र सामान्य विकास से नहीं बनती जैसे कि संसार भर में हम देखते हैं। प्राचीन काल में आर्यों का जो नैतिक पतन था, उन्होंने दृढ़ता से सुधार कर उन सामाजिक दुष्कर्मों को त्याग दिया जिसकी जानकारी इतिहास में मिलती है।

सामान्य आर्यों की दृष्टि में देवों और ऋषियों का बहुत सम्मान है और यह नियम है कि हीन कुलीन का अनुसरण करता है। आर्य समुदाय में जो भी अनैतिकता थी, वह इसी का परिणाम थी कि सामान्य आर्यजन ने देवों और ऋषियों के अनैतिक कार्यों की नकल की। अपने समाज को नैतिक अध:पतन से मुक्ति दिलाने के लिए आर्यों के कुछ प्रमुख व्यक्तियों ने अत्यधिक महत्वपूर्ण सुधार लागू किए। उन्होंने घोषित किया कि देवों और ऋषियों के कार्यों का उल्लेख न किया जाए।[1] ना ही उन्हें उदाहरण स्वरूप किया जाए। इस प्रकार साहस और दृढ़ता से अनैतिकता के एक कारण तथा उसके स्रोत को समाप्त किया गया।

अन्य सुधार भी निर्णायक थे। *महाभारत* में दीर्घतमस और श्वेतकेतु नामक दो सुधारकों का उल्लेख है। श्वेतकेतु ने व्यवस्था दी कि विवाह अटूट बंधन है और उसे तोड़ा नहीं जा सकता। दीर्घतमस के दो सुधार हैं। उसने बहुपतित्व पर प्रतिबंध लगाया और घोषित किया कि किसी स्त्री का एक समय केवल एक पति होगा। उसका दूसरा सुधार यह बताया जाता है कि उसने नियोग को विनियोजित किया। उसकी अति महत्वपूर्ण पूर्ति निम्न प्रकार रखी गई:

(1) विधवा का पिता अथवा भाई (अथवा विधवा के पति के) उस गुरु के पास जाएं, जिसने मृतक पति और उसके संबंधियों को शिक्षा दी हो अथवा उनके लिए यज्ञ किया हो और मृत पति के लिए संतान उत्पन्न करने वाला नियत कराएं[2]।

(2) (ए) पति, मृतक अथवा जीवित हो किन्तु उसके पुत्र न हो;

2. परिवार के सदस्यों के परामर्श से पति के लिए गुरु संतानोत्पत्ति करने वाला नियुक्त करें, 3. वह पति का भाई अथवा सपिण्ड अथवा सगोत्र (गौतम के अनुसार) या सपरिवार अथवा सजातीय हो, 4. नियत पुरुष और विधवा काम-वासना वश नहीं वरन् कर्त्तव्य मानकर सहवास करें, 5. नियत पुरुष अपने शरीर से घी अथवा तेल मले। (नारद स्त्री पुमसा, 82) उससे बात न करे, न चुम्बन करे, न कामकेलि करे, 6. यह संबंध एक पुत्र के जन्म तक (कुछ के अनुसार दो) तक सीमित रहेगा, 7. विधवा की आयु अपेक्षाकृत कम होनी चाहिए। यह अधिक वय की न हो, बंध्या न हो, ऋतुमती होने का समय समाप्त न हुआ हो अथवा रोगी अथवा गर्भवती न हो। (बौधा ध.सू. II 2.70, नारद, स्त्रीपुमसा 83.84, (8) पुत्र जन्म के उपरांत वे एक दूसरे को ससुर और पुत्रवधू माने, (मनु. 9.62)। यह भी स्पष्ट किया गया है कि यदि

1. गौतम धर्मसूत्र में नियम निर्धारित है कि ऋषियों के चरित्र को उदाहरण बना कर अनुगमन नहीं किया जा सकता- "ना देवा चरितम चरैयते"। इससे यह सीमा बांध दी गई है कि देवों के कार्य उदाहरण नहीं बन सकते। यह एक मुक्त श्लोक है जसका स्रोत अज्ञात है।
2. काणे ग्रंथ, भाग 1, पृ. 60

देवर, ज्येष्ठ ने भाभी के साथ बड़ों की अनुमति के बिना सहवास किया है या यदि अन्य परिस्थितियां अनुकूल नहीं हैं (यदि पति से पुत्र पहले ही हैं) और उसने बड़ों की सहमति से ही सहवास किया हो तो वह परिजन मैथुन का पापी होगा।"

आर्यों के प्राचीन समाज में कुछ अन्य सुधार किये गये, जो नैतिक उत्थान के लिए था। विवाह के संबंध में कुछ निषेधात्मक नियम बनाए गए, जिससे पिता, पुत्री, भाई-बहन, मां-बेटे और दादा-पोती के बीच विवाह वर्जित कर दिए गए, गुरु की पत्नी के साथ संभोग को भी जघन्य पाप घोषित किया गया। जुए पर रोक लगाने के प्रयत्नों के भी प्रमाण हैं। धर्मसूत्रों के प्रत्येक लेख में ऐसे विधान के प्रसंग हैं जिनमें राजा से कहा गया कि राजा का कर्त्तव्य है कि राजदण्ड से कठोर दण्ड देकर जुए पर नियंत्रण करें।

कलियुग के आरंभ होने से काफी पहले ये प्रसंग मिलते हैं। यह स्वाभाविक है कि नैतिक दृष्टि से कलियुग बेहतर है। यह कहना कि कलियुग में नैतिकता का ह्रास हो रहा है, न केवल निराधार है बल्कि स्पष्ट रूप से पथभ्रष्टता है।

V

कलियुग के संबंध में इस विवेचन से बहुत-सी पहेलियां उत्पन्न होती हैं। महायुगों का विचार कब जन्मा? यह सत्य है कि संसार भर में अतीत को स्वर्गीय समझा जाता है। महायुग की कल्पना यहां भी की जाए तो कोई अजीब बात नहीं। अन्यत्र यह मान्ता है कि स्वर्णयुग गया तो गया। परन्तु महायुग का मोह हमारे यहां जीवित है। वह एक चक्र पूरा होने पर फिर आएगा।

दूसरी पहेली है कि कलियुग 165 ई.पू. समाप्त क्यों नहीं हुआ जबकि खगोलशास्त्रियों के अनुसार यह समाप्त हो जाना चाहिए था। तीसरी पहेली कलियुग की संध्या और संध्यांश का है। यह स्पष्ट है कि यह बाद की कल्पना है क्योंकि *विष्णु पुराण* में उनका उल्लेख अलग से किया गया है। यह जोड़ी क्यों गई? फिर काल-गणना के संबंध में भी झमेला है। पहले कलियुग का समय सामान्य वर्ष में गिना गया था किन्तु बाद में कहा गया ये दैवी वर्ष है। इसका अर्थ हुआ जो कलियुग 1200 वर्ष में बीत जाना था, उसकी अवधि का विस्तार 4,32,000 वर्ष तक होगा। यह नई खोज क्यों की गई? कलियुग का इतना लम्बा विस्तार वैदिक ब्राह्मणों ने क्यों किया? क्या यह कुछ शूद्र राजाओं पर अनुचित दबाव जमाने की चाल थी कि कलियुग की खोज कर ली गई और उसे अनंत बना दिया गया ताकि प्रजा को उनके राज पर विश्वास न रहे?

चौबीसवीं पहेली

कलियुग की पहेली

कालगणना की जो इकाईयां हिंदुओं में प्रयुक्त हैं, उनकी ओर लोगों का सम्यक ध्यान नहीं जाता कि उनकी विशिष्टता क्या है? यह ऐसा विषय है जो पुराणों से संबद्ध है। उनके अनुसार काल गणना के पांच माप हैं: 1. वर्ष, 2. युग, 3. महायुग, 4. मन्वंतर और 5. कल्प। हम इन इकाईयों के संबंध में विष्णु पुराण पर आते हैं। वर्ष से आरम्भ करें। *विष्णु पुराण* ने इसे किस प्रकार गिना है:[1]

"हे ऋषि श्रेष्ठ! पन्द्रह बार पलक झपकने पर एक काष्ठ पूर्ण होता है। तीस कलाओं से एक महूर्त, तीस मुहूर्तो से एक मानवीय दिन और रात। ऐसे तीस दिनों से एक महीना बनता है। उसके दो पक्ष होते हैं, 6 मास से एक आयण (उत्तरायण, दक्षिणायण) बनता है और दो आयणों से एक वर्ष बनता है।"

विष्णु पुराण में ही एक अन्य स्थान पर यही व्याख्या विस्तार से दी गई है:[2]

पन्द्रह बार पलक झपकने (निमेधों) से एक काष्ठ, तीस काष्ठ से एक कला, तीस कलाओं से एक मुहूर्त (अड़तालीस मिनट), तीस मुहूर्तों से एक दिन और रात, उनका समय चाहे घटता-बढ़ता रहे। यह कहा गया है कि संध्या घटने-बढ़ने की दशा में भी वही रहती है। उसका एक ही मुहूर्त होता है। परन्तु जिस समय सूर्य की परिधि को तीन मुहूर्त के लिए रेखांकित किया जाए, वह मध्यांतर प्रात: कहलाता है जो दिवस का पंचमांश होता है। अगला भाग अर्थात् प्रात: के पश्चात् के तीन मुहूर्त संगव (पूर्वाह्न) होता है। अगले तीन मुहूर्त मध्याह्न होते हैं, उसके पश्चात् के तीन मुहूर्त अपराह्न अथवा संध्या होते हैं और दिन के पन्द्रह मुहूर्तों को पांच समान भागों में विभक्त किया है।

1. *विष्णु पुराण, विल्सन,* पृ. 22-3
2. वही।

रिडल आफ कलियुग का यह दूसरा पाठ है। हमें इसकी कार्बन प्रति मिली है। इसमें लेखक के संशोधन नहीं हैं। यह अध्याय 40 पृष्ठों का है - संपादक

तीस–तीस मुहूर्तों के पन्द्रह दिनों से एक पक्ष बनता है चन्द्र पक्ष दो पक्षों से एक मास, दो मास से षट ऋतु की एक ऋतु, तीन ऋतुओं से एक आयण अर्थात् उत्तरायण अथवा दक्षिणायण, और दो आयणों से एक वर्ष बनता है।

विष्णु पुराण में युग की परिकल्पना इस प्रकार की गई है:[1]

"बारह हजार दैवी वर्षों (एक में तीन सौ साठ) से चार युग बनते हैं, उनका विवरण इस प्रकार है: कृत युग में चार हजार दैवी वर्ष, त्रेता में तीन हजार, द्वापर में दो हजार और कलियुग में एक हजार। यह प्रचीन गणना के समान है।"

"प्रत्येक युग से पूर्व एक संध्या होती है। यह कई सौ वर्षों की होती है क्योंकि एक युग में हजार वर्ष होते हैं। युग के पश्चात् संध्यांश आता है। उसकी अवधि भी इतनी ही होती है। संध्या और संध्यांश के बीच युग होता है। जैसे कृत, त्रेता आदि।"

विष्णु पुराण में समय नापने के लिए महायुग का जिक्र आया है। वह कहता है:[2]

"वर्ष में चार प्रकार के महीने होते हैं। जिनकी पांच पहचान हैं और इन सबको मिलाकर एक युग का चक्र बनता है। वर्ष को संवत्सर, इद्त्सर, अनुवत्सर, परिवत्सर और वत्सर, कई नामों से पुकारा जाता है। यह समय युग कहलाता है।"

महायुग का अर्थ है युग का विस्तार जैसा कि *विष्णु पुराण* में कहा गया है:[3]

"कृत, त्रेता, द्वापर और कलि मिलकर महायुग बनते हैं अथवा चतुर्युग, इस प्रकार के हजार का योग ब्रह्मा का एक दिन होता है।"

विष्णु पुराण में मन्वंतर की व्याख्या इस प्रकार की गई है:[4]

"मध्यांतर मन्वंतर कहलाता है। वह चार युगों का इकहत्तर गुना बड़ा होता है। उसमें कुछ और वर्ष भी होते हैं।"

कल्प के विषय में *विष्णु पुराण* में कहा गया है:

"ब्रह्मा का दिन कल्प"

कुछ अवधि हैं, जिनमें समय का विभाजन किया जाता है। इन अवधियों में कितना समय होता है, यह उल्लेखनीय है।

वर्ष की अवधि सरल है। 365 दिन का ही होता है। युग, महायुग, मन्वंतर और कल्प गिनना टेढ़ी खीर हैं, फिर भी कल्प के विभाजन में युग और महायुग को

1. *विष्णु पुराण*, विल्सन, पृ. 23
2. वही पृ. 23
3. वही पृ. 23
4. वही पृ. 24

समझना कुछ सरल है अपेक्षाकृत इसके कि कल्प को युगों से गुणा किया जाए। कल्प और महायुग के संबंधों को समझने के लिए हमें 71 महायुगों को जोड़ना होगा जबकि एक महायुग में चार युग होते हैं और एक मन्वंतर 71 महायुगों तथा कुछ वर्षों का होता है।

इन इकाईयों के आधार पर कालगणना करते समय हम युग को आधार मानकर नहीं चल सकते। क्योंकि युगों का समय तो निश्चित है किन्तु उनमें समानता नहीं है। गणना का आधार महायुग है जिसका समय निर्धारित है।

महायुग में चार युग होते हैं। यथा, 1. कृत, 2. त्रेता, 3. द्वापर, और 4. कलि। प्रत्येक युग का समय निश्चित है। प्रत्येक युग के आगे-पीछे संध्या और संध्यांश होते हैं। उनका समय भी निर्धारित है। विभिन्न युगों का अपना समय और उनके साथ सम्बद्ध संध्या और संध्यांश का समय भिन्न-भिन्न है।

युग	समय	संध्या	संध्यांश	योग
कृतयुग	...4000	400	400	4800
त्रेता	...3000	300	300	3600
द्वापर	...2000	200	200	2400
कलि	...1000	100	100	1200
महायुग	...	...	...	12000

महायुगों की यह गणना दैवी वर्षों के आधार पर है अर्थात् ब्रह्मा के 12000 दैवी वर्षों से एक महायुग बनेगा। हिसाब यह है कि मानव का एक वर्ष महायुग के एक दैवी दिन के बराबर है। इस प्रकार मानव वर्षों के आधार महायुग का हिसाब इस प्रकार बैठता है (360×12000) = 43,20,000 वर्ष।

71 महायुगों से एक कल्प बनता है। इसका अर्थ है, कल्प का समय हुआ (43,20,000 × 71 = 3,06,72,000)।

मन्वंतर 71 महायुगों तथा कुछ वर्षों का योग है। मन्वंतर का काल कल्प के बराबर बैठता है अर्थात् 3,06,72,000 तथा कुछ और वर्ष। मन्वंतर का समय कल्प से कुछ ज्यादा होता है

वर्ष की परिकल्पना खगोलशास्त्र के अनुरूप है। इसलिए काल-गणना के लिए आवश्यक हैं।

कल्प की परिकल्पना पौराणिक और ब्रह्माण्डोत्पत्ति से सम्बद्ध है और इस विश्वास

पर आधारित है कि ब्रह्मांड की उत्पत्ति और अवसान ब्रह्मा द्वारा होते हैं। इन दोनों कालों के बीच का अंतर कल्प कहलाता है। इस पर सर्वप्रथम प्रकाश *विष्णु पुराण* में डाला गया है। वह इसकी सृष्टि से आरम्भ होता है। इसकी रचना के दो रूप हैं: 1. सर्ग अर्थात् प्रकृति से ब्रह्मांड की उत्पत्ति और, 2. प्रति सर्ग अर्थात् मूल तत्वों से हुआ आरम्भिक विकास अथवा अस्थाई विकृतियों के पश्चात् पुर्नोदय। यह दोनों रचनाएं सावधिक हैं परन्तु ब्रह्मा के जीवन अवसान पर पहले का समापन हो जाता है जब न केवल देवतागण अपितु अन्य तत्व भी लुप्त हो जाते हैं। परन्तु ये तत्व पुनः मूल रूप में परिवर्तित होकर उभर आते हैं। उनके साथ तब केवल सूक्ष्म तत्व बचता है, वह प्रति कल्प अथवा ब्रह्मा के दिन घटित होता है। इससे केवल क्षुद्र जीव और निम्न जगत प्रभावित होते हैं। ब्रह्मांड सार ऋषि और देवता-गण अप्रभावित रहते हैं। यह कल्प की अवधारणा है।

मन्वंतर की अवधारणा यदि ऐतिहासिक भी नहीं तो पौराणिक तो है ही। इसका सूत्र है कि ब्रह्मा ने चराचर सृष्टि रची। परन्तु चर की वंश-वृद्धि नहीं हुई तब ब्रह्मा ने नौ मानस पुत्र उत्पन्न किए। परन्तु उनमें कोई आवेग नहीं था। मात्र पवित्र ज्ञान से अभिभूत थे, ब्रह्मांड से विरक्त और प्रजनन के अनिच्छुक। ब्रह्मा को यह देखकर क्षोभ हुआ। तब ब्रह्मा ने स्वयं को प्रथम पुरुष मनु स्वायंभुव और प्रथम नारी शतरूपा में परिवर्तित किया। मनु स्वायंभुव ने शतरूपा का वरण किया। इस प्रकार प्रथम मन्वंतर आरम्भ हुआ जो स्वायंभुव मन्वंतर कहलाया। चौदह मन्वंतरों का विवरण इस प्रकार है :

"तब ब्रह्मा ने सृष्टि पालन हेतु स्वयं को मनु स्वायंभुव बना लिया, अपने वास्तविक रूप के समान अपने नारी भाग से शतरूपा रची, जिसे तपस्या द्वारा पाप से शुद्ध किया जिसे मनु ने अपनी पत्नी बनाया। इन दोनों से दो पुत्र जन्मे, प्रियव्रत और उत्तानपाद। दो पुत्रियां थी प्रसूति और आकूति जो अति सुंदर थीं। प्रसूति का विवाह दक्ष से और आकूति का रुचि प्रजापति से हुआ। आकूति से जुड़वां बच्चे उत्पन्न हुए यज्ञ और दक्षिणा जिन्होंने परस्पर विवाह कर लिया। (भाई-बहन के विवाह का एक और उदाहरण) उनसे बारह पुत्र उत्पन्न हुए। ये दवेता स्वायंभुव मन्वंतर में यम कहलाए।

प्रथम मनु[1] स्वायंभुव था फिर स्वारोचिष। इसके उपरांत क्रमशः औतमी, तामस, रैवत, चाक्षुष। यह छै मनु काल कवलित हुए। सातवें, वर्तमान मन्वंतर का मनु सूर्यपुत्र वैवस्वत है।"

"कल्प के आरंभ में स्वायंभुव मनु के समय का मैं वर्णन कर चुका हूं। उनके देवों, ऋषिगण, अन्य महापुरुषों जो उस समय विद्यमान थे उनके साथ। "अब मैं स्वारोचिष मनु

1. विल्सन, *विष्णु पुराण*, पृ. 259-64।

के पुत्रों, देवताओं और ऋषियों के विषय में बताता हूं। इस काल (द्वितीय मन्वंतर) के देवता थे, पारावत और तुषित उनका इन्द्र था "विपश्चित। उनके सप्तर्षि थे ऊर्ज, स्तंभ, प्राण, दत्तोली ऋषभ, निश्चर और अर्वरीवट। मनु के पुत्र थे चैत्र और किंपुरूष।

तीसरे मन्वंतर के मनु थे औतमी उसके समय के इन्द्र थे, सुशांति, देवताओं के नाम है स्वधामा, सत्य, शिव प्रतर्दन और वसुवृति। प्रत्येक पांच वर्ग के बारह देवता थे। उस समय सप्तर्षि वशिष्ठ के सात पुत्र थे और अज, परसु, दिव्य तथा अन्य मनु के पुत्र थे।

चौथे मनु तामस के काल में पूजनीय देवता थे, सुरूप, हरि, सत्य और सुधि। प्रत्येक के सत्ताईस देवता थे। शिवी उस काल का इन्द्र था जिसे शत क्रतु भी कहा जाता है। इसने सौ यज्ञ किए थे। सप्तऋषि थे ज्योतिधाम, पृथु, काव्य, चैत्र, अग्नि, वानक, पिवर तामस मनु के पुत्र थे, नर, ख्याति, सांतहय, जनुजंघा आदि।

पांचवें मन्वंतर के मनु रैवत थे। उनका इन्द्र विभु था। देवता इस प्रकार थे अमिताभ, अभूतराजास, वैकुंठगण, सुमेधा। सप्तऋषि थे: हिरण्यरोम, वेदशिरा, ऊर्ध्वबाहु, वेदबाहु, सुधमन, पर्जन्य और महामुनि। रैवत के पुत्र इस प्रकार थे: बालबंधु सुसम्भाव्य, सत्यक तथा अन्य साहसी राजा।

स्वारोचिष, औतमी, तामस और रैवत प्रियव्रत की संतान थे जिसने अपनी उपासना से विष्णु को प्रसन्न करके अपनी संतति के लिए मन्वंतरों का मनु बनाए जाने का वर प्राप्त कर लिया था।

"छठे मन्वंतर का मनु चाक्षुष था, उसका इन्द्र मनोज्व था उस काल के देवता थे आदय, प्रस्तुत, भव्य, पृथुग और लेखगण जिनके आठ और देव थे; उस काल के सप्तर्षि थे सुधामा, विरजा हविष्मान, उत्तम, मधुर, अतिमान, सहिष्णु। चाक्षुष के पुत्र थे उरु, पुरु, शतद्युम्न आदि।"

वर्तमान सातवें मन्वंतर के मनु अन्त्येष्टि देव सूर्य की अनुपम संतान वैवस्वत हैं; उनके देवता हैं, आदित्य, वसु और रुद्र; उनका इन्द्र है पुरन्दर; सप्तर्षि हैं–वशिष्ठ, कश्यप, अत्रि, जमदग्नि, गौतम, विश्वामित्र और भारद्वाज। वैवस्त मनु के नौ पुत्र ओजस्वी हैं। इक्ष्वाकु नाभाग, ध्रष्ट, सन्मति, नरिश्यंत, नाभानिदिष्ट, करुष, प्रिषध्र और यशस्वी वसुमत।

अभी सात मन्वंतरों का विवरण दिया गया है जो *विष्णु पुराण* में उल्लिखित हैं। ये *विष्णु पुराण* लिखे जाने तक की स्थिति थी। क्या मन्वंतर शासन बाह्य था? इस विषय में ब्राह्मण मौन हैं। परन्तु *विष्णु पुराण* के लेखक को पता है कि सात मन्वंतर अभी और आने हैं। इनका विवरण इस प्रकार है:[1]

---

1. विल्सन, *विष्णु पुराण,* पृ. 266–69.

विश्वकर्मा की पुत्री संजना सूर्य की पत्नी थी। उसकी तीन संतानें मनु (वैवस्वत) यम और यमी (अथवा यमुना नदी) थीं। अपने पति का तेज झेलने में असमर्थ संजना ने उसे सेविका के रूप में छाया दे दी और स्वयं उपासना के लिए वनों में चली गई। सूर्य ने छाया को अपनी पत्नी संजना जानकर उससे तीन संतान और उत्पन्न कीं, शनिश्चर, द्वितीय मनु (सावर्णी) और पुत्री ताप्ती। छाया को एक बार यम पर क्रोध आ गया, उसने उसे शाप दे दिया। साथ ही यम को और सूर्य को यह भी बता दिया कि वह वास्तविक संजना नहीं हैं। छाया के बताने पर कि उसकी पत्नी जंगलों में चली गई है, सूर्य ने अपनी दिव्य दृष्टि से देखा कि वह घोड़ी-रूप में तपस्या रत है (उत्तर कुरु प्रदेश में) सूर्य ने घोड़े के रूप में पुनर्जन्म लिया और अपनी पत्नी के पास पहुंच गया और उससे तीन अन्य संताने उत्पन्न कीं, दो अश्विन और रेवंत और फिर संजना को घर ले आया। विश्वकर्मा ने नक्षत्र की गहनता कम करने के लिए उसकी दीप्ति घटाने के उद्देश्य से अपनी चक्री पर चढ़ाया और उसे घिसकर आठवां भाग कर दिया क्योंकि इससे अधिक अविभाज्य था। जो दैवी वैष्णव भव्यता सूर्य में थी, वह विश्वकर्मा के घिसने से धरती पर गिरी, शिल्पीश्रेष्ठ ने उससे विष्णु का चक्र, शिव का त्रिशूल, कुबेर का शस्त्र और कार्तिकेय का वेलु बनाया और अन्य देवों के शास्त्र भी बनाए। विश्वकर्मा ने इन सबका निर्माण सूर्य की फालतू किरणों से किया।

छाया का पुत्र भी मनु कहलाया उसी वर्ण का होने के कारण उसका दूसरा नाम सावर्णी पड़ा जैसा कि उसके बड़े भाई मनु वैवस्वत का था। वह आठवें मन्वंतर का मनु है। अब मैं उसका विवरण निम्न बातों के साथ देता हूं। जिस काल में सावण र्णी मनु बनेंगे, उनके देववर्ग इस प्रकार होंगे सुतप, अग्निताभ और मुख्य प्रत्येक के इक्कीस सप्तर्षि इस प्रकार होंगे दीप्तिमान, गालव, राम; कृप, द्रोणि मेरा पुत्र व्यास छठा और ऋष्यऋंग सातवां ऋषि होगा। इस युग का इन्द्र बलि होगा। विरोचन का निष्पाप पुत्र विष्णु की कृपा से पाताल राज बनेगा। सावर्णी की संतानें होंगी। विराज, अर्वरीव, निर्मोह आदि।

नौवें मनु दक्ष सावर्णी होंगे। इस समय के देव होंगे पारस, मारीचि गर्भ और सुधर्मी। प्रत्येक वर्ग में बारह देव होंगे उनका मुख्य इन्द्र होगा अभूत। सवन, द्युतिमान, भव्य, वसु, मेधातिथि ज्योतिषमान और सत्य ये सप्तर्षि होंगे। धृतकेतु, द्रप्तिकेतु, पंचहस्त, निर्भय, पृथुसर्व आदि मनु के पुत्र होंगे।

दसवें मन्वंतर में मनु ब्रह्मा सावर्णी होंगे; उनके देवगण होंगे सुधामा, विरूद्ध शतसांख्य, उनका इन्द्र महातेजस्वी शांति होगा। सप्तऋषि होंगे हविष्मान, सुकृति, सत्य, अप्पममूर्ति, नाभाग, अप्रतिमजा और सत्यकेत। मनु के दस पुत्र होंगे। सुक्षेत्र, उत्तमजा, हरिषेण आदि।

ग्यारहवें मन्वंतर का मनु धर्म सावर्णी होगा उसके समय प्रमुख देव होंगे विहंगम, कामागम और निर्माणरति; प्रत्येक की संख्या तीस होगी; इस न्वंतर का इन्द्र वृष होगा। सप्तर्षि होंगे निश्चर, अग्नितेज व पुशमन, विष्णु, आरुणी, हविष्मान और अनघ पृथ्वी के स्वामी और मनु के पुत्र होंगे, सवर्ण, सर्वधर्म और देवानिक आदि।

बारहवें मन्वंतर में रुद्र का पुत्र सावर्णी मनु होगा; उस काल का इन्द्र होगा ऋतुधामा। देवों के नाम हैं हरितास, लोहितास, सुमन और सुकर्मा; प्रत्येक की संख्या पन्द्रह होगी। सप्तर्षि इस प्रकार होंगे–तपस्वी, सुतप, तपोमूर्ति, तपोघ्रिति, तपोद्युति और तपोधन। मनु के मेधावी पुत्र होंगे। देव, उपदेव तथा देवश्रेष्ठ आदि।

तेरहवें मन्वंतर का रौच्य मनु होगा। देव वर्ग होग, सुधमन, सुधर्मन और सुकर्मण; उनका इन्द्र दिवसपति होगा। सप्तर्षि होंगे निर्मोह, तत्वदर्शन निष्प्रकम्प, निरुत्सुक, धृतिमान, अव्यय और सुतप तथा त्रिसेन, विचित्र तथा अन्य नृप होंगे।

भौत्य चौदहवें मन्वंतर का मनु होगा। शुचि उसका इन्द्र होगा। देवताओं के पांच वर्ग होंगे। चाक्षुष, पवित्र, कनिष्ठ, भ्रजीरास और वैवृद्ध। सप्तर्षि इस प्रकार होंगे। अग्निबाहु, शुचि, शुक्र, मागध, ग्रिधर, युक्त और अजित। मनु के पुत्रों के नाम होंगे उरु, गभीर, गभीरा, बृधन आदि जो इस धरा के शासक होंगे।"

मन्वंतर की योजना शायद इस इरादे से बनाई गई कि उस काल के लिए कोई सत्ता स्थापित की जा सके। प्रत्येक मन्वंतर में एक स्वामी मनु होता है। पूजा के लिए देव होते हैं, सात ऋषि और एक इन्द्र होता है। *विष्णु पुराण* में कहा गया है:[1]

"विभिन्न वर्गों के देवता और मनु के पुत्र अपने संबंधित मन्वंतरों में आहुतियां प्राप्त करते हैं और उनके वंशज उस काल में पृथ्वी के शासक होते हैं। प्रत्येक मन्वंतर के नियंता होते हैं मनु, सप्तऋषि देवता मनु के पुत्र और इन्द्र होते हैं।"

परन्तु इसकी क्रम–योजना महायुग कहलाती है जो अत्यधिक जटिल मामला है।

कल्प को महायुग में क्यों विभक्त किया जाए और एक महायुग को चार युगों में क्यों विभाजित किया जाए, जिन्हें, कृत, त्रेता, द्वापर और कलियुग कहते हैं? यह एक पहेली है। यह पुराणों पर आधारित है और हिंदू इतिहास के वास्तविक प्रसंग से विलग है। ऐसा काल के साथ नहीं होता।

पहले तो यह पता नहीं चलता कि युग के समय को इतना असीम विस्तार क्यों दिया गया, जिससे पूरा क्रम मनगढ़ंत और बनावटी लगता है?

---

1. विल्सन, *विष्णु पुराण*, पृ. 269–70

ऋग्वेद में 'युग' शब्द का उपयोग 38 बार हुआ है। यह काल के रूप में प्रयुक्त हुआ है। साथ ही इसका अर्थ पीढ़ी, जुआ और आदिमजाति भी है। कुछ स्थानों पर यह बहुत संक्षिप्त समय के लिए हुआ है। बहुत से स्थानों पर ऐसा प्रतीत होता है कि यह बहुत ही कम अवधि के अर्थ में लिया गया है। कभी-कभी तो युगे-युगे का अर्थ है प्रतिदिन।

दूसरी बात यह है कि चार युगों को सामाजिक नैतिकता के निरंतर पतन से जोड़ा गया है। *महाभारत* के निम्नांकित अंश से यह अवधारणा स्पष्ट प्रकट होती है:[1]

कृत ऐसा काल है जिसका सदाचार शाश्वत है। इस सर्वश्रेष्ठ युग में प्रत्येक कर्म सम्पन्न (कृत) हो जाता है और कुछ करने को शेष नहीं रह जाता। तब कर्त्तव्य निस्तेज नहीं होते थे। ना ही लोग उत्साहहीन होते थे। यद्यपि कालांतर में (समय के प्रभाव से) यह युग क्षुद्रता की ओर अग्रसर हुआ। उस समय न वहां देवता थे, न दानव, न गंधर्व, यक्ष, राक्षस, ना ही पन्नगगण और ना ही क्रय-विक्रय होता था। वेद, साम, ऋज और यजुस में विभक्त नहीं थे, व्यक्ति प्रयास नहीं करते थे। फल सोचने से ही मिल जाते थे। धर्मपरायणता और सांसारिक त्याग विद्यमान था। आयु के प्रभाव ने न कोई रोग व्यापता था, न ही अंगों में क्षीणता आती थी। उस समय न दुर्भाव था, न विलाप, न दर्प, न प्रपंच, ना ही कोई विवाद था। वहां कोई अवसाद क्योंकर हो सकता था। तब न घृणा थी, न अत्याचार, भय, संताप, ईर्ष्या अथवा वैर-भाव था। इस प्रकार परम ब्रह्म उन योगियों को ज्ञानातीत थे। तब सभी नारायण-सबकी आत्मा धवल थी। ब्राह्मण हो या क्षत्रिय, वैश्य या शूद्र, सभी में कृत युग के गुण थे। उस समय ऐसे जीव जन्मे थे जो अपने कर्म के प्रति निष्ठावान थे। उनके उद्देश्य, विश्वास, कर्म और ज्ञान एक समान थे। उस काल में जातियां अपने कर्म के अनुसार कर्त्तव्य पालन करती थीं। सबको एक देवता पर अटल विश्वास था और मंत्र एक नियम और एक अनुष्ठान से आबद्ध थे यद्यपि उनके कार्य भिन्न-भिन्न थे। वेद एक ही था। एक ही कर्म करते थे। अपने-अपने लिए निर्धारित चारों कार्य में रत रहते थे, समय के पालक थे परन्तु निष्काम होकर परमात्मा का ध्यान लगाते थे। कृत युग में चारों वर्णों की यह अटल धर्मपरायणता उस युग का लक्षण था और वे परमात में विलीन होते थे। कृत युग तीन गुणों से मुक्त था। अब त्रेता को जानें। इसमें यज्ञ होते थे। धर्मपरायण ाता का चतुर्थांश क्षीण हो गया। विष्णु का रंग लाल हो गया और जन-साधारण सत्य का पालन करता था और अनुष्ठानों पर निर्भर धर्माचरण करता था। तब बलि होती थी। पवित्र कर्म और विभिन्न अनुष्ठानों से। त्रेता में सामान्यजन कोई उद्देश्य जानकर कार्य करते थे। वे अनुष्ठानों और युद्धों से फल-प्राप्ति चाहते थे। तप-साधना से और

1. म्यूर, *संस्कृत टैक्स्ट*, खण्ड 1, पृ. 144-46

कर्त्तव्य–बोध से उनका मन फिर गया था। इस युग में उनके अपने कार्यों धर्म–कर्म में निष्ठा थी। द्वापर में धर्म परायणता अर्धांश रह गयी थी। विष्णु पीतवर्ण हो गए और वेदों के चार अंग हो गए। कुछ चारों वेद पढ़ते थे, कुछ तीन ही, कुछ दो, कुछ एक ही, और कुछ तो एक भी नहीं। शास्त्र ऐसे बंट गए, अनुष्ठानों में विविधता आ गई। लोग तप–साधना करते। उपहार पाते और राजसी हो गए थे। किसी एक ही वेद में आस्था बन जाने से उनकी संख्या बढ़ी और सतोगुण की क्षीणता के कारण सत्य पर गिने–चुने लोग ही अटल थे। नर–नारियों से सद्गुण नष्ट हो गए, अनेक रोग, राग और विपत्तियां, उन्हें समय के साथ सताने लगीं, जिनसे वे अत्यधिक त्रस्त हुए और साध ना–मार्ग पर बढ़े। अन्य स्वर्गीय आनन्द की कामना करने लगे और यज्ञों का आयोजन किया। इस प्रकार जब द्वापर आया तो लोगों का धर्माचरण और गिरा। कलियुग में तो वह चतुर्थांश ही रह गया। इस अंधकार युग में विष्णु का रंग काला हा गया। वेद, व्यवहार, धर्मपरायणता, अनुष्ठान, आयोजन लुप्त होने लगे। विपदाएं, रोग, क्लांति, दोष जैसे क्रोधादि निराशा, चिंता, भूख, भय, विद्यमान थे। जैसे–जैसे युग बढ़ा धर्मपरायणता का क्षय होता गया। जब ऐसा हुआ तो मानव का भी ह्रास हुआ। जब वे ही रोगी थे, जो प्रेरणाएं उन्हें परिचालित करती थीं, वे भी विकृत हो गईं। युग के ह्रास के कारण जो प्रवृत्तियां विकसित हुईं, उनसे मानव के उद्देश्य विफल हो गए। ऐसा कलियुग है जो थोड़े समय रहा। जो चिरायु हैं, वे युग के अनुरूप ही चलते हैं"।

नि:संदेह, यह आश्चर्यजनक है। इन बातों का प्राचीन वैदिक साहित्य में भी उल्लेख है। कृत, त्रेता, द्वापर और अक्षंद शब्द *ऐतरेय ब्राह्मण* की तैत्तरीय संहिता तथा *शतपथ ब्राह्मण* में भी प्रयुक्त हुए हैं। *शतपथ ब्राह्मण* का कथन है–"कृत वह है जब खेल की गलतियों से लाभ मिलता है, त्रेता वह है जब कोई नियमित योजनानुसार खेलता है, द्वापर वह है जब कोई सामने वाले खिलाड़ी को पछाड़ने की चाल चलता है। अक्षंद का अर्थ है क्रीड़ास्थल का कीड़ा।" ऐतरेय ब्राह्मण और तैत्तरीय ब्राह्मण में अक्षंद के स्थान पर 'कलि' शब्द प्रयुक्त हुआ है। *तैत्तरीय ब्राह्मण* में कृत का अर्थ है जुआघर का स्वामी, त्रेता का अर्थ है–गलतियों से लाभ उठाना, द्वापर अर्थात् बाहर बैठने वाला, कलि का अर्थ है, जो जुआघर को कभी नहीं त्यागता। *ऐतरेय ब्राह्मण* में कहा गया है:

"यहां प्रत्येक सफलता की आशा करता है, आभागी मृत्यु के लिए। कलि लेटा पड़ा है, अन्य दो शनैः शनैः चल रहे हैं। आधे गिर चुके हैं परन्तु सबसे सौभाग्यशाली कृत में पूरी गति है।" यह स्पष्ट है कि ये सभी शब्द जुए के पासों के लिए हैं।

मनु ने इनका किस प्रकार प्रयोग किया[1] है? उसे भी देखा जाए। वे कहते हैं:

---

1. मनु. 9, 301–2

"कृत, त्रेता, द्वापर और कलियुग वे राजा के कार्यों के रूप हैं क्योंकि राजा युग कहलाता है। जब वह सोता है तो कलि है, गतिमान है तो द्वापर है, कार्योद्‌यत है तो त्रेता है, बढ़ता हुआ है तो कृत है।"

जब मनु की हम उनके पूर्ववर्तियों से तुलना करते हैं तो हमें स्वीकार करना पड़ता है कि इन शब्दों के भावार्थ में स्पष्ट अंतर आ गया। जो शब्द जुए की शब्दावली थी वह राजनीतिक बन गई, जिसमें राजा की कर्त्तव्य परायणता और ऐसे राजाओं की तुलना की गई, जो क्रियाशील हैं, जो कार्योच्छुक हैं, जो सचेत हैं और जो सोते रहते हैं। उनके लिए राज्य जाए भाड़ में।

प्रश्न यह है कि किन परिस्थितियों में ब्राह्मण कलियुग का सिद्धांत प्रतिपादित करने को विवश हुए? ब्राह्मणों ने कलियुग को पतित समाज का पर्याय क्यों बना डाला? मनु ने एक सोते हुए राजा को कलिराज क्यों कहा? मनु के समय कौन राजा था? उसे सोता हुआ राजा क्यों कहा गया? ऐसी कुछ पहेलियां हैं जो कलियुग सिद्धांत से उत्पन्न होती हैं।

कलियुग संबंधी अन्य पहेली भी है। एक है कलियुग वास्तव में कब आरंभ हुआ?

कलियुग कब आरंभ हुआ, उसके समय के संबंध में कई सिद्धांत हैं? पुराणों ने दो तिथियां दी हैं। कुछ के अनुसार यह ईसा पूर्व चौदहवीं शताब्दी में आरम्भ हुआ। कुछ का कथन है कि यह ई.पू. 18 फरवरी, 3102 से आरम्भ होता है, जब कौरव-पाण्डवों के बीच युद्ध की शुरुआत बताई जाती है। प्रो. अयंगर ने कहा है कि ऐसे कोई प्रमाण नहीं है कि जिनसे यह प्रकट होता हो कि ईसवी की सातवीं शताब्दी के पूर्व कलियुग का कोई उल्लेख हुआ हो। सर्वप्रथम इसका प्रयोग पुलकेशिन द्वितीय के काल के एक लेख में हुआ है, जिसमें 610 से 642 ईसवी तक बादामी पर शासन किया। इसमें दो तिथियां हैं, शक संवत् 556 और कलि संवत् 3735। इन तिथियों से कलियुग का आरम्भ 3102 ईसवी पूर्व बैठता है। यह गलत है कि ई.पू. 3102 न तो महाभारत-युद्ध की तिथि है और ना ही कलि के आरम्भ की। श्री काणे ने यह अंतिम रूप से प्रमाणित कर दिया है। विभिन्न वंशों के उन राजाओं के विषय में, जिन्होंने पाण्डव-पुत्र परीक्षित के काल में शासन किया, सबसे पक्का कथन यह है कि महाभारत की तिथि ई.पू. 1263 थी। यह ई.पू. 3102 नहीं हो सकती। श्री काणे ने यह भी कहा है कि ई.पू. 3102 कल्प के आरम्भ की तिथि है, कलि आरम्भ की नहीं। इस आलेख में कालपदि को कल्यादि पढ़ लिया गया। इस प्रकार कोई निश्चत तिथि नहीं है, जिसे ब्राह्मण कलि का आरम्भ कह सकें। एक निश्चित तिथि होनी चाहिए थी जिससे इतनी बड़ी घटना की शुरूआत बताई जाती। यह पहेली है।

परन्तु और भी पहेलियां हैं, जो इस प्रकार हैं :

दो ढकोसले कलियुग के संबंध में हैं। ब्राह्मणों ने इस बात पर अत्यधिक बल दिया है कि कलियुग में दो ही वर्ण हैं, ब्राह्मण और शूद्र। उनका कहना है कि क्षत्रिय और वैश्य का अस्तित्व नहीं है। इस मान्यता का आधार क्या है? इसका अर्थ क्या है? क्या वे दो वर्ण ब्राह्मणों में विलीन हो गए या उनका अस्तित्व नहीं है?

भारतीय इतिहास का वह कौन सा काल है जब यह मान्यता आरम्भ हुई?

क्या इसका अर्थ है कि इन दोनों वर्णों का ब्राह्मण में विलीन होना कलियुग का आरम्भ है?

कलियुग के संबंध में दूसरी मान्यता है कलि वर्ज्य, जिसका अर्थ है, कलियुग में किन कार्यों का निषेध है। विभिन्न पुराणों में यत्र-तत्र उनका प्रसंग है। परन्तु *आदित्य पुराण* में उनका संहिताबद्ध किया गया है और संग्रहीत कर दिया गया है। कलि वर्ज्य के अन्तर्गत जो व्यवहार में आता है, वह निम्नांकित है:[1]

"1. विधवा से पुत्र उत्पन्न करने हेतु जेठ की नियुक्ति।"[2]

"2. किसी (विवाहित) स्त्री के पति की मृत्यु के बाद उसका पुनर्विवाह[3] (जिसके साथ सहवास न हुआ हो।) और (जिसके साथ सहवास हो चुका हो)।"

"3. तीनों[4] द्विज वर्णों के बीच अन्य वर्ण की कन्या से विवाह[5]।"

"4. आततायी[6] ब्राह्मण का सीधे युद्ध में भी वध[7]।"

---

1. कलि वर्ज्य, पी.वी. काणे, पृ. 8-16
2. यह नियोग के संदर्भ है जिसे गौतम की मान्यता प्राप्त है 18-9-14, नारद स्त्रीपम श्लोक 58 याज्ञवल्क्य की मान्तया है 1, 64-68 यद्यपि मनु ने इसकी निंदा की है 9, 64-68, बृहस्पति को भी अस्वीकार्य है।
3. यह विधवाओं के पुनर्विवाह के संदर्भ में है। नारद (स्त्रीपम श्लोक, 98-100) के अनुसार विधवा ब्राह्मण स्त्रियों तक को कुछ दशाओं में पुनर्विवाह की मान्यता है। पराशर का भी यही मत है जबकि वशिष्ठ (17.74) और बौधायन धर्मसूत्र (4,1.12) के अनुसार प्रथम विवाह विच्छेद बिना पुनर्विवाह कर सकती है। इस परिच्छेद को बालिका क्षतयोनिका के नाम से भी जाना जाता है। इसका अर्थ है एक विवाहित बालिका जिसका विवाह विच्छेद नहीं हुआ है जबकि दूसरे स्थान पर कहा गया है दो प्रकार की विधवाएं (जिसका विवाह विच्छेद हो गया और जिसका न हुआ हो)।
4. कलि वर्ज्य, पी.वी. काणे, पृष्ठ 8-16
5. सबसे पुरानी स्मृति में अनुलोम विवाह की अनुमति है जैसे बौधायन धर्मसूत्र 1.8.2-5, वशिष्ठ 1.24-27, मनु 3, 14-17, याज्ञवल्क्य 1, 56-57
6. कलि वर्ज्य, पी.वी. काणे, पृष्ठ 8-16
7. धर्म ग्रंथकारों ने इस विषय पर बहुत लिखा है; मनु 8, 350-51, विष्णु 5, 180-80, वशिष्ठ 3, 15-18 में एक आततायी ब्राह्मण के वध की अनुमति देते हैं जबकि सुमंतु ने कहा है "किसी आततायी के वध से कोई पाप नहीं है, ब्राह्मण और गाय इसके अपवाद हैं।" इन्होंने आततायी ब्राह्मण के वध पर प्रतिबंध लगाया है। देखें, यज्ञ पर मिताक्षरी 2, 21 इस विषय पर विचार।

"5. किसी द्विज से व्यवहार (उसके साथ खान-पान जैसा व्यवहार) जो समुद्रयात्रा पर जाता है, चाहे उसने प्रायश्चित भी क्यों न कर लिया हो[1]।"

"6. सात्र का उपनयन करना।"

"7. कमण्डल लेकर चलना।[2]"

"8. महायात्रा[3] पर जाना।"

"9. गोमेध[4] में गाय की बलि।"

"10. श्रौतमणि यज्ञ तक में मद्यपान[5]।"

"11-12. अग्निहोत्र के पश्चात् पुनः प्रयोग हेतु उसमें प्रयुक्त कलछी को चाटना[6]।"

"13. शास्त्रानुसार वैखानस जीवनयापन[7]।"

"14. (जन्म और मृत्यु होने पर) व्यवहार और वैदिक ज्ञान के आधार पर अशुचिता की अवधि घटाना[8]।

1. बौधायन धर्मसूत्र 1.1.20 में समुद्रयात्रा की निंदा की गई है जो उत्तरापथ के ब्राह्मणों की विशिष्टता थी। इन्हें पतितों में सबसे पहला स्थान दिया गया है (11.1.41)। कुछ विद्वान कहते हैं कि यह प्रतिबंध बार-बार समुद्रयात्रा के विषय में है। "समुद्रगा" पतित बताए गए हैं (जीवानंद पृ. 525)
2. बौधायन-धर्मसूत्र 1.3.4 में स्नातकों के लिए व्यवस्था है कि वे मिट्टी अथवा काठ के पात्र में पानी ले जाएं। वशिष्ठ 12.14 और मनु 4.36 और याज्ञ 1.132 भी यही कहते हैं। जबकि मदन पारिजात पृ. 15-16 में कहा गया है कि कमंडल धारण का अर्थ है चिर ब्रह्मचर्य परंतु यह सत्य नहीं है क्योंकि नारदीय पुराण में उपरोक्त का उल्लेख है कि दोनों भिन्न हैं और प्रतिबंधित हैं।
3. इसका संदर्भ है वानप्रस्थों के लिए पूर्वोत्तर की ओर प्रस्थान मनु छठा, 31 और याज्ञ. 3.55 और वृद्ध व्यक्तियों द्वारा महायात्रा (आत्महत्या) की प्रथा अर्थात् जब तक चलते रहना जब तक बेदम होकर गिर न जाये। प्रयाग जैसे पवित्र स्थल पर गंगा में जलसमाधि लेना अथवा अग्नि में प्रवेश कर जाना अपरार्क पृ. 536 जहां स्मृति में यह अनुमति दी गई है। उल्लेखनीय है कि *मृच्छकटिकम* के रचयिता शूद्रक ने रघुवंश 8, 94 के अनुसार अग्नि में प्रवेश किया था। अत्रि श्लोक 218-19 का मेधातिथि ने उल्लेख किया है कि मनु 5.88 के अनुसार राजा प्रयाग में जलसमाधि लेते थे।
4. देखें सांख्यायन सूत्र 14.15.1, कात्यायन स्रोत 22, 11.34 और मनु 11.74।
5. यह इन्द्र के लिए दी जाने वाली आहुति से मुख्यतः संबंधित है जब आश्विन, सरस्वती और इन्द्र को तीन कटोरे मदिरा भेंट करने के लिए एक ब्राह्मण को धन देकर नियुक्त किया जाता था कि वह कव्य प्राप्त करे। देखें तैत्तिरीय ब्राह्मण 1.8.62, सांख्यायन स्रोत 15.15.1.14 और पूर्वमीमांसा सूत्र 3.5.14.5
6. देखें तैत्तिरीय ब्राह्मण 2.1.4 और सत्यसाधस्त्रोत।
7. आप. धर्मसूत्र 11.9.21, 18.11.9, 23.2, मनु 1-32, वशिष्ठ 9.1.11 में इस संबंध में विस्तृत नियम दिए गए हैं।
8. उपरोक्त में उद्धत पराशर जिसमें कहा गया है कि जो ब्राह्मण वैदिक ज्ञान और अग्निहोत्र में प्रवीण है केवल एक दिन की अशुचिता (किसी निकट संबंधी की मृत्यु पर) माने जिसका केवल अध्ययन है। वह तीन दिन की अशुचिता माने बृहस्पति ने हरदत्त के अनुसार 14.1 में कहा है कि कलियुग में सभी के लिए समान रूप से 10 दिन की अशुचि का विधान है। याज्ञ पर विश्वरूप का विस्तृत शास्त्रार्थ में कहना है (3.30) कि दस दिन बाद अशुचिता से मुक्ति मिल जाती है। कहा गया है कि केवल अथर्ववेद का अर्थ है कि स्वार्थ के अभाव और सदगुणों की प्रशंसा की गई है। यह समझना युक्तिसंगत नहीं है कि विश्वरूप को कोई महत्व दिया गया है या उसके कलिवर्ज्य पर ये श्लोक प्रसिद्ध हैं यह पराशर के समक्ष उनकी व्याख्या में विफल न होता।

"15. प्रायश्चित स्वरूप ब्राह्मण की मौत का विधान[1]।"

"16. नैतिक पाप (स्वर्ण) चोरी की छोड़कर और पापियों (महापातकों) के साथ सम्पर्क होने पर (गुप्त) प्रायश्चित[2]।"

"17. वर, अतिथि और पितरों को मंत्रों के साथ मांस की भेंट[3]।"

"18. औरत[4] तथा दत्तक पुत्र के अतिरिक्त अन्य को पुत्रों के रूप में स्वीकार करना[5]।"

"19. उन व्यक्तियों के साथ प्रायश्चित के उपरांत भी सम्पर्क जिन्होंने उच्च जाति की महिला के साथ संभोग किया है[6]।"

"20. यदि किसी वृद्ध अथवा सम्भावित व्यक्ति की पत्नी ने परपुरुष से संभोग किया है और उसके लिए वह प्रताड़ित की गई है उसका परित्याग[7]।"

"21. किसी[8] एक व्यक्ति के लिए दूसरे का वध[9]।"

"22. जूठन छोड़ना[10]।

---

1. मनु (2.89 और 146) ने कहा है कि जानबूझ कर की गई ब्रह्म हत्या और मदिरापान का प्रयश्चित मृत्यु है। गौतम 21.7 का भी यही कथन है।
2. मनु 11.54 उन अपराधियों के सम्यकों की गणना चार महापातकों के साथ पांचवे महापातक के रूप में करता है। गौतम 24 और वशिष्ठ 25 ब्रह्म हत्या के महापातकों तक के लिए गुह्य प्रायश्चित का विधान करता है। इस नियम के अनुसार ब्रह्म हत्या के लिए कलि में गुह्य प्रायश्चित की आवश्यकता नहीं है, न मदिरापान और न निकट संबंधियों के साथ संभोग करने वाले के लिए यह आवश्यक है देखें अपरार्क पृ. 1212 जिसमें उनका जिक्र है जो गुह्य प्रायश्चित करें।
3. मधुपर्क सम्मानित अतिथियों को दिया जाता है जिसमें वर भी शामिल है। देखें गौतम 5.25-35, याज्ञ. 1.109, श्राद्ध में पितरों की संतुष्टि के लिए विभिन्न पशुओं के मांस का उल्लेख है। देखें याज्ञ. 1.258-360, मनु 3, 123 आश्वलायन गृह्य सूत्र के अनुसार (1.24-36) मधुपर्क बिना मांस के न परोसा जाए। देखें वशिष्ठ 6.5-6
4. काणे, कलिवर्ज्य, पृ. 8-16
5. मनु. 9.165-80, याज्ञ. 2.128-132 और अन्य 12 प्रकार के पुत्रों का उल्लेख करते हैं।
6. गौतम (4.20 और 22.23) निम्न जाति के व्यक्ति द्वारा उच्च जाति की स्त्री के साथ संभोग की निंदा करते हैं और उनके वंशजों को धर्महीन कहते हैं।
7. वशिष्ठ ने 21.10 में चार प्रकार की स्त्रियों का उल्लेख किया है जैसे : वह जिसने विद्यार्थी के साथ संभोग किया हो या पति के गुरु से, वह जिसने अपने पति की हत्या कर दी हो या जो निम्न जाति के पुरुष से व्यभिचार करती हो, उन्हें त्याग देना चाहिए।
8. काणे, कलि वर्ज्य, पृ. 8-12
9. स्मृतियों में कहा गया है ब्राह्मण और गाय की रक्षा में जान की परवाह न करें, मनु 9.79 और विष्णु 3, 45
10. वशिष्ठ 14.20.21 के अनुसार जूठन अथवा उससे छुआ भोजन न खाया जाए। इसका अर्थ है जूठन अन्य को दे देना कुछ स्मृतियों के उच्छिष्ट, शूद्रों आदि को देने की बात है, यहां उस पर प्रतिबंध है, देखें गौतम 10.61 और मनु 10.125

"23. जीवन के लिए (पैसा लेकर) किसी देवता विशेष की मूर्ति की पूजा का संकल्प[1]।"

"24. मृत्यु संबंधी अशुचिता के अधीन फूल चुनने के पश्चात् उन व्यक्तियों का स्पर्श[2]।"

"25. ब्राह्मण द्वारा पशु की वास्तविक बलि।"

"26. ब्राह्मण[3] द्वारा सोम पौधे का विक्रय[4]।"

"27. समय तक भूखा रहने के उपरांत ब्राह्मण का शूद्र से भोजन ग्रहण करना।[5]"

"28. (ब्राह्मण) गृहस्थ का अपने शूद्र वर्ण के दास के हाथ से बना भोजन ग्रहण करना, गोशाला और उन व्यक्तियों के हाथ का भोजन करना जो उसकी बटाई पर खेती करते हैं[6]।"

"29. [7]बहुत लम्बी दूरी की तीर्थयात्रा पर जाना।"

"30. गुरुपत्नी के साथ वैसा ही व्यवहार जैसा स्मृतियों में गुरु के लिए निर्धारित है[8]।"

"31. ब्राह्मण द्वारा विपरीत परिस्थितियों में जीवनयापन के लिए कल के लिए भोजन की परवाह न करना।"

---

1. मनु 3, 152 धन लेकर पूजा करने वाला ब्राह्मण श्राद्ध अथवा देव कर्म में आमंत्रित न किया जाए।
2. फूल चुनने का कार्य दाह संस्कार के चौथे दिन किया जाए। विष्णु 19, 10-12, वैखानस स्मृतिसूत्र खण्ड 7, समवर्त श्लोक 38-39
3. काणे, कलि वर्ज्य, पृ. 13
4. कात्यायन सूत्र (7, 6: 2-4) के अनुसार सोम कौत्स गोखीय, ब्राह्मण अथवा शूद्र से खरीदा जाए परन्तु मनु 10.88 में अन्य बातों के अतिरिक्त सोम विक्रय का निषेध करते हैं चाहे वह कृषि कार्य भी करता हो या वैश्यवृत्ति करता हो और मनु 3.158 और 170 के अनुसार सोम विक्रेता ब्राह्मण को श्राद्ध में बुलाने का कुपात्र समझते हैं।
5. मनु 9.16 में अनुमति देते हैं कि कोदई ब्राह्मण तीन दिन से भूखा हो तो व निम्न कर्मवालों से भी एक दिन भोजन ले सकता है। याज्ञ. 3.43 के अनुसार यदि 'हीनकर्म' पढ़ें तो इसका अर्थ (भिक्षावृत्ति और चोरी जैसा कि नारद अभ्युपेत्य सुश्रुषा 5-7 में वर्णित है) है।
6. यदि कोई शूद्र ब्राह्मण का दास है, नाई है, ग्वाला है, बटाई पर खेती करता है या वंशानुगत भिन्न है तो मनु स्मृति के अनुसार ब्राह्मण उसके यहां का पका भोजन भी ले सकता है, देखें गौतम 17.6, मनु 4.253, याज्ञ. 1.166 (इसका पूर्वाद्ध भी वैसा ही है), अंगिरस 120. पराशर 11
7. काणे, कलि वर्ज्य, पृ. 14
8. मनु ने 2.210 में व्यवस्था दी है कि गुरु पत्नियां यदि उसी वर्ण की हों जिसका गुरु है तो उनका सम्मान गुरु के समान किया जाए। यदि वे उसी वर्ण की नहीं तो उनकी अगवानी के लिए उठकर प्रणाम किया जाए।

"32. जातकर्म[1] होम के समय ब्राह्मण द्वारा अरनी स्वीकार करना जिसके अनुसार शिशु के जातकर्म से उसके पाणिग्रहण तक के संस्कार कराने का कार्यक्रम हो[2]।"

"33. ब्राह्मण द्वारा सतंत् यात्रा।"

"34. बांस की फूंकनी[3] के बिना आग में फूंक मारना।"

"35. शास्त्रों में वर्णित प्रायश्चित के पश्चात् भी किसी ऐसी स्त्री को जाति में सम्मिलित होने की स्वीकृति देना, जो बलात्कार से कलंकित हो चुकी हो[4]।"

"36. संन्यासी[5] द्वारा सभी वर्णो (शूद्रों सहित) से भोजन की भिक्षा ग्रहण करना[6]।"

"37. जमीन से निकाले जाने वाले जल का पान करने हेतु दस दिन तक प्रतीक्षा।"

"38. अध्यापक को दीक्षांत पर (मांगने पर) शास्त्रानुसार दक्षिणा[7]।"

"39. ब्राह्मण[8] और अन्यों के लिए शूद्रों से भोजन बनवाना[9]।"

"40. वृद्धों द्वारा चट्टान से अथवा आग में कूद कर आत्महत्या[10]।"

---

1. गौतम 7, 1-7, आप ध. सू. 1.7, 20.11-17, 21.4, याज्ञ. 3.35, 44 और अन्य के अनुसार संकट काल में ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य की वृत्ति कर सकता है। मनु 4.7 के अनुसार ब्राह्मण का आदर्श है कि वह तीन दिन से आवश्यकता से अधिक का अथवा एक ही दिन का आवश्यकता से अधिक अनाज संग्रह न करे। यहां यह कठोर सीमाएं प्रतिबंधित हैं।
2. काणे, कलि वर्ज्य, पृ. 14
3. संस्कार कौस्तुभ के गृह परिशिष्ट में ऐसा उद्धरण है।
4. *मनुस्मृति* 4,53 में भी यह प्रतिबंध है। वैदिक साहित्य के अनुसार अग्नि को मुंह से फूंक मार कर प्रज्ज्वलित करने की अनुमति है। देखें आप. ध. सू. 1.5.15.20 पर हरदत्त।
5. इतने बाद में भी स्मृति देवला (मंत्र 47) में यदि किसी स्त्री के साथ म्लेच्छ ने भी बलात्कार किया है तो 3 दिन के प्रायश्चित के बाद वह शुद्ध हो जाती है। *आदित्य पुराण* बेकसूर और अभागी स्त्रियों के प्रति अत्यंत कठोर है।
6. काणे, कलि वर्ज्य, पृ. 15
7. बौधायन धर्मसूत्र 2.10 में संन्यासी को सभी वर्गों से भिक्षा में भोजन मांगने की छूट है परंतु मनु (4.43) और याज्ञ. 3.59 में विधान है कि वह शाम को ही भिक्षा मांगे। वशिष्ठ (10.7) के अनुसार भी बिना पूर्ण निर्णय के 7 घरों से भिक्षा मांगे किंतु बाद में वशिष्ठ ने कहा है (10.24) कि उसे ब्राह्मणों के यहां से प्राप्त भिक्षा से ही संतुष्ट हो जाना चाहिए।
8. याज्ञ 1.51 के अनुसार ब्रह्मचारी वेदाध्ययन और व्रत के पश्चात् गुरु को उसकी मनोवांछित गुरुदक्षिणा दे और पर्वस्नान करे।
9. काणे, कलि वर्ज्य, पृ. 15
10. आप. ध. सूत्र 2, 2.3.4 में शूद्रों को अनुमति है कि वे आर्यों की देखरेख में तीन उच्च वर्णों के लिए भोजन बनाएं।

"41. जूठे पानी का सम्मानित व्यक्तियों द्वारा आचमन, चाहे वह गाय का ही झूठा क्यों न हो[1]।"

"42. पिता और पुत्र के बीच विवाद[2]।"

"43. संन्यासी जहां रात हो जाए, वहीं शयन करें[3]।"

इस *कलिवर्ज्य संहिता* की सबसे अजीब बात यह है कि इसके महत्व को पूरी तरह समझा नहीं गया। इसका उल्लेख केवल इसी रूप में किया जाता है कि यह एक उन व्यवहारों की सूची है, जिन पर कलियुग में प्रतिबंध हैं। परंतु इन निषेधों की सूची से भी आगे कुछ और है। निःसंदेह कलिवर्ज्य संहिता में वर्णित सूची के व्यवहार प्रतिबंधित हैं। बहरहाल प्रश्न है कि क्या ये व्यवहार अनैतिक और निंदित हैं, पाप है या किसी दृष्टि से समाज के लिए हानिकर हैं? इसका उत्तर है नहीं। हम यह जानना चाहेंगे कि यदि यह प्रतिबंध लगाए गए हैं तो क्या वे निंदित कार्य हैं? *कलिवर्ज्य संहिता* की यही सबसे गूढ़ पहेली है। किसी व्यवहार को निंदित घोषित किए बिना प्रतिबंधित करना पूर्व युगीन परम्पराओं का एक विरोधाभास है। एक उदाहरण है। आपस्तंब धर्म सूत्र ने ज्येष्ठतम पुत्र को ही सारी सम्पत्ति देने के व्यवहार को प्रतिबंधित किया। लेकिन इसकी भी निंदा की। ब्राह्मणों ने यह क्या तरीका खोज निकाला कि किसी बात पर प्रतिबंध तो लगा दें परंतु उसकी निंदा न करें? इसके पीछे कोई कारण होना चाहिए। वह कौन-सा कारण है?

1. वशिष्ठ 3.35 के अनुसार गड्ढा में भरा पानी यदि ऐसा है जो गाय की प्यास बुझा सके तो उसका आचमन किया जा सकता है। देखें मनु 5.128 और याज्ञ. 1.192
2. याज्ञ. 2.239 में विधान है कि पिता-पुत्र विवाद के साक्षी को तीन पण का अर्थदण्ड दिया जाए।
3. इसका यह अर्थ भी हो सकता है कि संन्यासी शाम को बस्ती में रहे।

परिशिष्ट–1

राम और कृष्ण की पहेली

राम वाल्मीकि कृत *रामायण* के नायक हैं। *रामायण* का कथानक बहुत संक्षिप्त है, साथ ही यह सरल भी है। इसमें कोई सनसनीखेज बात नहीं है।

राम दशरथ के पुत्र हैं, जो आधुनिक बनारस के अयोध्याराज के शासक थे। दशरथ की तीन पत्नियां थीं। कौशल्या, कैकेयी तथा सुमित्रा तथा कई सौ रखैलें थीं। कैकेयी का दशरथ से विवाह, कुछ शर्तों पर हुआ था, जो विवाह के समय निश्चित नहीं की गई थीं और दशरथ वचनबद्ध थे कि कैकेयी जब कोई शर्त उनके सम्मुख रखेगी, वह उन्हें माननी होगी। दशरथ दीर्घकाल तक निःसंतान रहे। वे राज का उत्तराधिकारी पाने के लिए अधीर थे। यह देखकर कि उसकी तीनों रानियों में से किसी से भी पुत्र उत्पन्न होने की आशा नहीं है, उन्होंने पुत्रेष्टि यज्ञ करने का निश्चय कया और ऋष्यश्रृंग को यज्ञ हेतु बुलाया। ऋषि ने यज्ञ सम्पन्न करके पिंड नामक वस्तु तैयार की और दशरथ की तीनों पत्नियों को खाने के लिए दी। पिण्ड खाकर तीनों रानियां गर्भवती हो गईं और पुत्रों को जन्म दिया– कौशल्या से राम, कैकेयी से भरत और सुमित्रा से दो पुत्र लक्ष्मण और शत्रुघ्न उत्पन्न हुए। बाद में राम का सीता से विवाह हो गया। जब राम वयस्क हो गए तो दशरथ ने राम को राजपाट सौंपकर परिजनों को त्यागने का निश्चय किया। जब यह बात चल रही थी तो कैकेयी ने प्रश्न उठाया के अब वह उस वचन की पूर्ति चाहती है जो विवाह के समय दशरथ ने दिया था। उससे पूछे जाने पर कैकेयी ने बताया कि राम के स्थान पर उसके पुत्र को राज दिया जाए और राम को 12 वर्ष का वनवास। दशरथ बहुत हील हुज्जत के बाद मान गए। भरत अयोध्या के राजा हो गए और राम अपनी पत्नी सीता तथा सौतेले भाई लक्ष्मण के साथ वन को प्रस्थान कर गए। जब वे वनों में रह रहे थे तो लंकाधिपति

यह पक्की जिल्द की फाइल में रखी 49 पृष्ठों की टंकित प्रति है जिसके साथ 'सिम्बल्स आफ हिंदुइज्म' की पाण्डुलिपि भी थी। मूल विषयसूची में यह पहेली नहीं दी गई। इसीलिए इसे परिशिष्ट के रूप में शामिल किया गया है। – संपादक

टिप्पणी इस अध्याय में व्यक्त विचारों में आवश्यक नहीं कि सरकार की सहमति हो।

रावण ने सीता का हरण कर लिया और उन्हें अपनी पत्नी बनाने की इच्छा से अपने महल में ले गया। तब राम ने लक्ष्मण को सीता की खोज आरम्भ करने को कहा। इस बीच उन्हें वानर जाति के दो प्रमुख सुग्रीव और हनुमान मिले। उन्होंने उनसे मैत्री कर ली। उनकी सहायता से सीता का पता मिल गया। उन्होंने लंका को कूच किया। युद्ध में रावण को हराया और सीता को मुक्त करा लिया। सीता और लक्ष्मण सहित अयोध्या वापस आ गए। उस समय तक चौदह वर्ष की अवधि बीत चुकी थी और कैकेयी की शर्त पूरी हो चुकी थी। परिणामस्वरूप भरत ने राज त्याग दिया और राम अयोध्या के राजा बन गए।

वाल्मीकि के अनुसार रामायण की कथा का सार यही है।

इस कहानी में ऐसा कुछ नहीं है, जिससे राम को पूजनीय बनाया जा सके। यह मात्र एक आज्ञापालक और कर्त्तव्यपालक व्यक्ति हैं। परन्तु वाल्मीकि को राम में कुछ विलक्षण लगा, तभी उन्होंने *रामायण* की रचना की।

वाल्मीकि ने नारद से निम्नांकित प्रश्न किए[1]:

"हे नारद! मुझे बताओ कि वर्तमान समय में अत्यधिक आज्ञाकारी व्यक्ति पृथ्वी पर कौन हैं?"

तब वे विस्तार से कहते हैं कि अत्यधिक आज्ञाकारी व्यक्ति से उनका आशय क्या है? वह ऐसे बताते हैं :

"बलशाली, जो धर्मज्ञ हो, जो कृतज्ञता, सत्य को जानता हो, धर्मपालन के लिए जो विपदा में भी स्वार्थ त्यागने को तत्पर हो, व्यवहार में सद्गुण हों, सभी के हितों की रक्षा करता हो, आत्मसंयमी और सुदर्शन हो, क्रोध का दमन कर सके, अनुकरणीय हो, अन्य की सम्पन्नता से ईर्ष्या न करे और युद्ध में देवताओं को भी दहला दे।"

नारद ने सोचने के लिए समय मांगा और काफी सोच–विचार के पश्चात् उन्होंने कहा, जिस व्यक्ति में ये सभी गुण हैं, वह केवल दशरथ–पुत्र राम हैं।

गुणों के कारण ही राम को यह पद प्राप्त है।

परन्तु क्या राम देवतत्व के योग्य हैं? जो उन्हें देववत पूजनीय मानते हैं, उन्हें निम्नांकित तथ्यों पर विचार करना चाहिए।

राम का जन्म ही अप्रत्याशित था और यह सोचा जा सकता है क सच छिपाने का यह एक प्रतीक बना दिया गया कि उनका जन्म (पिण्ड) खाने से हुआ था, जो ऋष्य श्रृंग[1] ने तैयार किया था। यद्यपि दोनों पति–पत्नी नहीं थे फिर भी उनका जन्म यदि बदनामी की बात नहीं है तो भी अप्राकृतिक तो है ही।

---

1. बालकाण्ड सर्ग 1, श्लोक 1–5

राम-जन्म से संबंधित अन्य अरुचिकर घटनाएं भी हैं, जिनसे इंकार किया जाना कठिन है।

वाल्मीकि रामायण का आरम्भ इसी बात से करते हैं कि राम विष्णु के अवतार थे जो दशरथ के पुत्र के रूप में उत्पन्न होने को तैयार हो गए। ब्रह्मा को इस बात का पता चला और वह सोचने लगे कि इस अवतार को पूर्ण सफलता मिले इसलिए उनके बलशाली सहयोगी बनाए जाएं, जो उनकी सहायता और सहयोग कर सकें। उस समय ऐसा कोई नहीं था।

देवता ब्रह्मा का आदेश मानने के लिए तैयार हो गए और न केवल अप्सराओं बल्कि यक्षों, नागों की कन्याओं ऋक्षों, विद्याधरों, गंधर्वों, किन्नरों और वानरों की वैध पत्नियों से भी व्यभिचार में लिप्त हो गए और राम की सहायता करने वाले वानर उत्पन्न किए।

यदि उनका भी नहीं तो उनके सहयोगियों का जन्म तो दुरागमन से ही हुआ। सीता से उनका विवाह भी निर्विवाद नहीं है। सीता *बुद्ध रामायण* के अनुसार राम की बहन थी। दोनों दशरथ की संतान थे। वाल्मीकि रामायण, *बुद्ध रामायण* में दर्शाए गए सम्बन्धों से सहमत नहीं है। वाल्मीकि के अनुसार सीता विदेहराज जनक की पुत्री थी, राम की बहन नहीं। यह समझ के बाहर है क्योंकि स्वयं वाल्मीकि के अनुसार वह जनक की सामान्य प्रसूत पुत्री नहीं थी बल्कि अपने खेत में हल चलाते किसान को प्राप्त हुई थी, जो उसने जनक को दे दी। इसलिए यह ठोस कथन नहीं है कि सीता जनक की पुत्री थी। *बुद्ध रामायण* की कथा स्वाभाविक है, जो आर्यों की विवाह-पद्धति[1] से मेल खाती है। यदि यह ठीक है तो राम और सीता का विवाह आदर्श नहीं था जिसका अनुकरण किया जाए। राम के विषय में एक सद्‌गुण यह भी बताया जाता है कि वे एक पत्नीव्रत थे। यह समझना कठिन है कि यह आम धारणा कैसे बन गई? यह तथ्य पर आधारित नहीं है। यहां तक कि वाल्मीकि ने भी उल्लेख किया[2] है कि राम की अनेक पत्नियां थीं।[2] इसके साथ ही उनकी अनेक उप-पत्नियां भी थीं। इस प्रकार वे अपने नामधारी पिता के सच्चे पुत्र थे, जिनकी न केवल उपरोक्त वर्णित तीन पत्नियां थी अपितु अन्य भी अनेक थीं।

अब हम उनके चरित्र की, एक राजा और व्यक्ति के रूप में व्याख्या करें।

उनके व्यक्तिगत जीवन के बारे में हम दो घटनाओं, का उल्लेख करेंगे। एक बाली से संबंधित है और दूसरी उनकी पत्नी सीता से। सर्वप्रथम हम बाली को लें।

बाली और सुग्रीव दो भाई थे। वे वानर जाति से संबंध रखते थे और एक

---

1. आर्यों में भाई-बहन के विवाह को मान्यता थी।
2. अयोध्याकाण्ड सर्ग 8, श्लोक 12

राज–परिवार से थे। उनका अपना राज था जिसकी राजधानी किष्किंधा थी। जब बाली राजा था तो उसका मायावी नामक राक्षस से युद्ध छिड़ा हुआ था। द्वंद्वयुद्ध में मायावी अपनी जान बचाकर भागा और एक गहरी खोह में घुस गया। बाली ने सुग्रीव से कहा कि वह गुफा के भीतर जा रहा है, वह बाहर गुफा के मुंह पर प्रतीक्षा करे। कुछ देर बाद गुफा में से रक्त की धारा फूटी। सुग्रीव ने अनुमान लगाया कि बाली मायावी के हाथों मारा गया। किष्किंधा आकर उसने स्वयं को राजा घोषित कर दिया और हनुमान को अपना मंत्री बना लिया।

वास्तव में बाली मरा नहीं था बल्कि बाली ने मायावी को मार गिराया था। बाली गुफा से बाहर आया और देखा तो सुग्रीव वहां नहीं था। वह किष्किंधा आया तो यह देखकर चकित रह गया कि सुग्रीव राजा बना बैठा है। स्वाभाविक था कि इस दगाबाजी को देखकर बाली आगबबूला हो उठता, क्योंकि इसका कारण भी स्पष्ट था। सुग्रीव को अटकल पर ही निर्भर नहीं करना था। उसे देखना था कि बाली मृत है या जीवित। दूसरे बाली का एक पुत्र था अंगद। वह बाली का वैध उत्तराधिकारी था। उसे राजा बनाया जाना चाहिए था। सुग्रीव ने कुछ नहीं किया। यह विद्रोह का स्पष्ट मामला था। बाली ने सुग्रीव को खदेड़ दिया और गद्दी पर बैठ गया। दोनों भाई जानी दुश्मन बन गए।

यह घटना तभी घटी थी, जब रावण ने सीता का हरण किया था। राम और लक्ष्मण उनकी खोज कर रहे थे। सुग्रीव और हनुमान किसी मित्र की तलाश में थे, जो उन्हें बाली से राज्य वापस दिला सके। दोनों पक्षों में संयोगवश भेंट हो गई। जब दोनों ने एक–दूसरे की कठिनाइयों को सुना तो उनके बीच एक समझौता हुआ। यह सहमति हुई कि राम बाली का वध करने और सुग्रीव को किष्किंधा–राज दिलवाने में मदद करें। यह भी सहमति हुई कि सुग्रीव और हनुमान राम को सीता वापस दिलाने में सहायता करेंगे। बाली वध की योजना को कार्यरूप देने के लिए सुग्रीव अपने गले में माला पहन ले, जिससे द्वंद्वयुद्ध के समय सरलता से पहचाना जा सके। राम किसी वृक्ष की आड़ में छिप जाए और वहां से तीर चलाकर बाली का काम तमाम कर दें। तद्नुसार द्वंद्व आयोजित किया गया। जब युद्ध हो रहा था तो सुग्रीव के गले में माला थी। वृक्ष के पीछे छिपे राम ने निशाना साधा। सुग्रीव किष्किंधा का राजा बन गया। बाली की हत्या राम के चरित्र पर बहुत बड़ा धब्बा है। यह एक ऐसा अपराध था, जो एकतरफा था क्योंकि बाली का राम से कोई विवाद नहीं था। यह कायरता भी थी क्योंकि बाली निहत्था था। यह एक सुनियोजिता और सुविचारित हत्या थी।

अब यह देखें कि उन्होंने अपनी ही पत्नी सीता के साथ क्या व्यवहार किया? जब सुग्रीव और हनुमान ने सेना एकत्र कर ली तो राम ने लंका पर आक्रमण कर दिया। यहां भी राम ने वही चाल चली जो बाली और सुग्रीव के बीच चली थी। उन्होंने

इस शर्त पर रावर्ण के भाई विभीषण से सहायता ली कि रावण और उसके पुत्रों को मार विभीषण को राज दे दिया जाएगा। राम ने रावण और पुत्र इन्द्रजीत का वध कर दिया। युद्ध समाप्ति पर राम ने सबसे पहला कार्य रावण की विधिवत अंतयेष्टि करके किया। इसके पश्चात् विभीषण का राज्याभिषेक कराया गया। तब उन्होंने हनुमान को सीता के पास भेजा और सूचित कराया कि वे, लक्ष्मण और सुग्रीव सकुशल हैं और उन्होंने रावण का संहार कर दिया है।

रावण पर विजय प्राप्त करने के उपरांत उन्हें सीधे सीता के पास जाना चाहिए था। उन्होंने ऐसा नहीं किया। उन्हें राजतिलक की ज्यादा चिंता है, सीता की नहीं। यहां तक कि राजतिलक के पश्चात् भी वे स्वयं न जाकर हनुमान को भेजते हैं। और वह संदेश क्या देते हैं? वे हनुमान को सीता को लाने के लिए नहीं कहते। वे सिर्फ यह खबर भेजते हैं कि वे स्वस्थ और प्रसन्न हैं। यह सीता है जो हनुमान से राम से मिलने की बात कहती है। राम सीता से मिलने गए ही नहीं जो उनकी पत्नी थी, जिसका रावण ने अपहरण कर लिया था और उसे 10 माह कैद में रखा था। सीता उनके पास लाई गई। जब सीता राम से मिली तो राम ने क्या कहा? इस बात पर कोई यकीन नहीं करेगा कि आदमी में साधारण मानवीय दया भी न हो। जो दुख में घिरी अपनी पत्नी को कठोर वचन बोलेगा जैसे कि राम ने बोले जब वह लंका में उससे मिले। वाल्मीकि साधिकार रामायण में कहते है।: जैसे कि राम[1] ने कहा:

"मैंने अपने शत्रु, तुम्हारे अपहर्ता को युद्ध में परास्त कर तुम्हें इनाम के तौर पर पाया है। मुझे मेरा सम्मान मिल गया और दुश्मन को हरा दिया है। मुझे परिश्रम का फल मिल गया है तथा लोगों ने मेरी सैनिक शक्ति देखी। मैं अपनी अपकीर्ति मिटाने आया था। मैंने तुम्हारे लिए यह कष्ट थोड़े ही उठाया है।"

राम के सीता के प्रति किए गए इस व्यवहार से बड़ी क्या कोई और भी कठोरता हो सकती है? वे यहीं नहीं रुके। उन्होंने आगे कहा:

"मुझे तुम्हारे चरित्र पर संदेह है। रावण ने तुम्हारा शीलभंग किया होगा। मुझे तुम्हें देखते ही उबाल आ रहा है। मैं तुम्हें स्वतंत्र करता हूं। जहां मन करे जाओ। हे जनक सुता! मुझे तुमसे कोई लेना-देना नहीं। मैंने तुम्हें जीता, इसका मुझे संतोष है। यही मेरा लक्ष्य था। मैं यह नहीं सोच सकता कि तुम जैसी सुन्दर नारी से रावण ने आनन्द नहीं लूटा होगा।"

स्वाभाविक है कि सीता उन्हें पतित और क्षुद्र कहती और स्पष्ट रूप से कहती कि जब हनुमान आए थे, यदि तभी उन्हें यह संदेश भिजवा दिया गया होता कि अपहरण के कारण राम ने उन्हें मन से निकाल दिया है तो वे आत्महत्या कर लेतीं और उन्हें

1. युद्धकाण्ड सर्ग. 115, श्लोक 1-23

यह कष्ट नहीं उठाना पड़ता। उन्हें कोई अवसर दिए बिना सीता ने अपनी पवित्रता का प्रमाण दिया। वे अग्नि–परीक्षा में सफल हुईं। इससे देवता प्रसन्न हुए और इस परीक्षा के पश्चात उन्होंने सीता को पवित्र घोषित किया। इसके पश्चात् ही राम सीता को अयोध्या ले जाने के लिए सहमत हुए। और जब वे उन्हें अयोध्या ले आए तो उन्होंने उनके साथ कैसो व्यवहार किया? वे राजा बन गए और सीता रानी। परन्तु राम तो राजा बने रहे और सीता का यह पद जल्दी ही छिन गया। यह काण्ड राम की सबसे बड़ी अपकीर्ति है। वाल्मीकि *रामायण* में कहा गया है कि राम के राजतिलक के कुछ समय पश्चात् ही सीता गर्भवती हो गई। ऐसा सुनकर कि सीता गर्भवती है, दुष्ट प्रवृत्ति के लोगों ने विषदमन किया कि ऐसा लगता है कि सीता जब लंका में थीं तो वे रावण से गर्भवती हुईं। उन्होंने राम पर अक्षेप लगाया कि वे एक ऐसी स्त्री को पत्नी के रूप में वापस ले आए। इस कानाफूसी को राम की राजसभा का विदूषक भद्र महल में लेकर आया। राम स्वाभाविक रूप से ऐसे लांछन को सुनकर स्तंभित रह गए। वे जुगुप्सा से भर उठे। यह स्वाभाविक भी था। प्रश्न यह था कि इस अपयश से किस प्रकार मुक्ति पाई जाए? इस कलंक से मुक्ति का उन्हें सरलतम उपाय यह मिला कि सीता को त्याग दिया जाए। एक स्त्री को, जो गर्भावस्था में है, न कोई दासी, साधनों के बिना जंगलों में छोड़ देना और यह भी उसे पूर्वसूचना दिए बिना! इसमें कोई संदेह नहीं कि सीता को अचानक त्याग देने का विचार ही उनके मन में न आया होगा। विचार उत्पन्न होने और उसके पनपने और कार्यरूप देने की योजना बनाने में कुछ समय अवश्य लगा होगा। जब भद्र ने उन्हें नगर में होने वाली अफवाहों के विषय में बताया तो उन्होंने अपने भाइयों को बुलाया और उन्हें अपनी भावनाएं बताईं। राम ने कहा "सीता की पवित्रता और सतीत्व लंका में ही प्रमाणित हो चुके थे। देवों ने भी इसका अनुमोदन किया था और उन्हें सीता की सच्चाई, पवित्रता और सतीत्व पर विश्वास है। इसके बावजूद प्रजा सीता पर लांछन लगाती है और मुझ पर उंगली उठाती है। ऐसा अपमान कोई नहीं सह सकता। सम्मान सबसे बड़ी सम्पत्ति है। देवता और महापुरुष उसे क्षति नहीं पहुंचने देते। मैं यह अपमान और अपकर्ष नहीं सह सकता। ऐसी अपकीर्ति से बचने के लिए मैं तुम्हें भी छोड़ सकता हूं। ऐसा न समझना कि मैं सीता को त्यागने में संकोच करूंगा।"

इससे पता चलता है कि उन्होंने सीता को त्यागने का मन बना लिया था, यह विचार किए बिना कि जो वे कर रहे हैं, वह सही है या गलत। उन्होंने प्रजा के लांछनों से बचने का सरलतम उपाय ही अपनाया। सीता के जीवन का कोई मूल्य नहीं। मूल्य था तो उनकी प्रतिष्ठा का। उन्होंने प्रजा में ऐसी अफवाहें रोकने का कोई प्रयत्न नहीं किया, जो एक राजा के रूप में उनका कर्त्तव्य था, जो एक स्त्री के पति के रूप में उनका दायित्व था जिसकी वे परीक्षा ले चुके थे। वे प्रजा की कानाफूसी के आगे झुक गए। हिंदुओं में ऐसे लोगों का अभाव नहीं है, जो प्रमाणित करने की चेष्टा करते हैं कि राम एक प्रजातांत्रिक राजा था। किन्तु ऐसे लोग पर्याप्त संख्या में हैं जो उन्हें दब्बू और भीरु मानते हैं।

अपनी प्रतिष्ठा की रक्षा की यह क्रूर योजना उन्होंने अपने भाइयों को तो बता दी किन्तु सीता को नहीं बताई, जिनसे उनका प्रत्यक्ष संबंध था। क्योंकि वही प्रभावित होनी थी तो उन्हीं को बताया जाना चाहिए था। परन्तु उन्हें पूर्ण अंधकार में रखा गया। राम सीता से उस रहस्य को छिपाए रहे, जब तक उस पर पालन न हो गया। सीता के दुर्भाग्य से वह समय भी आया, जब उनकी प्रतीक्षित योजना क्रियान्वित हुई। जो स्त्रियां गर्भवती होती हैं, उनके मन में छोटी-मोटी ललक हुआ करती है। राम यह जानते थे। इसलिए एक दिन उन्होंने सीता से पूछा कि तुम्हारा किसी वस्तु को मन तो नहीं करता है। उन्होंने कहा, 'हां' करता है। राम ने पूछा, "वह क्या है।" सीता ने कहा, 'वह गंगा किनारे किसी ऋषि के आश्रम में कंद-मूल खाकर कम से कम एक रात बिताना चाहती हैं।' राम को और क्या चाहिए था। तपाक से हां भर दी, "निश्चिंत रहो प्रिये! मेरी कोशिश होगी कि तुम्हें कल ही भेज दूँ।" सीता ने इसे सीधे स्वभाव से लिया। परन्तु राम ने क्या किया? उन्होंने सोचा सीता से पिण्ड छुड़ाने का यह अच्छा अवसर है। उन्होंने अपने भाइयों से कहा कि वे सीता के संबंध में बीच में न आएं और यदि आते हैं तो शत्रु समझे जाएंगे। तब उन्होंने लक्ष्मण से कहा, "वह सेवेर ही सीता को गंगा के किनारे जंगल में आश्रम में छोड़ आएं।" लक्ष्मण किंकर्त्तव्यमूढ़ थे कि वे सीता को राम का फैसला कैसे बताएं? उनकी मनोदशा को पहचानते हुए राम ने, लक्ष्मण को बताया कि सीता ने स्वयं ही इच्छा प्रकट की है कि वे कुछ समय आश्रम में गंगा किनारे बिताना चाहती हैं। इससे लक्ष्मण को थोड़ा धैर्य बंधा। यह दुरभिसंधि रात को हुई थी। सवेरे कहीं लक्ष्मण ने सुमंत से कहा कि वह रथ के घोड़े तैयार करें। सुमंत ने लक्ष्मण को बताया कि सब तैयार है। तब लक्ष्मण रनिवास में गए और सीता से मिले कि वे कुछ दिन आश्रम में बिताना चाहती हैं। राम ने अपना वायदा निभाते हुए, उनसे ऐसा करने को कहा है। उन्होंने कहा, "वह रथ खड़ा है चलिए।" सीता राम का आभार मानकर रथ पर चढ़ गई। लक्ष्मण और सीता को बिठाकर सुमंत निर्दिष्ट स्थान की ओर चल दिए। अंत में वे गंगा के किनारे पहुंच गए, केवटों ने उन्हें पार उतार दिया। लक्ष्मण सीता के चरणों में गिर पड़े और आंखों से गर्म-गर्म आंसू टपकाते हुए कहा - "हे निर्दोष रानी! मेरी करनी पर मुझे क्षमा करो। मुझे आदेश है कि मैं तुम्हें यहीं छोड़ जाऊं क्योंकि लोग आपके कारण राम पर आक्षेप करते हैं।"

राम ने सीता को त्याग दिया और उनके हाल पर जंगल में छुड़वा दिया। वे पास ही वाल्मीकि के आश्रम में चली गईं। वाल्मीकि ने उन्हें शरण दी। सीता ने वहीं जुड़वा पुत्रों-लव और कुश को जन्म दिया। तीनों वाल्मीकि के यहां रहने लगे। वाल्मीकि ने बालकों का लालन-पालन किया और उन्हें *रामायण* की कथा गायन सिखाया, जो उन्होंने स्वयं रची थी। राम के राज्य के पास ही वे बालक 12 वर्ष तक जंगलों में ऋषि के आश्रम में पलते रहे। आदर्श पति और प्रिय पिता ने यह जानने की कभी चेष्टा नहीं

की कि सीता जीवित है या मर ही गई। राम 12 वर्ष पश्चात् सीता से अद्भुत दशा में मिले। राम ने एक यज्ञ किया और उसमें सभी ऋषियों को भाग लेने के लिए बुलाया। राम ने जान–बूझकर वाल्मीकि को आमंत्रित नहीं किया। परन्तु वाल्मीकि अपनी ओर से ही सीता के दोनों पुत्रों को, अपने शिष्यों के रूप में साथ लेकर यज्ञ में पहुंच गए। जब यज्ञ चल रहा था तो दोनों बालकों ने सभा में रामायण का गायन आरम्भ किया। राम बड़े आनन्दित हुए और बालकों के विषय में पूछा तो उन्हें बताया गया कि वे सीता के पुत्र हैं। तब उन्हें सीता की याद आई परंतु फिर भी उन्होंने क्या किया? वे सीता के पास नहीं गए। उन्होंने अबोध बालकों को बुलाया, जो अपने माता–पिता के पाप के विषय में कुछ नहीं जानते थे। वे तो एक अत्याचार के शिकार थे। उन्होंने वाल्मीकि से कहा कि "सीता यदि पवित्र और सती हैं तो वे सभा में आएं और अपने ऊपर लगाए गए कलंक को धोकर अपना सतीत्व प्रमाणित करें। आखिर, वे लंका में ऐसा कर चुकी हैं।" ऐसा तो उन्हें जंगल में छोड़ जाने से पूर्व भी कहा जा सकता था। राम ने ऐसा कोई वचन भी नहीं दिया कि परीक्षा में सफल हो जाने पर वे सीता को फिर रख लेंगे। वाल्मीकि ने सीता को सभा में प्रस्तुत किया। जब पति–पत्नी आमने–सामने थे, वाल्मीकि बोले, "हे दशरथ के पुत्र यह सीता खड़ी हैं, जिसे तुमने लोगों की कानाफूसी के कारण त्याग दिया था, जिन्हें मैंने अपने आश्रम में पाला है।" राम ने कहा, "मैं जानता हूं कि सीता पवित्र है और यह मेरे पुत्र हैं। इन्होंने लंका में भी अपने सतीत्व का प्रमाण दिया है। मैं इन्हें साथ ले आया परन्तु लोगों को अभी सन्देह है। सीता वह परीक्षा यहां भी दे, जिसे सभी ऋषि और प्रजा भी देख ले।"

सीता ने नेत्र भूमि पर गड़ाए। दोनों हाथ जोड़कर प्रण लिया, "यदि मैंने सपने में भी राम को छोड़कर, कभी किसी व्यक्ति का विचार भी किया हो तो धरतीमाता तू फट जा और मुझे अपने में समा ले। यदि मैंने सदा राम को प्चयार किया हो, मेरे कार्यों और विचारों में वही बसे हों तो धरतीमाता तू फट जा और मुझे अपने में समा ले।" जब उन्होंने यह प्रतिज्ञा दोहराई तो धरती फट गई। एक स्वर्ण सिंहासन उभरा। वह उस पर विराज गईं। आकाश से पुष्पों की वर्षा हुई। सभी देखकर आनन्दविभोर हो गए।

इसका अर्थ है कि सीता ने राम के पास वापस जाने के बजाय मर जाना बेहतर समझा। जिस राम ने उसके साथ कसाई से अच्छा व्यवहार नहीं किया था, यह उस सीता की गति और राम का पाप था।

राम को मर्यादा पुरुषोत्तम कहा गया है। क्या इससे यह प्रमाणित होता है?

वास्तविकता यह है कि राम ने कभी राजपाट किया ही नहीं। वह तो सांकेतिक राजा थे। वाल्मीक के अनुसार शासन–कार्य भरत देखते थे। राम ने राज–काज और प्रजा की चिंताओं से मुक्ति पा ली थी। राम के राजा बनने के बाद की दिनचर्या का

वाल्मीकि ने बहुत बारीकी से वर्णन किया है।[1] उसके अनुसार पूरा दिन पूर्वाह्न और अपराह्न में विभाजित रहता था। सवेरे से मध्याह्न तक वह पूजा पाठ में व्यस्त रहते थे। अपराह्न वे क्रमशः दरबारी विदूषकों और अंतःपुर में व्यतीत करते थे[2]। जब वे रंग महल से ऊब जाते थे तो विदूषकों की संगति करते थे और जब विदूषकों से ऊब जाते थे, रंगमहल में चले जाते थे। वाल्मीकि विस्तार से बताते हैं कि राम रनिवास में कैसे समय बिताते थे? यह रंग महल अशोक वन नामक उपवन में था। वहीं राम भोजन करते थे। वाल्मीकि के अनुसार उनके भोजन में अनेक स्वादिष्ट व्यंजन होते थे। उसमें मांस, फल और मदिरा सम्मिलित थी। राम मद्य त्यागी नहीं थे। वे प्रचुर मात्रा में मदिरापान करते थे और सीता को भी मदिरापान में सहभागिनी बनाते थे।[3] राम के अंतःपुर का जैसा वर्णन वाल्मीकि ने किया है, वह कोई मामूली बात नहीं है। नाच-गाने में अप्सराएं, उरग और किन्नर बालाएं सम्मिलित होती थीं। अन्य क्षेत्रों से भी सुन्दर नारियां लाई जाती थीं। राम सुरा और सुंदरियों के मध्य विराजते थे। वे राम को आनन्दित करतीं और राम उन्हें माला पहनाते। वाल्मीकि ने राम को स्त्रियों के प्रिय पुरुषों का राजकुमार कहा है। यह उनकी एक दिन की जीवनचर्या नहीं थी। यह उनके जीवन की नियमित गति थी।

जैसा कि पहले कहा जा चुका है, राम ने प्रजा-कार्यों से हाथ खींच रखा था। वह अन्य भारतीय राजाओं की तरह प्रजा का दुख-दर्द सुनकर निवारण का कोई प्रयास नहीं करते थे। वाल्मीकि के अनुसार मात्र एक अवसर पर उन्होंने व्यक्तिगत रूप से किसी की शिकायत सुनी। किन्तु दुर्भाग्य से यह घटना बहुत दुखांत है। उन्होंने किसी की एक गलती के लिए स्वयं इतना बड़ा अपराध किया, जिसकी इतिहास में मिसाल नहीं है। यह घटना थी-एक शुद्र शम्बूक की हत्या। वाल्मीकि ने लिखा है- "राम-राज्य में किसी की अकाल मृत्यु नहीं होती थी। परन्तु किसी ब्राह्मण के पुत्र की अकाल मृत्यु हो गई। दुःखी पिता मृत पुत्र के शव को राजा के महल पर ले आया और वहीं रख दिया और जोर-जोर से विलाप करने लगा और अपने पुत्र की मृत्यु पर राम को भांति-भांति से कोसने लगा। वह कह रहा था कि इसके राज्य में यह पापाचार का परिणाम है और यदि राजा अपराधी को दण्ड नहीं देगा तो वह पुत्र उसे नहीं मिलेगा। वह राम के द्वार पर अनशन करेगा और अन्न-जल लिए बिना अपने प्राण त्याग देगा। राम ने नारद और आठ विद्वान ऋषियों की सभा बुलाई। उन्होंने कहा कि उनकी प्रजा में से सम्भवतः कोई शूद्र तपस्या कर रहा है। यह धर्म विरुद्ध है क्योंकि तपस्या करने का अधिकार मात्र द्वि जों को है। राम समझ गए कि धर्म का उल्लंघन करके वह पाप कर रहा है। उसी के कारण ब्राह्मण का पुत्र मर गया। इसलिए राम ने अपना पुष्पक विमान मंगाया और राज्य

1. उत्तरकाण्ड सर्ग 42, श्लोक 27
2. उत्तरकाण्ड सर्ग 43, श्लोक
3. उत्तरकाण्ड सर्ग 42, श्लोक 8

के आंतरिक भागों में अपराधी को खोजा। अंत में घने जंगलों में सुदूर दक्षिण में उन्होंने एक व्यक्ति को कठोर तपस्यारत देखा। वे उसके पास गए और उसके यह बताने के बाद कि वह शम्बूक नाम का शूद्र है और वह सशरीर स्वर्ग जाने के लिए तपस्या कर रहा है, उन्होंने उसे चेताया तक नहीं, अनधिकृत कार्य न करने के लिए समझाया भी नहीं। बस! बेझिझक उसका सिर काट दिया। देखा! उसी समय दूर अयोध्या में बाह्मण पुत्र की सांस चलने लगी। जंगल में देवताओं ने पुष्प वर्षा की कि राजा ने एक शूद्र को आकाश में उनकी नगरी में आने से रोक दिया, जो तपस्या के बल पर वहीं पहुंच जाता जिसे तपस्या का अधिकार नहीं है। वे राम के सम्मुख प्रकट हुए और उन्हें बधाई दी। जब राम ने ब्राह्मण के पुत्र को जीवित करने का अनुरोध किया तो उन्होंने बताया कि वह जीवित हो चुका है। फिर वे चले गऐ। राम तब पास ही अगस्त्य ऋषि के आश्रम में पहुंचे। उन्होंने शम्बूक को दी गई सजा पर उनकी प्रशंसा की और उन्हें एक ताबीज भेंट किया। राम राजधानी लौट आए।" ऐसे थे राम!

II

अब कृष्ण के संबंध में।

वह *महाभारत* के नायक हैं। वास्तव में तो *महाभारत* का मुख्यत: संबंध कौरव ओर पाण्डवों से है। यह उस युद्ध की कहानी है, जो दोनों पक्षों ने अपने पूर्वजों के राज्य पर अधिकार प्राप्त करने के लिए किया। वही मुख्य चरित्र होने चाहिए। परन्तु वे नहीं हैं। इस महाकाव्य के नायक कृष्ण हैं। यह थोड़े आश्चर्य की बात है। परन्तु इससे भी आश्चर्यजनक यह हो सकता है कि वे कौरव-पाण्डवों के समकालीन ही न हों। कृष्ण पाण्डवों के मित्र थे और उनका अपना साम्राज्य था। कृष्ण कंस के शत्रु थे। उसका भी साम्राज्य था। यह सम्भव नहीं लगता कि दोनों राज्य साथ-साथ विद्यमान थे। *महाभारत* में ऐसा कहीं प्रतीत नहीं होता कि दोनों राज्यों के बीच कोई सम्पर्क थे। बाद में कृष्ण को इस नाटक में और बड़ी भूमिका देने के लिए कृष्ण और पाण्डवों की कहानियों को मिश्रित कर दिया गया। इन दोनों कहानियों को जोड़ने का करिश्मा व्यास का था, जिसमें कृष्ण को गौरवान्वित करने के लिए उन्हें सबके ऊपर बैठा दिया।

व्यास ने कृष्ण को मानवों में देवता बना दिया। इसी कारण उन्हें *महाभारत* का नायक बना दिया गया। क्या कृष्ण सचमुच भगवान कहलाने योग्य हैं? उनकी सक्षिप्त जीवनी से इस प्रश्न का उत्तर मिल जाएगा। कृष्ण भाद्रपद की कृष्ण पक्ष की अष्टमी को मध्यरात्रि में मथुरा में पैदा हुए थे। उनके पिता यदुवंश के वसुदेव थे। उनकी माता देवक की पुत्री देवकी थीं जो मथुरा के राजा उग्रसेन का भाई था। उग्रसेन की पत्नी के सौभराज द्रुमिल दानव के साथ अवैध संबंध थे। उसी का जारज पुत्र कंस था। एक प्रकार से वह देवकी का भाई था। कंस ने उग्रसेन की बंदी बनाकर राज्य पर

अधिकार कर लिया। नारद अथवा देववानी से यह आकाशवाणी सुनकर कि देवकी की आठवीं संतान वध करेगी कंस ने देवकी और उसके पति को बंदी बना लिया और उनकी छह संतानों को जन्म लेते ही मार डाला। सातवीं संतान को देवकी के गर्भ से वसुदेव की दूसरी रानी रोहिणी के गर्भ में चमत्कारी ढंग से छोड़ दिया। जब आठवीं संतान कृष्ण ने जन्म लिया तो उनके पिता उन्हें चुपके से ले गए जहाँ ब्रज में नंद और यशोदा रहते थे। दैवी बालक को पार पहुँचाने के लिए यमुना का पानी उतर गया। नागराज अनन्त ने अपना फन फैलाकर वर्षा से उनकी रक्षा की। पूर्व निर्धारित कार्यक्रम के अनुसार वसुदेव ने नंद की नवजात कन्या योगेन्द्र अथवा योगमाया से उन्हें बदल लिया और अपना आठवां शिशु बताकर कंस को सौंप दिया परन्तु वह बालिका आकाश में उड़ गई और कहा कि नंद और यशोदा के यहां पल रहा बालक कृष्ण उसका संहार करेगा। इसके बाद कंस ने बालक कृष्ण की हत्या के लगातार असफल प्रयत्न किए। इस उद्देश्य से उसने विभिन्न रूपों में कई असुर ब्रज में भेजे। कृष्ण की बाल-लीलाओं के संबंध में पुराणों में इन असुरों का संहार और सामान्य बालक के लिए असंभव वीरता-प्रदर्शन कृष्ण की महिमा बढ़ाने के उद्देश्य से किया गया है। इनमें कुछ का *महाभारत* में भी उल्लेख है। जैसी कि आशा की जा सकती है, विद्वान इन वर्णनों से असहमत हैं। हम उनमें से कुछ का ही उल्लेख करते हैं जिन्हें पारवर्ती विद्वानों ने माना है।

इनमें से प्रथम है पूतना वध। वह कंस के यहां धाय थी और कंस ने उसे हरिवंश (पुराण) के अनुसार एक गिद्धनी के रूप में भेजा था। *भागवत* के अनुसार वह एक सुंदरी के भेष में गई थी। उसने कृष्ण को दूध पिलाने के बहाने अपने विषयुक्त स्तन उनके मुँह में डाल दिए। उन्होंने उसके स्तनों को इतने जोर से चूसा कि उसके प्राण ही खींच लिए और वह धराशायी हो गई।

केवल तीन मास होने पर ही एक अन्य आश्चर्य कर दिखाया। यह एक शकट अथवा गाड़ी को तोड़ना था, जिसमें अनेक बर्तन लदे हुए थे। उनमें दूध-दही भरा था और लदी हुई गाड़ी उन पर चढ़ गई। 'हरिवंश' के अनुसार शकट कंस द्वारा भेजा गया असुर था, जिसे उन्हें कुचलने के लिए भेजा गया था। बहरहाल, यशोदा ने कृष्ण को गाड़ी के नीचे लिटा दिया और यमुना में स्नान करने चली गई। जब वह लौटकर आई तो बताया गया कि कृष्ण ने ठोकर मारकर उसके टुकड़े-टुकड़े कर दिए जो भूमि पर बिखरे पड़े थे। भयभीत यशोदा इससे आश्चर्यचकित रह गई। उसने अनहोनी टालने के लिए पूजा कराई।

जब कृष्ण की हत्या के लिए पूतना और शकट के प्रयत्न विफल हो गए तो कंस ने अपना एक और दूत तृणव्रत भेजा। वह एक पक्षी के रूप में आया और उन्हें उड़ाकर आकाश में ले गया। कृष्ण तब मात्र एक वर्ष के थे परन्तु तृणव्रत निष्प्राण

होकर धरती पर गिर पड़ा। कृष्ण उसकी गर्दन कसकर पकड़े हुए थे।

अगला चमत्कार दो अर्जुन वृक्षों को उखाड़ना था, जो पास–पास खड़े थे। ये दोनों यक्षों के शरीर थे, जो शापवश वृक्ष बन गए थे और जिन्हें कृष्ण ने शापमुक्त किया। जब कृष्ण घुटनों के बल चलने लगे और नित नया उत्पात करने लगे तो यशोदा ने एक रस्सी लेकर उन्हें ओखली से बांध दिया जो भयानक शोर करते हुए गिर पड़ी, और कृष्ण को आंच भी न आई। यह सब देखकर नंद भयभीत हो गए और ब्रज छोड़कर अन्यत्र जाने का विचार करने लगे। जब वह ऐसा विचार कर रहे थे, भेड़ियों ने आतंक मचा दिया। वे पशुओं को उठाकर ले जाते थे। पूरी अव्यवस्था फैला दी। इससे उन खानाबदोशों ने ब्रज छोड़ने का इरादा कर लिया और वे सुंदर स्थान वृंदावन में चले आए। तब कृष्ण मात्र सात वर्ष के थे।

नए स्थान पर आकर, कृष्ण ने अनेक असुरों का संहार किया। उनमें से एक अरिष्ट था जो एक वृषभ के रूप में आया। दूसरा था–केशिन, जिसने घोड़े का रूप धरा। पांच अन्य थे, वृत्रासुर, वकासुर, अघासुर, भोमासुर और संखासुर और अंत में यक्ष। इन सबसे महत्वपूर्ण था कालिया, सर्पों का राजा, जो अपने परिवार सहित यमुना की एक दह में रहता था और जिसने यमुना का जल दूषित कर दिया था। एक दिन कृष्ण कालिया के फन पर चढ़ गए और इतने जोर से नाचे कि उसने खून का वमन किया। कृष्ण उसे मार ही डालते परन्तु नाग–परिवार के अनुनय–विनय पर उन्होंने उसे छोड़ दिया और अन्यत्र जाने दिया।

कालिया विजय के पश्चात् वस्त्रहरण की घटना आती है, जो कृष्णोपासकों और पौराणिक प्रशंसकों के लिए एक धर्म–संकट है। पूरा वर्णन इतना अश्लील है कि उसका संकेत मात्र भी देना कठिन है क्योंकि वह सुपाठ्य नहीं है। परन्तु हम उसे यथासंभव शिष्ट रूप में उद्धृत कर रहे हैं जिससे कि कृष्ण के जीवन की झांकी मिल सके। देश के कुछ भागों में प्रचलित रीतियों के अनुसार कुछ गोपियां यमुना के किनारे वस्त्र छोड़कर नदी में नहा रही थीं। कृष्ण ने उनके कपड़े उठा लिये और नदी के किनारे एक वृक्ष पर चढ़ गए। जब उन्होंने अपने वस्त्र मांगे तो उन्होंने उस समय तक वस्त्र देने से इंकार कर दिया जब तक अपने वस्त्र लेने वे वृक्ष तक स्वयं चल कर न आएं। जब वे आ गईं तो *कृष्ण* प्रसन्न हुए और वस्त्र लौटा दिए। यह कथा *भागवत* में है।

कृष्ण की दूसरी महिमा गोवर्धन पर्वत उठाना है। गोप वर्षा के देवता इन्द्र की वार्षिक पूजा की तैयारी कर रहे थे। उसके लिए भारी आयोजन हो रहा था। कृष्ण ने कहा कि "वे तो चरवाहे हैं, कृषक नहीं हैं, उनका वास्तविक देवता गौधन है, पर्वत और जंगल हैं, उन्हें इनकी ही पूजा करनी चाहिए। इन्द्र ऐसे देवता ही नहीं, जो वर्षा कराते हैं।" गोप मान गए और इन्द्र की पूजा के स्थान पर नाच–गाकर गोवर्धन पर्वत

की पूजा की, जो गुरुओं का पालक है। इन्द्र को तो इससे क्रुध होना ही था और उन्हें दण्ड देने के लिए सात दिन तक रात-दिन वर्षा की। कृष्ण झुके नहीं। कृष्ण ने पर्वत को उखाड़ लिया और गांव के ऊपर छतरी की तरह तान दिया और इन्द्र के कोप से होने वाली वर्षा से होने वाली बर्बादी से पशुओं और गायों को बचा लिया। मैं पहले भी अपने प्रथम व्याख्यान में इन्द्र और *ऋग्वेद* के कृष्ण और बाद में *शतपथ ब्राह्मण* के कृष्ण और विष्णु के बीच का वैमनस्य वर्णित कर चुका हूं।

कृष्ण की युवावस्था में रासलीला के माध्यम से वृंदावन की गोपिकाओं के साथ उनके अवैध संबंधों की भरमार है। इस लीला में स्त्री-पुरुष एक-दूसरे के हाथों में हाथ डालकर नृत्य करते हैं। देश की कुछ वन्य जनजातियों में यह नृत्य अब भी प्रचलित है। यह कहा गया है कि कृष्ण वृन्दावन की युवा गोपियों के साथ प्रायः इस नृत्य के साथ मनोविनोद किया करते थे। विष्णु पुराण, हरिवंश पुराण और भागवत में ऐसे नृत्य का वर्णन है। इन सब लेखकों ने यह समझाने की चेष्टा की है कि कृष्ण के प्रति गोपिकाओं का प्रेम भक्तिभाव के कारण था, उसमें वासना रंच मात्र भी नहीं है। अन्य व्यक्तियों के विषय में इन्हीं लेखकों ने इसे अत्यधिक निंदित बताया है। ऐसे दृश्य, समय और ऋतु में मधुर संगीत के बीच स्त्रियों का मेल, नृत्य और कृष्ण तथा उनकी कामुकता और उनके हावभावों की सामान्य मनोवृत्ति पर सब सहमत हैं। परन्तु *विष्णु पुराण* में कुछ हद तक शिष्टता है। वैसे कहीं-कहीं वह भी विचलित हो जाता है, 'हरिवंश' में स्पष्ट रूप से अशिष्टता है परन्तु भागवत तो नितांत अशोभनीय है।

इस सब दुष्कर्मों से बढ़कर कृष्ण के जीवन में राधा नामक गोपी के बीच अवैध संबंधों की कहानी है *ब्रह्मवैतर्त पुराण* में इन अवैध संबंधों का चित्रण है। रुक्मिणी कृष्ण की ब्याहता और भार्या है। राधा का विवाह ..... से हुआ था। कृष्ण ने अपनी विवाहिता पत्नी रुक्मिणी को त्याग दिया और किसी अन्य की पत्नी के साथ खुल्लमखुल्ला रहने लगे।

कृष्ण एक योद्धा भी थे और बाल्यकाल से ही राजनीतिज्ञ भी। उस समय उनकी आयु बारह वर्ष बताई जाती है। उनका प्रत्येक कार्य, चाहे युद्ध हो अथवा राजनीति, सब अनैतिक था। उनका सर्वप्रथम कार्य अपने मामा कंस की हत्या था। इसके लिए 'हत्या' शब्द कोई कठोर अभिव्यक्ति नहीं है। कंस ने यद्यपि उन्हें बार-बार क्रोध दिलाया तो भी उसे उन्होंने युद्ध में अथवा द्वंद्व में पराजित नहीं किया। आख्यान इस प्रकार है कि वृंदावन में कृष्ण की वीरताओं को सुनकर कंस आशंकित हो उठा और उसने निश्चय किया कि एक प्रदर्शन युद्ध में उसका वध किया जाए। इसी के अनुसार उसने धर्मयुद्ध का आयोजन किया जिसे धनुष यज्ञ कहा गया। उसने कृष्ण, बलराम और उनके साथी गोपों को इसके लिए आमंत्रित किया। कृष्ण का एक अनुषंगी परन्तु कंस का एक अधिकारी अक्रूर दोनों भाइयों को मथुरा लाने के लिए भेजा गया। वे

सब कंस वध के लिए कटिबद्ध थे। उसने उन्हें और अन्य यादवों को उकसाया कि वे मथुरा चलें। दोनों भाइयों ने एक षडयंत्र रचा। मथुरा आने पर उन्होंने साधारण गोपों के वस्त्र त्यागकर अच्छे वस्त्र धारण करना चाहा और कंस के धोबी से वस्त्र मांगे, जो उन्हें गलियारे में मिल गया था। उस धोबी ने उनके साथ अशिष्टता दिखाई। उन्होंने उसे मार डाला और मनचाहे वस्त्र ले लिए। तब वे कुब्जा से मिले, जो एक कुबड़ी स्त्री थी और कंस के यहां इत्रफरोश (गंधी) थी। उनके अनुरोध पर उसने उनका चंदनलेपन किया। इसके बदले में कृष्ण ने उसका कूबड़ ठीक कर दिया। भागवत में कहा गया है कि कृष्ण उससे अक्सर बराबर मिलने जाते। उनके मिलन को *भागवत* में चारित्रिक हीनता की कोटि का बताया गया है। फिर भी उस समय कुब्जा के चंदनलेपन से सुगंधित, सुदामा नामक माली से हार पहनकर यज्ञशाला में घुस गए और जिस ध नुष को यज्ञ के लिए रखा गया था, वह तोड़ डाला। भयभीत कंस ने कुबलयापीड नामक हाथी को उन्हें कुचलने के लिए भेजा। कृष्ण ने हाथी का वध कर दिया और मल्लशाला में घुस गए। वहां दोनों भाइयों ने कंस के विख्यात मल्लयोद्धा चाणूर, मुष्टिक, तोशालक और आंध्रा से सामना किया। चाणूर और तोशालक का संहार कृष्ण ने किया और शेष दो को बलराम ने मौत के घाट उतार दिया। कृष्ण–वध की अपने योजना से विचलित होकर कंस ने दोनों भाइयों और उनके साथियों को खदेड़ने के आदेश दिए। उसने कहा, “इनके पशु जब्त कर लो और वसुदेव, नंद और उग्रसेन का वध कर दो।” इसे सुनकर कृष्ण मंच पर आ गए जहां कंस बैठा था। उसके बाल पकड़ उसे नीचे खींच लिया और धरती पर गिरा कर उसका वध कर दिया। कंस की बिलखती रानियों को सांत्वना देकर उसका राजकीय ढंग से दाह–संस्कार कराया। उग्रसेन ने उन्हें राज सौंपना चाहा। उन्होंने इंकार कर दिया। उसी को राजा बनाया और उसके छिपे हुए संबंधियों को मथुरा बुला लिया।

कृष्ण का दूसरा संग्राम कालयवन और जरासंध से हुआ जो मगध का राजा था। जरासंध कंस का दामाद था। जब उसने कृष्ण द्वारा कंस–वध का समाचार सुना तो वह मथुरा पर चढ़ गया। कहा जाता है कि उसने सत्रह बार मथुरा पर आक्रमण किया परन्तु प्रत्येक बार उसे कृष्ण ने मार भगाया। अगले आक्रमण को और विनाशकारी समझकर मथुरा त्याग कृष्ण यादवों को लेकर गुजरात प्रायद्वीप के द्वारका चले गए। यादवों के मथुरा चले जाने पर जरासंध के कहने पर कालयवन ने मथुरा को घेर लिया। जब वह निशस्त्र कृष्ण का पीछा कर रहा था तो मुचुकंद के नेत्रों से निकली ज्वाला से आक्रमणकारी भस्म हो गया। जो गुफा में सो रहा था और जिसे कालयवन ने कृष्ण समझकर उस पर आघात किया था। कृष्ण ने कालयवन की सेना को परास्त कर दिया किन्तु जब वे लूट का माल लेकर भाग रहे थे तो जरासंध ने घेर लिया। वे एक पहाड़ी पर चढ़ गए और वहां से कूदकर द्वारिका की तरफ भाग गए।

अब कृष्ण का प्रथम विवाह हुआ। उनहोंने विदर्भराज, भीष्मक की पुत्री रुक्मिणी से विवाह किया। रुक्मिणी का पिता जरासंध के कहने पर कृष्ण के फुफेरे भाई चेदि राज, शिशुपाल से उसका विवाह रचा रहा था। परन्तु भावरों के एक दिन पूर्व ही रुक्मिणी का हरण कर लिया गया। भागवत का कथन है कि रुक्मिणी को कृष्ण से प्रेम हो गया था और उन्होंने कृष्ण को एक प्रेमपत्र लिखा था। यह सत्य नहीं लगता क्योंकि कृष्ण रुक्मिणी के सच्चे और आस्थावान पति नहीं थे। धीरे-धीरे रुक्मिणी की सौतों की कतार बढ़ती गई और वह संख्या सोलह हजार एक सौ साठ हो गई। उनकी संतान की संख्या एक लाख अस्सी हजार थी। उनकी पटरानियां भी आठ थीं, सत्यभामा, जाम्बवती, कालिन्दी, मित्रबिंदा, सत्या, भद्रा और लक्ष्मणा। शेष सोलह हजार एक सौ के साथ एक ही दिन विवाह किया था। वे प्रागज्योतिष के राजा नरक की पत्नियां थीं, जिसका कृष्ण ने इन्द्र के आह्वान पर वध कर दिया था, नरक उनकी मां के कुण्डल ले आया था। युद्ध के पश्चात् जब कृष्ण सत्यभामा के साथ स्वर्ग में इन्द्र के पास गए तो उनकी पत्नी को पारिजात वृक्ष भा गया। अपनी पत्नी का मन रखने के लिए कृष्ण को उसी वैदिक देवता से युद्ध करना पड़ा, जिसकी उन्होंने सहायता की थी परन्तु भगवान के अवतार से लोहा लेना बहुत कठिन था। इसलिए इन्द्र को पारिजात वृक्ष देना पड़ा जो द्वारिका में लगा दिया गया। उन्होंने आठ पटरानियों से किस प्रकार विवाह किया, यह भी बड़ी रोचक कथा है। रुक्मिणी से उन्होंने कैसे विवाह किया, यह तो बताया जा चुका है। सत्यभामा सत्राजित की पुत्री थी, जो एक यादव राजा था और जिसने डरकर अपनी कन्या का विवाह कृष्ण से कर दिया था। जाम्बवती एक ऋक्ष प्रधान जाम्बवान की कन्या थी, जो यादवों से एक बहुमूल्य मणि लेकर भाग गया था और लम्बी लड़ाई के बाद उसने पराजित होकर अपनी कन्या उन्हें दे दी थी। कालिन्दी ने कृष्ण से विवाह करने के लिए अनेक तपस्याएं कीं और अंत में सफल रही। मित्रबिंदा कृष्ण की फुफेरी बहन थी और उसे स्वयंवर में जीतकर उन्होंने विवाह किया। सत्या अयोध्या के राजा नग्नजित की पुत्री थी। उन्होंने वीरता दिखाकर और कई बिगड़ैल बैलों को एक साथ मार कर नग्नजित की कन्या से विवाह हुआ। भद्रा उनकी फुफेरी बहन थी और उससे उनका विवाह सामान्य परिस्थितियों में हुआ। लक्ष्मणा मद्र देश के राजा बृहतसेन की पुत्री थी, जिसे उन्होंने स्वयंवर में प्राप्त किया था।

सुभद्रा के साथ अर्जुन के विवाह में कृष्ण की भूमिका पढ़ने योग्य है, जो बलराम की सहोदर और कृष्ण की सौतेली बहन थी। अर्जुन अपनी यात्रा के समय तीर्थस्थान प्रभास पहुंचे। कृष्ण ने रैवतक पर्वत पर उनकी अगवानी की। वहां वह सुभद्रा पर अनुरक्त हो गया और कृष्ण से पूछा। यह उसे कैसे मिले? कृष्ण ने उसे परामर्श किया

कि वह एक वीर क्षत्रिय की तरह स्वयंवर से पूर्व ही उसका हरण कर ले। पहले तो यादव इस कृत्य पर उबल पड़े परंतु जब उन्हें कृष्ण ने समझाया कि अर्जुन सुभद्रा का उत्तम पति होगा और उसका हरण करके अर्जुन ने कुछ अनुहोनी भी नहीं की है तो वे मान गए। और वे कर भी क्या सकते थे? कृष्ण ने सामान्य जन की भांति केवल तर्क ही नहीं दिए थे, बल्कि स्वयं ऐसा करके उदाहरण प्रस्तुत कर चुके थे।

यह भी जानने योग्य तथ्य है कि कृष्ण ने जरासंध और शिशुपाल से कैसे जान छुड़ाई जिसने युधिष्ठिर के राजसूय यज्ञ में विघ्न डाला था। जरासंध ने रुद्र की बलि चढ़ाने के लिए अनेक राजाओं को बंदी बना रखा था। जब तक उसका वध न किया जाता और बंदी राजा मुक्त न कर लिए जाते, फिर युधिष्ठिर की अधीनता स्वीकार करने न आते तो उनका चक्रवर्ती सम्राट होने का दावा पूर्ण न होता। इसलिए कृष्ण ने भीम और अर्जुन को साथ लेकर जरासंध की राजधानी राजगृह को प्रस्थान किया और उसे चुनौती दी कि वह इनमें से किसी एक के भी साथ द्वंद्वयुद्ध कर ले। कोई क्षत्रिय और जरासंध जेसा ऐसी चुनौती को अस्वीकार नहीं कर सकता था। उसने प्रतिद्वंद्वी के हाथों अपने वध का अनुमान लगाकर अपने पुत्र सहदेव को अपना उत्तराधिकारी चुना और भीम से लड़ने की घोषणा की। मल्लयुद्ध तेरह दिन तक चलता रहा और अंत में जरासंध का दु:खद वध हुआ। जरासंध के पुत्र सहदेव को गद्दी पर बैठाकर और मुक्त किए राजाओं को युधिष्ठिर के यज्ञ में उपस्थित होने के लिए आमंत्रित करके कृष्ण मित्रों सहित इन्द्रप्रस्थ चले आए।

समय पर राजसूय का आयोजन हुआ। उत्सव से सम्बद्ध अनेक रीतियों में से ब्राह्मणों के चरण धोने का कार्य कृष्ण को सौंपा गया। *महाभारत* में अपेक्षाकृत आधुनिकता का यह स्पष्ट संकेत था। प्राचीन काल में यद्यपि ब्राह्मणों की क्षत्रियों पर श्रेष्ठता स्थापित हो चुकी थी किन्तु क्षत्रिय उन्हें ऐसा सम्मान नहीं देते थे। बहरहाल, जब यज्ञ समाप्त हो गया और सभा में उपस्थित राजाओं, पुरोहितों और अन्यों को सम्मिलित करने का समय आया तो अग्र सभासद कौन बने? यह प्रश्न उठा। युधिष्ठिर ने जब भीष्म से पूछा तो उन्होंने परामर्श दिया कि सर्वप्रथम कृष्ण का सम्मान किया जाए। तदनुसार युधिष्ठिर के कहने पर सहदेव ने कृष्ण का सम्मान करने के लिए अर्घ्य चढ़ाया और उन्होंने उसे स्वीकार कर लिया। इससे शिशुपाल भड़क उठा। उसने कृष्ण को प्रथम सभासद बनाए जाने को चुनौती देते हुए, अपने लम्बे भाषण में पाण्डवों को अपशब्द कहे और कृष्ण को लताड़ा कि उन्होंने सम्मान को स्वीकार कर अनाधिकृत कर्म किया। इसके पश्चात् भीष्म उठे और उन्होंने कृष्ण के कार्यों और उपलब्धियों का उल्लेख करते हुए उनके देवत्व का वर्णन किया। शिशुपाल फिर उठ खड़ा हुआ। भीष्म की

एक-एक बात का खण्डन करते हुए कृष्ण को भरपूर गालियां दीं। कृष्ण की हाल ही की जीवनियों में कृष्ण और ब्रज बालिकाओं के संबंधों का कोई प्रसंग नहीं है जिनको शिशुपाल ने उछाला। नए जीवनीकारों का स्पष्ट संकेत है कि विभिन्न पुराणों की कथाओं को वे स्वीकार नहीं करते। बहरहाल, शिशुपाल के वक्तव्य के अंत में भीष्म फिर उठे और उन्होंने देखा कि युधिष्ठिर शिशुपाल और उनके सहयोगियों से आशंकित हैं कि कहीं वे उत्सव में बाधा न डाले। इसलिए उन्होंने चेताया कि यदि वे अपना वध चाहते हैं तो कृष्ण को चुनौती दें और उस दैवी पुरुष से युद्ध कर ले। इस पर शिशुपाल ने कृष्ण को चुनौती दी और कृष्ण के अनेक कुकर्मों का बखान किया। तब कृष्ण ने कहा "अपनी बुआ को दिए गए वचनानुसार मैंने शिशुपाल की एक सौ गालियों के लिए उसे क्षमा कर दिया है परन्तु अब जो अपशब्द उसने भरी सभा में मेरे विरुद्ध बोले हैं, उनके लिए मैं उसे क्षमा नहीं करूंगा। मैं आप सबके सामने इसका वध करता हूं।" उन्होंने अपना सुदर्शन चक्र चलाया और शिशुपाल का सिर काट दिया।

अब *महाभारत* युद्ध में कृष्ण के कारनामे देखें। उनमें से कुछ इस प्रकार हैं:

1. जब कृष्ण के मित्र सात्यिकी पर सोमदत्त पुत्र भूरिश्रवा भारी पड़ रहा था तो कृष्ण ने अर्जुन को उकसाया कि उसकी भुजा काट दे। इस प्रकार भूरिश्रवा का वध करने के लिए सात्यिकी का रास्ता साफ कर दिया।

2. जब सात कौरव महारथियों ने अभिमन्यु को घेर कर मार डाला और अर्जुन ने प्रण किया कि यदि वह सूर्यास्त से पूर्व उन सातों के सरगना जयद्रथ का वध नहीं कर देंगे तो अग्नि में कूदकर प्राण दे देंगे। जब सूर्यास्त का समय था और जयद्रथ जीवित बच गया तो कृष्ण ने माया से सूर्य को छिपा दिया। इस पर जयद्रथ बाहर आ गया तो कृष्ण ने माया हटा ली और सूर्य निकल आया और अर्जुन ने जयद्रथ का वध कर दिया।

3. जब द्रोण धर्मयुद्ध में पराजित नहीं हो रहे थे तो कृष्ण ने उन्हें अधर्म युद्ध में पराजित कराया। यदि उनके शस्त्र रखवा दिए जाएं तो उन्हें सरलता से समाप्त किया जा सकता है। यह तभी सम्भव है जब उनसे कहा जाए कि उनका पुत्र अश्वत्थामा मारा गया। भीम ने बताए तरीके के अनुसार अश्वत्थामा नामक हाथी को मार डाला। द्रोण यह सुनकर निराश तो हुए किन्तु उन्हें विश्वास नहीं आया। इस अवसर पर अनेक ऋषियों ने उन पर दबाव डाला कि वे शस्त्र डाल दें और ब्रह्म में ध्यान लगाकर स्वर्गगमन करें। इस पर उन्होंने धर्मराज युधिष्ठिर से अपने पुत्र के विषय में सही सूचना लेनी चाही। जब कृष्ण ने देखा कि युधिष्ठिर झूठ बोलने को तैयार नहीं हैं तो

उन्होंने उन्हें बहुत समझाया। इसी दौरान उन्होंने असत्य भाषण का औचत्य *वशिष्ठ स्मृति* का उदाहरण देते हुए बताया- "विवाह में, प्रेम में, मृत्यु, भय के समय सर्वस्व विनाश की आशंका पर और जब ब्राह्मण का हित दाव पर हो तो इन पांच अवसरों पर असत्य भाषण पाप नहीं है।"

युधिष्ठिर का संशय दूर हो गया और उन्होंने कहा "अश्वत्थामा मारा गया है।" फिर दबे स्वर से कहा, "हाथी या पुरुष" (नरो व कुंजर), वाक्य का अंतिम भाग द्रोण नहीं सुन पाए। वे पूरी तरह टूट गए और भीम की ललकार सुनकर उन्हें विश्वास हो गया। उन्होंने हथियार डाल दिए और जब वे समाधिस्थ थे तो धृष्टद्युम्न ने उनका वध कर दिया।

4. जब भीम द्वैपायन सरोवर पर दुर्योधन से कठिन युद्ध कर रहे थे और उस पर पार पाने में असफल थे तो कृष्ण ने अर्जुन के माध्यम से बताया कि वे उसकी जंघाओं पर प्रहार करें। तगड़ी के नीचे वार करना वर्जित होता था, यदि अधर्म युद्ध से उसकी जंघाएं न तोड़ी जातीं तो दुर्योधन का वध नहीं हो सकता था। कृष्ण ने वहीं प्रहार कराया।

कृष्ण का देहावसान उनके चरित्र पर प्रकाश डालता है। कृष्ण का देहांत द्वारिका के राजा के रूप में हुआ। द्वारका कैसी थी और उनका निधन कैसे हुआ?

द्वारका की स्थापना करते समय कृष्ण ने वहां हजारों पतिताओं को बसाया। 'हरिवंश' कहता है- "हे शूरवीर! दैत्यों की नगरी पर यादवों की सहायता से विजय प्राप्त कर भगवान ने सहस्रों वार वनिताओं को द्वारका में बसा दिया।" नाचते-गाते और सुरापान करते पुरुषों ने स्त्रियों और वेश्याओं से विवाह रचा लिया। वे द्वारका में फैल गईं। हमें सागर क्रीड़ा का वर्णन मिलता है जिसमें ये स्त्रियां आनन्द का प्रमुख स्रोत थीं। नृत्य और गायन से कृष्ण और बलराम भी अपनी पत्नियों सहित आमोद-प्रमोद में सम्मिलित हुए। उनके साथ ही अन्य यादव सरदार, अर्जुन और नारद भी मिल गए। फिर एक नया उत्साह फैल गया। नर-नारी समुद्र में घुस गए और कृष्ण के कहने पर पुरुष नारियों के साथ जल-क्रीड़ा में रत हो गए। कृष्ण, उत्सव के नायक थे और बलराम भी आकर्षण का केन्द्र थे। फिर सभासदों ने भी अपने संगीत से समा बांध दिया। इसके पश्चात्, खाना-पीना आरम्भ हुआ और फिर संगीत की विशेष झंकारें निकलीं जिसमें नायकों ने विभिन्न वाद्यों पर अपने कौशल दिखाए। इससे पता चलता है कि यादवगण कितने रंगीले थे और ब्राह्मणों अथवा आधुनिक परिष्कारवादियों को कैसा उत्तर दिया जो नृत्य मंडलियों और लोकमंच से नाक-भौं सिकोड़ते हैं। ऐसी ही रंगरेलियां नशे की तरंग थी जिन्होंने यादवों को बरबाद कर दिया। कहा जाता है कि अपने ऐसे ही बचकाने-पन से उन्होंने, और बाद में उनके वंशजों ने ऋषियों को

अप्रसन्न कर दिया। इन चुहलबाज युवकों ने कृष्ण के एक पुत्र साम्य को स्त्री के ऐसे वस्त्र पहना दिए, जिससे लगे कि उसको गर्भ ठहरा हुआ है। उसकी नाभि के नीचे लोहे की मूसली लटका दी और ऋषि से पूछा, "यह स्त्री क्या जनेगी?" क्रोध से भरे ऋषि ने कहा, "ये स्त्री मूसली जनेगी, जिनसे यादवों का विनाश होगा।" शाप से भयभीत होकर वे मूसली को समुद्र के किनारे ले गए और उसे घिस-घिस कर बुरादा बना दिया। परन्तु इसके कणों से धारदार घास सरकंडे पैदा हुए जिसकी उन्होंने संटियां बना लीं। इन्हीं संटियों से मार-मार कर यादवों ने परस्पर संहार कर डाला। वे आमोद-प्रमोद के लिए प्रभास गए। जहां उन्होंने सुरापान किया जो उनके विनाश का कारण बनी। सुरापान की लत इतनी फैल गयी कि कृष्ण और अन्य यादव प्रमुखों ने इसे मौत का पैगाम बताकर इस पर पाबंदी लगा दी। परन्तु इसका कोई प्रभाव नहीं हुआ। नशे में धुत्त यादवों में झगड़ा हुआ और फिर मारपीट। इससे उन्होंने एक-दूसारे को मार गिराया। जब कृष्ण के अपने पुत्र मारे गए तो वे भी लड़ाई में कूद पड़े और बहुत से अपने ही लोगों को मौत के घाट उतार दिया, तब वे बलराम की खोज में गए। उन्होंने देखा कि वे समाधि में बैठे हैं और शेषनाग के रूप में उनकी आत्मा जिसका वे अवतार थे, शरीर छोड़ रही है। कृष्ण ने विचार किया कि अब उनके भी प्रयाण का समय आ गया है। तब उन्होंने अपने पिता और पत्नियों से विदा ली और उनसे कहा कि अर्जुन उनकी देखभाल करेंगे। तब वे एक वृक्ष के नीचे बैठ गए फिर अपने को पत्तियों से ढांप लिया और ध्यानमग्न हो गए। जब वे इस प्रकार बैठे तो जरा नामक व्याध ने उन्हें भूल से हिरण समझ लिया और उन पर वही तीर चला दिया जो मूसली की बची हुई कील से उसने बनाया था। अपनी गलती जान कर जरा उनके पैरों पर गिर पड़ा। कृष्ण ने उसे क्षमादान दिया और एक ज्योति-पुंज बन कर आकाश में विलीन हो गए। अर्जुन आए और बचे-खुचे यादवों को हस्तिनापुर ले गए। परन्तु उस अनुपम धनुर्धर का तेज नष्ट हो गया और उनकी भुजाओं की शक्ति जाती रही। कुछ लाठीधारी अहीरों ने उन पर आक्रमण कर दिया और बहुत सारी स्त्रियों को छीन कर ले गए और वे थोड़े-बहुत लोगों को हस्तिनापुर ला सके।

अर्जुन के जाने के पश्चात् द्वारका समुद्र में डूब गई और यादवों तथा उनका वैभव, उनके पारिवारिक विवाद और उनकी रंगरेलियां सभी का नाम मिट गया।

'ब्रह्म धर्म नहीं है' शीर्षक के अंतर्गत बाईसवीं पहेली के कुछ अंश, जो बाबासाहेब ने अंग्रेजी में अपने हाथ से लिखे हैं, उनकी प्रतिलिपि इस आशय से यहां प्रकाशित कर रहे हैं, ताकि पाठक बाबासाहेब के सुलेख से अवगत हो सकें – संपादक

To support Democracy because we are all children of God is a very weak foundation for Democracy to rest on. That is why Democracy is so shaky wherever it is made to rest on such a foundation. But to recognize and realize that you and I are parts of the same cosmic principle leaves room for no other theory of associated life except democracy. It does not merely preach Democracy. It makes democracy an obligation of one and all.

Western students of Democracy have ~~cultivated~~ spread the belief that Democracy has stemmed either from Christianity or from Plato and that

T O

there is no other basis of inspiration for Democracy. If they had known that here too had developed the doctrine of Brahmaism which furnishes a better foundation for Democracy they would not have been so dogmatic. India too must be admitted to have made a contribution towards a universal foundation for Democracy.

The question is what has happened to this doctrine of Brahmaism? It is quite obvious that Brahmaism had no social effects. It was not made the basis of Dharma. When asked why this happened the answer is that Brahmaism is only philosophy as though philosophy arises not out of social life but out of nothing and for nothing.

Philosophy is no purely theoretic matter. It has practical potentialities. Philosophy has its roots in the problems of life and whatever theories philosophy propounds must return to society as instruments of re-constructing society. It is not enough to know. Those who know must endeavour to fulfil.

Why then Brahmanism failed to produce a new society? This is a great riddle. It is not that the Brahmins did not recognize the doctrine of Brahmaism. They did. But they did not ask ~~this question~~ how they could support inequality between the Brahmin & the Shudra,

between man and ~~man~~ woman
between Casteman and outcastes?
But they did not. The result —
is that we have on ~~the~~ one hand
the most democratic principle of
Bramhaism and on the other hand
a society infested with castes,
sub-castes, outcastes, primitive tribes
and criminal tribes. Can there
be a greater dilemma than this

What is ~~both~~ more ridiculous is
the teaching of ~~Shankar~~ the Great
Shankaracharya. ~~Can there~~
~~be a greater idiot.~~ For it
was this Shankarcharya who taught
that there is Bramha and this
Bramha is real and that it pervades
all and at the same time upheld

all these inequities of the Brahmanic Society. Only a lunatic could be happy with ~~two such contradictions~~ ~~Choice~~ being the sponsor of two such contradictions. ~~How the Brahmans killed Brahmin is a matter that calls for an solution explanation~~

Surely as the Brahmin is like a Cow. He can eat anything and everything as the Cow does and remain a Brahmin

संदर्भ-ग्रंथ सूची

इस सूची में उन ग्रन्थ और पत्र-पत्रिकाओं के नाम शामिल हैं जिनका संदर्भ लेखक ने दिया है। इनका विवरण एशियाटिक और बम्बई विश्वविद्यालय पुस्तकालय से लिया गया है। पुस्तक के लोकार्पण से पूर्व समयाभाव के कारण अधिक विवरण नहीं लिया जा सका – संपादक

अभयदेवसूरी : कमेंटरी ऑन भगवती सूत्र

औफरेच्ट, प्रो. कात्यायन्स श्रौत सूत्र : रीडिंग ऑफ द वेदाज इन वंस ओन शाखाज़्

एवलोन, आर्थर : प्रिन्सीपल्स ऑफ तंत्र

बोटलिंग्क, ओटो और रोथ, रुडोल्फ : संस्कृत वार्टेरबच (सेंट पीटर्स बर्ग बुचडकेरी दर कैसरनवेहन अकादमी दर विशेन्स चेफ्टेन, 1865)

बेलवल्कर, श्रीपाद कृष्ण : वेदांत फिलॉसफी (बसु-मलिक लेक्चर्स, सूनिवर्सिटी ऑफ कलकत्ता : पुणे 1929)

भव राजू, वैंकट कृष्ण राव : अर्ली डाइनेस्टीज ऑफ आन्ध्र देश

ब्लैकियर, डब्ल्सू सी : एशियाटिक रिसर्चेस वाल्यूम

कॉलबुक : मिस्लेनियस एसेज, खण्ड I–II (मद्रास, हिगिनवोथम एण्ड कम्पनी, 1872)

प्रो. दाण्डेकर : विष्णु इन दि वेदाज

डेवी, जॉन : डेमोक्रेसी एण्ड ऐजुकेशन (न्यूयार्क, मैकमिलन, 1916)

दत्त आर.सी. : सिविलाइजेशन इन एंशिएंट इण्डिया (1888 क्रोनोलॉजी ऑफ एंशिएंट इण्डिया)

ऐगलिंग, ज्यूलियस : शतपथ ब्राह्मण भाग I–IV (लंदन, सैक्रेड बुक्स ऑफ दि ईस्ट, ऑक्सफोर्ड, 1885)

हापकिन्स, ई. वाशरमैन : द ग्रेट ऐपिक्स ऑफ इण्डिया (न्यूयार्क, चार्ल्स स्क्रिबनर्स सन, 1901)

जायसवाल : हिन्दू पोलिटी

काणे, पी.वी : पेपर ऑन कलिवर्ज्य : हिस्ट्री ऑफ धर्मशास्त्र (एशिएंट एण्ड मेडिवल रिलिजियस सिविल लॉ) वाल्यूम वन।

ला, बी.सी : द मगध इन एशिएंट इण्डिया (द रॉयल एशियाटिक सोसायटी, लंदन 1946) क्षत्रिय कलन्स इन बुद्धिस्ट इण्डिया, प्रस्तावना लेखक ऑनरेबल सर आशुतोष मुकर्जी (कलकत्ता 1922)

मैक्समूलर : द शतपथ ब्रह्मण, पार्ट्स 1-5 अनुवादक, जे ऐगलिंग सैक्रेड बुक्स ऑफ दि ईस्ट वाल्यूम 12, 26, 43 एण्ड 48 संपादक, एफ मैक्समूलर (ऑक्सफोर्ड, 1885, 1894, 1897, 1900)

मयने : हिंदू लॉ एण्ड यूसेज

मेधातिथि : कमेंटरी ऑन मनु. संपादक वी.एन. माण्डलिक (बम्बई, 1886)

मित्र, राजेन्द्रलाल : इण्डो आर्यन्स : कांस्टीट्यूशन टुअर्डस द इलुसिडेशन ऑफ दियर एंशिएंट एण्ड मेडिवल हिस्ट्री (डब्ल्यु न्यूमैन एण्ड कम्पनी, कलकत्ता 1881)

मूर, एडवर्ड : हिन्दू पेनथियन (लंदन, डब्ल्यू.ओ. सिम्पसन, 1810)

म्यूर, जे. : ओरिजनल हिन्दू टैक्स्ट्स, वाल्यूम I–IV (लंदन, ट्रूबनर एण्ड कम्पनी 57 और 59 लुडगेट हॉल, 1873 - दूसरा संस्करण)

मुकर्जी, राधा कुमुद : एंशिएंट इण्डियन एजुकेशन (ब्राह्मनिकल एंड बुद्धिस्ट) (लंदन मैकमिलन एण्ड कं., 1947)

रंगाचार्य : द युगाज, ए क्वश्चन ऑफ हिंदू क्रोनोलॉजी

श्याम शास्त्री : द्रस, द वैदिक साइकल ऑफ एक्लिप्सस

वेबर अलब्रेच्ट : इण्डिशे स्टडीन (बर्लिन 1868-69)

विल्सन : विष्णु पुराण (संस्कृत साहित्य पर निबंध) ए सिस्टम ऑफ हिंदू माइथोलॉजी एण्ड ट्रेडीशन, सम्पा. फिट्स एडवर्ड हॉल वा. 1-5 (लंदन, ट्रूबनर एण्ड कम्पनी, 1864)

अनुक्रमणिका

डॉ. अम्बेडकर प्रतिष्ठान
DR. AMBEDKAR FOUNDATION

सामाजिक न्याय और अधिकारिता मंत्रालय
MINISTRY OF SOCIAL JUSTICE AND EMPOWERMENT
भारत सरकार
GOVERNMENT OF INDIA

☎ 23320571
23320589
23320576
FAX : 23320582

निदेशक
DIRECTOR

15, जनपथ,
15, JANPATH
नई दिल्ली - 110001
NEW DELHI-110001

दिनांक – 31.10.2019

रियायत नीति (Discount Policy)

सक्षम प्राधिकारी द्वारा यह निर्णय लिया गया है कि पहले के नियमों के अनुसार CWBA वॉल्यूम के संबंध में रियायत नीति (Discount Policy) जारी रखें। तदनुसार, CWBA इंग्लिश वॉल्यूम (डिलक्स संस्करण–हार्ड बाउंड) के एक पूर्ण सेट की कीमत और CWBA हिंदी वॉल्यूम (लोकप्रिय संस्करण–पेपर बाउंड) के एक पूरे सेट की कीमत निम्नानुसार होगी :

क्र.सं.	सीडब्ल्यूबीए सेट	रियायती मूल्य प्रति सेट
	अंग्रेजी सेट (डिलक्स संस्करण) (वॉल्यूम 1 से वॉल्यूम 17)– 20 पुस्तकें।	रू 2,250/–
	हिंदी सेट (लोकप्रिय संस्करण) (खंड 1 से खंड 40 तक)– 40 पुस्तकें।	रू 1073/–

2. एक से अधिक सेट के खरीदारों को सेट की मूल लागत (Original Rates) यानी रू 3,000/–(अंग्रेजी के लिए) और रू 1,430/–(हिंदी के लिए) पर छूट मिलेगी जो कि निम्नानुसार है।

क्र.सं.	विशेष	मूल लागत पर छूट का प्रतिशत
	रू 1000/– रुपये तक की पुस्तकों की खरीद पर	10%
	रू 1001–10,000/– रुपये तक की पुस्तकों की खरीद पर	25%
	रू 10,001–50,000/– रुपये तक की पुस्तकों की खरीद पर	33.3%
	रू 50,001–2,00,000/– रुपये तक की पुस्तकों की खरीद पर	40%
	रू 2,00,000/– से ऊपर की पुस्तकों की खरीद पर	45%

3. इच्छुक खरीदार प्रतिष्ठान की वेबसाइट : www.ambedkarfoundation.nic.in पर विवरण के लिए जा सकते हैं। संबंधित CWBA अधिकारी / पीआरओ को स्पष्टीकरण के लिए दूरभाष नंबर 011–23320588, पर कार्य दिवसों में पूर्वाह्न 11:30 बजे से शाम 5:30 बजे तक संपर्क किया जा सकता है।

(देबेन्द्र प्रसाद माझी)
निदेशक, डॉ. अम्बेडकर प्रतिष्ठान

बाबासाहेब डॉ. अम्बेडकर सम्पूर्ण वाङ्मय

ISBN (सेट) : 978-93-5109-149-3

रियायत नीति के अनुसार
सामान्य (पेपरबैक) खंड 01-40
के 1 सेट का मूल्य : ₹ 1073/-

प्रकाशक :

डॉ. अम्बेडकर प्रतिष्ठान
सामाजिक न्याय और अधिकारिता मंत्रालय
भारत सरकार
15, जनपथ, नई दिल्ली – 110 001
फोन : 011–23320571
जनसंपर्क अधिकारी फोन : 011–23320588
वेबसाइट : http://drambedkarwritings.gov.in
ईमेल : cwbadaf17@gmail.com